HINDI YATRA SAHITYA KA SANSKRITIK ADHYAYAN

Thesis Submitted in Partial Fulfilment of the Requirement for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In Hindi

2022

Submitted By

SWATI CHOUDHARY

17HHPH03

Under the guidance of

DR. M. ANJANEYULU

Department of Hindi, School of Humanities
University of Hyderabad
P. O Central University, Gachibowli,
Hyderabad - 500046
Telangana State, India

हिन्दी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

2022

शोधार्थी

स्वाति चौधरी

17HHPH03

शोध-निर्देशक

डॉ. एम. आंजनेयुलु

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

विभागाध्यक्ष

प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद-500046

DECLARATION

I, SWATI CHOUDHARY hereby declare that the thesis entitled “**HINDI YATRA SAHITYA KA SANSKRITIK ADHYAYAN**” **(“हिन्दी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन”)** submitted by me under the guidance and supervision of **Dr. M. Anjaneyulu** is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Signature of supervisor

Date -

Signature of the Student

SWATI CHOUDHARY

Regd. No. 17HHPH03

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"HINDI YATRA SAHITYA KA SANSKRITIK ADHYAYAN"("हिन्दी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन")** submitted by **SWATI CHOUDHARY** bearing Regd. No. 17HHPH03 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in HINDI in the school of Humanities is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been:

A. Published in the following publications:-

1. **"HINDI VIDESHI YATRA SAHITYA MAI MAHILAON KA YOGDAAN"** [ISSN NO-2322-0724] Issue-33, September -2020, Apni maati patrika

2. **"PURVOTTAR KA YATHARTH : VAH BHI KOI DESH HAI MAHARAJ"** [ISSN NO-0975119x] Volume-13, Number-1 January – February - 2021, Drishtikon patrika

B. Presented in the Following Conferences:-

1. "HINDI YATRA SAHITYA BHARTIYA SANSKRITI KE PARIPREKSHYA MAI" Organized by Badruka Vanijyik Evm Kala Mahavidhyalay, Hindi Hai Ham Vishv Maitri Manch, Hyderabad , 14-15 December 2018 (International)

2**. "STRI YATNA KA RAKTRANJIT DASTAVEJ : DEH HI DESH"** Organized by The Department of Hindi, The English and Foreign Languages University(EFLU), Hyderabad, 6-7 February 2020 (International)

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of coursework requirement for Ph. D in durations Ph. D first year (2017-18) This coursework was recommended by Doctoral Committee.

Course Code	Name	Credits	Pass/Fail
1. 701	Research Methodology	4	Pass
2. 801	Critical Approaches to Research	4	Pass
3. 802	Research Paper	4	Pass
4. 826	The Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
5. 827	Practical Review	4	Pass

The student has also passed M.PHIL degree of this university. she studied the following course in this Programme.

Course Code	Grade	Credit	Result
1. 701 Research Methodology	B+	4	Pass
2. 721 Philosophy of History of Literature	B	4	pass
3. 722 Aesthetics and Stylistics	B	4	pass
4. 723 social Context of Hindi and Language Registers	B+	4	pass
Dissertation	B+	16	Pass

Supervisor Head of Department Dean of School

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

हिंदी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

भूमिका **10-14**

प्रथम अध्याय : हिंदी यात्रा साहित्य का स्वरूप एवं परम्परा **15-80**

1.1 यात्रा का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.2 यात्रा साहित्य के प्रकार एवं तत्व

1.3 यात्रा साहित्य का प्रयोजन / महत्व

1.4 यात्रा साहित्य और संस्कृति का संबंध

1.5 यात्रा साहित्य की परम्परा

1.6 हिंदी यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास

1.6.1 भारतेंदुपूर्वयुगीन यात्रा साहित्य

1.6.2 भारतेंदुयुगीन यात्रा साहित्य

1.6.3 द्विवेदीयुगीन यात्रा साहित्य

1.6.4 छायावादयुगीन यात्रा साहित्य

1.6.5 उत्तर छायावादयुगीन यात्रा साहित्य

1.6.6 स्वातंत्र्योत्तर / समकालीन यात्रा साहित्य

1.7 हिंदी यात्रा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं के साथ संबंध

1.8 हिंदी यात्रा साहित्य का साहित्य में योगदान

1.9 हिन्दी यात्रा साहित्य की भाषा-शैली

द्वितीय अध्याय : संस्कृति की अवधारणा और स्वरूप **81-146**

2.1 संस्कृति का कोशगत अर्थ एवं स्वरूप

2.2 भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार संस्कृति की परिभाषा

2.3 भारतीय संस्कृति के आधारभूत अभिलक्षण
2.4 संस्कृति के अध्येता और उनकी वैचारिकी का विकास
2.5 संस्कृति और समाज का अंतर्संबंध
2.6 साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध
2.7 धर्म और संस्कृति
2.8 कला और संस्कृति
2.9 संस्कार और संस्कृति
2.10 संस्कृति और सभ्यता
2.11 परम्परा, इतिहास और संस्कृति
2.12 विदेशों में भारतीय संस्कृति
2.13 संस्कृति का बदलता हुआ संदर्भ

तृतीय अध्याय : चयनित हिंदी यात्रा साहित्य : समग्र विश्लेषण 147-230

3.1 प्रयाग शुक्ल – सम पर सूर्यास्त (2002)
3.2 गगन गिल – अवाक् (2008)
3.3 हरिराम मीणा – जंगल - जंगल जलियांवाला (2008)
3.4 अशोक जेरथ – अनाम यात्राएं (2011)
3.5 कृष्णा सोबती – बुद्ध का कमंडल (2012)
3.6 पंकज बिष्ट – खरामा - खरामा (2012)
3.7 अनिल यादव – वह भी कोई देस है महराज (2012)
3.8 अजय सोडानी – दर्रा-दर्रा हिमालय (2014) और दरकते हिमालय पर दर-ब-दर (2018)
3.9 मधु कांकरिया - बादलों में बारूद (2014)
3.10 राकेश तिवारी – सफर एक डोंगी में डगमग (2014)
3.11 नीरज मुसाफिर – मेरी लद्दाख यात्रा (2017)
3.12 अजय सोडानी – इरिणालोक (2019)

3.13 उमेश पंत – दूर-दुर्गम दुरस्त (2020)

चतुर्थ अध्याय – हिंदी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन : विविध रूप 231-304

4.1 भौगोलिक परिवेश

4.2 प्रकृति का चित्रण

4.3 समाज

4.4 इतिहास

4.5 धर्म

4.6 दर्शन

4.7 नैतिक मूल्य

4.8 खानपान

4.9 रहन-सहन

4.10 वस्त्राभूषण

4.11 पर्व-त्योहार

4.12 कलाएँ

4.13 संस्कृति का बदलता हुआ स्वरूप

पंचम अध्याय : हिंदी यात्रा साहित्य की भाषा और शैली 305-337

5.1 भाषिक वैशिष्ट्य

5.2 शैलीगत विविधता

5.3 बिम्ब

5.4 प्रतीक

उपसंहार 338-353

परिशिष्ट एवं संदर्भ ग्रंथ-सूची 354-366

भूमिका

यात्रा मनुष्य को बहुत कुछ सिखाती और अनुभव कराती है। वैसे देखा जाए तो यायावरी प्रवृत्ति एक नशे की तरह है जिसको शांत करने की इच्छा सभी में होती है। प्रत्येक इंसान में दुनिया देखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति बचपन से ही होती है। इसी इच्छा को शांत करने के लिए यायावर जब बाहर निकलता है तो उसके भ्रमण में जो भी पात्र और विचार संपर्क में आते हैं। वे मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं और अपने मानस पटल पर अंकित विचारों को जब वह लिपिबद्ध करता है। तभी यात्रा साहित्य का जन्म होता है। अर्थात् कोई भी व्यक्ति जब अपनी यात्रा की यात्रानुभूतियों को कलात्मक रूप देकर संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है तो उसे यात्रा साहित्य कहा जाता है।

हिन्दी यात्रा साहित्य की विकास यात्रा को अगर देखा जाए तो साहित्येतिहास की परंपरा में यात्रा साहित्य पर अधिक बातें नहीं हुई हैं, लेकिन हिन्दी साहित्य की अन्य गद्य विधाओं पर नजर डाली जाए तो यात्रा साहित्य एक महत्वपूर्ण गद्य विधा है। यात्रा साहित्य का मानव मन के संस्कार रूप में सुप्त घुमक्कड़ी प्रवृत्ति को जागृत करके देश-देशान्तर की ओर उन्मुख करने या भ्रमणेच्छा उत्पन्न करने में अविस्मरणीय योगदान रहा है। यात्रा साहित्य ही एक ऐसी विधा है जिससे प्रेरणा प्राप्त करके व्यक्ति की यायावरी प्रवृत्ति का विस्तार होता है। यायावरी प्रवृत्ति का विस्तार करके यह पाठक को समाज, धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, कला, प्रकृति सब से जोड़े रखता हैं। आज हिन्दी में सैंकड़ों की संख्या में यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित हैं जिनमें से यहाँ सभी को एक साथ लेना संभव नहीं है। इसीलिए सन् 2000 ई. के बाद प्रकाशित भारतीय परिवेश से संबंधित कुछ प्रमुख रचनाकारों के यात्रा वृत्तांतों को केंद्र में रखा गया है जिसके केंद्र में भारतीय संस्कृति रही है और उन्हीं का चयन करके प्रस्तुत शोध कार्य किया गया है।

हिन्दी यात्रा साहित्य का सर्वाधिक सशक्त पहलू उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। संस्कृति के विकास, उन्नयन एवं विस्तार प्रदान करने में यात्रा साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उत्कृष्ट यात्रा साहित्य वही है जो जन-जीवन के साथ-साथ वहाँ की सांस्कृतिक झाँकियों को भी प्रस्तुत करें। यात्रा साहित्य दृश्य परिवर्तन व मनोरंजन के साथ-साथ सांस्कृतिक विकास में योगदान दे तभी उसकी सफलता है। इस विधा में बिखरे इन समाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का अन्वेषण करना ही इस

शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य है। इसमें अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति में विद्यमान धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तत्वों का अध्ययन किया गया है। साथ ही शोध कार्य के दूसरे पक्ष को देखा जाए तो कहा जा सकता है कि यात्रा साहित्य सृजनात्मक एवं परिमाणात्मक दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध विधा होने पर भी आलोचकों और शोधकर्ताओं द्वारा उपेक्षित की गयी है। अभी तक यात्रा-साहित्य पर जो शोध-कार्य हुए है वे बहुत ही कम, संक्षिप्त और अपर्याप्त है। हिंदी यात्रा साहित्य का संस्कृति एक अविछिन्न अंग होने पर भी संस्कृति सम्बंधित व्यापक शोध-कार्य इस विधा में अभी तक नहीं हुआ है। अत: इन संस्कृति सम्बंधित तत्वों की खोज करना ही इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य रहा है।

मैंने हैदराबाद विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. में शोध कार्य करने के लिए 'हिन्दी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' विषय का चुनाव किया है। जिसके लिए मेरे शोध निर्देशक डॉ. एम. आंजनेयुलु जी ने मुझे इस विषय पर शोध-कार्य करने के लिए प्रेरित किया और विषय चयन से लेकर अंतिम रूप देने तक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

प्रस्तुत शोध कार्य में मुख्यत: अंतरविद्यावर्ती शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसके अलावा भी विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिए विभिन्न प्रकार की शोध पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। जिनमें सबसे प्रमुख समाजशास्त्रीय पद्धति के माध्यम से यात्रा साहित्य में अभिव्यक्त विभिन्न समाजों के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन आदि का अध्ययन किया गया है, साथ ही विभिन्न समाजों के व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करने के लिए मनोवैज्ञानिक शोध पद्धति एवं आवश्यकतानुसार अन्य शोध पद्धतियों का भी उपयोग किया गया है। जिनमें ऐतिहासिक पद्धति के अंतर्गत विभिन्न वर्तमान स्थितियों को प्राचीन काल से जोड़कर अध्ययन किया गया है।

अध्ययन और विश्लेषण की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबंध को भूमिका एवं उपसंहार के अलावा पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। **प्रथम अध्याय में 'हिंदी यात्रा साहित्य का स्वरूप एवं परम्परा'** को स्पष्ट किया गया है। जिसमें यात्रा का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप एवं क्षेत्र, यात्रा साहित्य के प्रकार, यात्रा साहित्य के तत्व, यात्रा साहित्य का प्रयोजन एवं महत्व, यात्रा साहित्य की परम्परा, हिंदी यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास जिसमें भारतेंदुपूर्वयुगीन यात्रा साहित्य, भारतेंदुयुगीन यात्रा साहित्य, द्विवेदी युगीन यात्रा साहित्य, छायावादयुगीन यात्रा साहित्य, उत्तर छायावादयुगीन

यात्रा साहित्य, स्वातंत्र्योत्तर/ समकालीन यात्रा साहित्य, हिंदी व यात्रा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं के साथ संबंध को स्पष्ट करते हुए हिंदी यात्रा साहित्य के हिन्दी साहित्य में योगदान को बताया गया है।

शोध विषय संस्कृति से संबंधित होने के कारण **द्वितीय अध्याय 'संस्कृति की अवधारणा और स्वरूप'** में संस्कृति की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है जिसे संस्कृति का कोशगत अर्थ एवं स्वरूप, भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार संस्कृति की परिभाषा, संस्कृति के अध्येता और उनकी वैचारिकी का विकास, भारतीय संस्कृति के आधारभूत अभिलक्षण, संस्कृति और समाज का अंतर्संबंध, साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध, धर्म और संस्कृति, कला और संस्कृति, संस्कार और संस्कृति, सभ्यता और संस्कृति, परम्परा, इतिहास और संस्कृति, संस्कृति का बदलता हुआ संदर्भ, विदेशों में भारतीय संस्कृति में विभक्त किया गया हैं। भारतीय संस्कृति को परिभाषित या व्याख्यायित करना इतना आसान कार्य नहीं है क्योंकि यहाँ की परम्पराओं, जीवन शैलियों, भाषाओं, धार्मिक प्रतीकों व जातीय अस्मिताओं में बहुत विभिन्नताएँ है और यह एक जगह निश्चल न रहकर विकास, परिवर्तन व प्रयोग निरंतर करती रहती है। इसी परिवर्तनशीलता व गतिशीलता की जटिलता के कारण इसका एक निश्चित स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सकता। इसीलिए संस्कृति के विविध अभिलक्षणों के आधार पर इसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

यात्रा वृत्तांतों की संख्या सैकड़ों में होने के कारण शोध की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए सभी को न लेकर **तृतीय अध्याय 'चयनित हिंदी यात्रा साहित्य : समग्र विश्लेषण'** में चयनित यात्रा वृत्तांतों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। जिसमें प्रयाग शुक्ल का 'सम पर सूर्यास्त'(2002), गगन गिल का 'अवाक्'(2008), हरिराम मीणा का 'जंगल जंगल जलियांवाला'(2008), अशोक जेरथ का 'अनाम यात्राएं'(2011), कृष्णा सोबती का 'बुद्ध का कमंडल'(2012), पंकज बिष्ट का 'खरामा-खरामा'(2012), अनिल यादव का 'वह भी कोई देस है महराज'(2012), अजय सोडानी का 'दर्रा-दर्रा हिमालय'(2014) और 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर'(2018), मधु कांकरिया का 'बादलों में बारूद'(2014), राकेश तिवारी का 'सफर एक डोंगी में डगमग'(2014), नीरज मुसाफिर

का ‘मेरी लद्दाख यात्रा’(2017), अजय सोडानी का ‘इरिणालोक’(2019) का समग्रता से विश्लेषण करते हुए समीक्षा प्रस्तुत की गई हैं।

चयनित यात्रा वृत्तांतों को अगर देखा जाए तो इनमें यात्राओं के विविध रूप दिखाई देते हैं जिनमें कही हिमालय की दुर्गम पहाड़ियाँ है तो कहीं भू-स्खलन से भरी चढ़ाई है। कही राजस्थान के सम का रेगिस्तान दिखाई देता है तो कही दीव की लहरें वही दूसरी ओर आकर्षित करता पूर्वोत्तर का प्राकृतिक सौन्दर्य, कच्छ का रन, लद्दाख के मटमैले पहाड़, सुंदरवन की मैंगरोव वनस्पति सहज ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यात्राओं के इन्हीं विविध रूपों को इस अध्याय में बताया गया है।

चतुर्थ अध्याय ‘हिंदी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन’ के अंतर्गत हिंदी यात्रा साहित्य में अभिव्यक्त संस्कृति के अंत: व बाह्य रूपों को प्रस्तुत किया गया है। संस्कृति को अगर देखा जाए तो इसे एक निश्चित परिभाषा में बाँधकर नहीं देखा जा सकता। इसीलिए इसे अलग-अलग क्षेत्रों के लोग अलग-अलग तरह से परिभाषित करते हैं। जैसे - धर्म और दर्शन के लोग धर्म दर्शन को संस्कृति कहते हैं; कला क्षेत्र के लोग कलाओं को संस्कृति के पर्याय के रूप में देखते हुए इसे साहित्य, नृत्य, नाट्य, संगीत, चित्रकला आदि कला विधाओं से जोड़कर देखते हैं; तो नृतत्त्व विज्ञानी इसका संबंध मनुष्य समाज से जोड़कर मानव के कालक्रम से विकसित हुई मानते हैं। संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत ही व्यापक होने के कारण इसका संबंध मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक, कला जैसे जीवन के सभी पहलुओं से रहा है। इसमें धर्म, दर्शन, कलाएँ, साहित्य, मानव व्यवहार, नैतिक मूल्य, खान-पान, रहन-सहन और वे सभी तत्व मौजूद है जो जीवन को संपूर्णता प्रदान करते हैं। इसीलिए इस अध्याय को भौगोलिक परिवेश, प्रकृति चित्रण, धर्म, दर्शन, नैतिक मूल्य, खानपान, रहन-सहन, वस्त्राभूषण, पर्व-त्योहार, कलाएँ, संस्कृति का बदलता हुआ स्वरूप जैसे उपअध्यायों में विभक्त करके संस्कृति संबंधित सभी पहलुओं का विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय ‘हिन्दी यात्रा साहित्य की भाषा और शैली’ के अंतर्गत चयनित यात्रा वृत्तांतों का भाषा संबंधित विवेचन किया गया है। जिसमें भाषा, शैली, प्रतीक, बिम्ब सभी को

प्रस्तुत करते हुए अंत में सभी अध्यायों का उपसंहार एवं शोध संबंधित संदर्भ ग्रंथों को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य मैंने अपनी रुचि और जिज्ञासा से पूर्ण किया है।

मैं आभारी हूँ शोध निर्देशक डॉ. एम. आन्जनेयुलु जी की जिन्होंने समय-समय पर मेरा मार्गदर्शन किया। मैं विभागाध्यक्ष महोदय प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक, प्रो. सच्चिदानन्द चतुर्वेदी, प्रो. अन्नपूर्णा मैम और विभाग के सभी गुरुजनों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने मुझे शोध योग्य समझा और समुचित अवसर प्रदान किया। मैं अपने दादाजी, माता-पिता(रुक्मणी देवी-अर्जुन जी कुड़ी) के प्रति भी कृतज्ञ हूँ; जिन्होंने मेरी हर आवश्यकताओं को पूरा किया। साथ ही सभी मित्रों गीता, मैना, श्रुति, सुरेश, राजेश भैया, वंदना, देविका, बबीता, अन्नू, मंजीत, निक्की का भी आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मेरी हर कठिनाई को दूर करने में सहयोग प्रदान किया। मैं विशेष रूप से आभारी हूँ सुभाष जी, पिंकी दीदी और भाई भरतवीर की जिन्होंने मुझे समय-समय पर प्रेरित और प्रोत्साहित किया। इसके अलावा इस शोध प्रबंध को पूर्णता देने में गुरुजनों, मित्रों व ग्रंथों का सहयोग व प्रोत्साहन मिला है उन सभी के प्रति मैं तहे दिल से कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

प्रथम अध्याय : हिन्दी यात्रा साहित्य का स्वरूप एवं परम्परा

1.1 यात्रा का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

1.2 यात्रा साहित्य के प्रकार एवं तत्व

1.3 यात्रा साहित्य का प्रयोजन / महत्व

1.4 यात्रा साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध

1.5 यात्रा साहित्य की परम्परा

1.6 हिन्दी यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास

- 1.6.1 भारतेन्दुपूर्वयुगीन यात्रा साहित्य
- 1.6.2 भारतेन्दुयुगीन यात्रा साहित्य
- 1.6.3 द्विवेदीयुगीन यात्रा साहित्य
- 1.6.4 छायावादयुगीन यात्रा साहित्य
- 1.6.5 उत्तर छायावादयुगीन यात्रा साहित्य
- 1.6.6 स्वातन्त्र्योत्तर / समकालीन यात्रा साहित्य

1.7 हिन्दी यात्रा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं के साथ सम्बन्ध

1.8 हिन्दी यात्रा साहित्य का साहित्य में योगदान

1.9 हिन्दी यात्रा साहित्य की भाषा-शैली

1.1 यात्रा का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप :-

मेरा शोध प्रबन्ध यात्रा साहित्य से संबंधित है, अतः पहले हिन्दी यात्रा साहित्य की विकास यात्रा को समग्रता के साथ देखना समीचीन होगा। इसीलिए शोध-शीर्षक को ध्यान में रखकर प्रथम अध्याय 'हिन्दी यात्रा साहित्य का स्वरूप और परंपरा' को विभिन्न उपअध्यायों में विभक्त करते हुए इसके अन्तर्गत यात्रा के अर्थ, परिभाषा और स्वरूप को स्पष्ट किया गया है; यात्रा साहित्य के प्रकार, तत्व, प्रयोजन एवं महत्व को स्पष्ट किया गया है; यात्रा साहित्य एवं संस्कृति का सम्बन्ध और यात्रा साहित्य की परम्परा को देखते हुए हिन्दी यात्रा साहित्य के उद्भव के साथ इसके विकास के विभिन्न आयामों, यथा भारतेन्दुपूर्वयुगीन यात्रा साहित्य, भारतेन्दुयुगीन यात्रा साहित्य, द्विवेदी युगीन यात्रा साहित्य, छायावादयुगीन यात्रा साहित्य, उत्तर छायावादयुगीन यात्रा साहित्य और स्वातंत्र्योत्तर / समकालीन यात्रा साहित्य पर प्रकाश डाला गया है; यात्रा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं के साथ अंतर्सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए इसके हिन्दी साहित्य में योगदान को रेखांकित किया गया है, तथा यात्रा साहित्य की भाषा शैली पर प्रकाश डाला गया है।

यात्रा करना मानव की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जिसके कारण आदिकाल से ही मानव यायावरी प्रवृत्ति का रहा है और अपनी जीवन्तता का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए वह यात्रा करता रहा है। यात्रा का जीवन से भी अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा में एक बच्चे के रूप में जन्म लेता है और जीवन-यात्रा को पूर्ण करके मृत्यु को प्राप्त होता है। इस जीवन-यात्रा में सुख-दुःख आते रहते हैं; लेकिन सुख-दुःख के बीच से ही यह जीवन-यात्रा चलती है। इस आंतरिक जगत की तरह ही अपने बाह्य जीवन में भी हर व्यक्ति कोई न कोई यात्रा अवश्य करता रहता है। वह अपनी आंतरिक और जीवनगत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सदैव ही यात्रा करता आया है।

मनुष्य की प्रवृत्ति, बचपन हो या युवावस्था, सदैव ही घुम्मकड़ी रही है। आदिम युग में मानव की भ्रमणवृत्ति अधिक उद्देश्यपूर्ण थी लेकिन कालान्तर में जीवन-जगत के विस्तृत वैचित्र्य, वैभिन्य आदि का आकर्षण मनुष्य की घुमक्कड़ी प्रवृत्ति का प्रमुख कारण बना जिससे उसकी यायावरी

प्रवृत्ति बढ़ती गई। प्रत्येक यात्रा मनुष्य की स्वतंत्रता की उद्घोषणा है। स्वतंत्रता को प्रमुखता देने के कारण ही यायावरी हमें स्वतन्त्र और स्वावलंबी बनाती है।

यात्रा शब्द की 'व्युत्पत्ति' एवं अर्थ :-

'यात्रा' शब्द स्त्रीलिंग शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत की 'या' धातु के साथ 'ष्ट्रन' प्रत्यय के योग से हुई है। या+ ष्ट्रन - यात्रा, जिसका अर्थ है- 'जाना'। यात्रा को अरबी भाषा में 'सफ़र' कहा जाता है। इसे विभिन्न उद्देश्यों, स्वरूप, कार्य व्यापार आदि के आधार पर भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे- भ्रमण, घुमक्कड़ी, यायावरी, चलवासी, खानाबदोश, आना-जाना, घूमना, भटकना, आवारागर्दी करना, तीर्थाटन, मेला, फेरी आदि विभिन्न शब्दों का प्रयोग इसके लिए किया जाता है। गमन, प्रस्थान आदि अर्थों में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार सामान्यत: यात्रा शब्द का अर्थ है – 'एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना'।

हिन्दी में यात्रा के लिए सफ़र, प्रयाण, गमन व यात्री के लिए घुमक्कड़, यायावर आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता हैं। मराठी में यात्रा के लिए 'प्रवास' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। जिसमें 'वस्' शब्द का अर्थ है 'दूर रहना', 'दूर जाना', 'यात्रा करना' आदि। भारतीय भाषाओं में यात्रा को लेकर विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत व हिन्दी में यात्रा, बांग्ला में यात्रा, गमन, मराठी में प्रवास, गुजराती में यात्रा, पंजाबी में पेंडा, उर्दू में सफ़र, तमिल में प्रयाण, मलयालम में यात्रा आदि का प्रयोग किया जाता हैं।

प्राचीनकाल में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने अर्थात् स्थान परिवर्तन को ही यात्रा कहा जाता था। पारलौकिक अर्थ में यात्रा का तात्पर्य 'इहलोक की यात्रा' व 'जीवन यात्रा' से लिया जाता है। इहलोक की यात्रा के समाप्त होने का अर्थ है मृत्यु की प्राप्ति। मनुष्य की जीवन-यात्रा में बचपन, यौवन, बुढ़ापा आदि अनेक अवस्थाएँ आती हैं और मृत्यु होने पर उसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है। इसी जीवनयात्रा में मनुष्य अपनी जीवनगत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जंगलों, पहाड़ों की यात्रा करता रहता है। धर्म को अधिक महत्व देने के कारण तीर्थयात्रा, तीर्थाटन आदि शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। धर्म के प्रति यह मान्यता रही है कि तीर्थयात्रा से

मन को शांति मिलती है। हिन्दू, बौद्ध, जैन सभी धर्मों में तीर्थ यात्राओं का अत्यधिक महत्व रहा है। इस प्रकार यात्रा करना मनुष्य का धर्म भी है।

वृहद् हिन्दी कोश में 'यात्रा' शब्द के निम्नलिखित अर्थ बताए गये हैं- "स्त्री(सं.) जाने की क्रिया; तीर्थ यात्रा; यात्रियों का समूह; मेला; काल-यापन; यान; प्रस्थान; चढ़ाई; युद्ध-यात्रा; उपाय-व्यवहार; जीवन-निर्वाह; उत्सव; नृत्य-गान-युक्त रास-लीला के ढंग का बंगाल में प्रचलित एक अभिनय।"[1] इसमें यात्रा को तीर्थ यात्रा, युद्ध यात्रा, जीवन-निर्वाह जैसे विभिन्न रूपों के माध्यम से बताया गया है।

संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश में वामन शिवराम आप्टे यात्रा के संबंध में बताते हैं कि "(या+ ष्ट्रन+टाप) 1. जाना, गति, सफर 2. सेना का प्रयाण, चढ़ाई, आक्रमण 3. तीर्थाटन यथा तीर्थयात्रा 4. तीर्थ यात्रियों का समूह 5. उत्सव, पर्व, किसी उत्सव या संस्कार का अवसर 6. जुलूस, उत्सव यात्रा 7. सड़क 8. जीवन का सहारा, जीविका, निर्वाह 9. (समय का) बीतना 10. संव्यवहार।"[2]

हिन्दी विश्वकोशकार डॉ. नागेन्द्र नाथ बसु के अनुसार यात्रा का अर्थ है - "1. विजय की इच्छा से कहीं जाना, चढ़ाई। पर्याय-व्रज्या, अभिनिर्याण, प्रस्थान, गमन, गम, प्रस्थिति, यान, प्रापण। 2. प्रमाण, प्रस्थान। 3. दर्शनार्थ देवस्थानों को जाना, तीर्थाटन। 4. उत्सव 5. व्यवहार 6. एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने की क्रिया, सफर।"[3]

इस प्रकार यात्रा शब्द का अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना व स्थान परिवर्तन करना। यह स्थान परिवर्तन विभिन्न उद्देश्यों के लिए हो सकता है। इसे विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न तरह से अभिव्यक्त किया है। वृहद् हिन्दी कोश में यात्रा के उद्देश्यों को आधार बना कर युद्धयात्रा, तीर्थयात्रा, जीवन निर्वाह शब्दों का प्रयोग किया गया है; वहीं हरदेव बाहरी ने प्रस्थान व देव मंदिर पूजन, दर्शन को यात्रा माना है। नागेन्द्र नाथ बासु ने भी तीर्थयात्रा शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार सभी की परिभाषाओं में धार्मिक यात्रा का उल्लेख मुख्य रूप से किया गया है।

---

[1] डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन, औरन्गाबाद, पृ. सं. 11

[2] वामन शिवराम आप्टे, 'संस्कृत-हिन्दी कोश', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 835

[3] सं. नागेन्द्रनाथ बसु, 'हिन्दी विश्वकोश', भाग-18, बी. आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, दिल्ली, पृ. 630

यात्रा साहित्य : परिभाषाएँ :-

यात्रा वृत्तांत क्या है, इसे लेकर कई धारणाएँ मौजूद हैं। कुछ लोगों के लिए यह आख्यान है तो कुछ लोग इसे वृत्तांत कहते हैं, जबकि कुछ लोगों के लिए यह एक किस्म का संस्मरण है। इसके लिए यात्रा वृत्तांत, यात्रावृत्त, यात्रा संस्मरण, यात्रा निबन्ध, यात्रा लेख आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है; लेकिन इन सबका मूल अर्थ यात्रा साहित्य ही है। इसी के संदर्भ में यहाँ यात्रा साहित्य को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि- जब कोई व्यक्ति किसी स्थान विशेष की यात्रा करता है तो उसे अपनी यात्रा में तमाम अविस्मरणीय अनुभव प्राप्त होते हैं। जब वह अपने इन्हीं यात्रानुभवों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है तो उसे यात्रा साहित्य कहा जाता है। इसका सम्बन्ध यात्रागत स्थानों के सौन्दर्य, वहाँ की संस्कृति, प्रकृति, परिवेश तथा वहाँ से प्राप्त होने वाली अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति से है। यात्रा साहित्य व्यक्ति के बाह्य और आंतरिक दोनों ही रूपों को प्रस्तुत करता है। यात्रा वृत्तांत में जहाँ एक ओर किसी प्रदेश की भौगोलिक संरचना, प्राकृतिक परिवेश, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक जीवन की झलक मिलती है, वहीं दूसरी तरफ उसमें रचनाकार के विचारों, अनुभूतियों व अनुभवों का भी समावेश रहता है।

यात्रा साहित्य की परिभाषाओं पर यदि नज़र दौड़ाई जाये तो पता चलता है कि इसकी परिभाषा को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है, सभी ने इसे विविध दृष्टिकोणों से परिभाषित करने का प्रयास किया है। विभिन्न विद्वानों ने अपने अलग-अलग मत अभिव्यक्त किये हैं, जो इस प्रकार हैं-

'हिन्दी साहित्य कोश' में यात्रा साहित्य की परिभाषा इस प्रकार से दी गई है - "सौन्दर्य की दृष्टि से, उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा साहित्य कहा जाता है।"[4] इस परिभाषा में साहित्यिक मनोवृत्ति के यायावरों की मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा साहित्य कहा गया है।

डॉ. बापूराव देसाई ने यात्रा साहित्य की परिभाषा इस प्रकार दी है- "हिन्दी गद्य साहित्य की यात्रा साहित्य एक वह महत्वपूर्ण विधा है, जिसका उद्देश्य स्थानों की विविध भेंट, प्रकृति सौन्दर्य, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, विदेशी स्थलों का आर्कषण, दूसरों के रहन-सहन, ऋतुओं की

[4] संगीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त'(2016), अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं. 12

भिन्नता आदि के प्रति बढ़ती रुचि को देखने के लिए की जाने वाली यायावरी, तीर्थाटन यात्रा विधा है। इसमें यात्राकार उसको ही अभिव्यक्त करता है। अपनी यात्रा में खुली आँखों से पूरे स्थल का, सौन्दर्यादि का उपभोग लेकर अनुभूत सत्य को सन्मुख रखता है।"[5] इसमें बापूराव देसाई ने सभी पक्षों को समाहित करते हुए व्यापक रूप में यात्रा साहित्य की परिभाषा प्रस्तुत की है।

गणेशदत्त शास्त्री के अनुसार यात्रा शब्द का अर्थ है "जीतने की इच्छाओं से राजा का जाना, धावा करना या देवताओं के उद्देश्य से एक प्रकार का उत्सव।"[6] इसमें नवीन संदर्भ न लेकर युद्धयात्रा के संदर्भ में यात्रा की परिभाषा दी गई है।

डॉ. श्याम सिंह 'शशि' के अनुसार "संस्कृत में 'यात्रा' शब्द तो है पर 'यायावर' शब्द पर कोई विशेष सामग्री नहीं मिलती। यात्रा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'या+ष्ट्रन' शब्द से हुई है, जो संस्कृत का है।"[7] इन्होंने यात्रा शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

श्री शिवप्रसाद तिवारी के अनुसार, "यात्रा का तात्पर्य इस प्रकार के सफ़र से है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर किसी प्रयोजन या लक्ष्य से किया जाता है।"[8] इन्होंने सप्रयोजन सफ़र को ही यात्रा कहा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना ही यात्रा है। यात्रा करना गतिशीलता और प्रगतिशीलता का लक्षण माना जाता है। घुमक्कड़शास्त्री महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने यात्रा की परिभाषा बताते हुए लिखा है कि "घुमक्कड़ी वह रस है जो काव्य रस से किसी तरह भी कम नहीं है। कठिन मार्गों को तय करने के बाद नए स्थानों पर पहुँचकर हृदय में जो भावोद्रेक पैदा होता है, वह एक अनुपम चीज है। कविता के रस से हम उसकी तुलना कर सकते हैं और यदि कोई ब्रह्मा पर विश्वास करता है तो वह उसे ब्रह्म समझेगा।"[9] राहुल सांकृत्यायन महान घुम्मकड़शास्त्री थे और उन्होंने घुमक्कड़ी को ब्रह्मानंद सहोदर व काव्य रस के

---

[5] डॉ. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं. 32

[6] संपादक धर्मेन्द्र गुप्त एवं बन्धु, 'विपिनचंद्र पद्मचन्द्र कोश शब्द यात्रा', पृ.सं. 402

[7] श्यामसिंह शशि, लेख 'यायावर साहित्यशास्त्र', पृ. 13

[8] शिवप्रसाद तिवारी, 'विश्व पर्यटन और यात्रा उद्योग', पृ. 7

[9] राहुल सांकृत्यायन, 'घुमक्कड़-शास्त्र', पृ. 39

समान माना है। विश्व संस्कृति, प्रकृति के विराट सौन्दर्य, मानव जीवन की पूर्णता आदि को अपने में समाहित करने के कारण यात्रा साहित्य अपना अलग ही अस्तित्व रखता है।

इस प्रकार यात्रा साहित्य को लेकर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत अभिव्यक्त किये हैं। उनमें विभिन्नता है परन्तु सभी का मूल एक ही है। साधन अलग-अलग है लेकिन साध्य एक ही है। यात्रा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अज्ञात के प्रति मनुष्य मन में स्वाभाविक जिज्ञासा होती है, जो उसे नए और दूरस्थ स्थानों की यात्रा के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यात्रा वृत्तांत नई, खुलती हुई दुनिया, अनजान लोगों, समाजों, सभ्यताओं, संस्कृतियों, जीवन शैलियों को स्वयं में समेटने के साथ-साथ लेखक के निजी विकास का भी आईना होता है।

यात्राओं का प्रारम्भ :-

यात्रा मानव की मूलभूत क्रियाओं में से एक है जिसके कारण आरम्भिक काल से ही मनुष्य की यात्रा के दृष्टांत मिलते हैं। यात्रा और मानव जाति का बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है। मनुष्य के जन्म के साथ ही उसकी यात्रा प्रारम्भ हो जाती है और फिर वह जीवन भर चलती रहती है। यात्रा मनुष्य की प्रगति का सोपान है। यात्रा के कारण व्यक्ति अपने स्वार्थ, देशकाल के बन्धन, जाति, धर्म आदि संकुचित सीमाओं से ऊपर उठकर व्यापक, विस्तृत हृदय और उदार दृष्टि से जीवन और जगत का साक्षात्कार करता है। यात्रा से मनुष्य को बाह्य जगत के साथ-साथ आन्तरिक जगत को जानने का भी मौका मिलता है। अतः यात्रा हमारे जीवन का नितान्त आवश्यक कर्म है।

मानव जाति का आदिकाल से ही यात्रा से बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है। प्रकृति की गोद में जन्मा और पला मानव स्वभाव से ही यात्रा-प्रेमी है। आदिम मानव जातियाँ प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पशु-पक्षियों का शिकार करने और कन्दमूल व फल बटोरने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर यात्रा करती रहती थीं। जब खेती व पशुपालन का प्रारम्भ नहीं हुआ था तब भी मनुष्य समूह में एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलते रहते थे। उनका कोई स्थाई निवास नहीं था, तब आदिमानव को भोजन, पानी की तलाश में घने जंगलों से होकर जोखिम भरी यात्राएँ करनी पड़ती थी। जब आग का आविष्कार और पशुपालन व खेती का आरम्भ हुआ तब मनुष्य स्थिर रूप से निवास करने लगा। तब भी वह शिकार की तलाश में जंगलों में जाता था। इस प्रकार प्राचीनकाल से ही मानव

की यात्रा करने की प्रवृत्ति रही है और उसका यह वर्तमान स्वरूप उसकी यायावरी प्रवृत्ति की ही देन है।

इस धरती पर हर प्राणी हाथ-पैर हिलाकर अपनी जीवन्तता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह जीवन्तता यात्रा करने की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है। प्रत्येक मनुष्य पेट पालन के लिए, खाद्यान्वेषण के लिए भटकता रहता है। जब वह खेत में खेती का काम करने के लिए जाता है या फिर कारखानों में कार्य के लिए जाता है तो यह यात्रा का ही एक चरण है।

प्रारम्भिक काल से ही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि विविध उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए यात्राएँ की जाती रही हैं। आध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टि से अगर देखा जाये तो हमारे देवी और देवता भी यात्राएँ करते रहते थे। उनकी यात्रा करने की प्रवृत्ति के कारण ही देवी-देवताओं के अपने-अपने वाहन हैं। गजानन गणेश चूहे की सवारी करते हैं। दुर्गामाता सिंह पर सवार हो कर रहती हैं तो शिव नंदी बैल पर यात्रा करते थे। इसी तरह इन्द्रदेव का वाहन ऐरावत हाथी, सरस्वती का हंस, शीतला माता का गधा, कार्तिकेय का मोर, विष्णु का गरुड़, सूर्य का रथ, पार्वती का बाघ, लक्ष्मी का उल्लू, यमराज का भैंसा, भैरव का कुत्ता आदि हैं। सभी देवतागण इन्हीं अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर यात्राएँ करते थे। "हमारे कृषि प्रधान देश में भले ही कृषि की उपेक्षा होगी लेकिन अध्यात्म तथा धार्मिक उद्देश्यों को लेकर निरंतर यात्रा दिखाई देती है। हमारे आराध्य देवी तथा देवता हरदम यात्रा करते हुए पाए गए हैं। महाराष्ट्र के खंडेराव क्षत्रिय का वाहन कुत्ता है तो विष्णुदेव गरुड़ारूढ़ होकर उड़ान भरते हैं शिवशंकर नंदी बैल पर यात्रा करते रहे।"[10] नारदमुनि को चौदह ब्रह्मांडों की यात्रा करने वाले सबसे बड़े घुमक्कड़ के रूप में जाना जाता है।

दुनिया के अधिकांश धर्मनायक घुमक्कड़ हुए है। हिन्दू धर्म में चार धामों की यात्रा व पवित्र स्थलों की यात्रा को महत्व दिया गया है वहीं इस्लाम धर्म में मक्का मदीना की यात्रा की जाती है। प्रभु ईसा घुमक्कड़ थे और उनके शिष्यों ने ईसा के संदेश को दुनिया के कोने-कोने में पहुँचाया। बौद्ध धर्म में भी यात्राओं को महत्व दिया जाता है। आचार-विचार, बुद्धि, तर्क और सहृदयता में बुद्ध सर्वश्रेष्ठ घुमक्कड़ थे। बुद्ध घूम-घूमकर अपने उपदेश दिया करते थे और अपने भिक्षुओं को भी

[10] डॉ. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं. 16

यही शिक्षा दी। जैन धर्म के महावीर स्वामी भी आजीवन यात्राएँ करते रहें। घुमक्कड़ी में आड़े आने वाली हर छोटी से बड़ी बाधाओं को उन्होंने त्याग दिया। घर-द्वार, नारी-संतान, वस्त्र सभी का उन्होंने त्याग किया। आदि शंकराचार्य ने भी भारत के चारों कोनों में भ्रमण किया था। यात्रा की दृष्टि से अगस्त्य मुनि का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सबसे पहले उन्होंने ही उत्तर भारत से दक्षिण की यात्रा की थी। इसी तरह आर्थिक कारणों से भी अनेक यात्राएँ की जाती थीं। व्यापारी वर्ग के काफिले व्यापार के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर यात्रा करते रहते थे। राजनैतिक कारणों में शासक वर्ग दूसरे राज्यों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए यात्रा करते थे। बाबर मध्य एशिया से यात्रा करके भारत आया था और उसने यहाँ आकर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इस प्रकार विविध उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए विभिन्न प्रकार से यात्राएँ की जाती रही है।

1.2 यात्रा साहित्य के प्रकार एवं तत्व :-

साहित्य की किसी भी विधा को अगर गहनता प्रदान करनी हो तो उसका वर्गीकरण करना बहुत आवश्यक हो जाता है। यात्रा साहित्य की व्यापकता, विविधता एवं उसमें निहित वैविध्यपूर्ण संचेतनाओं के गहन एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए वर्गीकरण एक महत्वपूर्ण साधन है लेकिन यात्रा साहित्य की विविधता और विपुलता को ध्यान में रखते हुए इसका वर्गीकरण करना इतना आसान काम नहीं है। आज यात्रा साहित्य अत्यंत समृद्ध विधा है। इसी समृद्धता एवं विविधता के कारण यात्रा साहित्य के वर्गीकरण भिन्न-भिन्न पद्धतियों के आधार पर किए जा सकते हैं। यात्रा साहित्य के यात्रा के विषयों और स्वरूपों के आधार पर निम्नलिखित प्रकार किए जा सकते हैं :-

डॉ. प्रतापपाल शर्मा द्वारा देश, उद्देश्य, रचना, साधन एवं शैलीगत आधार पर किया गया वर्गीकरण इस प्रकार है :-

‘‘देशगत आधार पर

1. स्वदेश यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य
2. विदेश यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

उद्देश्यगत आधार पर

1. धार्मिक यात्रा साहित्य
2. राजनयिक यात्रा साहित्य
3. सांस्कृतिक यात्रा साहित्य
4. ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक अन्वेषण सम्बन्धी यात्रा साहित्य
5. भौगोलिक एवं वैज्ञानिक अन्वेषण सम्बन्धी यात्रा साहित्य
6. शैक्षिक एवं साहित्यिक यात्रा साहित्य
7. साहसिक एवं मनोरंजनात्मक यात्रा साहित्य
8. व्यापारिक यात्रा साहित्य

रचनागत आधार पर –

1. स्वकृत यात्राओं का यात्रा साहित्य
2. परकृत यात्राओं का यात्रा साहित्य

साधनगत आधार पर

1. स्थलीय साधनों से की गई यात्राओं का साहित्य
2. जलीय साधनों से की गई यात्राओं का साहित्य
3. आकाशीय साधनों से की गई यात्राओं का साहित्य

शैलीगत आधार पर :-

1. पत्र शैली का यात्रा साहित्य
2. डायरी शैली का यात्रा साहित्य
3. रेखाचित्र एवं संस्मरण शैली का यात्रा साहित्य
4. निबन्ध शैली का यात्रा साहित्य
5. कथा शैली का यात्रा साहित्य

6. पद्य शैली का यात्रा साहित्य"[11]

प्रकाशन के आधार पर

1. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित
2. पुस्तक रूप में प्रकाशित
3. वेब पत्रिकाओं व ब्लॉगों में लिखित

रचनाकारों के आधार पर

1. पुरुष यात्रा साहित्यकारों द्वारा लिखित
2. महिला यात्रा साहित्यकारों द्वारा लिखित

काल विशेष के आधार पर

1. स्वतंत्रतापूर्व काल का यात्रा साहित्य
2. स्वतन्त्र्योत्तर काल का यात्रा साहित्य

इस प्रकार इस वर्गीकरण में यात्रा साहित्य के सभी पक्षों को समाहित किया गया है। विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर समस्त यात्रा साहित्य इसमें समाहित हो जाता है।

यात्रा साहित्य के तत्व :-

यात्रा साहित्य के स्वरूप को समझने के लिए इसके प्रमुख तत्वों की पहचान करना बहुत जरूरी है। यात्रा साहित्य में लेखक अपनी यात्रा के यथार्थ तथ्यों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसी यथार्थ कलात्मक अभिव्यक्ति में अनेक तत्व उभरकर आते हैं।

इन तत्वों के निर्धारण में भी विद्वानों में मतवैभिन्य है; फिर भी इसके स्वरूप को लेकर निम्नलिखित तत्व निर्धारित किए जा सकते हैं :-

1. प्रत्यक्ष अनुभव

---

[11] प्रतापपाल शर्मा, 'हिंदी का आधुनिक यात्रा साहित्य', पृ. 44

2. यायावरी एवं व्यापक जीवन
3. विविध सौन्दर्य
4. पात्र एवं चरित्रांकन
5. देशकाल वातावरण एवं परिवेश
6. भाषा-शैली
7. उद्देश्य

प्रत्यक्ष अनुभव :-

यात्रा साहित्य वास्तविकता से जुड़ी हुई विधा है, जिसमें अनुभूति की सच्चाई को प्रमुखता दी जाती है। इसमें कल्पना को अधिक महत्व नहीं दिया जाता, क्योंकि इसमें लेखक अपनी यात्रा के प्रत्यक्ष अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यात्रा साहित्य घर बैठकर या फिर किसी दूसरे से विभिन्न स्थानों का विवरण सुनकर नहीं लिखा जा सकता। इसके लिए यात्रागत प्रत्यक्ष अनुभवों की आवश्यकता होती है। डॉ. बी.आर. धापसे प्रत्यक्ष अनुभवों का वर्गीकरण करके इसके सम्बन्ध में लिखते हैं कि "यह अनुभव परिवेशात्मक, सांस्कृतिक और घटनात्मक प्रकारों का हो सकता है। परिवेशात्मक में स्थूल वस्तुओं, प्रकृति के यथार्थ स्वरूप और उसमें निहित सौन्दर्य की पकड़ आती है और सांस्कृतिक में सूक्ष्म सोच से लेकर वहाँ की वर्तमान व्यवस्था से जुड़े प्रभावों का अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। घटनात्मक अनुभव ऐसे अनुभव होते हैं जो अप्रत्याशित होते हैं, परन्तु उनमें भी स्थान विशेष के जीवन का कोई न कोई रूप सामने आता है।"[12]

यायावरी एवं व्यापक जीवन :-

यात्रा साहित्य का मूलभूत तत्व है घुमक्कड़ी या यायावरी। बिना कहीं जाए, बिना किसी प्रत्यक्ष अनुभव के यात्रा साहित्य नहीं लिखा जा सकता। नाटक, निबन्ध, कहानी, उपन्यास सभी विधाएँ जीवनानुभव और काल्पनिकता के बल पर एक जगह बैठकर लिखी जा सकती हैं, लेकिन यात्रा साहित्य लेखन के लिए घुमक्कड़ होना बहुत जरूरी है। जब तक लेखक घर से बाहर निकलकर अपनी यात्रा के दौरान के अपने प्रत्यक्ष अनुभव, सुख-दुःख, सम्मान-अपमान, भोगे गये

---

[12] बी.आर. धापसे, 'हिंदी का यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 14

जीवनानुभव को प्रस्तुत नहीं करता है, तब तक उसका एक जगह बैठकर लिखा हुआ यात्रा वर्णन, यात्रा-साहित्य नहीं कहला सकता। बिना यात्रा के किया गया वर्णन केवल ऊपरी, सतही वर्णन है। घुमक्कड़-तृष्णा वास्तव में एक अनोखी चीज है। इस तृष्णा की पूर्ति करने के लिए ही अनेक महान यात्री हुए हैं। सच्चे यात्री के रास्ते में देश, काल की सीमाएँ कभी आड़े नहीं आतीं। राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ 'घुमक्कड़शास्त्र' में घुमक्कड़ी के सभी पक्षों का चित्रण किया है। घुमक्कड़ी को श्रेष्ठ धर्म बताते हुए वे कहते हैं कि "घुमक्कड़ धर्म से बढ़कर धर्म नहीं है। धर्म भी छोटी बात है, उसे घुमक्कड़ के साथ लगाना "महिमा घटी समुद्र की, रावण बसा पड़ोस" वाली बात होगी। घुमक्कड़ होना आदमी के लिए परम सौभाग्य की बात है, यह पंथ अपने अनुयायी को मरने के बाद किसी काल्पनिक स्वर्ग का प्रलोभन नहीं देता। इसके लिए तो कह सकते हैं- "क्या खूब सौदा नगद है, इस हाथ ले उस हाथ दे। घुमक्कड़ी वही कर सकता है जो निश्चिंत है।"[13]

घुमक्कड़ी के लिए जिज्ञासा व तीव्र इच्छाओं का होना अत्यंत आवश्यक है। समय, स्वास्थ्य व धन का होना भी बहुत जरूरी है। आलसी, कामचोर व सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से दूर रहने वाला घुमक्कड़ी नहीं हो सकता। यात्रा साहित्य में यायावरी प्राण तत्व है। यायावरी के सम्बन्ध में डॉ. बापूराव देसाई लिखते हैं कि "यात्राकार साहित्यिक के लिए भ्रमण करना शौक होना चाहिए। तभी तो वह यात्रा के लिए निकल सकता है और ऐसे लेखक को परिवार के लोगों से, रिश्तेदारों से सहयोग मिलना चाहिए, तो ही घुमक्कड़ व्यक्ति घुमक्कड़ी का हर्षानंद लिपिबद्ध कर सकता है। केवल रिश्तेदारों के सुख-दुःख के लिए उनके गाँव बार-बार जाना घुमक्कड़ी नहीं है; इससे ऊँचे उद्देश्य और आदर्श को लेकर स्वान्तः सुखाय के लिए यात्रा पर जाना ही घुमक्कड़ी है।"[14]

यात्रा साहित्य में लेखक के बाह्य और आतंरिक दोनों पक्षों को अभिव्यक्त किया जाता है। आंतरिक पक्ष में उसके जीवनानुभव और बाह्य पक्ष में उसके जीवन के साक्षात्कार धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाज, सभ्यता आदि होते हैं। इसी के साथ वह विभिन्न कलाओं, विभिन्न दर्शनों और साहित्य के संपर्क में आता है। इन्हीं सब को वह अपने जीवन में समेटते हुए नए सौन्दर्य, नए सांस्कृतिक संदर्भ तथा मानवीय मूल्यों के साथ अपनी रचना में प्रस्तुत करता है।

---

[13] राहुल सांकृत्यायन, 'घुमक्कड़शास्त्र', पृ. 8

[14] बापुराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', पृ. 40

विविध सौन्दर्य :-

उपन्यास व कहानी के तत्वों में जहाँ कथावस्तु को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है वहीं यात्रा साहित्य में कथावस्तु का स्थान सौन्दर्य-वस्तु ले लेती है। सबसे अधिक आकर्षित करने वाला सौन्दर्य ही होता है जिसको यात्रा साहित्य में सबसे अधिक प्रमुखता दी जाती है। यदि कोई यात्रा के लिए बाहर जाता है तो उसमें सौन्दर्य के प्रति एक सहज आकर्षण होता है। इसी सौन्दर्य का चित्रण लेखक अपने यात्रा साहित्य में करता है। समाज का सौन्दर्य, स्थान विशेष की विशिष्टता, भाषा, संस्कार, सभ्यता, संस्कृति, प्रकृति सभी के सौन्दर्य का चित्रण यात्रा साहित्य में किया जाता है। इस तरह के हर एक सौन्दर्य का चित्रण यात्रा साहित्य में किया जाता है। इनमें से सबसे अधिक आकर्षित प्रकृति सौन्दर्य करता है। "सौन्दर्य किसमें नहीं है ? सौन्दर्य केवल किसी रूपवती नारी में ही नहीं अपितु प्रत्येक निर्जीव वस्तुओं में भी होता है। हम जिस इलाके में यात्रा के लिए जाते हैं, वहाँ की विविध मूर्तिकला, शिल्पकला, काष्ठकला, वास्तुकला, ग्राम सौन्दर्य या शहर सौन्दर्य, प्राकृतिक सौन्दर्य, नदी, नाले, तालाब, जंगल आदि का विविध सौन्दर्य यहाँ होता है।"[15]

पात्र एवं चरित्रांकन :-

यात्रा साहित्य का मुख्य पात्र लेखक ही होता है। इसमें उपन्यास, कहानी, नाटक की तरह अन्य पात्रों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। "यात्रा साहित्य में पात्रों के चरित्रांकन से सजीवता आती है, लेकिन उसमें उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना संस्मरण, रेखाचित्र एवं कहानी साहित्य में होता है।"[16] यात्रा साहित्य में परिवेश ही प्रमुख होता है। पात्र अंशत: ही मुखर होते हैं। सभी पात्रों के केंद्र में लेखक स्वयं उपस्थित रहता है। चरित्रांकन में भूमि व स्थान विशेष का वर्णन प्रमुख रूप से किया जाता है। इसी के साथ सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक स्थितियों का चित्रण भी इसमें किया जाता है।

देशकाल, वातावरण एवं परिवेशांकन :-

---

[15] बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', पृ. 35

[16] मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ. 14

यात्रा साहित्य में देशकाल व वातावरण का विशेष ध्यान रखा जाता है। यात्रा में देशकाल ही प्रमुख होता है जो कि भ्रमण के साथ-साथ बदलता रहता है। प्रत्येक यात्रावृत्त किसी विशेष देश-विदेश, समय, समाज व वातावरण में पूर्ण होता है। इसी कारण देशकाल के आधार पर ही यात्रा, यात्रा के साधन, खान-पान, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, समाज सभी परिवर्तित होते रहते हैं।

समय विशेष के बाद देशकाल में परिवर्तन होता जाता है। यात्रावृत्त के वर्तमान और अतीत के परिवेश में बहुत अंतर देखने को मिलता है। स्वतंत्रतापूर्व के यात्रा वृत्तांतों और स्वतंत्रता के बाद के वृत्तांतों में बहुत अंतर है। इसके सम्बन्ध में बापूराव देसाई लिखते हैं कि "स्वातंत्र्यपूर्व काल के नियम, कानून, जीवन मूल्य, परम्परा, भक्ति, समाज, अलग-अलग प्रकार के थे तो अब के नियम, कानून, जीवन मूल्य, परंपरा, भक्ति, समाज विभिन्न प्रकार के हैं। लेखक स्वातंत्र्यपूर्व काल की घटना को वर्तमान परिवेश में चित्रित नहीं कर सकता। स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर काल में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक परिस्थितियों के अतिरिक्त तत्काल की मुख्य परम्परा आचार-विचार का चित्रण रहता है। युग विशेष का चित्रण प्रस्तुत करने के लिए तत्कालीन लौकिक एवं राजनैतिक परिवेश का सजीव चित्रण अवश्यम्भावी है।"[17]

वातावरण को अगर देखा जाये तो इसमें प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण प्रमुख स्थान रखते हैं। प्राकृतिक में जहाँ जंगल, नदी, पहाड़, पर्वत, वन, लता, कुंज, बगीचे आदि का वर्णन किया जाता हैं; वहीं सामाजिक वातावरण में समाज, संस्कृति, खानपान, रहन-सहन, विवाह आदि समाविष्ट हैं। सामाजिक वातावरण में समाज विशेष का ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण का सम्पूर्ण रूप से समावेश करके ही यात्रा साहित्य के तत्वों को सशक्त स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।

भाषा-शैली :-

भाषा-शैली का तत्व सभी विधाओं में समान रूप से विद्यमान रहता है। इस तत्व का सम्बन्ध कला-पक्ष से है। यात्रा साहित्य में भाषा-शैली की सरलता को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। इसमें अधिक क्लिष्ट व अलंकृत शब्दावली का प्रयोग नहीं करना चाहिए। "यात्रा-

---

[17] बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', पृ. 41-42

साहित्य का वर्ण्य विषय विचार-संकुल, क्लिष्ट एवं दुर्बोध नहीं होता, इसलिए उसके लिए अनावश्यक रूप से कठिन, दुरूह एवं विद्वत्तापूर्ण अलंकारों से बोझिल अथवा प्रतीकों से युक्त भाषा शैली की आवश्यकता नहीं है । यात्रा साहित्य में भावानुकूल, सीधी, सरल, भाषा शैली वांछित है।"[18] यात्रावृत्त की भाषा का मुख्य उद्देश्य परिस्थितियों एवं भाव को अभिव्यक्त करना ही होता है और इसके लिए भाषा का संप्रेषणीय होना आवश्यक है । शैली की दृष्टि से अगर देखा जाये तो इसके लिए मुक्त निबन्ध शैली सर्वाधिक लोकप्रिय है । डायरी शैली, पत्र शैली, निबन्ध शैली का प्रयोग भी यात्रा साहित्य में किया जाता है ।

उद्देश्य :-

हर काम का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है । निरुद्देश्य कुछ भी नहीं किया जाता । अगर कोई यात्रा साहित्य लिखता है तो उसका उद्देश्य महान और प्रभावशाली होना चाहिए । यात्राएँ कभी ज्ञान प्राप्ति के लिए तो कभी आत्मिक आनंन्द की प्राप्ति के लिए की जाती हैं । आज की तनाव भरी जिन्दगी में तो यात्रा का बहुत बड़ा महत्व है । यात्राओं से सांस्कृतिक समन्वय स्थापित किया जाता है । यात्रा साहित्यकार अपने यात्रा साहित्य के माध्यम से स्थान, सौन्दर्य व जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करता है । यह एक ऐसी शक्तिशाली धरोहर है जिसके माध्यम से विभिन्न देशों के जन और संस्कृतियों का बोध हमें होता है । "यात्रा-साहित्य का उद्देश्य बहुआयामी होता है । इसमें व्यष्टि से समष्टि तक जीवन के अनेक रूप एक साथ मुखर होते हैं । यात्रा साहित्य की रचना में जो चित्र प्रस्तुत होता है, उसका फलक (कैनवास) बहुत बड़ा होता है । प्रत्यक्षत: किसी रचना का एक उद्देश्य भले ही मान लिया जाए, परन्तु यात्रा साहित्य की कोई भी रचना एक साथ अनेक उद्देश्यों को लेकर अपना साहित्यिक रूप प्रस्तुत करती है ।"[19] इस प्रकार इन सभी तत्वों के माध्यम से यात्रा साहित्य को समग्रता से समझा जा सकता है ।

1.3 यात्रा साहित्य का प्रयोजन / महत्व :-

---

[18] बी.आर धापसे, 'हिंदी का यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 16

[19] मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ. 20

यात्राएँ क्यों की जाती हैं ? उनका उद्देश्य क्या है ? क्यों यात्रा साहित्य लिखा जाता है ? ये स्वाभाविक प्रश्न हैं। इन प्रश्नों के उत्तरों पर अगर विचार किया जाये तो कहा जा सकता है कि देशकाल, युग-प्रवृत्तियों, रुचियों व आवश्यकता के अनुरूप यात्रा साहित्य के विविध प्रयोजन रहे हैं।

संसार में हर वस्तु का अपना एक विशिष्ट प्रयोजन होता है। यात्रा साहित्य का भी पठन और लेखन सोद्देश्य ही होता है। जिस प्रकार मनुष्य को जीवनयापन करने के लिए जल, वायु और भोजन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मनुष्य को यात्रा की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य को अपने बहुमुखी व्यक्तित्व का विकास करने के लिए यात्रा करना अनिवार्य हो जाता है। इसके सम्बन्ध में यायावर सत्यदेव परिव्राजक कहते हैं कि "जो जातियाँ दूसरे देशों में भ्रमण करने नहीं जाती और जिनके यहाँ खाने-पीने के लिए काफी है और जो अपने देश को ही सब-कुछ समझकर उसी में ही संतुष्ट रहती हैं। वे धीरे-धीरे मृत्यु की ओर चलने लगती हैं। इसके विपरीत जो देशाटन करती हैं, नये अनुभव प्राप्त करती हैं, नए विचार बाहर से लाती हैं उन्हें अपने राष्ट्रीय जीवन में स्थान देती हैं और सदा जागरूक होकर रहती हैं, वे स्वाधीनता का मधुर रसपान करती हैं और उसका विकास नियमपूर्ण होता है।"[20]

भारतीय संस्कृति का मूल तत्व अनेकता में एकता है। इसी एकता की भावना की स्थापना के लिए निकटता, सद्भाव और सांस्कृतिक सामंजस्य की आवश्यकता होती है। यात्राएँ व्यक्ति की थकान को दूर करके उसमें नवीन स्फूर्ति पैदा करती हैं, जिससे व्यक्ति के मन का विकास होता है और इससे दूसरे मनुष्य व प्राणियों को समझने का भाव आता है। इस प्रकार यात्राओं द्वारा लोक कल्याण की भावना प्रबल होती है। यात्रियों के मन में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति एक उत्कट इच्छा होती है। विविध प्राकृतिक सौंदर्यों और विविध संस्कृतियों को देखने-परखने से मनुष्य की संवेदना शक्ति में बढ़ाव आता है। ज्ञानवर्द्धन भी इसका एक उद्देश्य है। कबीर ने भी कहा है कि 'कागद लेखी से आँखिन देखी' पर आधारित ज्ञान अधिक गहरा होता है। यात्रा साहित्य 'आँखों देखी' पर ही आधारित है। ईसा, बुद्ध, महावीर, रामानुजाचार्य जैसे महान व्यक्तियों ने घूम-घूमकर अपनी ज्ञान संपदा को बढ़ाया। इस प्रकार यात्रा मनुष्य जीवन की एक अपरिहार्य प्रक्रिया है। "मनुष्य के बाह्य और आंतरिक विकास के साथ यात्रा का गहरा और अटूट सम्बन्ध रहा है। आदिमानव से

[20] सत्यदेव परिव्राजक, 'यात्री-मित्र', पृ. 34

आधुनिक मानव बनने की प्रक्रिया में मनुष्य की यायावर वृत्ति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भोजन और जीविका की खोज जैसे व्यापक उद्देश्यों तक यात्रा मानव की सहचरी रही है।"[21]

मात्र अनुभवों को अभिव्यक्त करना ही इस विधा का उद्देश्य नहीं है, बल्कि रचनाकार की संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करना भी इसका लक्ष्य है। यात्रा साहित्य लेखन का मुख्य उद्देश्य अपनी विशिष्ट यात्रा के अनूठे, अनोखे अनुभवों को अभिव्यक्त करना है और उसमें पाठकों को भी सहभागी बनाना है। लेखक अपनी यात्रा के यात्रानुभवों का आनंद लेता है वहीं अनुभवों की संप्रेषणीयता पाठक का मनोरंजन करती है एवं उसे ज्ञान सम्पन्न बनाती है।

यात्रा साहित्य का विषय अत्यंत स्पष्ट और व्यापक है। यह सम्पूर्ण संसार को अपने में समाहित किए हुए है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी यात्रा साहित्य अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह देश-विदेश के बीच में जो दूरी है उसको दूर करके सम्पूर्ण विश्व में एकता स्थापित करने में सहायक है। जिस प्रकार यात्रा-साहित्यकार अपने अनुभवों को अत्यंत आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करते हैं पाठक भी उसी आत्मीयता के साथ उसे ग्रहण करते हैं, क्योंकि यात्रा साहित्यकार जहाँ का वर्णन करता है पाठक को भी वहाँ की संस्कृति, स्थल, वस्तु, भाषाओं और दृश्यों का परिचय मिलता है। इस प्रकार दूरियाँ मिटाकर समन्वय करने में यात्रा साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है।

हर व्यक्ति में भ्रमण करने की इच्छा बलवती होती है लेकिन वह सुषुप्तावस्था में होती है। यात्रा-साहित्य इसी सुषुप्तावस्था के भाव को जागृत करता है, इसके कारण ही वह देश-देशांतर में घूमता है और खट्टे-मीठे अनुभवों से अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इस प्रकार यात्रा साहित्य एक प्रेरक-शक्ति के रूप में हमारा पथ-प्रदर्शन भी करता है। किसी भी स्थान या देश की यात्रा करने से पूर्व उससे सम्बन्धित यात्रा-साहित्य का अध्ययन कर लेना चाहिए क्योंकि उससे वहाँ की संस्कृति, रीति-रिवाज, खान-पान आदि की जानकारी मिलने के साथ-साथ यात्रा में आने वाली कठिनाईयों का भी पता चल जाता है। इस तरह यात्रा साहित्य एक तरफ प्रेरक शक्ति के रूप में तो दूसरी तरफ भावी यायावरों के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है। किसी भी देश या स्थान विशेष की यात्रा करने से पहले यदि उस देश से संबंधित यात्रा साहित्य को पढ़ लिया जाए तो यात्रा के दौरान आने वाली कठिनाईयों व आवश्यकताओं से पहले ही परिचय प्राप्त हो जाता है। साथ ही

---

[21] डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 20

वहाँ के रीति-रिवाज, खानपान, भूगोल आदि की जानकारी पहले से प्राप्त हो जाने से यात्रा सुगम होती है।

यात्रा मानव की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता भी है क्योंकि हर मनुष्य परिवर्तन चाहता है और यह परिवर्तन जीवन में थकान, ऊब और घुटन को दूर कर नवीन स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करता है। यह परिवर्तन मनुष्य को यात्राओं द्वारा अपने आप प्राप्त हो जाता है। यात्रा साहित्य में जीवन की इस सम्पूर्णता का चित्रण कलात्मकता के साथ किया जाता है। यात्राएँ मनुष्य के जीवन को पूर्णता एवं दृष्टिगत व्यापकता प्रदान करती हैं। इस प्रकार से मानव जीवन की समग्रता, विराटता और विश्व समाज को सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत करने में यात्रा साहित्य की उपादेयता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1.4 यात्रा साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध :-

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अगर देखा जाए तो यात्राएँ हमें कई प्रकार की संस्कृतियों से जोड़ती हैं; जिससे यात्रा साहित्य में विभिन्न संस्कृतियों के विविध रूप दिखाई देते हैं। मनुष्य अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण विभिन्न संस्कृतियों को जानने के लिए उत्सुक रहता है। इसमें यात्रा साहित्य संस्कृतियों का खुला चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जब कोई भी लेखक किसी क्षेत्र या प्रदेश विशेष की यात्रा करता है तो वहाँ के खान-पान, रीति-रिवाज, त्योहार, सामाजिक व्यवस्था, भाषा, बोली, वेशभूषा सभी का चित्रण वह अपनी आत्मानुभूति के आधार पर अपने यात्रा वृत्तांत में करता है।

यात्रा साहित्य की विषय-वस्तु का एक महत्वपूर्ण पक्ष संस्कृति होती है, क्योंकि कोई भी यात्राकार अपने आप को स्थान विशेष के भौगोलिक परिवेश तक ही सीमित नहीं रखता बल्कि वह वहाँ की सभ्यता और संस्कृति का भी निरीक्षण करता है। अलग-अलग देशों और प्रदेशों के सामाजिक स्तर, रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज सभी में काफी विभिन्नताएँ पाई जाती हैं और इन्हीं विभिन्नताओं को जानने की उत्सुकता हर यात्री में होती है। लेखक यात्रा के दौरान वहाँ के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए उनका चित्रण अपने यात्रा वृत्तांत में करता है। "अलग-अलग प्रदेशों, देशों और महाद्वीपों के सामाजिक स्तर, रहन-सहन, आचार-विचार, भाषा, पहनावा, रीति-रिवाज और जीवन-पद्धति में आश्चर्यजनक भिन्नताएँ होती हैं, इसलिए एक अंचल के व्यक्ति को

अन्य क्षेत्रों या दूसरे देशों की सभ्यता-संस्कृति को देखने और जानने की उत्सुकता होना स्वाभाविक है।"[22]

यात्रा-वृत्तांत केवल देखे गए स्थानों का विवरण मात्र नहीं है अपितु इसमें यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों, स्थलों, भवनों, भोगी हुई घटनाओं एवं उससे सम्बन्धित अनुभूतियों को कल्पना एवं भाव-प्रवणता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। साहित्यकारों ने अपनी यात्रा कृतियों के द्वारा यात्रा में मिलने वाले अनुभवों, संस्कृति, रीति-रिवाज, परम्पराओं एवं रहन-सहन आदि को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

इस तरह यात्रा साहित्य से विभिन्न देशों के कला, धर्म, दर्शन, अर्थ, राजनीति, शिक्षा आदि का विवरण मिलता है। ये सभी संस्कृति के विभिन्न अंग है और किसी भी देश के लिए सबसे महत्वपूर्ण उसकी संस्कृति होती है इसीलिए सभी देश अपनी-अपनी संस्कृति का विस्तार एवं संरक्षण करना चाहते हैं। यायावर न केवल यात्रा-साहित्य के माध्यम से दूसरे देशों के रीति-रिवाज एवं संस्कृतियों का विवरण देते हैं अपितु संस्कृति के प्रचार-प्रसार का कार्य भी करते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक समन्वय के साथ-साथ उसका विस्तार भी होता है। यात्रा साहित्य अस्त होती संस्कृति को प्रकाश में लाने का कार्य करते हैं। घुमक्कड़ों ने देश के विभिन्न मंदिरों, गिरिजाघरों और ऐतिहासिक स्थानों में जाकर संस्कृति के नष्ट हुए सूत्रों को एकत्रित करके अपने यात्रा-साहित्य के माध्यम से जनता तक पहुँचाने का कार्य किया है। इस प्रकार यात्रा-साहित्य संस्कृति के चित्रण के साथ-साथ उसके संरक्षण का कार्य भी करता है।

1.5 यात्रा साहित्य की परम्परा :-

भारत में अनादि काल से ही यात्राओं का महत्व रहा है। वैसे अगर देखा जाए तो मनुष्य जाति का सम्पूर्ण इतिहास यात्राओं से ही जुड़ा हुआ है। इन यात्राओं से ही आगे चलकर यात्रा साहित्य का प्रादुर्भाव होता है। आधुनिक कथेतर गद्य विधाओं में यात्रा वृत्तांत प्राचीन साहित्यिक विधा है। समय के साथ इसके स्वरूप और चरित्र में बदलाव होते रहे हैं। वैसे अगर देखा जाए तो यात्राओं की परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है। ऋग्वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, पुराण आदि सभी

[22] हरिमोहन कौर भुल्लर, 'हिन्दी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक संदर्भ', पृ. 21

प्राचीन ग्रंथों में यात्रा संबंधित विवरण मिलते हैं। प्रारम्भिक काल से ही व्यापार, तीर्थ, धर्म-प्रचार, मनोरंजन आदि विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यात्राएँ की जाती थीं। वैदिक युग में प्रधानता मुख्य रूप से व्यापारिक और धार्मिक यात्राओं की ही रही है। "वैदिक काल में यात्राएँ कितनी दुर्गम, संकटपूर्ण, तथा भयंकर रही होगी आज उसकी कल्पना करना भी कठिन है। तब भी उस काल में, संस्कृत तथा तमिल का साहित्य विभिन्न शैलियों में यात्रा वृत्तांतों से भरा पड़ा है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, सूत्र, विभिन्न पुराण आदि यात्रावृत्तों तथा यात्रा प्रभावित साहित्य से भरे पड़े हैं। ऋग्वेद विश्व वांग्मय का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है जिसमें यात्राओं का, यात्रा-मार्गों का, वाहनों का वर्णन मिलता है।"[23]

प्रागैतिहासिक युग में प्रमुख रूप से पुराणों में संस्कृत भाषा में अनेक यात्रा वृत्तांतों का चित्रण मिलता है। "अगस्त्य ऋषि की दक्षिण यात्रा के प्रमाण हैं, आज भी प्रचलित 'काप्पियम' व्याकरण उनके द्वारा रचित तमिल के प्रथम व्याकरण पर आधारित है। 900-800 ई.पू. आयाल की यात्रा तथा जैन ग्रंथों में वर्णित यात्राएँ उस परम्परा को आगे बढ़ाती हैं।"[24]

ऐतिहासिक युग में अगर देखा जाए तो इसमें संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि भाषाओं में, जातक कथाओं में, याज्ञवल्क्य तथा मनुस्मृति में तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यात्राओं के प्रमाण मिलते हैं। सम्राट अशोक ने भी बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक यात्राएँ की थी। "सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को लंका तथा बर्मा में धर्म प्रचार के लिए भेजा। भारत के विभिन्न भागों में तो ये धर्म-प्रचारक काम करते ही थे, वे विदेशों में भी गये। मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया तक वे जा पहुँचे। उधर उन्होंने पूर्वी एशिया में, खास तौर से खोतन में प्रवेश किया।"[25] वहाँ यात्रा और उसके अनुभवों को लिपिबद्ध करने का उत्साह है। फाह्यान, ह्वेनसांग, इब्नबतूता, अलबरूनी, मार्कोपोलो, बर्नियर आदि कई साहसी यात्री हुए हैं जिन्होंने दूरस्थ देशों और स्थानों की अपनी यात्राओं के रोमांचक वृत्तांत लिखे। आज ये वृत्तांत धरोहर की तरह हैं, जिनसे हमें अपने अतीत को समझने में मदद मिलती है। "विदेश से आने वाले यात्रिओं तथा मेगस्थनीज

---

[23] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', दिल्ली, पृ. सं. 36

[24] वही, पृ.सं. 35

[25] गजानन माधव मुक्तिबोध, 'भारत इतिहास और संस्कृति', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं. 65

(लगभग 300 ई.पू.), फाह्यान(ईस्वी सन् 400), ह्वेनसांग(लगभग सन् 630) तथा अलबरुनी (लगभग सन् 1000) आदि के यात्रावृत्तों में हमें तत्कालीन समाज के विषय में रोचक तथा उपयोगी जानकारी मिलती है।"[26]

समस्त दक्षिण पूर्व तथा मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है। विभिन्न देशों से यात्री यहाँ आया करते थे और भारत से भी विभिन्न देशों में यात्री जाते थे। अशोक ने भी बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए विभिन्न देशों में अपने राजदूत भेजे थे। "अपने आध्यात्मिक उद्देश्यों और उपदेशों से विदेशों को परिचित कराने के लिए अशोक ने सीरिया के अधिपति एंटीओकस द्वितीय, मेसिडोनिया के एंटीगोनस गोनातास, मिस्र के फिलाडेल्फ्स तथा साइरिन के मागास तथा एपीरस के अलेग्जेंडर के दरबारों में अपने धर्म महामात्य (धर्म-राजदूत) नियुक्त किये।"[27]

यदि यात्रा साहित्य के अभ्युदय और विकास को देखा जाए तो संसार में विद्यमान रहस्यों को जानने और प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने का आकर्षण मनुष्य में शुरू से ही रहा है। प्राचीनकाल से ही यात्राओं का अत्यंत महत्व रहा है। वैदिक ग्रन्थ, संस्कृत साहित्य, पुराण, रामायण, महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों में यात्रा विवरण मिलते हैं। ऋग्वेद में वशिष्ठ एवं वरुण के द्वारा की गई यात्राओं की परेशानियों का उल्लेख किया गया है। रामायण में विश्वामित्र के साथ श्रीराम और लक्ष्मण द्वारा मिथिलापुरी यात्रा, श्रीराम जी की वनयात्रा, पंचवटी यात्रा, सीता को रावण से छुड़ाकर लाने के लिए समुद्र पार श्रीलंका की यात्रा आदि अनेक यात्राओं का वर्णन किया गया है। महाभारत में भी पांडवों की पांचाल देश की यात्रा, श्रीकृष्ण जी की मगध देश की यात्रा आदि अनेक यात्राओं का उल्लेख है। संस्कृत ग्रंथों में भी माघ के 'शिशुपालवध' में; कालिदास के 'कुमारसंभव', 'रघुवंश', व 'मेघदूत' में; सोमदेव के 'कथासरित्सागर' आदि ग्रंथो में अनेक यात्राओं का वर्णन मिलता है। इस प्रकार वैदिक युग, पौराणिक युग, रामायण युग, महाभारत युग एवं ऐतिहासिक युग सभी में अनेक यात्रा संबंधित विवरण देखने को मिलते हैं। "वेद, रामायण, महाभारत, शिशुपाल वध, रघुवंश, रत्नावली, दशकुमारचरित, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, अवदान शतक, दिव्यावदान, कथासरित्सागर, विक्रमांकदेव चरित, राजतरंगिनी, बृहत्कथाश्लोक संग्रह, मनुस्मृति, मिलिंद प्रश्न, बृहत्कल्पसूत्रभाष्य,

---

[26] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ.सं. 36

[27] गजानन माधव मुक्तिबोध, 'भारत, इतिहास और संस्कृति', पृ.सं. 65

समाराइच्चकहा, शिलप्पदिकारम, अवदान कल्पलता, ईशाशिवगुरुदेवपद्धति, बौद्ध ग्रन्थ, जैन शास्त्र आदि प्रमुख हैं। इन सभी ग्रंथों में किसी न किसी यात्रा का उल्लेख अवश्य मिलता है।"[28]

प्रारम्भ में मनुष्य अपने व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए समुद्र और स्थल मार्ग से दूर देश की यात्राएँ करता था। परन्तु धीरे-धीरे ये यात्राएँ व्यापार के साथ-साथ मनोरंजन, ज्ञानार्जन आदि अनेक उद्देश्यों के लिए भी की जाने लगीं। प्राचीनकाल में धर्म का अधिक महत्व होने के कारण तीर्थ यात्राएँ अधिक की जाती थीं लेकिन वर्तमान समय में इसका दायरा व्यापक हुआ है और विभिन्न उद्देश्यों से यात्राएँ की जाने लगी हैं; जैसे:- सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि। इन यात्राओं का उल्लेख करने के लिए यात्रा के वृत्तांत लिखे जाते थे। इस प्रकार यात्राओं का इतिहास काफी पुराना है लेकिन हिन्दी साहित्य में यात्रा साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु पूर्व युग में हस्तलिखित ग्रन्थों में देखने को मिलता है। इसके विकास को विभिन्न काल खण्डों में विभक्त करके निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

1.6 हिन्दी यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास :-

1.6.1 भारतेन्दुपूर्व युगीन यात्रा साहित्य :-

हिन्दी यात्रा साहित्य की शुरुआत वास्तविक रूप से तो भारतेन्दु युग से मानी जाती है लेकिन उससे पहले भी यात्रा साहित्य लिखे गये थे। यात्रा साहित्य का प्रारम्भिक रूप यानी यात्राओं का वर्णन जो वैदिक एवं संस्कृत साहित्य में भी मिलता है वह केवल प्रसंगवत ही किया गया है। उन्हें यात्रा साहित्य नहीं कहा जा सकता। हिन्दी क्षेत्र में यात्रा-साहित्य का पहला प्रयास ब्रजभाषा में पद्य शैली में हस्तलिखित यात्रा-कृति के रूप में मिलता है, जिसमें ब्रज-प्रदेश के मंदिरों, तीर्थ-स्थलों, प्राकृतिक दृश्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया था।

हिन्दी यात्रा साहित्य में सर्वप्रथम हस्तलिखित ग्रन्थ 'वनयात्रा' को माना जाता है जो कि गोस्वामी विट्ठलजी द्वारा ब्रजभाषा में लिखा गया है और इनकी यात्राओं का मुख्य उद्देश्य भी धार्मिक ही रहा है। इस युग में हस्तलिखित यात्रा-ग्रन्थों की प्रधानता देखने को मिलती है। जिसके कारण

[28] डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', कीर्ति प्रकाशन, औरन्गाबाद, पृ. 32

सुरेन्द्र माथुर ने इस युग को ‘हस्तलिखित ग्रन्थों का युग’ कहा है। सुरेन्द्र माथुर ने अपने ग्रन्थ ‘हिन्दी यात्रा साहित्य : उद्भव और विकास’ में हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार दी है-

1. वनयात्रा – सं. 1600, गोस्वामी विठ्ठलजी
2. वनयात्रा – सं. 1609, श्रीमती जीमन जी की माँ
3. सेठ पद्मसिंह की यात्रा – सं. 1705, लेखक अज्ञात
4. बात दूर देश की – सं. 1886, लेखक अज्ञात
5. बद्रीनाथ कथा – सं. 1888, अयोध्या नरेश बख्तावरसिंह की पत्नी
6. वन यात्रा परिक्रमा – सं. 1891, लेखक रामसहाय दास
7. ब्रज चौरासी कोस बन यात्रा – सं. 1900, लेखक अज्ञात
8. बद्रीनारायण सुगम यात्रा – सं. 1966, लेखक पं. वाचस्पति शर्मा ‘चेत’

“सर्वप्रथम उपलब्ध हिन्दी(ब्रजभाषा) यात्रा ग्रन्थ विक्रम संवत् 1600 (सन् 1542-43) के गुसाईं विठ्ठल जी की हस्तलिपि में बनयात्रा तथा दूसरा, विक्रम संवत् 1609 (सन् 1551-52) की जीमन जी की माँ की हस्तलिखित बनयात्रा का आज भी उपलब्ध होना एक मधुर आश्चर्य है। यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपलब्धि है कि तब से लेकर सन् 1909 तक की अवधि के आठ हस्तलिखित ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं।”[29] हस्तलिखित ग्रंथों में ‘बात दूर देश की’ एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें जैनों के तीर्थ स्थान गोमठ का वर्णन किया गया है; लेकिन इसके लेखक का पता नहीं लगाया जा सका है। इस युग में दो महिला लेखिकाओं द्वारा लिखित यात्रा-ग्रन्थ भी मिलते हैं। इसमें एक जीमन जी की माँ का ‘वनयात्रा’ है; जिसमें ब्रज प्रदेश के विभिन्न स्थानों गोकुल, मथुरा, नंदग्राम, गोवर्धन सभी का चित्रण किया गया है। दूसरा अयोध्या नरेश की पत्नी का ‘बद्री यात्रा कथा’ है, जो कि अपूर्ण और खंडित है। जीमनजी की माँ ने दो यात्रा ग्रन्थ लिखे थे।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी यात्रा साहित्य के सर्वप्रथम हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में श्री गोस्वामी विठ्ठलनाथ द्वारा लिखित ‘वनयात्रा’ को माना जाता है, जिसमें 44 पृष्ठों में विठ्ठलनाथ जी ने ब्रज के विभिन्न दृश्यों को भक्ति भाव से प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु युग से पूर्व रचित

[29] विश्वमोहन तिवारी, ‘हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि’, ओम प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 37

इन सभी ग्रंथों से हिन्दी यात्रा साहित्य की आरंभिक अवस्था का पता चलता है। इस युग के अधिकतर हस्तलिखित ग्रन्थ धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर लिखे गये हैं जिनमें अधिकांशत: धार्मिक भावनाओं व तीर्थ यात्राओं की प्रचुरता दिखाई देती है। इस युग के सभी ग्रंथों में अधिकतर यात्राएँ मथुरा-वृन्दावन के आस-पास की ही हैं। साथ ही अधिकांश ग्रंथों में पद्य या गद्य-पद्य मिश्रित चंपू शैली का प्रयोग किया गया है जिसमें वर्णनात्मकता एवं भावात्मकता की प्रधानता है।

1.6.2 भारतेन्दुयुगीन यात्रा साहित्य :-

वैसे देखा जाए तो हमारे देश में रामायण, महाभारत, हर्षचरित्र, कादंबरी व भारतेन्दुपूर्व युग में हस्तलिखित ग्रंथों में यात्रा वृत्तांत के लक्षण मिल जाते हैं, लेकिन हिन्दी में सही मायने में यात्रा वृत्तांत की शुरूआत उपनिवेशकाल में हुई। अंग्रेजी साहित्य के संपर्क और संसर्ग से हिन्दी में साहित्यिक यात्रा वृत्तांत लिखे जाने लगे और धीरे-धीरे इनका विधायी ढाँचा भी अस्तित्व में आया।

हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिन्दी यात्रा साहित्य का वास्तविक अर्थों में आरम्भ भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। भारतेन्दु पूर्व युग में हस्तलिखित यात्रा ग्रन्थ ही लिखे गये थे। यात्रा साहित्य का प्रकाशित रूप भारतेन्दु युग में ही दिखाई देता है। इस युग में यात्रा साहित्य की शुरुआत पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित यात्रा-साहित्य से हुई। आरम्भिक रूप से इस युग के यात्रा वृत्तांत परिचयात्मक एवं स्थूल वर्णन की प्रधानता वाले ही थे। रामस्वरूप चतुर्वेदी इस आरंभिक यात्रा साहित्य के सम्बन्ध के कहते हैं कि "विदेश यात्रा वाले यात्री पानी के जहाज का ऐसे वर्णन करते थे, मानो किसी विशाल राजप्रासाद का हाल बता रहे हों। उनके वर्णन में प्राय: एक बालसुलभ उल्लास और उत्साह रहता था। फलस्वरूप उनकी दृष्टि आकारों पर इतनी अधिक थी कि अंतरंग प्रायः उपेक्षित और विस्मृत होता था।"[30]

इस युग में यातायात के साधनों का विकास अधिक हुआ जिससे यात्रा करना और यात्रा साहित्य लिखना दोनों ही आसान हो गये। यह पत्र-पत्रिकाओं का युग रहा जिससे इस युग में यात्रा-साहित्य अधिकतर विभिन्न पत्रिकाओं में यात्रा-लेखों के रूप में ही लिखा गया। यात्रा साहित्य से सम्बन्धित सर्वप्रथम लेख आगरा से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक समाचार पत्र 'बुद्धिप्रकाश' में

---

[30] रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'हिन्दी साहित्य एवं संवेदना का विकास', पृ. 166

1853 के अंक में 'एक पैदल यात्रा' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें शिमला से कश्मीर तक के भारतीय पर्वतीय अंचल की यात्रा का वर्णन मिलता है। "शिमला से आगे हिमालय (कश्मीर तक) पर्वत क्षेत्र की (मात्र तीर्थ स्थलों की नहीं) यह यात्रा है जिसके प्राकृतिक सौन्दर्य में, पर्वत शिखरों की ऊँचाई में उस अनाम यायावर को ईश्वर की ऊँचाई के दर्शन होते हैं। इसके बाद शैली तथा दृष्टि में बदलाव आता है भारतेन्दु के यात्रावृत्तों के साथ।"[31]

इस युग में प्रधान लेखकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण स्थान है जिनके 5 यात्रावृत्त कविवचन सुधा में 1871 से 1879 तक प्रकाशित हुए थे। इनमें 'सरयूपार की यात्रा', 'हरिद्वार की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा', 'वैद्यनाथ की यात्रा' शामिल हैं। इनमें तीर्थस्थानों को ही अधिक प्रमुखता दी गई है। भक्ति के साथ-साथ इनमें घटनाएँ, नगर-वर्णन, स्थल-परिचय, यात्रा-साधन, प्रकृति, सौन्दर्य, रीति-रिवाज, खान-पान आदि सभी का वर्णन रोचकता के साथ किया गया है। कुछ अन्य विद्वानों की मान्यता है कि खड़ी बोली हिन्दी में गद्य की अन्य विधाओं की भाँति यात्रा साहित्य की शुरुआत भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही की है। भारतेन्दु ने अपनी पत्रिका 'कविवचन सुधा' में निबन्ध शैली में अपने यात्रा-वृत्त प्रकाशित किये थे। आलोचकों ने इन यात्रा वृत्तांतों को निबन्ध विधा के अंतर्गत ही समाविष्ट कर दिया है। मुरारीलाल शर्मा भारतेन्दु के यात्रा साहित्य के सम्बन्ध में लिखते हैं कि "भारतेन्दु के यात्रा साहित्य में भाषा के विविध रूपों, प्रकृति की अनुपम छटाओं तथा उनके बहुआयामी व्यक्तित्व की छाप को सर्वत्र देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी अनेक यात्राओं में देश के तत्कालीन जीवन को निकटता से देखा और उसके यथार्थ को अपने यात्रा-वृत्त में वाणी दी। उनकी यात्राओं ने उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को दृढ़ता और उनके काव्य को अनुपम वर्ण्य वस्तु प्रदान की। मात्रा में कम होते हुए भी भारतेन्दु का यात्रा साहित्य गुणवत्ता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। हिन्दी गद्य के शैशवकाल में उनका यात्रा-साहित्य परवर्ती यात्रा-साहित्य के लिए प्रेरणा तथा नवीन उद्भावनाओं का स्रोत भी बना।"[32]

इस युग में भारतेन्दु के अलावा अन्य कई लेखकों ने भी यात्रावृत्त लिखे। बालकृष्ण भट्ट के हिन्दी प्रदीप पत्रिका में 'कातिकी का नहान(1894)' और 'गया यात्रा(1897)' प्रकाशित हुए।

[31] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', ओम प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 41

[32] सुनीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त'(2016), अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 22

प्रतापनारायण मिश्र की 'विलायत यात्रा' और 'कन्नौज में तीन दिन' ब्राह्मण पत्रिका में प्रकाशित हुए। मुद्रित व स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में पहला यात्रा ग्रन्थ ओरियंटल प्रेस, लाहौर से 1883 में प्रकाशित हरदेवी के 'लन्दन यात्रा' को माना जाता है लेकिन कामेश्वर शरण सहाय ने सूबेदार रामचरण कवि द्वारा रचित 'ब्रज यात्रा' को पहला प्रामाणिक ग्रन्थ माना है । इस युग में और भी अनेक यात्रा वृत्त प्रकाशित हुए थे । इनमें पं. दामोदर शास्त्री का 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा', देवीप्रसाद खत्री का 'रामेश्वरम यात्रा', 'बद्रिकाश्रम यात्रा' शिवप्रसाद गुप्त का 'पृथ्वी प्रदक्षिणा', स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का 'मेरी कैलाश यात्रा', 'मेरी जर्मन यात्रा', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का 'हमारी जापान यात्रा' और पंडित रामनारायण मिश्र का 'यूरोप यात्रा में छ: मास' आदि यात्रा-वृत्त उल्लेखनीय हैं । इसी तरह और भी हैं, जैसे:-

ब्रज यात्रा – रामचरण(1883)
लन्दन का यात्री – भगवानदास वर्मा (1884)
मेरी पूर्व दिग्यात्रा – पं. दामोदर शास्त्री (1885)
मेरी दक्षिण दिग्यात्रा – पं. दामोदर शास्त्री(1886)
ब्रज विनोद – तोताराम वर्मा (1888)
केदारनाथ यात्रा – लाला कल्याणचन्द्र (1890)
रामेश्वर की यात्रा – देवी प्रसाद खत्री (1893)
ब्रज यात्रा – पं. बेगू मिश्र (1894)
भारत-भ्रमण – साधुचरण प्रसाद (1892-96)

नगेन्द्र इस युग के यात्रा वृत्तांतों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि "इस युग में यात्रावृत्त सम्बन्धित जो कृतियाँ पुस्तकाकार प्रकाशित हुई, उनमें श्रीमती हरदेवी, भगवानदास वर्मा, दामोदर शास्त्री, तोताराम, कल्याणचन्द्र और वेगू मिश्र द्वारा क्रमशः रचित 'लन्दन-यात्रा' (1883), लन्दन का यात्री (1884), मेरी पूर्व-दिग्यात्रा (1885) और 'मेरी दक्षिण-दिग्यात्रा'(1886), ब्रजविनोद (1888), बदरी केदार-यात्रा (1890) तथा ब्रज-यात्रा (1894) विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं।"[33]

[33] डॉ. नगेन्द्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 468

निष्कर्ष रूप में अगर कहा जाए तो कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में गद्य की अन्य विधाओं की भाँति आधुनिक रूप से यात्रा-साहित्य की शुरुआत भी 19वीं सदी में होती है जिसमें आधुनिक यात्रा-साहित्य का प्रारम्भिक रूप विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाश में आया। मुंशी सदासुख लाल के संपादन में प्रकाशित 'बुद्धि प्रकाश' (1853) नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र में शिमला से कश्मीर तक की पैदल यात्रा का वर्णन है। निबन्ध शैली में लिखित इस यात्रा वर्णन को खड़ी बोली का पहला प्रकाशित यात्रा-वृत्त माना जाता है। भारतेन्दु मंडल के अन्य रचनाकार जैसे पं. बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र ने भी भारतेन्दु की ही तरह निबन्ध शैली में यात्रा-वृत्तों की रचना की है। भारतेन्दु के बाद यात्रा वृत्तांत लेखन की एक अविरल परम्परा ही चल पड़ी। इस युग में धार्मिक व तीर्थ यात्राओं की प्रधानता देखने को मिलती है। इसमें यात्रा साहित्य की वास्तविक शुरूआत पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिन्न यात्रा लेखों से हुई थी। "इस समय में प्रकाशित यात्रा ग्रंथों में धार्मिक प्रवृत्ति की प्रधानता रही है। अधिकांश यात्रा ग्रन्थ धार्मिक स्थलों अथवा तीर्थस्थानों से सम्बन्धित हैं। दूसरे अधिकांश यात्रावृत्त भारतीय भाषाओं से सम्बद्ध हैं। विदेश यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा-वृत्त लिखे तो गये हैं, किन्तु वे केवल इंग्लैण्ड के लन्दन शहर से ही सम्बद्ध है। तीसरे इस काल के यात्रा ग्रंथों की भाषा में अनेकरूपता विद्यमान है। इस काल में गद्य और पद्य दोनों शैलियों में लिखे गए यात्रा वृत्त उपलब्ध होते हैं।"[34]

1.6.3 द्विवेदी युगीन यात्रा साहित्य :-

हिन्दी साहित्य में 1900-1920 तक का कालखंड द्विवेदी युग कहलाता है और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस युग में अपना प्रभाव 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा प्रसारित किया। इस पत्रिका का यात्रा साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। सरस्वती के अलावा भी मर्यादा, इन्दु, चित्रमय जगत, गृह लक्ष्मी पत्रिकाओं के माध्यम से यात्रावृत्तों के प्रकाशन को बहुत प्रोत्साहन मिला। इनमें अनेक यात्रा वृत्तांत प्रकाशित होते रहते थे। "सरस्वती का प्रकाशन सन् 1900 ई. में हुआ। इसके प्रथम अंक में ही बाबू कार्तिक प्रसाद द्वारा लिखित 'कश्मीर यात्रा' नामक यात्रा वृत्त प्रकाशित हुआ।

[34] प्रतापपाल शर्मा, 'हिंदी का आधुनिक यात्रा साहित्य', पृ. 13-14

1905 के सरस्वती के विभिन्न अंकों में 'ओंकार-मान्धाता' (मध्यप्रदेश की यात्रा), 'नेपाल', 'बनारस', तथा 'मालाबार' आदि की यात्राओं से सम्बन्धित यात्रावृत्त प्रकाशित हुए।"[35]

द्विवेदीयुगीन पत्रिकाओं में प्रकाशित यात्रावृत्तों का विवरण इस प्रकार है :- महावीर प्रसाद द्विवेदी के सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित 'व्योम विहरण'(1905), 'उत्तरी ध्रुव की यात्रा'(1907), 'दक्षिणी ध्रुव की यात्रा'(1909), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की 1910 में सरस्वती में प्रकाशित 'अमेरिका दिग्दर्शन', 'चाँद' पत्रिका में जगन्नाथ जी का 'श्रीमती रामदेहली'(1911), डॉ. धनीराम प्रेम का 'लन्दन का प्रथम दर्शन'(1929), ईश्वरचन्द्र शर्मा का 'कश्मीर में एक मास'(1930), दीनानाथ सिद्धांतालंकर का 'नवद्वीप यात्रा'(1931), शंकर प्रताप फिजी की 'न्यूजीलैंड यात्रा' आदि।

प्रतापनारायण मिश्र की 'निबन्ध नवनीत' में प्रकाशित 'विलायत यात्रा'(1911), मर्यादा में स्वामी मंगलानंद पुरी की 'मॉरीशस यात्रा'(1912), श्रीधर पाठक की 'देहरादून-शिमला यात्रा', लक्ष्मी शंकर मिश्र की 'विलायत समुद्र यात्रा'(1914), गोविन्ददास शर्मा की 'मेरी फौजी यात्रा'(1923), इंदु में लालनारायण सिंह की 'दक्षिणी ध्रुव की यात्रा'(1913) आदि प्रमुख हैं।

द्विवेदी युग में पुस्तक के रूप में भी अनेक यात्रा वृत्तांतों का प्रकाशन हुआ। इस युग के यात्रा साहित्य में अधिकतर निबन्धात्मक शैली का ही प्रयोग किया गया है। साथ ही इसमें धार्मिक व देशी यात्राओं के साथ-साथ विदेशी यात्राओं की भी प्रधानता रही। इस युग के प्रमुख यात्रा साहित्यकार हैं:- ठाकुर गदाधर सिंह, बाबू देवीप्रसाद खत्री, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, शिवप्रसाद गुप्त आदि। इन्होंने स्वदेश यात्रा में धार्मिक यात्रा से सम्बन्धित और विदेश यात्राओं में लन्दन, चीन, अमेरिका, जापान, श्रीलंका, रूस आदि देशों की यात्राओं का वर्णन किया है।

ठाकुर गदाधर सिंह इस युग के महत्वपूर्ण यात्रा साहित्यकार हैं। इनके महत्व को देखते हुए विश्वमोहन तिवारी ने इस युग की प्रथम दशाब्दी (1901-1910) को द्विवेदी युग के स्थान पर गदाधर सिंह युग कहा है। "यात्रा साहित्य के इतिहास में इस प्रथम दशाब्दी को द्विवेदी दशाब्दी के स्थान पर

[35] डॉ. बी.आर. धापसे, हिन्दी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 36

गदाधर दशाब्दी या युग कहना अधिक सटीक है ।"[36] इस युग में उनके तीन यात्रा वृत्तांत 'चीन में तेरह मास', 'हमारी एडवर्ड तिलक विलायत यात्रा', 'रूस जापान युद्ध' प्रकाशित हुए। ये तीनों ही विदेश यात्रा से सम्बन्धित हैं। 'चीन में तेरह मास' में तेरह महीने की चीन प्रवास की कहानी को प्रस्तुत किया गया है। इसमें चीनी समाज, संस्कृति, सभ्यता, परिवेश व वहाँ पर हुए युद्ध का सजीव चित्रण किया गया है। इसमें केवल युद्ध का ही वर्णन नहीं किया गया है बल्कि उन्होंने अपनी यात्रा के विविध पहलुओं को भी प्रस्तुत किया है। उनके दो अन्य यात्रा वृत्तांत 'हमारी एडवर्ड तिलक विलायत यात्रा' और 'रूस जापान युद्ध' के सम्बन्ध में प्रतापनारायण शर्मा लिखते हैं कि "हमारी एडवर्ड तिलक विलायत यात्रा' उनकी दूसरी महत्वपूर्ण यात्रा कृति है। महाराजा एडवर्ड के तिलकोत्सव के अवसर पर लेखक लन्दन (विलायत) पहुँचकर वहाँ की सुख-समृद्धि तथा प्राकृतिक एवं मानव निर्मित सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो उठता है। लन्दन-यात्रा का सम्पूर्ण विवरण इस ग्रन्थ में दिया गया है। रूस-जापान युद्ध उनकी युद्ध वर्णन सम्बन्धी यात्रा-कृति है। परन्तु रूस, जापान, कोरिया, मंचूरिया, साईबेरिया आदि देशों के भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वृत्तांत उनकी सभ्यता त्योहार, वर्ताव, ऋतु, उपज, खनिज, खेतीबारी आदि का ब्यौरेवार वर्णन भी इस कृति में उपलब्ध होता है।"[37]

इन यात्रा-वृत्तांतों के द्वारा हिन्दी प्रदेश में निवास करने वाले विशाल मानव-समुदाय के विकसित होते मानसिक क्षितिज की भी सूचना मिलती है। मध्यकालीन संस्कारों से प्रभावित भारतीय पंडित मंडली समुद्र पार की यात्राओं का विरोध करती रही है लेकिन इन अन्धविश्वास और रूढ़ियों से मुक्त होकर जिन विद्वानों, यायावरों ने यूरोप तथा अन्य पाश्चात्य देशों की यात्राएँ की वे निश्चय ही नए भारत की रचना करने वाले उदार और कर्मठ व्यक्ति थे। इसी कड़ी में आगे भी कई यायावर आए जिन्होंने इस यात्रा साहित्य की परम्परा को आगे बढ़ाया। इस युग के योगदान के सम्बन्ध में नगेन्द्र लिखते हैं कि "द्विवेदी-युग में लिखी गयी यात्रावृत्त सम्बन्धी रचनाओं ने न केवल

---

[36] विश्मोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', ओम प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 48

[37] सुनीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त'(2016), अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 25

पीछे से चली आती हुई परम्परा को जीवित बनाए रखा, अपितु भावी विकास की दिशा में भी मूल्यवान योग दिया।"[38]

1.6.4 छायावादयुगीन यात्रा साहित्य :-

छायावाद युग में तीर्थ यात्राओं के स्थान पर विदेश यात्राओं की प्रमुखता देखने को मिलती है। इस युग में यात्रा-शैलियों की विविधता और उत्कृष्टता के कारण सुरेन्द्र माथुर ने इस काल को यात्रा-साहित्य का स्वर्ण-युग कहा है। इस युग में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से यात्रा साहित्य निरंतर आ रहा था तथा इस युग में यात्रा साहित्य एक लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित विधा के रूप में प्रतिस्थापित हो चुका था। राहुल सांकृत्यायन का आगमन इसी युग में हुआ और सत्यदेव परिव्राजक का भी अधिकांश साहित्य इसी युग में लिखा गया।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन इस युग के प्रमुख यात्रा साहित्यकार हैं। इनका नाम इतिहास प्रसिद्ध और अमर विभूतियों में गिना जाता है। ये बहुभाषा-भाषी, इतिहासकार, उपन्यासकार एवं दार्शनिक थे। इनका जन्म 7 अप्रैल 1893 में हुआ था और इनका बचपन का नाम केदार पांडे था। बौद्ध धर्म से प्रभावित होने के बाद ये बौद्ध हो गये। बौद्ध होने के बाद उनका नाम राहुल पड़ा और 'सांकृत्य' गोत्र होने के कारण उनको राहुल सांकृत्यायन कहा जाने लगा। इनका सम्पूर्ण जीवन ही घुमक्कड़ी का जीवन है। घुमक्कड़ी के साथ-साथ इनकी लेखनी भी निरंतर चलती रही है। इन्होंने 250 से भी अधिक ग्रंथों का प्रणयन किया है।

ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। धर्म, दर्शन, लोक साहित्य, यात्रा साहित्य, इतिहास, राजनीति, जीवनी, कोश, प्राचीन साहित्य का सम्पादन आदि विविध क्षेत्रों में उन्होंने कार्य किया है। उन्होंने हिन्दी यात्रा साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान कर परवर्ती यात्रा साहित्यकारों का मार्ग प्रशस्त किया जिसके कारण उनको यात्रा साहित्य का जनक माना जाता है। मात्र 10 साल की उम्र में उनकी यायावरी शुरू हो गई थी। उसके बाद उन्होंने विभिन्न देश और विदेश की यात्राएँ की जिसमें चीन, तिब्बत, जापान, लद्दाख, ईरान की यात्राएँ प्रमुख हैं। वे घुम्मकड़ी को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु मानते थे। उनकी यात्राएँ भी अत्यंत साहस से भरी यात्राएँ है। उनकी इस युग में लिखी

[38] सं. नगेन्द्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 509

गई कृतियाँ इस प्रकार हैं- 'मेरी लद्दाख यात्रा'(1926), 'लंका यात्रावली' (1927), 'तिब्बत में सवा वर्ष'(1933), 'मेरी तिब्बत यात्रा'(1937), 'यात्रा के पन्ने' (1934), 'जापान'(1934), 'मेरी यूरोप यात्रा' (1935), 'ईरान'(1937), 'किन्नर देश में', 'रूस में पच्चीस मास' आदि। अरुणेंद्र नाथ वर्मा कहते हैं कि "उनके यात्रा-वृत्तांत यात्रोपयोगी साहित्य और यात्रा धर्म के प्रतिपादक थे। उनके यात्रावृत्त में संस्मरण की आत्माभिव्यक्ति, दार्शनिक की जीवन को सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखने वाली पैनी दृष्टि, प्रकृति के सौन्दर्य का जीवन्त विवरण सब कुछ समाहित था।"[39]

उन्होंने अधिकांश यात्राएँ विशेष उद्देश्यों से ही की है और उसमें भी अधिकता विदेश यात्राओं की ही रही है। उन्होंने अपने यात्रा वृत्तांतों में विभिन्न देशों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक परिवेशों का चित्रण प्रमुख रूप से किया है। उनकी यात्राओं में देश व क्षेत्र विशेष की संस्कृति का स्पंदन दिखाई देता है। उन्होंने परित्यक्त किन्तु जीवंत संस्कृतियों को विशेषकर किन्नौर, तिब्बत तथा लद्दाख जैसे कठोर, दुर्गम, कष्टदायक पहाड़ी तथा शीत मरूस्थलीय क्षेत्रों को अपनी यात्रा का लक्ष्य बनाया। उन्होंने अनेक दुर्गम खण्डों में जाकर अनेक ग्रंथों की खोज की। पाली व तिब्बती भाषा के ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया। राहुल सांकृत्यायन के सम्बन्ध में विश्वमोहन तिवारी लिखते हैं कि "राहुल सरीखा असाधारण विद्वान, धर्मशास्त्री, दार्शनिक, भाषाविद्, समाजशास्त्री, साहित्यिक, राजनीति-विद् तथा धर्म-जाति-देश-काल की सीमाओं से मुक्त पुरुष मानव प्रेमी और साथ ही अदम्य साहसी, जिज्ञासु, सरल एवं विनम्र व्यक्ति ने यात्रा तथा यात्रा-साहित्य के गौरव को प्रतिष्ठा के एक शिखर पर स्थापित किया; यात्रा-लेखन को नई दिशा दी ताकि वह मात्र तीर्थ-यात्रा अथवा सैर-सपाटा ही न रह जाए। उसमें शोध और अनुसन्धान के महत्व को, साहसिकता को लोकप्रिय बनाया।"[40]

इस युग में सत्यदेव परिव्राजक भी एक महत्वपूर्ण यात्रा साहित्यकार के रूप में अपना स्थान रखते हैं। इनके चार यात्रावृत्त महत्वपूर्ण हैं- 'मेरी जर्मन यात्रा'(1926), 'यात्री मित्र'(1936), 'स्वतंत्रता की खोज में'(1937), 'अमेरिका प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी' (1937), 'ज्ञान के उद्यान में' शीर्षक से भी इन्होंने एक यात्रावृत्त की रचना की है। इनके यात्रा-साहित्य के संदर्भ में

[39] अरुणेंद्र नाथ वर्मा, 'यात्रा-वृत्त : संकट एवं चुनौतियाँ', समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2017, पृ. 195

[40] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. सं. 59

मुरारीलाल शर्मा लिखते हैं कि “स्वामीजी के यात्रा साहित्य में स्वदेश-प्रेम, राष्ट्रीय भावना, प्रकृति प्रेम, यायावरी वृत्ति का उद्रेक, ज्ञान प्राप्ति की उत्कट लालसा सर्वत्र देखी जा सकती है। स्वामीजी के यात्रा-वर्णनों में उनका साहित्यिक व्यक्तित्व सर्वत्र व्याप्त है।”[41] उनके प्रारम्भिक यात्रा वृत्तांत सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुए थे, बाद में उनका प्रकाशन ‘अमेरिका दिग्दर्शन’ पुस्तक के रूप में किया गया। इनके यात्रा वृत्तांत देश-विदेश के जीवन की व्यापकता को सही परिप्रेक्ष्य में उभारना चाहते हैं। इनमें अदम्य साहसिकता भी देखने को मिलती है। उनकी ‘अमेरिका दिग्दर्शन’ और ‘अमेरिका भ्रमण’ पुस्तक में ‘आँखों देखा हाल’ की शैली में, अमेरिका की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। ‘मेरी जर्मन यात्रा’ में जर्मनी के लोगों व समाज का चित्रण किया गया है। इनके यात्रा साहित्य की महत्ता को देखते हुए विश्वमोहन तिवारी ने द्विवेदी युग में 1911 से 1932 तक के कालखंड को सत्यदेव परिव्राजक युग की संज्ञा दी है। “सत्यदेव परिव्राजक, आधुनिक अर्थों में, अर्थात् यात्रा के लिए यात्रा करने वाले, तीर्थयात्रा अथवा व्यापार-यात्रा नहीं, पहले शत प्रतिशत यायावर हैं और कलम के धनी हैं। इसलिए इस 1911-1932 के कालखंड को यात्रावृत्त के इतिहास की दृष्टि से ‘द्विवेदी युग’ के स्थान पर ‘परिव्राजक युग’ कहना अधिक सटीक होगा।”[42]

इस युग में राहुल सांकृत्यायन व सत्यदेव परिव्राजक के अलावा भी अनेक लेखकों ने यात्रा-साहित्य की रचना की। इनमें प्रमुख है :- केदार रूप राय की ‘हमारी विलायत यात्रा’(1926), बेणी शुक्ल की ‘लन्दन पेरिस की सैर’(1926), पंडित जवाहरलाल नेहरू की ‘रूस की सैर’(1926), पं. कन्हैयालाल मिश्र की ‘हमारी जापान यात्रा’(1931), कृपाराम मिश्र की ‘विदेश की बात’(1932), गणेश नारायण सोमाणी की ‘मेरी यूरोप यात्रा’(1932), पं. रामनारायण मिश्र की ‘यूरोप में छः मास’(1932), शिवनंदन सहाय की ‘कैलाश दर्शन’(1934), हरिकृष्ण झाझडिया की ‘मेरी दक्षिण यात्रा’(1934), शिवप्रसाद गुप्त की ‘पृथ्वी प्रदक्षिणा’(1934), कन्हैयालाल मिश्र की ‘मेरी अबीसीनिया यात्रा’(1935), धर्मचन्द्र सारावगी का ‘यूरोप में सात मास’(1936), प्रो. मनोरंजन का ‘उत्तराखंड के पथ पर’(1936), रामशरण विद्यार्थी का ‘कैलाश के पथ पर’(1937), डॉ.

---

[41] सुनीता पी., ‘संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिन्दी यात्रावृत्त’, पृ. 26

[42] विश्वमोहन तिवारी, ‘हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि’, ओम प्रकाशन, दिल्ली पृ. सं. 51

सत्यनारायण का 'यूरोप के झरोखे में'(1938), सेठ गोविन्ददास का 'हमारा प्रधान उपनिवेश'(1938) आदि।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस युग में विदेश यात्राओं को प्रमुखता दी गई और उसमें भी यूरोप की यात्राएँ अधिक की गई। इस युग के यात्रा-साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवेशों का वैविध्य सुन्दर और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

1.6.5 उत्तर छायावादयुगीन यात्रा साहित्य :-

1935 में छायावाद युग का अंत और 1936 में प्रगतिशील युग का प्रारम्भ होता है। यहीं से इस युग का आरंभ होता है। पूर्ववर्ती युगों की तरह इस युग में भी अनेक यात्रा ग्रन्थ प्रकाशित हुए जिनमें शैलीगत विविधता भी देखने को मिलता है। इस युग में भी देश-विदेश की अनेक यात्राएँ होती रही। यात्रा साहित्य में पत्र शैली का प्रयोग इस युग की ही देन है। इनमें विषय वस्तु और शिल्प दोनों ही स्तरों पर नवीनता दिखाई देती है।

इस युग में प्रकाशित प्रमुख यात्रा वृत्तांत हैं- सत्यदेव परिव्राजक का 'यूरोप की सुखद स्मृतियाँ'(1937), 'ज्ञान के उद्यान में'(1937), 'अमेरिका प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी'(1937), डॉ. सत्यनारायण की 'रोमांचक रूस में'(1939), भदंत आनंद कौसल्यायन का 'भिक्षु के पत्र', 'कहाँ क्या देखा', देश की मिट्टी बुलाती है', डॉ. सत्यनारायण का 'युद्ध यात्रा'(1940), कन्हैयालाल मिश्र की 'ईराक की यात्रा'(1940), श्री गोपाल नेवटिया की 'कश्मीर'(1940), संतराम की 'स्वदेश-विदेश यात्रा'(1940), डॉ. सत्यनारायण की 'अनजाने रास्ते'(1941), रामचंद्र शर्मा की 'इंग्लैण्ड यात्रा'(1941), सूर्यनारायण व्यास का 'सागर का प्रवास'(1941), योगेन्द्रनाथ सिंह का 'दुनिया की सैर'(1941), देवदत्त शास्त्री का 'मेरी कश्मीर यात्रा'(1941), सेठ गोविन्ददास का 'सुदूर दक्षिण पूर्व'(1942), डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का 'यूरोप के पत्र'(1942), स्वामी प्रणवानन्द का 'कैलास मानसरोवर'(1943), रामचंद्र वर्मा का 'विकट यात्रा'(1943), लक्ष्मीनारायण टंडन प्रेमी का 'संयुक्त प्रान्त की पहाड़ी यात्राएँ'(1943), कृष्ण सिंह बघेल का 'कश्मीर और सीमा प्रांत'(1944), लक्ष्मी नारायण टंडन 'प्रेमी' का 'संयुक्त प्रान्त के तीर्थ स्थान'(1944), सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का 'नये पत्ते'(1946), स्वामी रामानंद ब्रह्मचारी का 'कैलाश दर्शन'(1946), राहुल सांकृत्यायन का 'किन्नर

देश में'(1948), 'मेरी जीवन यात्रा'(1947), भगवत शरण उपाध्याय का 'विश्व यात्री'(1947), भिक्षु धर्मरक्षित का 'लंका यात्रा'(1948), देवव्रत शास्त्री की 'मेरी कश्मीर यात्रा'(1948), कालेलकर की 'हिमालय की यात्रा'(1948) प्रमुख हैं।

इस प्रकार इस युग में काफी यात्रा वृत्तांत लिखे गए और राहुल सांकृत्यायन के भी अनेक यात्रा वृत्तांत प्रकाशित हुए। देवेन्द्र सत्यार्थी इस युग के प्रमुख यायावर हैं जिन्होंने अनेक यात्रा वृत्तांत लिखे।

1.6.6 स्वातंत्र्योत्तर/ समकालीन यात्रा साहित्य :- (1950 के बाद)

स्वतन्त्रता से पूर्व के काल और बाद के काल व परिवेश में जितना फर्क देखने को मिलता है, उससे कहीं अधिक अंतर स्वतंत्रता पूर्व के यात्रा साहित्य और बाद के यात्रा साहित्य में देखने को मिलता है। स्वतंत्रता के पश्चात देश में जो परिवर्तन आये उनका असर यात्रा साहित्य में देखा जा सकता है। विषय विविधता, स्वच्छंता, रचना शिल्प, सामान्य सुविधा की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर यात्रा साहित्य अधिक समृद्ध है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के अन्य देशों के साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हुए जिससे विदेश यात्राएँ अधिक की गई। स्वतंत्र भारत में समृद्धि की बढ़त से, औद्योगिक विकास तथा यात्रा-संसाधनों की प्रचुरता से यात्राओं की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है।

राहुल सांकृत्यायन का 'राहुल यात्रावली'(1949), 'घुमक्कड़शास्त्र'(1949), जी.डी. जोशी का 'साईकिल यात्रा'(1949), भगवत शरण उपाध्याय की 'मैंने देखा'(1950), 'सागर की लहरों पर'(1950), लक्ष्मी नारायण टंडन 'प्रेमी' का 'प्रमुख भारतीय तीर्थस्थान'(1950), सत्यवती मल्लिक का 'कश्मीर की सैर'(1950), देवेन्द्र सत्यार्थी का 'जय लोकगीत'(1950), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का 'स्वतन्त्रता की खोज में'(1951), महेश प्रसाद श्रीवास्तव का 'दिल्ली से मास्को'(1951), सेठ गोविन्द दास का 'सुदूर दक्षिण पूर्व'(1951), नवल किशोर अग्रवाल का 'देश-विदेश'(1952), स्वामी सत्यभक्त का 'सत्यलोक'(1952), रामवृक्ष बेनीपुरी का 'पैरों में पंख बांधकर'(1952), 'उड़ते चलो उड़ते चलो'(1954), राम आसरे का 'माओ के देश में'(1952), प्रह्लाद माणिक का 'पहाड़ी यात्रा व खोज'(1952), सेठ गोविन्ददास का 'पृथ्वी परिक्रमा'(1952)

आदि । इस युग में विविध उद्देश्यों व देश-विदेश की यात्राओं को लेकर अनेक यात्रा वृत्तान्तों की रचना की गई ।

यशपाल का 'लोहे की दीवार के दोनों ओर'(1953), 'राहबीती'(1956), अज्ञेय का 'अरे यायावर रहेगा याद'(1953), और 'एक बूँद सहसा उछली', डॉ. भगवत शरण उपाध्याय का 'कलकत्ता से पीकिंग'(1955) और 'सागर की लहरों पर'(1959), रामधारी सिंह 'दिनकर' का 'देश-विदेश'(1957), प्रभाकर माचवे का 'गोरी नजरों में हम' आदि यात्रा साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं । इनके बाद के लेखकों में मोहन राकेश का 'आखिरी चट्टान तक'(1953), ब्रजकिशोर नारायण का 'नंदन से लन्दन', प्रभाकर द्विवेदी का 'पार उतरि कहँ जईहौं', रघुवंश का 'हरीघाटी', धर्मवीर भारती का 'यादें यूरोप की' व निर्मल वर्मा का 'चीड़ों पर चाँदनी' प्रमुख हैं । इनमें वस्तुओं और स्थितियों के अतिरिक्त अनेक यूरोपीय देशों की कलात्मक उपलब्धियों का विस्मयकारी आकलन किया गया है ।

स्वतन्त्रता के बाद अनेक उल्लेखनीय यात्रा वृत्तांत प्रकाशित हुए हैं । इनमें प्रमुख हैं- दिनकर का 'मेरी यात्राएँ', बलराज साहनी का 'रूसी सफरनामा', नगेन्द्र का 'अप्रवासी की यात्राएँ', शंकरदयाल सिंह का 'गाँधी के देश से लेनिन के देश में', श्रीकांत वर्मा का 'अपोलो का रथ', कमलेश्वर का 'खंडित यात्राएँ' और 'कश्मीर रात के बाद', गोविन्द मिश्र का 'धुंध भरी सुर्खी', 'दरख्तों के पार', 'झूलती जड़ें','परतों के बीच', कन्हैयालाल नंदन का 'धरती लाल गुलाबी चेहरे', विष्णु प्रभाकर का 'ज्योति पुंज हिमालय' और 'हमसफ़र मिलते रहे', कृष्णनाथ का 'स्फीति में बारिश', 'किन्नर धर्म लोक', लद्दाख में राग-विराग, अजित कुमार का 'सफरी झोले में', 'यहाँ से कहीं भी', राजेन्द्र अवस्थी का 'हवा में तैरते हुए', इंदु जैन का 'पत्रों की तरह चुप', अमृतलाल बेगड़ का 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा', रामदरश मिश्र का 'तना हुआ इंद्रधनुष', 'भोर का सपना' और 'पड़ोस की खुशबू', धर्मवीर भारती का 'यात्रा चक्र', शिवप्रसाद सिंह का 'साब्जा पत्र कथा कहे', कर्णसिंह चौहान का 'यूरोप में अंतर्यात्रायें', मंगलेश डबराल का 'एक बार आयोवा', गिरधर राठी का 'नए चीन में दस दिन', सीतेश आलोक का 'लिबर्टी के देश में', वल्लभ डोभाल का 'आधी रात का सफ़र', हिमांशु जोशी का 'यातना शिविर में', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का 'आत्म की धरती', रमेशचंद्र शाह का 'एक लम्बी छाँह', कृष्णदत्त पालीवाल का 'जापान में कुछ दिन', नरेश मेहता का

‘कितना अकेला आकाश’, नासिरा शर्मा का ‘जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं’, मनोहर श्याम जोशी का ‘क्या हाल है चीन के’, ‘पश्चिमी जर्मनी पर उड़ती नजर’, रामदरश मिश्र का ‘घर से घर तक’, ओम थानवी का ‘मोहनजोदड़ो’, ललित सुरजन का ‘नील नदी की सावित्री’, पंकज बिष्ठ का ‘खरामा-खरामा’, असग़र वजाहत का ‘रास्ते की तलाश में’, ‘पाकिस्तान का मतलब क्या है’, अनिल यादव का ‘वह भी कोई देस है महराज’, कुसुम खेतानी का ‘कहानी सुनाती यात्राएँ’, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का ‘अमेरिका और भारत में एक भारतीय मन’, शिवेंद्र कुमार सिंह का ‘ये जो पाकिस्तान’, एकांत श्रीवास्तव का ‘चल हंसा वा देश’ आदि ग्रन्थ यात्रा साहित्य के उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं।

इसके अलावा भी अनेक पत्र-पत्रिकाओं में अनेक यात्रा वृत्तांत निरंतर प्रकाशित होते रहे हैं। इन यात्रा वृत्तांतों में हम दृश्यों, स्थितियों, व्यक्तियों और तकनीकी ज्ञान के माध्यम से विविध विस्मयकारी परिदृश्यों तथा इनके प्रति लेखक की अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं से भी परिचित होते हैं। विभिन्न लेखकों के यात्रा साहित्य की विशेषताओं को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है:-

स्वतंत्रता के बाद के कुछ प्रमुख यात्रा वृत्तांत व उनकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :-

1953 में लगभग तेरह यात्रा-ग्रन्थ प्रकाशित हुए जिसमें अज्ञेय, यशपाल, मोहन राकेश के अलावा काका कालेलकर की हिमालय यात्रा उल्लेखनीय है। मुनि कांतिसागर के भी ‘खंडहरों का वैभव’ और ‘खोज की पगडंडियाँ’ प्रमुख हैं। राहुल की खोज प्रवृत्ति को आगे बढ़ाते हुए मुनि कान्तिसागर ने मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक एवं पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण हिन्दू तथा जैन मंदिरों पर रोचक भाषा में खोजपूर्ण और विवेचनात्मक यात्रावृत्त लिखे।

रामवृक्ष बेनीपुरी के ‘पैरों में पंख बांधकर’ में प्रतीकात्मक सन्देश दिया गया है। कर्नल सज्जन सिंह की ‘लद्दाख यात्रा की डायरी’ में 10,000 फुट से 18,000 फुट तक ऊँचे क्षेत्रों में किये गये शिकार तथा वहाँ की जलवायु और वनस्पतियों का जीवंत चित्रण किया गया है। रामधारी सिंह दिनकर के यात्रा वृत्तांत ‘देश-विदेश’ की शैली सीधी वर्णनात्मक है। इसमें वर्णन एक के बाद एक संक्षिप्त एवं सूक्ष्म रूप में दिए गये हैं।

प्रभाकर द्विवेदी भी सत्यदेव परिव्राजक की तरह ही सच्चे और गहरे अर्थों में यायावर हैं। उन्होंने नई जमीन तोड़ते हुए उपन्यास की तरह कथा संग्रह की तरह का यात्रावृत्त प्रस्तुत किया जिसमें उपन्यास की विराटता और कथा की सूक्ष्मता दिखाई देती है। उनका 'पार उतरि कहँ जईहौं' आधुनिक गाँव के गरीबों की सोच लेकर आता है और अपनी कथात्मक शैली से धूम मचा देता है। घटनाओं की सतह को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भेदते हुए लोक-संस्कृति की मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी भाषा में दिखाई देती है। उनका 'धूप में सोई नदी' विभिन्न यात्रा लेखों का संकलन है।

धर्मवीर भारती का 'ठेले पर हिमालय' वैसे तो संस्मरणात्मक निबन्धों का संग्रह है, लेकिन उसमें दो यात्रावृत्त 'ठेले पर हिमालय' और 'कुर्मांचल में कुछ दिन' भी संकलित हैं। इसके सम्बन्ध में विश्वमोहन तिवारी लिखते हैं कि "भारती जी की अनोखी शैली जिसमें शब्दों का सौष्ठव, अत्यंत सजग दृष्टि, कहीं रूमानी और कहीं चिंतनशील वर्णन और सबसे महत्वपूर्ण गुण कि पाठक को अपने साथ पूरा-पूरा भ्रमण, भौगोलिक ही नहीं ऐतिहासिक भी, सामाजिक भी, भावनात्मक भी; कराने की अद्भुत कला है।"[43]

अज्ञेय ने यात्रा-साहित्य संबंधी दो पुस्तकों की रचना की है, एक तो 'अरे यायावर रहेगा याद'(1953), जिसमें अज्ञेय की भारतीय यात्राओं का विशद चित्रण है और दूसरा है 'एक बूँद सहसा उछली'(1960), जिसमें उनकी यूरोपीय यात्राओं का वर्णन है। अज्ञेय के यात्रा-वृत्तान्तों में भौगोलिक सूचनाओं के अतिरिक्त संस्कृति, सभ्यता, दर्शन एवं इतिहास की विस्तृत जानकारी मिलती है। इस सन्दर्भ में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "जो काम उनके पिता ने पुरातत्व क्षेत्र में किया- जमीन से शिलालेख, मूर्तियों के निकालने का कार्य - वही काम अज्ञेय अंतिम वर्षों में अपने भारतीय अतीत के विशाल स्मृति प्रदेश में करना चाहते थे, इतिहास की राख-मिट्टी में दबे उन सब मील के पत्थरों को खोदकर बाहर निकालना, जिन पर भारतीय संस्कृति के पड़ाव-चिह्न अंकित थे।"[44] अज्ञेय के 'एक बूँद सहसा उछली' ने भाषा, शैली और कथ्य में सामंजस्य स्थापित कर यात्रावृत्तों को साहित्यिकता के शीर्ष पर पहुँचाया। इसमें काव्यात्मकता को प्रधानता दी गई है। विश्वमोहन तिवारी उनके यात्रा साहित्य की विशेषता बताते हुए लिखते हैं कि "अज्ञेय जब वर्णन

---

[43] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 86

[44] डॉ. जे. आत्माराम, 'अज्ञेय की सांस्कृतिक दृष्टि और अरे यायावर रहेगा याद', अपनी माटी पत्रिका

करते हैं तो जैसे विचारों और अनुभवों को पाठक के साथ बाँटते हुए, जिसमें यात्रा का समय-क्रम एक सरल रेखीय नहीं होता, वरन् एक विचित्र सी त्रिविमीय 'मेट्रिक्स' में गूँथा हुआ होता है। जैसे जब वह रोम के 'सरंचित' बागों की बात करते हैं तो उनकी तुलना इंग्लैंड के विशाल वृक्षमय बागों से, फ्रांस के अलंकृत बागों से तथा जर्मनी के वनोद्यानों से भी करते हैं जबकि यूरोप में रोम उनका पहला ही पड़ाव था।"[45] अज्ञेय यात्रा को जीवन की समग्रता के रूप में देखते हैं।

प्रभाकर माचवे का 'गोरी नजरों में हम' और विष्णु प्रभाकर का 'जमुना गंगा के नैयर में' तथा 'अभियान और यात्राएँ' अपनी सूक्ष्म दृष्टि, जीवन के प्रति राग और प्रभावी अभिव्यक्ति के कारण विशेष उल्लेखनीय हैं। रघुवंश की 'हरी घाटी' शिल्प की दृष्टि से एक नया प्रयोग है। इसमें संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, यात्रावृत्त सभी का सम्मिलित रूप दिखाई देता है। इसके सम्बन्ध में रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि "यात्रा-स्थल है राँची-हजारीबाग के आसपास की छोटी पहाड़ियों वाला प्रदेश और लेखक के प्रवास में केन्द्रीय स्थान है वहाँ के कैथलिक मिशनरियों की 'सेमिनरी'। हरी घाटी में अधिकतर सामान्य और अकिंचन लगने वाली घटनाओं को रेखांकित करने का यत्न हुआ है, यों ऐसे स्थल भी हैं जहाँ गंभीर और दार्शनिक समस्याओं पर सहज भाव से विचार किया गया है।"[46]

निर्मल वर्मा का 'चीड़ों पर चाँदनी' भाषा और शैली के कारण विशेष उल्लेखनीय है। बचपन की स्मृतियों के साथ-साथ यूरोप प्रवास की स्मृतियों को इसमें संजोया गया है, इसी कारण से यह रचना सहज और सरस बनी है। इसमें विदेशी संस्कृति का चित्रण मार्मिक रूप से व्यक्त किया गया है। विदेशी रहन-सहन, साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययनपूर्वक चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है। विदेशी शहरी जीवन का वर्णन करते समय लेखक शहरी मानसिकता का भी वर्णन करते हैं। इसमें यात्रा की सम्पूर्ण घटनाओं, दृश्यों, व्यक्तियों सभी का अत्यंत ही सजीवता से चित्रण किया गया है। कहीं पर भी आडम्बरों वाला चित्रण देखने को नहीं मिलता है। अनेक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ भी परिलक्षित होते हैं। उनकी भाषा की काव्यमयता, सहजता, आत्मीयता पाठकों को सहज ही आकर्षित करती है। उत्कृष्ट भाषा-शैली के साथ-साथ कथावस्तु भी अत्यंत रोचकतापूर्ण है।

---

[45] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 87

[46] रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास', पृ. 259

विश्वमोहन तिवारी इनके सम्बन्ध में कहते हैं कि "प्रकृति के सौन्दर्य की अनुभूति का वर्णन और यात्रा के सूक्ष्म अनुभवों का आत्मीय भाषा में वर्णन जैसा निर्मल वर्मा करते हैं वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यात्रावृत्तों को साहित्यिकता के ऊँचे शिखर तक पहुँचाने का उनका यही रहस्य है। निर्मल वर्मा के यात्रा वृत्तांत सचमुच में हमें न केवल बाहर ले जाते हैं, बल्कि अपने भीतर के अज्ञात कोनों में भी।"[47]

बहुआयामी रचनाकार मोहन राकेश का 'आखिरी चट्टान तक' एक महत्वपूर्ण यात्रावृत्त है। जिसमें 1952 से 1953 के बीच गोवा से कन्याकुमारी तक जो यात्रा की गई थी उसका सजीव चित्रण किया गया है। मोहन राकेश जीवन के जिन बिम्बों को रचना में प्रस्तुत करने के लिए जाने जाते हैं, उनके कुछ संवेदनशील उदाहरण 'आख़िरी चट्टान तक' में प्राप्त होते हैं। मानव मनोविज्ञान और सामाजिक संरचना की सूक्ष्म समझ के कारण यह यात्रा वृत्तांत भौतिक विवरण और आन्तरिक व्याख्या का निदर्शन बन गया है। हिन्दी साहित्य में घुमक्कड़ों की कमी अनुभव की जाती है। उसी की पूर्ति करते हुए मोहन राकेश अपने इस वृत्तांत में यात्री, यायावर और घुमक्कड़ की भूमिका में एक साथ दिखाई देते हैं।

विष्णु प्रभाकर के 'हँसते निर्झर: दहकती भट्टी' यात्रा वृत्तांत में 21 लेख संकलित हैं, जिसमें छ: लेख हिमालय में स्थित तीर्थस्थानों से सम्बन्धित हैं। बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री व पाँच लेख कश्मीर से सम्बन्धित हैं तथा चार का सम्बन्ध सोवियत रूस, चीन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से और एक-एक लेख भारत के तीन नगर- भिलाई, कलकत्ता और वैशाली से सम्बन्धित हैं। प्रभाकर जी ने हिमालय प्रदेश के तीर्थ स्थलों की पहली बार यात्रा 1950 में और अंतिम बार गंगोत्री, गोमुख और तपोवन की 1980 में की। इतने समय का अंतर होने के बावजूद भी इन तीर्थ स्थानों में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। पैदल यात्रा की अनुभूति इन लेखों में दिखाई देती है। 'मैं यहीं मरना चाहता हूँ', 'सौन्दर्य का दर्द', 'मेरी बदरीनाथ यात्रा', 'जहाँ पांडवों ने चौपड़ खेली' लेखों में हिमालय क्षेत्र के तीर्थ स्थानों की यात्राओं के चित्रण हैं। "1966 में कम से कम छह यात्रा ग्रन्थ प्रकाश में आये। इनमें सुप्रसिद्ध साहित्यकार विष्णु प्रभाकर का 'हँसते निर्झर दहकती

[47] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 93

भट्टी' तथा सतीश कुमार का 'आदमी दर आदमी' (पैदल विश्व यात्रा) विशेष उल्लेखनीय हैं। विष्णु प्रभाकर ने अनेक आत्मीय यात्रा ग्रन्थ लिखे हैं, तथा सतीश कुमार की पैदल यात्रा संभवतः इकलौती ही है। हँसते निर्झर दहकती भट्टी की गोमुख की यात्रा के वर्णन में विष्णु प्रभाकर हमें वहाँ के भूगोल के परिचय के साथ वनस्पतियों का परिचय करवाते हैं, बूटियों का वर्णन करते हैं।"[48]

सतीश कुमार का 'पैदल विश्व यात्रा आदमी दर आदमी' एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। इसमें लेखक जिन स्थानों पर जाता है व लोगों के साथ उसके जो अनुभव रहे उसी के आधार पर इसे लिखा गया है। इसमें व्यक्तियों के रहन-सहन, व्यवहार के साथ-साथ बाह्य परिवेश का चित्रण किया गया है।

श्रीकांत वर्मा, अजीत कुमार, इंदु जैन आदि की रचनाओं में कविता का पुट अधिक देखने को मिलता है। वहीं दिनकर और नगेन्द्र के यात्रा साहित्य में देशप्रेम से प्रेरित आलोचनात्मक प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं। कमलेश्वर के यात्रा साहित्य में कश्मीर की जनता के दु:ख, दर्द और उनकी मानसिकता को दर्ज करने की ईमानदार कोशिश प्रभावित करती है। गोविन्द मिश्र के यात्रा वृत्तान्तों में प्रकृति का मुक्त सौन्दर्य अधिक दिखाई देता है। प्रकृति की गोद में उन्हें वही अनुभूति होती है जो सिद्धार्थ की गोद में आहत पक्षी को हुई थी। उनके यात्रावृत्त इसी अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए लिखे गए हैं। कृष्णनाथ के यात्रा वृत्तांत संस्कृति बोध को अधिक विस्तार देकर भीतर से समृद्ध करते हैं। राजेन्द्र अवस्थी के यात्रा वृत्तांतों में कथारस का आनंद अधिक मिलता है। गोविन्द मिश्र के 'दरख्तों के पार' में जर्मनी के अनुभवों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

धर्मवीर भारती सजग पत्रकार के साथ-साथ एक सहृदय कवि भी हैं। मानव-मूल्यों के प्रति आस्था रखने वाले उनके कवि मन ने उनका कहीं भी साथ नहीं छोड़ा है। चाहे वो मॉरीशस का नैसर्गिक सौन्दर्य हो या फिर 1971 के बांग्ला मुक्ति संग्राम की विभीषिका का वर्णन हो। कवि और पत्रकार दोनों की भूमिकाएँ उनके यात्रा साहित्य में उभर कर आती हैं। 'ठेले पर हिमालय' के सम्बन्ध में विश्वमोहन तिवारी लिखते हैं कि "धर्मवीर भारती का 'ठेले पर हिमालय' रोचक ही नहीं,

[48] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 93

कौसानी जैसा ही मोहक यात्रा वृत्तांत है। प्रारम्भ में ही वे नए कवियों पर व्यंग्य करते हैं, हिममंडित चोटी को डांटते हुए – उतर आओ, ऊँचे शिखरों पर बन्दरों की तरह क्यों चिढ़े बैठे हो ? ओ नए कवियों ! ठेले पर लदो ! पान की दुकान पर बिको !"[49]

कृष्णदेव उपाध्याय का 'यूरोप की सांस्कृतिक यात्रा' महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। 1965-66 में जब वे रोमानिया व अमेरिका के इंडियाना विश्वविद्यालय में लोक साहित्य पर व्याख्यान देने गये थे, उस समय के उनके अनुभवों, यात्राओं, अध्ययन आदि का वर्णन विशेष उल्लेखनीय है। इसमें उन्होंने वहाँ के चर्च, कलावीथियों, शोध-संस्थानों, लोककला संग्राहलयों आदि में जो भी देखा उसका सरस शैली में चित्रण किया है।

'अनाम यात्राएं' अशोक जेरथ का एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जिसमें भारतीय संस्कृति की झलक विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। इसमें लेखक का उद्देश्य मात्र यात्रा करना ही नहीं है बल्कि लोकजीवन की झाँकियों को भी प्रस्तुत करना है। लोक मान्यताएँ, लोकविश्वास, लोक संस्कृति किसी भी क्षेत्र या समुदाय की विशिष्ट पहचान होती हैं। उन्हीं क्षेत्र विशेष के लोकजीवन की रोचक झलक इसमें प्रस्तुत की गयी है। लेखक ने अपनी इस यात्रा में ग्रामीण जीवन के अभावों एवं संस्कृति को भी रोचक अंदाज में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

मंगलेश डबराल को 1991 में अंतर्राष्ट्रीय राईटिंग प्रोग्राम के सिलसिले में अमेरिका के आयोवा विश्वविद्यालय में जाने का अवसर मिला था। उसी अमेरिका यात्रा का वर्णन उन्होंने 'एक बार आयोवा' नामक यात्रा वृत्तांत में किया है। अमेरिका की आधुनिक जीवन-शैली और साहित्यिक चेतना के सम्बन्ध में समीक्षात्मक टिप्पणियाँ इस यात्रा वृत्तांत में है। वल्लभ डोभाल के 'आधी रात का सफ़र' यात्रा वृत्तांत में साहसिक घटनायें, गाँवों के प्रति गहरा लगाव, शहरों की यान्त्रिक जीवन-शैली के प्रति वितृष्णा और कौतूहल को जगाए रखने वाली व्यंग्यात्मक शैली उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

हिमांशु जोशी के 'यातना शिविर में' अंडमान निकोबार की सेल्यूलर जेल का वर्णन है जहाँ भारतीय क्रान्तिकारी वीरों को यातनाएँ दी जाती थीं। वीर सावरकर, शचीन्द्रनाथ सान्याल, सरदार

---

[49] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 97

भानसिंह आदि की यातनाओं को पढ़कर अभी भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रमेशचंद्र शाह का 'एक लम्बी छाँह' इंग्लैण्ड, वेल्स और आयरलैंड के यात्रा-वृत्तांतों का संग्रह हैं । इसमें उनकी समन्वयशीलता को देखा जा सकता है । एक ओर जहाँ वे यूरोप की आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों को स्वीकार करते हैं वहीं दूसरी तरफ अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं पर गर्व करते हैं।

डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल का 'जापान में कुछ दिन' 2003 में प्रकाशित हुआ, जब पालीवाल जी टोक्यो यूनिवर्सिटी जापान में विजिटिंग प्रोफेसर बन कर गए थे। यहीं के अपने एकाकी जीवन में उन्होंने डायरी लिखना प्रारम्भ किया जिसमें स्थिति, स्थान, लोग, मौसम, ऋतु आदि के चित्रण के साथ-साथ लेखक के व्यक्तिगत ऊहापोह, साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, कला जीवन-पद्धति आदि का चित्रण किया गया हैं। इस कृति में यात्रा और अन्तर्यात्रा का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है।

नरेश मेहता के 'कितना अकेला पलाश' यात्रा वृत्तांत में युगोस्लाविया और अन्य यूरोपीय लोगों का चित्रण किया गया है । इसमें वहाँ के लोगों की संस्कृति, खुलेपन, धार्मिक चेतना, सांस्कृतिक प्रतीकों के प्रति लगाव, उनकी जीवन-शैली, खान-पान, रहन-सहन, सौन्दर्यबोध और भारत को जानने की ललक का बड़ा ही मोहक चित्र खींचा गया है।

हिन्दी, उर्दू, फारसी, पश्तो, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं की जानकार प्रसिद्ध कथा लेखिका नासिरा शर्मा ईरानी साहित्य, कला, संस्कृति एवं राजनीति की कुशल विशेषज्ञ हैं। उनका 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं' प्रमुख यात्रा वृत्तांत है जिसमें 17 यात्रा लेख संग्रहित हैं। इनमें आधे से अधिक यात्रावृत्त ईरान से सम्बन्धित हैं। ईरान के अतिरिक्त पेरिस, लन्दन, जापान, नेपाल, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईराक, फिलिस्तीन, कुर्दिस्तान आदि से सम्बन्धित हैं। इन यात्राओं का उद्देश्य असुरक्षा और अशांति के दौर से गुजर रहे इन देशों की जनता के दुःख-दर्द को सामने लाना है । तेहरान, बगदाद, पेरिस आदि में जहाँ उन्होंने जो देखा उसका वैसा का वैसा प्रत्यक्ष, सजीव चित्रण किया है।

'दस्तावेज' के यशस्वी संपादक विश्वनाथ तिवारी के यात्रा वृत्तांत 'अंतहीन आकाश' में लन्दन, मॉरीशस और रूस के भौगोलिक दृश्य-चित्रों से अधिक इन देशों के इतिहास, संस्कृति, समाज, रहन-सहन और संस्कृति-विकृति को गहराई से देखा परखा गया है। इसमें रूस के लोगों के

स्वभाव और उनकी जीवन-स्थितियों के चित्रण को प्रमुखता दी गई है। इस यात्रा-वृत्तांत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने भारतीय दृष्टि से सभी चीजों को देखा और परखा है।

कमलेश्वर के 'खंडित यात्राएँ' में कहानी तत्व की अधिक प्रधानता है। इस यात्रावृत्त में उन्होंने प्रकृति चित्रण को अधिक महत्व न देकर मानवीय संदर्भों, संवेदनाओं तथा वैचारिक आधारों का एक करुणाजनक एवं सच्चा संसार आलोकित किया है। इनके 'आँखों देखा पाकिस्तान' में पाकिस्तान की यात्रा का चित्रण है। इस पुस्तक को चार भागों- 'बाघा बॉर्डर के उस पार', 'खुली खिड़की', 'कुछ सांस्कृतिक सवाल', 'पाकिस्तानी कैदियों का मसला' में विभक्त किया गया हैं। स्थानों, दृश्यों और स्थितियों के वर्णन बहुत गहरे तक प्रभावित करते हैं। लेखक कहते हैं कि दोनों ही देश, भारत और पाकिस्तान में गरीबों का जीवन एक जैसा है। वहाँ के लेखकों में किसी तरह की कट्टरता या साम्प्रदायिकता नहीं है। वे अपने जीवन और लेखन दोनों में ही मानवीय मूल्यों को अधिक महत्व देते हैं। वहाँ के मूल निवासी मुसलमानों की अपेक्षा भारत से गए मुसलमान अधिक कट्टर हैं और सब कुछ के बावजूद हम सांस्कृतिक विरासत का बँटवारा नहीं कर सके हैं। यह पुस्तक यात्रा-वृत्त की अपेक्षा लेखक की सांस्कृतिक चेतना और सोच को अधिक उजागर करती है।

हिन्दी की सुपरिचित कथाकार मृदुला गर्ग का यात्रावृत्त 'कुछ अटके कुछ भटके' देश विदेश की यात्राओं का वृत्तांत है। इसमें मालदीव, सूरीनाम, जापान, सिक्किम, केरल, असम, तमिलनाडु व दिल्ली की यात्राओं की अभिव्यक्ति की गई है। तेरह अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक में पहले अध्याय 'भटकते गुजरा जमाना' में यात्रा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लेखिका कहती है कि यात्राएँ प्रयोजनमूलक और प्रयोजनयुक्त दो प्रकार की होती हैं। इसी तरह देशी, विदेशी और सैलानियों (देवेन्द्र सत्यार्थी, फाह्यान, ह्वेनसांग, वास्कोडिगामा) की टिप्पणियों को उठाते हुए हल्के-हल्के में कई गंभीर बातों पर चर्चा की गई है। लेखिका कहती है कि "असल चीज, सफर है, मंजिल नहीं। भटकना है, पहुँचना नहीं।"[50] इसी भटकाव की स्थितियों का चित्रण इसमें किया गया है। यह यात्रा वृत्तांत भाव, विचार, अभिव्यक्ति-शैली आदि सभी स्तरों पर अपने भिन्न स्वरूप के

[50] मृदुला गर्ग, 'कुछ अटके कुछ भटके', पृ. 13

कारण विशिष्ट महत्व रखता है। इसमें लेखिका कथाकार, टिप्पणीकार, व्यंग्यकार सभी रूपों में दिखाई देती है।

रमणिका गुप्ता का यात्रा वृत्तांत ‘लहरों की लय’ विदेश यात्रा से सम्बन्धित वृत्तांत है जिसमें 1975 से 1994 तक के 30 वर्षों के दौरान किए गए यात्रानुभवों को अभिव्यक्त किया गया है। इसमें मैक्सिको, अमेरिका, कनाडा, बर्लिन, बेल्जियम, फ्रांस, स्विट्जरलैंड, इटली, युगोस्लाविया, जर्मनी, ब्रिटेन, नार्वे, स्वीडन, फ्रैंकफर्ट, थाईलैंड, हाँग-काँग, फिलीपींस, क्यूबा व रूस की यात्राओं को अभिव्यक्त किया है। इसमें उन्होंने मुख्य रूप से मजदूर जीवन की विपन्नताओं, आदिवासी जीवन व स्त्रियों के जीवन को बहुत निकटता से देखा है। इनकी यात्राएँ बाहर के साथ-साथ अंदरूनी भी हैं। इसमें लेखिका की दोहरी भूमिका दिखाई देती है। एक तरफ एक सौन्दर्य प्रेमी की तरह उसकी दृष्टि को एल्पस पर्वत का अद्भुत सौन्दर्य, नियाग्रा जल प्रपात, नार्वे के नाविकों की डोंगियों में जोखिम भरी समुद्री यात्राएँ, उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों की साहसिक यात्राएँ अभिभूत करती हैं तो दूसरी तरफ एक सामाजिक-राजनैतिक कार्यकर्ता के रूप में उसे खदानों में काम करते व छोटे-छोटे घरों में ठूँस-ठूँस कर भरे मजदूरों की दुर्दशा को देखकर दु:ख होता है।

उर्मिला जैन का ‘देश-देश, गाँव-गाँव’ पश्चिमी व अफ्रीकी देशों की यात्रा का वृत्तांत है, जिसमें 32 यात्रा लेखों में ब्रिटेन, फ्रांस, लैटिन अमेरिका व विश्व के अन्य देशों के भूगोल, इतिहास, समाज व संस्कृति को प्रस्तुत किया गया है। इंग्लैंड के यात्रा लेखों से शुरू हुई इस पुस्तक में पश्चिमी देशों की स्त्रियों की दशा पर भी विचार किया गया है। इंग्लैंड आदि पश्चिमी देशों में पहले से ही स्वछंदता, वैवाहिक जीवन में तलाक, पुनर्विवाह, समान-वेतन जैसे अनेक अधिकारों के बावजूद स्त्रियों को जिस घुटन का अहसास होता है उसे इसमें अभिव्यक्त किया गया है। इसमें आयरलैंड, नोबेल पुरस्कारों का शहर स्टॉकहोम, सांता क्लॉज़ का गाँव, रियो-डि-जेनेरो, पैंटानोल में ओम आदि स्थानों के यात्रावृत्त काफी रोचक हैं।

कहानीकार व उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त शिवानी का ‘यात्रिक’ एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जिसमें ‘चरैवेती’ और ‘यात्रिक’ शीर्षक रचनाओं में क्रमश: मार्क्सवादी रूस व पश्चिमी विचारधारा के केंद्र इंग्लैंड को पार्श्वभूमि में रखा गया है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित

रूस की यात्रा लेखन में रूस के संग्राहलय, लेनिन, चेखव म्यूजियम, गोर्की की कलम, पांडुलिपि आदि सभी का चित्रण किया गया है।

सुमित्रा शर्मा के 'संस्कृति प्रवाह-दर-प्रवाह' में मॉरीशस, अमरनाथ, नेपाल, बाली, जकार्ता, सिंगापुर, हरिद्वार, ऋषिकेश व बैंकॉक में की गयी देश-विदेश की यात्राओं का चित्रण किया गया है। इन यात्राओं में सूक्ष्म अनुभवों ने शब्दों के माध्यम से मनोरम आकार पाया है। इनकी यात्राओं के सम्बन्ध में नर्मदा प्रसाद उपाध्याय लिखते हैं कि "सुमित्राजी के शब्द सिर्फ बयान नहीं हैं वे रागात्मक अनुभूतियों और तलस्पर्शी साक्षात् से भरपूर हैं इसीलिए उनमें ऐसी व्यंजना समाई है जो मन को दूर तक विचरण करा लाती है। ये यात्रा संस्मरण ऐसे मृगछौनों की तरह हैं जो स्वछंद रूप से पूरे प्रांतर में आकुल भाव और जिज्ञासा भरी आँखों से कुचालें भरते हैं और फिर उन्हीं पथों से नहीं लौटते जिस पथ से उन्होंने यात्रा की शुरुआत की थी।"[51]

अनुराधा बेनीवाल की यूरोप घुमक्कड़ी के संस्मरणों के आख्यान 'यायावरी आवारगी' की पुस्तक श्रृंखला में 'आजादी मेरा ब्रांड' पहली किताब है जो कि स्त्री की स्वतंत्रता की आवाज को बुलंद करती है। मुख्यत: इस कृति का वास्तविक ब्रांड आजादी ही है। इसी आजादी की तलाश में यूरोप के 13 देशों में एक लड़की के द्वारा की गयी घुमक्कड़ी की कहानी इसमें है। यह अकेले, बिना किसी मकसद के, बेपरवाह, बेफिक्र होकर की गई यात्राओं का वृत्तांत है। एक अकेली बेकाम, बेफिक्र घूमती लड़की में अलग ही ताकत होती है, साहस होता है। ऐसा साहस जिसे बाहर निकलने का मौका ही नहीं दिया जाता। इसी साहस के दम पर की गई बेमकसद यात्राओं की अनूठी दास्तान है 'आजादी मेरा ब्रांड'। इसमें यूरोप के तेरह शहर लन्दन, पेरिस, लील, ब्रसल्स, कॉकसाईड, एम्स्टर्डम, बर्लिन, प्राग, ब्रातिस्लावा, बुडापेस्ट, म्युनिक, इंस्ब्रुक व बर्न की एकाकी यात्राओं के वृत्तांत हैं।

यह पुस्तक भारत की स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता का एक घोषणा पत्र है जिसमें वह लड़कियों से धर्म, संस्कार, मर्यादा की बेड़ियों को तोड़कर, सब कुछ भूलकर घूमने की हिमायत करती है। इसमें लेखिका का व्यक्तित्व खुलकर प्रस्तुत हुआ है। वह देह की मुक्ति से लेकर हर तरह के सामाजिक

[51] डॉ. सुमित्रा शर्मा, 'संस्कृति प्रवाह-दर-प्रवाह', पृ. 11

बन्धनों को तोड़ती हुई अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, विचारों को उघाड़कर प्रस्तुत कर देती है, कहीं भी लज्जा व शर्म के मारे कुछ भी छुपाती नहीं। वह अपनी कमजोरियों और ताकत को साहस और आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत करती है, अतः उसकी ईमानदारी पाठक को हर जगह प्रभावित करती है। लेखिका कहती है मुझे चल सकने की आजादी चाहिए - टेम-बेटेम, बिंदास, बेफिक्र होकर, हँसते-रोते, सिर उठाकर सड़क पर निकल पड़ने की आजादी। कुछ अच्छे-बुरे, अनहोनी की चिंता किए बगैर अकेले ही चल पड़ने की आजादी की तलाश में अनजाने शहरों की भूल-भूलैय्या में बेवजह, बेफिक्र, अनजान, अकेले-फिरते अपरिचितों से रास्ता पूछते, अजनबी लोगों के घरों में ठिकाना बनाते हुए एक महीने में की गई यह यात्रा देशकाल के कई नवीन आयामों को प्रस्तुत करती हुई चलती है।

'देह ही देश' गरिमा श्रीवास्तव की क्रोएशिया प्रवास के दौरान लिखी गई यात्रा डायरी है। यह यात्रा और डायरी दोनों का सम्मिलित रूप है जो 2009-2010 के दो अकादमिक सत्रों में भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् की ओर से जाग्रेब विश्वविद्यालय के सुदूर पूर्वी अध्ययन विभाग में प्रतिनियुक्ति के दौरान लिखी गई थी। यह किताब सर्ब-क्रोआती बोस्नियाई संघर्ष के दौरान स्त्रियों द्वारा भोगे गए यथार्थ का दस्तावेज है जिसमें 90 के दशक में पूर्वी यूरोप के सयुंक्त युगोस्लाविया में हुए युद्ध और विखंडन से विस्थापित हुए लोगों की, खासकर स्त्री की, शारीरिक एवं मानसिक शोषण की स्थितियों का चित्रण किया गया है। इसमें सामूहिक बलात्कार की शिकार बनकर मानसिक संतुलन खो बैठी स्त्रियों की सच्चाई, अपने नवजात की जान बचाने के लिए निर्वसन होने वाली स्त्री की सच्चाई या एरिजोना मार्केट में देह-व्यापार में डूबती उतराती स्त्रियों के सच या उनके अनकहे आख्यानों को सुनाने की कोशिश की गई है। इस यात्रा डायरी में बड़ी ही सूक्ष्मता और व्यापकता के साथ युद्ध, विस्थापन, पुनर्वास व सेक्स जैसे हर तरह के परिदृश्यों को परत-दर-परत उजागर किया गया है। जब-जब इस डायरी को पढ़ने की कोशिश करते हैं मस्तिष्क संवेदना शून्य हो जाता है। ये अन्दर से बाहर और देह से देश तक की ऐसी यात्राएँ हैं, जहाँ हत्या है, क्रूरता है, बलात्कार से पीड़ित स्त्रियाँ है, सिहरन है, चीखते-चिल्लाते बच्चे हैं। यह रक्तरंजित युद्ध के इतिहास का सच्चा बयान है।

जाग्रेब और क्रोएशिया का इतिहास, युद्ध का इतिहास है जिसमें है खून से सनी औरतें और बच्चे, क्षत-विक्षत जिस्म, गर्भवती होती स्त्रियाँ, जानवरों की तरह खरीदी और बेची जा रही औरतें,

जंगलों की तरफ भागते पुरुष व भेड़ियों की तरह लपकते सर्बियाई सैनिक। ऐसे-ऐसे चित्रण जिनको पढ़कर मस्तिष्क सुन्न हो जाता है। लगता है जैसे सब कुछ अपनी ही आँखों के आगे घट रहा है और हम प्रत्यक्षदर्शी होकर मात्र देख रहे हैं। लगता है बस अब और नहीं, बहुत हो गया। इससे ज्यादा नहीं देखा सुना जा सकता लेकिन ये सोचने मात्र से यह क्रम रुकता थोड़ी ना है ! सेर्गेई, याद्राका, एडिना, स्त्रोकोविच, फिक्रेत, बोल्कोवेच, दुष्का, नीसा, अजर ब्लाजेविक, हसीबा, मेलिसा जैसी तमाम औरतें...जो पात्र अलग-अलग हैं लेकिन दुःख, दर्द व पीड़ाएँ सभी की एक हैं। वे एक-एक करके अपनी कहानियाँ सुनाती जाती हैं, हर औरत के साथ रूह कंपा देने वाली कहानियाँ जुड़ी हुई हैं जिसमें पाठक की अनुपस्थिति होकर भी हर जगह उपस्थिति लगती है। सर्बिया ने युद्ध में बोस्निया, हर्जेगोविना, क्रोएशिया के खिलाफ नागरिक और सैन्य कैदियों के 480 कैम्प बनाए थे। इन्हीं कैम्पों में स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये थे। ये सभी सर्बियाई कैम्प रैप शिविरों में बदल गये थे। इनमें स्त्रियों को शारीरिक और मानसिक यातनाएँ देकर, बलात्कार करके योनियों तक सीमित करके रख दिया गया था। इतिहास के उन विद्रूप पन्नों को एक-एक करके इस किताब में खोलकर रखा गया है। युद्ध के दौरान सैनिकों का जितना क्रूरतम और वीभत्स चेहरा हो सकता है, उसे 'देह ही देश' में देखा जा सकता है। तरसेम गुजराल इस यात्रा डायरी के सम्बन्ध में लिखती हैं कि "रक्तरंजित इस डायरी में जख्मी चिड़ियों के टूटे पंख हैं, तपती रेत पर तड़पती सुनहरी जिल्द वाली मछलियाँ हैं, काँच के मर्तबान में कैद तितलियाँ हैं। युगास्लाविया के विखंडन का इतना सच्चा बयान हिन्दी में यह पहला है।"[52]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के पश्चात कहा जा सकता है कि आज हिन्दी यात्रा साहित्य बहुत वैविध्यपूर्ण और समृद्ध हो चुका है। उसमें वस्तु वर्णन, दृश्यांकन, बिम्ब-विधान और मन:स्थितियों के सूक्ष्म रेखांकन की क्षमता बहुत बढ़ गई है। देश-विदेश की संस्कृतियों को आत्मसात करने की क्षमता बहुत बढ़ी है। भारतेन्दु युग के यात्रा वृत्तांत निबन्धों की तरह ही थे जिनसे केवल लेखक के स्वभाव और रुचि का परिचय और स्थान विशेष की जानकारी प्राप्त होती थी किन्तु आज हम यात्रा वृत्तान्तों के माध्यम से वस्तुओं, व्यक्तियों और स्थितियों के बाह्य बिम्ब विधान के साथ-साथ लेखक के अन्तर्जगत का भी पूरा साक्षात्कार कर सकते हैं। रामचंद्र तिवारी यात्रा-वृत्तांतों के सम्बन्ध में

[52] गरिमा श्रीवास्तव, 'देह ही देश', पृ. फ्लैप पेज

लिखते हैं कि "यात्रा-वृत्तान्तों में देश-विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन-सन्दर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के प्रतीक अनेक वस्तुचित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर उसकी वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं।"[53] जिजीविषा हर मनुष्य की मूलभूत वृत्ति है और यायावरों की साहसिक यात्राएँ मानव की जिजीविषा को जागृत करती हैं।

1.7 यात्रा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं के साथ सम्बन्ध :-

अगर किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, विधा का स्थान निर्धारण करना हो या उसकी कनिष्ठता व वरिष्ठता का निर्धारण करना हो तो उसकी अन्य के साथ तुलना करना अनिवार्य हो जाता है। यात्रा साहित्य भी एक महत्वपूर्ण विधा है। जिसका आरम्भ निबन्धों से हुआ था लेकिन आज यह स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिस्थापित हो चुकी है। फिर भी इसमें निबन्ध, संस्मरण, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, डायरी, पत्र साहित्य आदि अन्य गद्य विधाओं का वैशिष्टय न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त होता है। इसी न्यूनाधिक वैशिष्टय के कारण उसके स्थान का निर्धारण करने के लिए अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ उसकी तुलना व सम्बन्ध देखना आवश्यक हो जाता है। हिन्दी में यात्रा साहित्य के लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं, जैसे यात्रा वृत्तांत, यात्रा निबन्ध, यात्रा वर्णन, यात्रावृत्त, यात्रा संस्मरण आदि। वैसे यात्रा साहित्य अपने आप में स्वतन्त्र गद्य विधा है लेकिन फिर भी इसको अन्य विधाओं से अलग करके नहीं देखा जा सकता है क्योंकि यह अन्य विधाओं से जुड़ी हुई विधा है। इसके अन्य विधाओं के साथ सम्बन्धों को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है :-

निबन्ध और यात्रा साहित्य :-

प्रारम्भिक यात्रा साहित्य का उद्भव निबन्धों से ही हुआ है, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे और उन्हें यात्रा लेख कहा जाता था। यात्रा साहित्य की व्यक्तिनिष्ठ निबन्धों के साथ अनेक समानताएँ देखने को मिलती हैं। दोनों में ही व्यक्तिगत अनुभूतियों व भावों को सौन्दर्यपूर्ण एवं कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। व्यक्तिगत अभिरुचि, भावुकता, कल्पना और अनुभूति की अभिव्यक्ति दोनों में देखने को मिलती है। "निबन्धकार जिस प्रकार अपने विषय

---

[53] रामचंद्र तिवारी, 'हिंदी का गद्य साहित्य', पृ. 415

को अपनी मानसिक संवेदक स्थिति में ग्रहण करता है और उसी प्रेरणा से विस्तार भी देता है, बिल्कुल उसी प्रकार यात्री भी अपनी यात्रा के प्रत्येक स्थल और क्षणों में से उन्हीं क्षणों को सँजोता है जिनको वह अनुभूत सत्य के रूप में ग्रहण करता है।"[54] इस तरह दोनों में ही लेखक का व्यक्तित्व वर्ण्य विषय के साथ मिलकर प्रकट होता है। यात्रा साहित्य और निबन्ध दोनों ही सृजनात्मक विधाएँ है, जिसमें पाठकों को बाँधने की अपूर्व क्षमता है।

निबन्ध यात्रा साहित्य की तुलना में अधिक पूर्व की, प्रौढ़ व प्रभावशाली विधा है। भारतेन्दु युग में यात्रा साहित्य का विकास भी निबन्धों से ही हुआ। प्रत्येक यात्रा लेख निबन्ध का ही एक प्रकार है। प्रारम्भिक समय में यात्रा साहित्य की शैली निबन्ध शैली थी जिसके कारण छोटे-छोटे जो यात्रा लेख होते हैं, उन्हें ही निबन्ध कहा जाता है। आज यात्रा साहित्य गद्य की एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हो गया है परंतु आज भी अनेक यात्रा वृत्तांत ऐसे हैं जिनकी रचना निबन्ध विधा में की गई है। इसमें लिखित यात्रा-साहित्य में सम्बद्ध स्थान, व्यष्टि तथा वस्तुओं का यथातथ्य चित्रण किया जाता है। इसमें सूचनाओं का वर्णन अधिक व निबन्ध शैली में किया जाता है। जैसे:- राहुल सांकृत्यायन का 'हिमालय परिचय' और 'किन्नर देश में', सेठ गोविन्ददास का 'सुदूर दक्षिण में', भदंत आनंद कौसल्यायन का 'आज का जापान' आदि यात्रा वृत्तांत निबन्ध शैली में लिखे गये हैं।

आत्मकथा और यात्रा साहित्य:-

आत्मकथा और यात्रा साहित्य दोनों विधाओं में ही विभिन्न समानताएँ देखने को मिलती हैं। दोनों विधाओं में ही निजी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। दोनों में अनुभूत क्षणों की संस्मरणात्मक रचनाएँ हैं। दोनों में ही तत्कालीन समय की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियों का चित्रण किया जाता है। दोनों में ही यथार्थ को अधिक महत्व दिया जाता है और काल्पनिकता का पुट कम दिखाई देता है। दोनों में ही लेखक की आत्माभिव्यक्ति को महत्व दिया जाता है, जिसमें लेखक का व्यक्तित्व हावी रहता है।

आत्मकथा लेखक की जीवन यात्रा का वृत्त है, जिसमें व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है लेकिन यात्रा-वृत्तांत में किसी समय व स्थान विशेष की स्थिति को

[54] डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन, औरंगाबाद, पृ. 21

प्रस्तुत किया जाता है । आत्मकथा में लेखक के सम्पूर्ण जीवन को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है, वहीं यात्रा-वृत्तांत में आंतरिक तत्व की अपेक्षा बाह्य प्रकृति व परिवेश को अधिक महत्व दिया जाता है । यात्रावृत्त में सम्पूर्ण चित्रण न होकर किसी कालखंड व समय विशेष का चित्रण किया जाता है । आत्मकथा में स्वयं को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है बल्कि यात्रा साहित्य में स्व को अधिक महत्व न देकर परिवेश, समाज, संस्कृति, पात्र, यात्रानुभव आदि को महत्व दिया जाता है । "यात्रा साहित्य में 'स्व' के प्रति इतना अधिक केन्द्रित होने का अवसर नहीं मिलता है । लेखक के 'स्व' के उद्घाटन का संयम ही आत्मकथा और यात्रा साहित्य को भिन्न करता है । यात्रा साहित्य की शैली आत्मकथात्मक होती है, पर वह आत्मकथा से नितान्त भिन्न विधा है । लेखक के 'स्व' के अतिरिक्त सम्पूर्ण परिवेश, पात्र एवं यात्रा की अन्य महत्वपूर्ण घटनाएँ मुखर होकर यात्रा साहित्य में प्रकट होती हैं जबकि आत्मकथा में केवल लेखक का 'स्व' ही प्रमुख होता है, शेष सब कुछ गौण हो जाता है ।"[55]

संस्मरण और यात्रा साहित्य :-

जब किसी व्यक्ति या घटना से सम्बन्धित कोई विशिष्ट अनुभव शाब्दिक अभिव्यक्ति पाकर रोचक प्रसंग के रूप में प्रस्तुत होता है तो उसे संस्मरण कहते हैं । संस्मरण का अर्थ है – सम्यक् स्मरण । संस्मरणात्मक विधा में लिखित यात्रा साहित्य में लेखक अपनी यात्रा के कुछेक पहलू स्मरण करके लिखते हैं । संस्मरणात्मक विधा में लिखित यात्रा साहित्य के सम्बन्ध में डॉ. बापूराव देसाई लिखते हैं कि "प्रस्तुत प्रकार के यात्रा साहित्य में किसी को विषय का ज्ञान या परिचय कराने वाले तथ्य होते हैं । इस यात्रा साहित्य में अलग-अलग स्थान, व्यक्ति, वस्तुओं के साक्षात्कार होते हैं। इसमें लोकरंजन की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक रहती है ।"[56] यात्रा साहित्य एक प्रकार का संस्मरण साहित्य ही तो है । दोनों में ही बीती हुई घटनाओं का चित्रण किया जाता है । दोनों ही स्मृति से सम्बद्ध वर्णन प्रधान कथेतर गद्य विधाएँ हैं, लेकिन फिर भी संस्मरण जहाँ व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित किसी व्यक्ति की स्मृतियों को आधार बनाकर लिखा जाता है वहीं यात्रा-वृत्तांत में लेखक

[55] डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन', औरंगाबाद, पृ. 25
[56] डॉ. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ. 57

अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों, व्यक्तियों, भूगोल, समाज, संस्कृति, परिवेश का चित्रण करता है।

संस्मरण में किसी व्यक्ति का चरित्र-चित्रण या जीवन की अविस्मरणीय अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है; वहीं यात्रा साहित्य में ऊपरी तौर पर जो मिला उसका परिचय मात्र प्रस्तुत किया जाता है । संस्मरण में जहाँ घटनाओं का उल्लेख मात्र किया जाता है, वहीं यात्रा साहित्य में प्रतिक्रिया भी प्रस्तुत की जाती है । "यात्रा-साहित्य के अंतर्गत विषय की अभिव्यक्ति में यात्रा-स्थलों की विभिन्नता तथा विस्तार, यहाँ तक की एक ही यात्रा-स्थल में अनुभवों की विभिन्नता तथा विस्तार भी यात्रा-साहित्य के संकेन्द्रन को संस्मरणों की तरह परिसीमित न कर उसका कलात्मक विकेंद्रीकरण या विसरण करते हैं। अक्सर यात्रा-साहित्य में, संस्मरण के विपरीत, एक व्यक्ति या एक घटना की बात न होकर उसके बहाने समाज की बात होती है, एक वृक्ष की बात न होकर वन की बात होती है ।"[57] हिन्दी में संस्मरणात्मक विधा में लिखित निम्न यात्रा ग्रन्थ देखने को मिलते हैं। जैसे:- वेणी शुक्ल का 'लन्दन से पेरिस की सैर', गोपाल नेवटिया का 'कश्मीर', 'सागर प्रवाह', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'पैरों में पंख बाँधकर', श्रीनिधि सिद्धान्तालंकार का 'शिवालिक की घाटियों में', देवेस दास का 'यूरोप', 'रजवाड़ा' आदि।

रेखाचित्र और यात्रा-साहित्य :-

यात्रा-साहित्य और रेखाचित्र दोनों में ही कल्पना को अधिक महत्व न देकर यथार्थ को प्रमुखता दी जाती है। दोनों में ही अनुभव के प्रमाण के साथ व्यक्ति की रूपरेखा और व्यक्तित्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है । "वैयक्तिक संपर्क की आत्मीयता और सामंजस्य की शैली दोनों में होती है। रेखाचित्र में किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का चित्रण होता है, यात्रा-साहित्य में भी यात्रा में साक्षात्कारित व्यक्ति अथवा वस्तु का चित्रण होता है। वस्तु वर्णन, वस्तु निरूपण, वस्तु निर्माण दोनों विधाओं में समान रूप से व्यवहृत है। रेखाचित्र की तरह यात्रा में साक्षात्कारित दृश्यों तथा व्यक्ति के रेखाचित्र यात्रा साहित्य में अंकित होते हैं।"[58] यात्रा साहित्य की वर्ण्य वस्तु गतिशील

[57] विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ.सं. 16

[58] डॉ. बी.आर. धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन, औरंगाबाद, पृ. सं. 25

और रेखाचित्र की विषयवस्तु स्थिर होती है । यात्रा साहित्य विस्तृत फलक पर व्यक्ति, वस्तु, वातावरण, समाज, संस्कृति सभी को महत्व देता है वहीं रेखाचित्र में व्यक्ति व वस्तु के अलावा अन्य सभी को अधिक महत्व नहीं दिया जाता।

यात्रा साहित्य लिखने के लिए यात्रा करना आवश्यक होता है, घर बैठकर यात्रा साहित्य लिखना संभव नहीं है, वहीं रेखाचित्र बिना यात्रा किये घर बैठकर भी लिखा जा सकता है । "रेखाचित्र शैली में यात्रा साहित्य की रचना वर्ण्य विषय की रोचकता को बढ़ाती है, लेकिन रेखाचित्र के तत्व यात्रा साहित्य में केवल वहीं दिखाई देते हैं, जहाँ यात्रा साहित्य का लेखक चित्रात्मक शैली में किसी वर्ण्य-वस्तु का चित्रण करता है । जहाँ वर्णन, विचार, प्रतिक्रिया एवं विवेचन प्रधान होता है, वहीं यात्रा साहित्य, रेखाचित्र से भिन्न हो जाता है।"[59] रेखाचित्र जहाँ किसी व्यक्ति या वस्तु का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करता है, वहीं यात्रा साहित्य ऊपरी तौर पर ही ज्यादा गहराई में न जाकर दूर से लिए गए छायाचित्र की तरह प्रस्तुत किया जाता है।

रिपोर्ताज और यात्रा साहित्य :-

रिपोर्ताज और यात्रा साहित्य दोनों ही कल्पना को कम महत्व देने वाली आँखों देखी घटनाओं पर आधारित होते हैं। दोनों ही विवरणात्मक कथेतर गद्य विधाएँ है। दोनों में ही लेखक का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में प्रकट होता रहता है । दोनों में ही किसी अन्य गद्य विधा आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, निबन्ध के तत्व दिखाई देते हैं। "रिपोर्ताज और यात्रा साहित्य दोनों ही सत्य के वस्तुगत रूप पर आधारित हैं; दोनों में ही वर्णात्मकता होती है; दोनों में ही लेखक का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में समाहित रहता है; दोनों ही विधाओं में निबन्ध, रेखाचित्र एवं संस्मरण की विशेषताएँ पाई जाती हैं, लेकिन यात्रा-साहित्य अपनी वर्ण्य-वस्तु, चरित्र, उद्देश्य एवं शैली सभी दृष्टियों से रिपोर्ताज से भिन्न एवं स्वतंत्र विधा है।"[60]

रिपोर्ताज एक घटनापरक पत्रकारिता के स्तर पर साहित्यिक रचना है। रिपोर्ताज में लेखक एक दर्शक की भूमिका में रहता है, जिसको घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए जगह-जगह

---

[59] मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ.सं. 23
[60] मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ. 24-25

घूमना पड़ता है। रिपोर्ताज प्राय: अकाल, बाढ़, युद्ध, दंगे आदि घटनाओं को प्रस्तुत करने के लिए निश्चित ध्येय से लिखा जाता है, वहीं यात्रा साहित्य में किसी घटना विशेष को ही प्रमुखता न देकर समग्र वैशिष्टय और लेखक की प्रकृति का भी चित्रण होता है। यात्रा साहित्य में आत्मीयता के भाव अधिक दिखाई देते हैं। रिपोर्ताज की अपेक्षा यात्रा-साहित्य काव्यात्मक अधिक होता है। यात्रा साहित्य में घटना विशेष को ही प्रमुखता न देकर समाज, संस्कृति, आचार-विचार, परिवेश सभी का चित्रण किया जाता है। "रिपोर्ताज एक विशिष्ट भू-भाग से सम्बन्धित होता है, यात्रा साहित्य में यात्री जहाँ-जहाँ घूम-घाम लेता है, उन सबका प्रकृति सौन्दर्य, वर्ण्य-प्रदेश की संस्कृति, आचार-विचारादि का वर्णन होता है। इस दृष्टि से यात्रा-साहित्य, रिपोर्ताज की तुलना में अधिक व्यापक सर्व समावेशी साहित्य विधा है। रिपोर्ताज की तुलना में यात्रा साहित्य में सृजन विपुल रूप में हुआ है।"[61]

डायरी और यात्रा-साहित्य :-

यात्रा साहित्य और डायरी दोनों में ही उन्हीं घटनाओं को चित्रित किया जाता है, जिनको चाहते हुए भी भुलाया नहीं जा सकता। कीमती, प्रभावकारी घटनाओं, व्यक्ति का प्रामाणिक मूल्यांकन इनमें किया जाता है। डायरी विधा से अधिक एक शैली के रूप में यात्रा साहित्य के निकट है। यात्रा साहित्य में लेखक अपनी यात्रा में घटित घटनाओं का उल्लेख तिथिक्रम से डायरी शैली में करता है। हिन्दी में ऐसा यात्रा साहित्य विपुल मात्रा में है जिसमें डायरी शैली अपनायी गई है। जिस तरह डायरी में हम रोजनामचा लिखते हैं, वस्तुओं और व्यक्तियों को उल्लेखित कर नोट करते हैं, उसी प्रकार डायरी शैली में यात्रा साहित्य का विवरण प्राप्त होता है। जैसे- राहुल सांकृत्यायन का 'यात्रा के पन्ने'। डायरी और यात्रावृत्त दोनों में ही अनुभूत क्षणों का चित्रण किया जाता है। "यात्रा साहित्य और डायरी में लेखक के व्यक्तित्व का सही रूप बिम्बित होता है। दोनों स्मृति से सम्बन्ध रखा करते हैं। दोनों में अनुभूत क्षणों का अंकन होता है। यात्रा साहित्य और डायरी में व्यक्ति, वस्तु, वातावरण का वास्तविक रेखांकन होता है।"[62] यात्रा साहित्य डायरी से अधिक प्रभावशाली विधा है। डायरी अत्यंत ही वैयक्तिक होती है लेकिन यात्रा साहित्य वैयक्तिक होने के साथ-साथ सार्वजनिक भी होता है। डायरी में जहाँ तिथिक्रम में एक निश्चित रूप में घटनाओं

---

[61] इरेश स्वामी, 'हिंदी का स्वातंत्र्यप्राप्त्युत्तर यात्रा साहित्य', पृ. 54

[62] डॉ. संगीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त', पृ. 18

का चित्रण किया जाता है, वहीं यात्रा लेखक के लिए स्वतन्त्रता रहती है। डायरी लेखक का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत जीवनानुभूतियों को अभिव्यक्त करना होता है, वहीं यात्रा साहित्य लेखक का उद्देश्य मनोरंजन और व्यापक ज्ञानार्जन होता है। "मुख्य रूप से यह मानना अधिक उचित है कि डायरी यात्रा साहित्य की एक शैली के रूप में स्वीकृत रचना-प्रकिया है। विधा की दृष्टि से दोनों की स्वतंत्र सत्ता सर्वमान्य है।"[63]

पत्र साहित्य और यात्रा साहित्य :-

डायरी की तरह ही पत्र भी यात्रा साहित्य की एक शैली है। जो यात्रा साहित्य पत्र शैली में लिखा जाता है उसमें आत्मीयता का भाव अधिक दिखाई देता है। हिन्दी में अनेक यात्राकारों ने पत्र के रूप में यात्रा साहित्य लिखा है। यात्राकार जब यात्रा पर जाते हैं; तब वे अपनी यात्रा के बारे में कहाँ-कहाँ गये, क्या-क्या देखा, वहाँ की क्या-क्या विशेषता है, सभी का वर्णन पत्र शैली में करते हैं। वीरेन्द्र वर्मा का यात्रा वृत्तांत 'यूरोप के पत्र' पत्र शैली में लिखा गया है। पत्र और यात्रा साहित्य दोनों में सहजता, सरलता व आत्मीयता की प्रमुखता होती है। वैयक्तिक आनन्द के क्षणों को लिपिबद्ध करने के लिए दोनों विधाओं का सृजन किया गया है। दोनों में ही वैयक्तिक जीवन के अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। "पत्र निजानुभूति की प्रामाणिक अभिव्यक्ति होने के नाते, यात्रा में अपनों से दूर रहने वालों को यात्रानुभवों के विचित्र, विलक्षण, भय तथा आनंद के क्षणों को लिख भेजने का मोह यात्री को होता है और वह पत्रों के माध्यम से उन्हें लिख भेजता है। बाद में उन्हीं को संक्षिप्त कर पुस्तकाकार छापने की विधि रूढ़ हो गई। पत्र यात्रा साहित्य की एक शैली है।"[64]

पत्र लेखन की एक शैली और साहित्यिक विधा दोनों रूप में स्वीकार किया जाता है वहीं यात्रा साहित्य केवल एक साहित्यिक विधा ही है। पत्र साहित्य में जहाँ लेखक ही प्रमुख होता है और उसके अन्त:जगत को ही प्रमुखता दी जाती है, वहीं यात्रा साहित्य में बाह्य जगत, वर्ण्य विषय व परिवेश प्रमुख होता है। पत्र के लिए यात्रा करना आवश्यक नहीं है, घर बैठकर भी किसी को पत्र लिखा जा सकता है लेकिन यात्रा साहित्य लिखने के लिए यात्रा करना अत्यन्त आवश्यक है।

---

[63] मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ. 25

[64] डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन', औरन्गाबाद, पृ.सं 23

इस प्रकार देखा जा सकता है कि यात्रा साहित्य अन्य गद्य विधाओं से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है । यह सभी विधाओं के गुणों को समाहित करके ही मौलिक और सृजनात्मक साहित्यिक रूप में अभिव्यक्त होता है।

1.8 हिन्दी यात्रा साहित्य का साहित्य में योगदान :-

हिन्दी में अगर यात्रा साहित्य के योगदान को देखा जाए तो सबसे पहले धार्मिक योगदान दिखाई देता है क्योंकि यात्रा साहित्य की शुरुआत ही धार्मिक यात्राओं से हुई है । अधिकांश आरम्भिक यात्रा साहित्य धार्मिक स्थानों से सम्बन्धित हैं। इसमें यात्रा साहित्यकार किसी भी स्थान या धार्मिक स्थलों पर जाकर वहाँ के धर्म, पूजा-अर्चना, पाप-पुण्य आदि का चित्रण करता है । धार्मिक यात्रा साहित्य के सम्बन्ध में डॉ. बी. आर. धापसे लिखते हैं कि ''इसके अंतर्गत चारों धामों का यात्रा वृत्त, ब्रजमंडल के सिद्ध तीर्थ, कुमाऊँ के प्रसिद्ध मंदिर, पूर्ण कुम्भ, सुवर्णभूमि की ओर, देवों की घाटी, गंगा: अतीत एवं वर्तमान, कुलांत दर्पण, चन्दन की माटी, सागर और स्वप्न देश, मैं कहती हूँ आँखिन देखी एवं हिमालय और कैलाश मानसरोवर से सम्बन्धित सभी कृतियाँ आती है।''[65]

धार्मिकता से सम्बन्धित यात्रा साहित्य में धर्म से जुड़ी मान्यताओं, मिथक कथाओं, धार्मिक रूढ़ियों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि की जानकारी मिलती है । धार्मिक यात्रावृत्त लेखन में महिला लेखिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान है। ''पिरामिडों का देश' में लेखिका माला वर्मा ने ईसाई-यहूदी-इस्लाम धर्मों के बारे में काफी महत्वपूर्ण जानकारी दी है। बौद्ध धर्म एवं दर्शन की दृष्टि से थाईलैंड की सांस्कृतिक परम्पराएँ, जाना अनजाना चीन, अजाना देश, सकुरा के देश में आदि यात्रा कृत्तियाँ महत्वपूर्ण हैं। सिक्ख धर्म की दृष्टि से 'नील गगन के तले' एवं पद्मा सचदेव का यात्रा साहित्य महत्वपूर्ण है।''[66]

जानकारी उपलब्ध करवाने के दृष्टि से भी यात्रा साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। किसी भी देश या स्थान विशेष की यात्रा प्रारम्भ करने से पहले यदि यात्री उस स्थान से सम्बन्धित यात्रावृत्त

[65] डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 135
[66] डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 135

को अगर एक बार पढ़ लेता है, तो उसकी यात्रा अत्यधिक आसान हो जाती है। यात्रा के दौरान आने वाली कठिनाईयों एवं आवश्यकताओं की वह पहले ही जानकारी प्राप्त कर लेता है।

हिन्दी साहित्य में यात्रा साहित्य का साहित्यिक योगदान भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें अनेक यात्रा ग्रन्थकारों ने अनेक यात्रा वृत्त लिखकर अपना साहित्यिक योगदान दिया है। यात्रा साहित्य का बौद्धिक योगदान भी महत्वपूर्ण है। यात्रा साहित्य की प्रत्येक कृति कोई न कोई जानकारी अवश्य देती है जिससे ज्ञान में वृद्धि होती है। तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध कराने में यात्रा साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है।

हिन्दी साहित्य में सामाजिक एवं सांस्कृतिक योगदान में भी यात्रा साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यात्रा साहित्य में विभिन्न देशों के समाज, संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज सभी की जानकारी प्राप्त होती है। यात्रा साहित्य ही एक ऐसी विधा है जिसमें किसी भी समाज और संस्कृति को यथार्थ रूप में देखने का अवसर मिलता है। देश-विदेश की यात्रा करते हुए यायावर एक ओर जहाँ अपने देश या क्षेत्र विशेष की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, धर्म, दर्शन, कला आदि को प्रसारित करता है वहीं दूसरी ओर वह दूसरे देशों की यात्रा करता है तो वहाँ के समाज व संस्कृति का चित्रण अपने यात्रा साहित्य में करता है। बी.आर. धापसे इसके सम्बन्ध में लिखते हैं कि "यात्रा साहित्य लेखक देश के विभिन्न प्राचीन स्थानों, मठ, मंदिर तथा गिरजा आदि गिरि कंदराओं और प्राचीन संस्कृति के वैभवपूर्ण खंडहरों, ऐतिहासिक स्थल, आदि की यात्रा करता हुआ अस्त होती हुई संस्कृति के बिखरे सूत्रों को पुनः सूत्रबद्ध कर, उन्हें संयोजित करके अपनी कृतियों के माध्यम से प्रकाश में लाता है। इस प्रकार नष्ट होती हुई संस्कृति को बचा वह संस्कृति सरंक्षण का कार्य भी करता है। अत: संस्कृति विस्तार, उन्नयन एवं उसके सरंक्षण में यात्रा साहित्य की उपादेयता असंदिग्ध है।"[67] इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में यात्रा साहित्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

1.9 हिन्दी यात्रा साहित्य की भाषा-शैली :-

[67] डॉ. बी. आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 138

यात्रा साहित्य मूल रूप से गद्य साहित्य की विधा है अतः गद्य में ही यात्रागत अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। इसलिए भाषा के सम्बन्ध में अगर विचार किया जाये तो कहा जा सकता है कि इसमें भाषा के क्लिष्ट रूप की आवश्यकता नहीं होती। प्रायः इसमें सरल, सहज भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है लेकिन विषयानुरूप इसमें परिवर्तन भी होता रहता है। साधारण घटनाओं के विश्लेषण में जहाँ भाषा के सहज रूप तो वहीं विचारों व स्थितियों के विश्लेषण में भाषा के गंभीर रूप दिखाई देते हैं। इसमें भावाभिव्यक्ति के अनुसार अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी व स्थानीय आँचलिक शब्दों का प्रयोग भी काफी किया जाता है। "यात्रा साहित्य की भाषा में विषयानुरूप परिवर्तन भी लक्षित होता है। सामान्य घटनाओं के वर्णनों में बोलचाल की भाषा की सहजता, प्रकृति या भावात्मक क्षणों के वर्णन में कलात्मक, दृश्यों के मूर्तिकरण में चित्रात्मक और बिम्बधर्मिता, विचारों की अभिव्यक्ति में गांभीर्य तथा स्थितियों के विश्लेषण में भाषा का प्रौढ़, प्रांजल और बोधगम्य रूप दिखाई पड़ता है।"[68] इस तरह यात्रा साहित्य में बाह्य परिवेश, प्रकृति, वातावरण के चित्रण में भाषा के कलात्मक, चित्रात्मक और बिम्बात्मक रूप के दर्शन सहज रूप से दिखाई देते हैं।

इसकी विषयवस्तु की तरह ही शैली का भी कोई एक स्वरूप निश्चित नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें लेखक के अनुसार विभिन्न परिवर्तन होते रहते हैं। यात्रा वृत्तांत की विभिन्न शैलियों को देखा जाए तो इसे निबन्ध शैली, वर्णनात्मक शैली, संस्मरण शैली, डायरी और पत्र शैली, काव्यात्मक शैली, आत्मकथा शैली, रेखाचित्र शैली, औपन्यासिक शैली व लोककथात्मक शैलियों में विभाजित किया जा सकता है। भारतेन्दु युग में जब यात्रा साहित्य की शुरुआत हुई तो सबसे पहले उसे निबन्ध विधा में ही रखा गया था। उसे अलग रूप में न मानकर यात्रा-निबन्ध के रूप में ही माना जाता था। यह निबन्ध की शैली आज भी यात्रा साहित्य में विद्यमान है। अधिकांश यात्रा साहित्य यात्रा से आने के बाद स्मृति के आधार पर लिखा जाता है जिससे उसमें संस्मरणात्मक शैली अपने आप आ जाती है। यात्रा में अपनी दिनचर्या को डायरी में लिखने की प्रवृत्ति के कारण उनमें डायरी शैली दिखाई देती है। इसमें यात्रा के दौरान घटनाओं और तथ्यों का तिथिवार क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इसमें घटनाओं के विवरण लिखे हुए होने के कारण इस शैली के

[68] डॉ. हरि सिमरन कौर भुल्लर, 'समकालीन यात्रा-वृत्तों में सांस्कृतिक संदर्भ', पृ. 25

यात्रावृत्त अधिक विश्वसनीय होते हैं। चित्रात्मक शैली शब्दों के चित्रांकन के लिए यह सबसे उपयुक्त शैली है। इसमें यात्रा लेखक इस प्रकार वर्णन करता है जिससे प्रतीत होता है कि पढ़ने के साथ-साथ स्थान विशेष का चित्र आँखों के सामने प्रकट हो रहा है। लेखक के व्यक्तित्व और अभिरुचि के कारण अनेक लेखकों ने काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। लेखक यदि कवि है तो उसके यात्रा साहित्य में काव्यात्मकता का पुट मिलना स्वाभाविक है। इस तरह यात्रा साहित्य में लेखक के व्यक्तित्व एवं आवश्यकता के अनुसार विविध शैलियों का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार यात्रा साहित्य की विषय वस्तु विचार-संकुल, क्लिष्ट एवं दुर्बोध नहीं होती इसलिए इसके लिए अधिक कठिन व दुरूह भाषा शैली की आवश्यकता नहीं होती बल्कि भावानुकूल, सीधी, सरल भाषा शैली ही उपयुक्त रहती है। जिससे विषय वस्तु सजीव हो उठे।

निष्कर्ष :-

सम्पूर्ण अध्याय को सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि मनुष्य की प्रवृत्ति बचपन हो या युवावस्था सदैव ही घुम्मकड़ी रही है। आदिम युग में मानव की भ्रमणवृति अधिक उद्देश्यपूर्ण थी लेकिन कालान्तर में जीवन-जगत के विस्तृत वैचित्र्य, वैभिन्न्य आदि का आकर्षण मनुष्य की घुमक्कड़ी प्रवृत्ति का प्रमुख कारण बना जिसके कारण उसकी यह यायावरी प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई है।

यायावरी प्रवृत्ति को पूर्णता प्रदान करने में यायावर की भ्रमण यात्रा में जो भी पात्र और विचार सम्पर्क में आते हैं, वे मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं और इन्हीं मानस पटल के विचारों को जब लिपिबद्ध किया जाता है तो वहीं से यात्रा साहित्य का जन्म होता है। अर्थात् कोई भी व्यक्ति यात्रा की यात्रानुभूतियों को जब कलात्मक रूप देकर संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है तो उसे यात्रा साहित्य कहा जाता है। यात्रा-वृत्तांत केवल देखे गए स्थानों का विवरण मात्र नहीं है अपितु इसमें यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों, स्थलों, भवनों, भोगी हुई घटनाओं एवं उससे सम्बन्धित अनुभूतियों को कल्पना एवं भाव-प्रवणता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

यात्रा शब्द का अर्थ है- एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना व स्थान परिवर्तन करना। यह स्थान परिवर्तन विभिन्न उद्देश्यों के लिए हो सकता है। इसे विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न तरह से अभिव्यक्त किया है। वृहद् हिन्दी कोश में यात्रा के उद्देश्यों को आधार बना कर युद्ध यात्रा, तीर्थयात्रा, जीवन निर्वाह शब्दों का प्रयोग किया गया है। हरदेव बाहरी ने प्रस्थान व देव मंदिर पूजन, दर्शन को यात्रा माना है। नागेन्द्र नाथ बासु ने भी तीर्थयात्रा शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार सभी की परिभाषाओं में धार्मिक यात्रा का उल्लेख मुख्य रूप से किया गया है।

यात्रा मानव की मूलभूत क्रियाओं में से एक है जिसके कारण आरंभिक काल से ही मनुष्य की यात्रा के दृष्टांत मिलते हैं। यात्रा और मानव जाति का बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है। मनुष्य के जन्म के साथ ही उसकी यात्रा प्रारम्भ हो जाती है और फिर वह जीवन भर चलती रहती है। यात्रा मनुष्य की प्रगति का सोपान है। यह उसके जीवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। यात्रा के कारण ही व्यक्ति अपने स्वार्थ, देशकाल के बन्धन, जाति, धर्म आदि संकुचित सीमाओं से ऊपर उठकर व्यापक, विस्तृत ह्रदय और उदार दृष्टि से जीवन और जगत का साक्षात्कार करता है। यात्रा से मनुष्य को बाह्य जगत के साथ-साथ आंतरिक जगत को जानने का भी मौका मिलता है। प्रारम्भिक काल से ही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक जैसे विविध उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए यात्राएँ की जाती रही हैं।

यात्रा साहित्य के तत्वों और उद्देश्यों की बात की जाए तो कहा जा सकता है कि यात्रा साहित्य वास्तविकता से जुड़ी हुई विधा है जिसमें अनुभूति की सच्चाई को प्रमुखता दी जाती है। इसमें कल्पना को अधिक महत्व नहीं दिया जाता, क्योंकि लेखक अपनी यात्रा के वृत्तांतों में प्रत्यक्ष अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। बिना कहीं जाए, बिना किसी प्रत्यक्ष अनुभव के यात्रा साहित्य नहीं लिखा जा सकता। नाटक, निबन्ध, कहानी, उपन्यास सभी विधाएँ जीवनानुभव और काल्पनिकता के बल पर एक जगह बैठकर लिखी जा सकती हैं लेकिन यात्रा साहित्य लेखन के लिए घुमक्कड़ होना बहुत जरूरी है। जब तक लेखक घर से बाहर निकलकर अपने प्रत्यक्ष अनुभव, सुख-दुःख, सम्मान-अपमान, भोगे गये जीवनानुभव प्रस्तुत नहीं करता है, तब तक उसका एक जगह बैठकर लिखा हुआ यात्रा वर्णन, यात्रा-साहित्य नहीं कहला सकता। बिना यात्रा के किया गया वर्णन

केवल ऊपरी, सतही वर्णन है। यात्रा साहित्य में लेखक के बाह्य और आतंरिक दोनों पक्षों को अभिव्यक्त किया जाता है।

उपन्यास व कहानी के तत्वों में जहाँ कथावस्तु को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है वहीं यात्रा साहित्य में कथावस्तु का स्थान सौन्दर्य वस्तु ले लेती है जिसे यात्रा साहित्य में सबसे अधिक प्रमुखता दी जाती है। यदि कोई यात्रा के लिए बाहर जाता है तो उसमें सौन्दर्य के प्रति एक सहज आकर्षण होता है। समाज का सौन्दर्य, स्थान विशेष की विशिष्टता, भाषा, संस्कार, सभ्यता, संस्कृति, प्रकृति सभी के सौन्दर्य का चित्रण यात्रा साहित्य में किया जाता है। इनमें से सबसे अधिक आकर्षित प्रकृति सौन्दर्य करता है।

यात्रा-साहित्य का उद्देश्य बहुआयामी होता है। इसमें व्यष्टि से समष्टि तक जीवन के अनेक रूप एक साथ मुखर होते हैं। यात्राएँ कभी ज्ञान प्राप्ति के लिए तो कभी आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के लिए निरन्तर की जाती हैं। आज की तनाव भरी जिन्दगी में तो यात्रा का बहुत बड़ा महत्व है। यात्राओं से सांस्कृतिक समन्वय स्थापित किया जाता है। यह एक ऐसी शक्तिशाली धरोहर है जिसके माध्यम से विभिन्न देशों के जन और संस्कृतियों का बोध हमें होता है।

भाषा-शैली का तत्व सभी विधाओं में समान रूप से विद्यमान रहता है। इस तत्व का सम्बन्ध कला-पक्ष से है। यात्रा साहित्य में भाषा-शैली में सरलता को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है, अतः अधिक क्लिष्ट व अलंकृत शब्दावली का प्रयोग इसमें नहीं करना चाहिए।

यात्रा साहित्य के महत्व की दृष्टि से अगर देखें तो यात्राएँ मनुष्य के जीवन को पूर्णता तथा दृष्टिगत व्यापकता प्रदान करती है। व्यक्ति की थकान को दूर करके उसमें नवीन स्फूर्ति पैदा करती है। इससे व्यक्ति के मन का विकास होता है और दूसरे मनुष्य व प्राणियों को समझने का भाव आता है। इस प्रकार यात्राओं द्वारा लोक कल्याण की भावना प्रबल होती है। यात्रियों के मन में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति एक उत्कट इच्छा होती है। विविध प्राकृतिक सौन्दर्यों और विविध संस्कृतियों को देखने-परखने से मनुष्य की संवेदना शक्ति में बढ़ाव आता है। ज्ञानवर्द्धन व अनुभव-संचय भी इसका एक उद्देश्य है।

प्रारम्भ में मनुष्य अपने व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए समुद्र और स्थल मार्ग से दूर देश की यात्राएँ करता था परन्तु धीरे-धीरे ये यात्राएँ व्यापार के साथ-साथ मनोरंजन, ज्ञानार्जन आदि अनेक उद्देश्यों के लिए भी की जाने लगीं। प्राचीनकाल में धर्म का अधिक महत्व होने के कारण तीर्थ यात्राएँ अधिक की जाती थीं लेकिन वर्तमान समय में इसका दायरा व्यापक हुआ है और विभिन्न उद्देश्यों से यात्राएँ की जाने लगी हैं, जैसे:- सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि। इन यात्राओं का उल्लेख करने के लिए यात्रा के वृत्तांत लिखे जाते थे। इस प्रकार यात्राओं का इतिहास काफी पुराना है लेकिन हिन्दी साहित्य में यात्रा साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु पूर्व युग में हस्तलिखित ग्रन्थों से देखने को मिलता है।

हिन्दी यात्रा साहित्य के सर्वप्रथम हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा लिखित 'वनयात्रा' को माना जाता है, जिसमें 44 पृष्ठों में विट्ठलनाथ जी ने ब्रज के विभिन्न दृश्यों को भक्ति भाव से प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु युग से पूर्व रचित इन सभी ग्रन्थों से हिन्दी यात्रा साहित्य की आरम्भिक अवस्था का ही पता चलता है। इस युग के अधिकतर हस्तलिखित ग्रन्थ धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर लिखे गये हैं जिनमें अधिकांशत: धार्मिक भावनाओं व तीर्थ यात्राओं की प्रचुरता दिखाई देती है।

द्विवेदी युग में पुस्तक के रूप में भी अनेक यात्रा वृतान्तों का प्रकाशन हुआ। द्विवेदीयुगीन यात्रा साहित्य में अधिकतर निबन्धात्मक शैली का ही प्रयोग किया गया है। साथ ही इसमें धार्मिक व देशी यात्राओं के साथ-साथ विदेशी यात्राओं की भी प्रधानता रही। इस युग के प्रमुख यात्रा साहित्यकार ठाकुर गदाधर सिंह, बाबू देवीप्रसाद खत्री, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, शिवप्रसाद गुप्त आदि हैं। इन्होंने स्वदेश यात्रा में धार्मिक यात्रा से सम्बन्धित और विदेश यात्राओं में लन्दन, चीन, अमेरिका, जापान, श्रीलंका, रूस आदि देशों की यात्राओं का वर्णन किया है।

छायावाद युग में तीर्थयात्राओं को अधिक महत्व न देकर विदेश यात्राओं की प्रमुखता देखने को मिलती है। इस युग में यात्रा-शैलियों की विविधता और उत्कृष्टता के कारण सुरेन्द्र माथुर ने इस काल को यात्रा-साहित्य का स्वर्ण-युग कहा है। इस युग में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से यात्रा साहित्य निरन्तर प्रकाश में आ रहा था और एक लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित विधा के रूप में

प्रतिस्थापित भी हो चुका था। राहुल सांकृत्यायन का आगमन इसी युग में हुआ और सत्यदेव परिव्राजक का भी अधिकांश साहित्य इसी युग में लिखा गया। इस युग में विदेश यात्राओं को प्रमुखता दी गई और उसमें भी यूरोप की यात्राएँ अधिक की गईं। इस युग के यात्रा-साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवेशों का वैविध्य सुन्दर और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

समकालीन यात्रा साहित्य को देखें तो आज हिन्दी यात्रा साहित्य बहुत वैविध्यपूर्ण और समृद्ध हो चुका है। उसमें वस्तु वर्णन, दृश्यांकन, बिम्ब-विधान और मन:स्थितियों के सूक्ष्म रेखांकन की क्षमता बहुत बढ़ी है। भारतेन्दु युग के यात्रा वृत्तांत निबन्धों की तरह ही थे जिनसे केवल लेखक के स्वभाव और रुचि का परिचय और स्थान विशेष की जानकारी प्राप्त होती थी किन्तु आज हम यात्रा वृत्तान्तों के माध्यम से वस्तुओं, व्यक्तियों और स्थितियों के बाह्य बिम्ब विधान के साथ-साथ लेखक के अन्तर्जगत का भी पूरा साक्षात्कार कर सकते हैं।

अन्य गद्य विधाओं के साथ इसके सम्बन्ध को अगर देखा जाए तो यात्रा साहित्य एक महत्वपूर्ण विधा ठहरती है। इसका आरम्भ निबन्धों से हुआ था लेकिन आज यह स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिस्थापित हो चुकी है; फिर भी इसमें निबन्ध, संस्मरण, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, डायरी, पत्र साहित्य आदि अन्य गद्य विधाओं का वैशिष्ट्य न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त होता हैं।

यात्रा साहित्य के योगदान को देखा जाए तो सबसे पहले इसका धार्मिक योगदान दिखाई देता है क्योंकि यात्रा साहित्य की शुरुआत ही धार्मिक यात्राओं से हुई है। अधिकांश आरम्भिक यात्रा साहित्य धार्मिक स्थानों से सम्बन्धित हैं। धार्मिकता से सम्बन्धित यात्रा साहित्य में धर्म से जुड़ी मान्यताओं, मिथक कथाओं, धार्मिक रूढ़ियों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि की जानकारी मिलती है। हिन्दी साहित्य में यात्रा साहित्य का साहित्यिक योगदान भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें अनेक यात्रा ग्रंथकारों ने अनेक यात्रा वृत्त लिखकर अपना साहित्यिक योगदान दिया है। यात्रा साहित्य का बौद्धिक योगदान भी है क्योंकि यात्रा साहित्य की प्रत्येक कृति कोई न कोई जानकारी अवश्य देती है जिससे ज्ञान में वृद्धि होती है। तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध कराने में भी यात्रा साहित्य का महत्पूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य में सामाजिक एवं सांस्कृतिक योगदान में भी यात्रा

साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यात्रा साहित्य में विभिन्न देशों के समाज, संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज सभी की जानकारी प्राप्त होती है। यात्रा साहित्य एक ऐसी विधा है जिसमें किसी भी समाज और संस्कृति को यथार्थ रूप में देखने का अवसर मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन, औरन्गाबाद, पृ. सं. 11
2. वामन शिवराम आप्टे, 'संस्कृत-हिन्दी कोश', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 835
3. सं. नागेन्द्रनाथ बसु, 'हिन्दी विश्वकोश', भाग-18, बी.आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, दिल्ली, पृ. 630
4. संगीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त'(2016), अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं. 12
5. डॉ. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ.सं. 32
6. संपादक धर्मेन्द्र गुप्त एवं बन्धु, 'विपिनचंद्र पद्मचन्द्र कोश शब्द यात्रा', पृ. सं. 402
7. श्यामसिंह शशि, लेख 'यायावर साहित्यशास्त्र', पृ. 13
8. शिवप्रसाद तिवारी, 'विश्व पर्यटन और यात्रा उद्योग', पृ. 7
9. राहुल सांकृत्यायन, 'घुमक्कड़-शास्त्र', पृ. 39
10. डॉ. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', पृ. सं. 16
11. प्रतापपाल शर्मा, 'हिंदी का आधुनिक यात्रा साहित्य', पृ. 44
12. बी. आर. धापसे, 'हिंदी का यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 14
13. राहुल सांकृत्यायन, 'घुमक्कड़शास्त्र', पृ. 8
14. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', पृ. 40
15. वही, पृ. 35
16. मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ. 14
17. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', पृ. 41-42
18. बी.आर धापसे,'हिंदी का यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 16
19. मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ. 20
20. सत्यदेव परिव्राजक, 'यात्री-मित्र', पृ. 34
21. डॉ. बी.आर धापसे,'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 20
22. हरिमोहन कौर भुल्लर, 'हिन्दी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक संदर्भ', पृ. 21
23. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', ओम प्रकाशन, दिल्ली पृ. सं. 36
24. वही, पृ.सं. 35
25. गजानन माधव मुक्तिबोध, 'भारत इतिहास और संस्कृति', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ.सं. 65
26. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. सं. 36
27. गजानन माधव मुक्तिबोध, 'भारत, इतिहास और संस्कृति', पृ. सं. 65
28. डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 32
29. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 37
30. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'हिन्दी साहित्य एवं संवेदना का विकास', पृ. 166
31. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', ओम प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 41
32. सुनीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त'(2016), अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 22
33. डॉ. नगेन्द्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 468
34. प्रतापपाल शर्मा, 'हिंदी का आधुनिक यात्रा साहित्य', पृ. 13-14
35. डॉ. बी.आर. धापसे, हिन्दी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार', पृ. 36
36. विश्मोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', ओम प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 48
37. सुनीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त'(2016), अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 25

38. सं. नगेन्द्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 509
39. अरुणेंद्र नाथ वर्मा, 'यात्रा-वृत्त : संकट एवं चुनौतियाँ', समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2017, पृ. 195
40. विश्वमोहन तिवारी,'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', ओम प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 59
41. सुनीता पी.,'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिन्दी यात्रावृत्त', पृ. 26
42. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', ओम प्रकाशन, दिल्ली पृ. सं. 51
43. वही, पृ. 86
44. डॉ. जे. आत्माराम, 'अज्ञेय की सांस्कृतिक दृष्टि और अरे यायावर रहेगा याद', अपनी माटी पत्रिका
45. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 87
46. रामचंद्र तिवारी, 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास', पृ. 259
47. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 93
48. वही, पृ. 93
49. वही, पृ. 97
50. मृदुला गर्ग, 'कुछ अटके कुछ भटके', पृ. 13
51. डॉ. सुमित्रा शर्मा, 'संस्कृति प्रवाह-दर-प्रवाह', पृ. 11
52. गरिमा श्रीवास्तव, 'देह ही देश', पृ. फ्लैप पेज
53. रामचंद्र तिवारी, 'हिंदी का गद्‌य साहित्य', पृ. 415
54. डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन, औरंगाबाद, पृ. 21
55. वही, पृ. 25
56. डॉ. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास', विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ. 57
57. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ.सं. 16
58. डॉ. बी.आर. धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन, औरंगाबाद, पृ. सं. 25
59. मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ. सं. 23
60. वही, पृ. 24-25
61. इरेश स्वामी, 'हिंदी का स्वातंत्र्यप्रप्त्युत्तर यात्रा साहित्य', पृ. 54
62. डॉ. संगीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त', पृ. 18
63. मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य : स्वरूप और विकास', पृ. 25
64. डॉ. बी. आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन', औरन्गाबाद, पृ. सं 23
65. वही, पृ. 135
66. वही, पृ. 135
67. वही, पृ. 138
68. डॉ. हरि सिमरन कौर भुल्लर, 'समकालीन यात्रा-वृत्तों में सांस्कृतिक संदर्भ', पृ. 25

द्वितीय अध्याय : संस्कृति की अवधारणा और स्वरूप

2.1 संस्कृति का कोशगत अर्थ एवं स्वरूप

2.2 भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार संस्कृति की परिभाषा

2.3 भारतीय संस्कृति के आधारभूत अभिलक्षण

2.4 संस्कृति के अध्येता और उनकी वैचारिकी का विकास

2.5 संस्कृति और समाज का अंतर्संबंध

2.6 साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध

2.7 धर्म और संस्कृति

2.8 कला और संस्कृति

2.9 संस्कार और संस्कृति

2.10 सभ्यता और संस्कृति

2.11 परम्परा, इतिहास और संस्कृति

2.12 संस्कृति का बदलता हुआ संदर्भ

2.13 विदेशों में भारतीय संस्कृति

2.1 संस्कृति का कोशगत अर्थ एवं स्वरूप :-

शोध विषय सांस्कृतिक अध्ययन से सम्बंधित होने के कारण संस्कृति संबंधी अवधारणा को समझना बहुत जरूरी हो जाता है इसीलिए इस अध्याय में संस्कृति के विविध पक्षों को देखने का प्रयास किया गया है। संस्कृति को अगर देखा जाए तो यह एक व्यापक सागर एवं अमूर्त अवधारणा है जिसे वैज्ञानिक पदों की तरह परिभाषा में बाँधना उचित प्रतीत नहीं होता। यह एक उलझन भरा प्रश्न है। जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिक मूल्य, मानव व्यवहार एवं आदतों को शामिल किया जाता है। इसीलिए समाज के अन्दर होने वाले सभी कार्यकलापों को संस्कृति के अंतर्गत समाहित करके देखा जा सकता हैं।

व्युत्पत्तिपरक अर्थ के दृष्टिकोण से देखा जाए तो 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम' उपसर्ग के साथ संस्कृत के 'कृ' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होती है। जिसका अर्थ है परिष्कार, परिमार्जन, संशोधन करना अथवा सुन्दर या पूर्ण बनाना। इसके अनुसार मनुष्य अपने को पूर्ण बनाने के लिए जो चेष्ठायें करता है वे सभी इसके अंतर्गत समाहित है। बहुत-सी बार सुरुचि और शिष्ट व्यवहार के लिए भी संस्कृति शब्द का प्रयोग किया जाता है। संस्कृति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'कल्चर' शब्द का समानार्थी माना जाता है। अंग्रेजी के 'कल्चर' शब्द की उत्पत्ति लैटिन के 'कोलर' शब्द से हुई हैं। जिसका अर्थ है पूजा करना। 'कल्टुरा' और 'कल्चुरा' शब्द का अर्थ जोतना, तहजीब, शिष्टता, कृषि, खेती, काश्त, उत्पादन, पालन, तरक्की आदि से हैं। यूरोप में 19 वीं शताब्दी तक आते-आते इस शब्द का प्रयोग उच्च वर्ग की आदतों, रीति-रिवाजों तथा पसंद-नापसंद के पर्याय में होने लगा था।

मुख्यतः संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य और समाज से है। मनुष्य समाज में रहने वाला एक सामाजिक प्राणी है जो सामूहिक रूप से अपनी उन्नति और समृद्धि के लिए प्रयास करता रहता है। बाह्य उन्नति के साथ-साथ वह आंतरिक रूप से भी जीवन को अधिक सरस और सौन्दर्यमय बनाने का प्रयत्न करता है। इसके लिए वह कला, संगीत और साहित्य का अनुसरण करता है। इसी विचार और कर्म के क्षेत्र में सृजन के कारण ही उसकी एक संस्कृति है। मानव समाज से सम्बंधित होने के कारण संस्कृति मनुष्य के अंत: और बाह्य सभी रूपों को प्रकट करती है इसका सम्बन्ध एक ओर

जहाँ मनुष्य के लौकिक अभ्युदय से है तो वही दूसरी तरफ मनुष्य के चिंतन-मनन, धर्म, नीति, दर्शन जैसे आत्मतत्वों की पहचान करना भी इसकी परिधि में आता है। अगर देखा जाये तो मानव इसीलिए मानव है क्योंकि उसके पास अपनी एक संस्कृति है। इसी समाज और संस्कृति की वजह से मनुष्य पशु समाज से इतर अपना अलग अस्तित्व रखता है। यदि मानव से उसकी संस्कृति ले ली जाये तो वह पशुतुल्य हो जायेगा। इस संस्कृति के आधार पर ही एक समाज को दूसरे समाज से अलग कर सकते हैं।

अगर सम्पूर्ण विश्व में देखा जाये तो मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी शारीरिक विशेषताओं व बौद्धिक विकास के कारण संस्कृति का विकास कर पाया है। प्रारंभ में मनुष्य भी अन्य सभी पशुओं और जीव-जंतुओं की तरह जंगलों में घूमता रहता था। न उसके पास अपना घर था ना ही पहनने के लिए कपड़े। भूख को शांत करने के लिए कंद-मूल और कच्चा मांस खाकर पेट भरता था। प्रतिकूल परिस्थतियों में भी आदिम मानव-जातियाँ और उनके कबीले जीवन-निर्वाह के लिए कंद-मूल-फल खाते थे या पशु-पक्षियों का शिकार करके उनका नरम मांस कच्चा खाते थे। उनके पास औजार सिर्फ पत्थरों के होते थे। वो भी भद्दे, खुरदरे और मोटे हुआ करते थे। जंगली जानवरों से बचने के लिए वह लकड़ी के छोटे-मोटे अस्त्र भी काम में लेता था। लेकिन धीरे-धीरे उसने बुद्धि का प्रयोग करके अपने प्रस्तर-अस्त्रों को घिस-घिसकर ज्यादा चिकना, सुघड़ और चमकदार बनाने का प्रयास किया। जिसमें उसने पत्थरों को आपस में रगड़ कर भी देखा। रगड़ने से आग की चिंगारियाँ निकली जिससे सूखे पत्तों पर गिराकर आग तैयार की। आग का अविष्कार होने पर वह कच्चे मांस को पकाकर खाने लगा। आग को जलाकर प्रकाश करने लगा व सर्दियों में आग जलाकर गर्मी प्राप्त की। पशुपालन और कृषि कार्य भी करने लगा और धूप, बारिश से बचने के लिए घास-फूस के मकान बनाकर रहने लगा। मनुष्य ने अपने जीवन को और अधिक सम्पन्न बनाने का प्रयास किया और धीरे-धीरे आज मनुष्य उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गया है। भाषा, साहित्य, ललित कला, वास्तु कला, धर्म, विज्ञान सभी क्षेत्रों में उसने आश्चर्यजनक प्रगति की है। अपनी इसी प्रगति में मनुष्य ने अपनी सभ्यता और संस्कृति का भी विकास किया है। आज अगर मनुष्य से उसकी संस्कृति को अलग कर दिया जाये तो वह पशु के समान हो जायेगा।

मानव और पशु में मुख्य अंतर उनकी संस्कृति का ही है। संस्कृति के आधार पर ही मानव और पशु व भिन्न-भिन्न समूहों व समाज को एक-दूसरे से अलग कर सकते हैं। मनुष्य ने ही भौतिक क्षेत्र में सभ्यता और अभौतिक क्षेत्र में संस्कृति का विकास किया है। इसी संस्कृति के बल पर ही उसने अपनी बौद्धिक क्षमता का परिचय दिया और अपना अलग अस्तित्व कायम किया है। संस्कृति को अगर देखा जाए तो संस्कृति जिन्दगी जीने का एक तरीका है। मनुष्य का खाना खाने का ढंग, वेशभूषा पहनने का तरीका, बात करने का लहजा, जो कुछ सोचते हैं, करते हैं व उसका धर्म, दर्शन, कला, संगीत, विज्ञान सभी कुछ संस्कृति के ही विभिन्न पहलू है। मनुष्य और उसके समाज की सभी उपलब्धियों को सामूहिक रूप से संस्कृति कहा जाता है। इन सभी को विभाजित करने के लिए संस्कृति को मुख्य रूप से दो भागों भौतिक और अभौतिक में विभाजित करके देखा जा सकता है।

इस प्रकार मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है और बुद्धि ही मनुष्य की एक ऐसी शक्ति है जो उसे सभी प्राणियों से अलग करती है। इसी बुद्धि के बल पर मनुष्य ने भौतिक क्षेत्र में अपार उन्नति की है। प्रकृति द्वारा दिए गये प्रदार्थों, तत्वों और शक्तियों का उपयोग कर मनुष्य ने भौतिक क्षेत्र में जो असाधारण उन्नति की है, उसी को सभ्यता कहते हैं। इसी तरह मनुष्य बौद्धिक प्राणी होने के साथ-साथ सामाजिक प्राणी भी है। सामाजिक प्राणी होने के कारण वह कला, साहित्य, संगीत सभी का अनुसरण करता है। इसी अनुसरण की प्रवृत्ति के कारण मनुष्य ने विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन कार्य किया है उसे ही संस्कृति कहा जाता है। जिसमें प्रथा, परम्परा, त्योहार, आचार-विचार, रहन-सहन का तरीका आदि को समाहित किया जाता है। इस प्रकार भौतिक और अभौतिक रूपों में संस्कृति के अंत: और बाह्य तत्वों को विभाजित किया गया है। यह संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के पास निरंतर चलने वाली सतत् प्रक्रिया है। इस सतत् प्रक्रिया में समाज के सदस्य के रूप में एक व्यक्ति जो कुछ प्राप्त करता है उसी में घटा-बढ़ाकर वह अपनी अगली पीढ़ी को प्रदान करता है। जिससे संस्कृति के आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

2.2 भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार संस्कृति की परिभाषा :-

संस्कृति की सर्वमान्य परिभाषा क्या दी जाए और किन-किन तत्वों का समावेश इसके अंतर्गत किया जाये यह एक अत्यंत ही विवादास्पद और कठिन कार्य है क्योंकि संस्कृति का रूप इतना व्यापक और बहुआयामी है कि उसको सपाट शब्दों और एक परिभाषा में समाहित करना लगभग असंभव है। संस्कृति एक सापेक्ष्य शब्द है जिसे पृथक-पृथक रूपों में व्याख्यायित किया जा सकता है क्योंकि कोई भी संस्कृति एक जाति, प्रजाति एवं युग विशेष की धरोहर नहीं होती बल्कि वह तो सतत् प्रवाहमान रहती है जिसके कारण उसके मार्ग में आने वाले नवीन संपर्कों से वह विस्तार पाती है और उसका स्वरूप निखरता जाता है। किसी भी संस्कृति का आज जो स्वरूप है उसके निर्माण में पता नहीं कितने वर्षों, अनुभवों, भौतिक व भौतिकेतर तत्वों का योग रहा होगा। इसीलिए सम्पूर्ण समाज के विकास की व्यष्टिमयी और समष्टिमयी उपलब्धियाँ ही संस्कृति है।

संस्कृति को चित्रित एवं परिभाषित करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से अपने विचारों को प्रस्तुत किया है।

भारतीय विद्वानों के अनुसार :-

भारत में प्राचीनकाल से ही संस्कृति को अत्यधिक महत्व प्राप्त है। इसको लेकर विभिन्न विद्वानों ने अपने अलग-अलग मत भी अभिव्यक्त किये हैं।

वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भविष्य का सर्वांगपूर्ण प्रकार है, हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती, उसका मूर्तिमान रूप होता है। जीवन के नाना विविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।"[69]

डॉ. मदनगोपाल गुप्त के अनुसार "संस्कृति शब्द का तात्पर्य तीन अर्थों से स्पष्ट होता है- व्युत्पत्त्यर्थ, कोशगत अर्थ और व्यावहारिक अर्थ। व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृति का अर्थ परिष्कार और परिमार्जन की क्रिया अथवा सम्यक कृति है। संस्कृति को अंग्रेजी में 'कल्चर' शब्द का पर्याय भी माना जाता है, जहाँ प्रयोग की दृष्टि से संस्कृति शब्द प्राचीनकाल से वैदिक वांग्मय में प्रयुक्त

[69] बाबुराम, 'निबंधकार वासुदेवशरण अग्रवाल', पृ. 42-43

हुआ है, जबकि कल्चर का प्रयोग संस्कृति के अर्थ में अंग्रेजी साहित्य में सन् 1420 ई. में सर्वप्रथम मिलता है।"[70]

आबिद हुसैन अपनी पुस्तक 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति' में लिखते हैं कि "संस्कृति किसी एक समाज में पायी जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्ति की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, आचरण के साथ-साथ उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त होती है।"[71]

रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि "असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और वह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।"[72]

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के शब्दों में "मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग करके विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसे संस्कृति कहते हैं।"[73]

देवराज ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि "संस्कृति का तात्पर्य है व्यक्तित्व की विशेषताएँ जिनका उपयोग वांछित मूल्यों के प्रकाशन और उत्पादन से होता है।"[74] इसी तरह देवराज 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन' पुस्तक में भी कहते हैं कि "संस्कृति उन समस्त क्रियाओं को कहते हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने को विश्व की निरुपयोगी किन्तु अर्थवती छवियों से, फिर वे छवियाँ चाहे प्रत्यक्ष हों अथवा कल्पित, संबंधित करता है।"[75]

प्रभाकर क्षोत्रिय संस्कृति के संबंध में कहते हैं कि "मनुष्य ज्ञान के क्षेत्र में जो अर्जित करता है; विचार के क्षेत्र में जो चिंतन करता है; कर्म के क्षेत्र में जो घटित करता है; भाव के क्षेत्र में जो सृजित करता है; जीवन को सँवारने और उदात्त बनाने के जिस आचार सहिंता और मूल्य प्रणाली का विकास करता है; परिवेश और प्रकृति से जो संबंध स्थापित करता है; जो शील रचता है – सब संस्कृति में आते हैं।"[76]

---

70 बाबूराम, 'हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ. 93

71 आबिद हुसैन, 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति', पृ. 03

72 रामधारी सिंह 'दिनकर', 'संस्कृति भाषा और राष्ट्र', पृ. 13

73 डॉ. दिनेश मांडोत 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', पृ. 03

74 देवराज, 'भारतीय संस्कृति', पृ. सं. 20

75 देवराज, 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन', पृ. 173

76 प्रभाकर क्षोत्रिय, 'कालिदास में भारतीय संस्कृति', समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2010, पृ. 145

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्कृति किसी ढले-ढलाए रूप में मनुष्य को नहीं मिली है। जिससे इसे इसमें निहित विविध घटकों के अनुशीलन के बिना संपूर्णता से समझना मुश्किल है। इसमें धर्म, दर्शन, कलाएँ, साहित्य, मानव व्यवहार, आचार सभी तत्व विद्यमान हैं जो कि जीवन को संपूर्णता प्रदान करते हैं। इन्हीं सभी को समाहित करते हुए सभी विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार :-

संस्कृति अंग्रेजी भाषा के 'कल्चर' शब्द का पर्याय माना जाता है। सबसे पहले कल्चर शब्द का प्रयोग निबंधकार 'बेकन' ने किया था। अंग्रेजी भाषा के 'कल्चर' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'कोलर' से निष्पन्न 'कुल्टुरा' शब्द से हुई है। जिसका प्रयोग अंग्रेजी साहित्य में कृषि तथा पशुपालन के अर्थों में किया जाता था। इसी के आधार पर एग्रीकल्चर शब्द बना है व एग्रीकल्चर में जो धातु है वही कल्चर में है।

मैथ्यू अर्नाल्ड ने संस्कृति विषयक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "जीवनगत परिपूर्णता के प्रति प्रेम तथा उस परिपूर्णता का अध्ययन। परन्तु व्यक्ति समाज से एकाकी रहकर उक्त परिपूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकता।...अतएव यह एक सामाजिक भाव है तथा सांस्कृतिक मनुष्य समानता के सच्चे देवदूत हैं।"[77]

ई.बी. टायलर के अनुसार "संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।"[78] इस प्रकार टायलर ने उन सभी तत्वों को अपनी परिभाषा में समाहित किया है जिन्हें मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते प्राप्त करता है। संस्कृति एक सामाजिक विरासत है जो समाज द्वारा व्यक्ति को दी जाती है।

टी.एस. इलियट के अनुसार "शिष्ट व्यवहार, ज्ञानार्जन, कलाओं का सेवन आदि के अतिरिक्त किसी जाति अथवा राष्ट्र की वे समस्त क्रियाएँ और कार्य जो उसे विशिष्ट बनाते हैं,

---

[77] देवराज, 'भारतीय संस्कृति', पृ. 42

[78] विनय गुप्त, 'राम-कथा परंपरा और भारतीय संस्कृति', श्याम पब्लिशिंग हाउस, जालंधर, पृ. 08

उसकी संस्कृति के अंग है।"[79] इलियट ने अपनी परिभाषा में संस्कृति के विभिन्न अंगों के बारे में बताया है। वे संस्कृति की व्याख्या करते हुए उसके व्यक्त और अव्यक्त रूपों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "संस्कृति(कल्चर) का अर्थ है किसी एक स्थान में सामूहिक रूप में रहने वाले लोगों की जीवन-पद्धति। हमें इसके दर्शन उनकी कला और सामाजिक व्यवस्था, उनकी आदतों व रीति-रिवाजों, उनके धार्मिक तथा आध्यात्मिक विचारों में हो सकते हैं। हम अपनी सुविधा के लिए इन सभी को सम्मिलित रूप में संस्कृति कह देते हैं, किन्तु वस्तुतः ये स्वयं संस्कृति न होकर उसके विभिन्न अंग होते हैं। जिस प्रकार मनुष्य केवल अपने विभिन्न शरीरांगों का समूह मात्र नहीं होता है, अपितु इनके अतिरिक्त और भी कुछ होता है, उसी प्रकार रीति-रिवाज, रहन-सहन, कला-कौशल, धार्मिक आस्था-विश्वास आदि के समूहों के अतिरिक्त और कुछ भी होता है जिसे संस्कृति कहा जाता है।"[80]

मैकाईवर और पेज ने संस्कृति को सभ्यता के विपरीत रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने भौतिक संस्कृति को सभ्यता माना है। वे लिखते हैं कि "यह मूल्यों, शैलियों, भावात्मकताओं तथा बौद्धिक अभियानों का क्षेत्र है। इस तरह संस्कृति सभ्यता का बिलकुल प्रतिवाद है। वह हमारे रहने और सोचने के ढंगों में, दैनिक क्रिया-कलापों में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"[81]

रैडफिल्ड के शब्दों में "संस्कृति कला और उपकरणों में अभिव्यक्त परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है जो परम्परा के द्वारा संरक्षित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।"[82] वे संस्कृति के सम्बन्ध में और भी कहते हैं कि "संस्कृति वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसी वर्ग या श्रेणी में विचार, अनुभूति या क्रिया के सुसंस्कृत ढंग एक व्यक्ति से दूसरे तक और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संक्रांत किये जाते हैं।"[83]

---

[79] डॉ. दिनेश मांडोत 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.सं. 03

[80] डी.डी शर्मा, 'उत्तराखंड का लोकजीवन और लोकसंस्कृति'(2012), अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, पृ.सं. 184

[81] सच्चिदानंद त्रिपाठी, 'भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास'(2012), डी.पी. एस. पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, , पृ.सं. 95

[82] सच्चिदानंद त्रिपाठी, भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास', पृ.सं. 95

[83] वही. पृ. 43

डॉ. व्हाईट हेड के अनुसार "संस्कृति, मानसिक प्रयास, सौन्दर्य और मानवता की अनुभूति है।"[84]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी परिभाषा में विभिन्न पक्षों पर बल दिया है। वैसे अगर देखा जाये तो संस्कृति का क्षेत्र ही इतना व्यापक है कि उसको एक निश्चित परिभाषा के दायरे में नहीं समेटा जा सकता। सभी परिभाषाओं में संस्कृति के व्यापक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि विभिन्न विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत किये हैं। जिनमें काफी विभिन्नता देखने को मिलती है। सभी के विचारों को निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृति समाज में लोगों के जीवन-जीने के तरीकों को दिखाती है, जिनके अंतर्गत मूल्य, मानदंड, प्रथाएँ, वर्चस्व, विचार, दृष्टिकोण सभी सम्मिलित हैं। जिससे किसी राष्ट्र या जाति के आचार-विचार, रहन-सहन, कला, धर्म एवं अध्यात्म की अभिव्यंजना होती है।

2.3 भारतीय संस्कृति के आधारभूत अभिलक्षण :-

1. प्राचीनता और नवीनता
2. विविधता में एकता
3. आध्यात्मिकता
4. सयुंक्त परिवार एवं वर्णाश्रम व्यवस्था
5. धर्म और दर्शन
6. समन्वयशीलता

मानव ने अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों, भाषा, साहित्य और कला में अभूतपूर्व प्रगति की है और इस प्रगति का मूल कारण है उसका समाज और संस्कृति। जिसके कारण उसे हर बार एक नई शुरुआत नहीं करनी पड़ती है। समाज का सदस्य होने के नाते भाषा, लिपि, परम्पराएँ, रीति-रिवाज सब उसे अपने आप ही प्राप्त हो जाते हैं। इसमें अगर भारतीय संस्कृति को देखा जाए तो भारतीय

[84] ओमप्रकाश जोशी, 'विश्व की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति', पृ.सं. 04

संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध संस्कृतियों में से एक है। यह एक बहुपक्षीय संस्कृति है जो आदिकाल से ही अपने अस्तित्त्व को बनाये रखते हुए अजर-अमर बनी हुई है। इसमें मानव के बौद्धिक, सामाजिक, आध्यात्मिक सभी पक्ष शामिल हैं।

संस्कृति किसी भी समाज, देश, जाति व समुदाय की आत्मा होती है। जिसके द्वारा उसके संस्कारों, आदर्शों व जीवन-मूल्यों का बोध होता है और संस्कृति का मूल ये जीवन-मूल्य ही होते हैं। भारतीय संस्कृति को जानने व उसके परिज्ञान के लिए उसके मूलभूत तत्वों को जानना बहुत आवश्यक है। इन्हीं मूलभूत तत्वों ने सम्पूर्ण भारत वर्ष को एक सूत्र में बाँधकर रखा है। इसके प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं :-

प्राचीनता एवं नवीनता :-

भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। जो अद्यावधि जीवित जागृत है। विश्व के मानचित्र पर अगर देखा जाए तो विभिन्न देशों और जातियों में अनेक संस्कृतियों का उद्भव और विकास हुआ लेकिन समय के साथ-साथ वे नष्ट हो गई। उसमें से भारतीय संस्कृति कुछ ऐसे तत्वों पर अवलंबित है जिसके कारण उसने अनेक परिवर्तनों और उथल-पुथल के बावजूद अपने अस्तित्व को बनाये रखा है। इसीलिए भारतीय संस्कृति को विश्व की संस्कृतियों की जननी भी कहा जाता है। इसका मूल कारण है उसकी समन्वयशीलता और समायोजन की क्षमता। जिसके कारण यहाँ विभिन्न संस्कृतियों के लोग आये और उन सभी को भारतीय संस्कृति ने अपने अन्दर समाहित कर लिया और ये लोग और अन्य संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति का ही अंग बन कर रह गई। अगर देखा जाए तो पिछले तीन हजार वर्षों में शायद ही ऐसा कोई समय रहा हो जब भारत को यवनों और मलेच्छों ने न घेरा हो। इसके सम्बन्ध में निर्मल वर्मा लिखते हैं कि "पहले यूनानियों और हूणों ने, फिर इस्लाम और उसके ठीक बाद ईसाई मिशनरियों और यूरोपीय विजेताओं ने। भारतीय संस्कृति का अद्वितीय लक्षण यह नहीं है कि कैसे वह शताब्दियों से होने वाले निरंतर और हिंसक विदेशी घुसपैठों में जीवित रही आई, बल्कि यह है कि उनकी प्रभुसत्ता के बावजूद किस तरह अपने को अक्षत रख सकी।"[85]

[85] निर्मल वर्मा, 'भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र'(1991), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 43

सिन्धुघाटी क्षेत्र से प्राप्त अवशेषों को अगर देखा जाए तो भारतीय संस्कृति मेसापोटामिया के बाद मिश्र, यूनान, रोम, बेबीलोनिया जैसी संस्कृतियों से अधिक प्राचीन या उनकी समकालीन मानी जा सकती है। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो सभ्यता में हुए उत्खनन से प्रमाणित होता है कि विश्व की अनेक संस्कृतियों के नष्ट होने के बावजूद भारतीय संस्कृति विविध घात-प्रतिघातों को सहते हुए आज भी जीवित है।

जिसने भी भारतीय संस्कृति को जानने की कोशिश की है वह इसकी ओर सहज ही आकर्षित हुआ है। इसके कुछ मूलभूत तत्व है जो इसे अक्षुण्ण रखे हुए हैं। आत्मज्ञान, मोक्ष जैसे अविनाशी तत्वों पर आधारित होने के कारण यह संस्कृति अनवरत और अविरल गति से प्रवाहमान है। प्राचीनकाल से चले आ रहे यज्ञ, हवन, मंत्र आज भी ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित किये जाते हैं तो उसी तरह वेद, रामायण, महाभारत, गीता के उपदेश भी उसी रूप में अपनाये जा रहे हैं। बुद्ध के अहिंसा और शांति के उपदेश आज भी जीवित है। "भारतीय संस्कृति की सम्मिश्रण, एकीकरण और समन्वय की रचनात्मक प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप इसमें विविध पुनीत धाराओं का अलौकिक समागम संभव हो सका है। जीव और ब्रह्मा, आत्मा और परमात्मा, लौकिक और अलौकिक, योग और भोग, कामना और साधना, ग्रहण और त्याग, गृहस्थ और संन्यास साधना के प्रतीक हैं।"[86] यह दीर्घजीविता ही भारतीय संस्कृति का प्रमुख गुण है, जिसके कारण कई बदलावों व उथल-पुथल के बावजूद शुरू से लेकर आज तक यह निरंतरता को बनाए हुए हैं।

इस निरंतरता के साथ-साथ परिवर्तन भी भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। जिससे इसके लम्बे इतिहास में कई परिवर्तन हुए है। हिन्दू, बौद्ध, जैन धर्मों में प्रवर्तन, नवजागरण, आधुनिकता व भौतिकतावाद के कारण भारतीय संस्कृति में कई क्रांतिकारी परिवर्तन हुए है लेकिन फिर भी भारतीय संस्कृति इन सभी को अपने में समाहित करते हुए निरंतर आगे बढ़ रही है।

विविधता में एकता :-

भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है जो कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ है। इसके उत्तर में बर्फ से ढका पर्वतराज हिमालय है तो पश्चिमोत्तर में हिन्दुकश जैसी पर्वत

---

[86] डॉ. दिनेश मांडोत, 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 05

श्रेणियाँ है। पूर्व में भारत घने जंगलों व नागा, पतकुई, आराकन जैसे पर्वतों के कारण दुर्गम है। इसमें एक ओर जहाँ देश के पूर्वी क्षेत्रों में वर्षा की अधिकता के कारण बाढ़ की स्थितियाँ बनी रहती है, वहीं पश्चिम में राजस्थान में विशाल थार का रेगिस्थान है। इसी भौगोलिक विविधता की तरह यहाँ जलवायु में भी विविधता पाई जाती है। उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में शीत है तो वही सम्पूर्ण भारत में भूमध्य रेखा के पास स्थित होने के कारण उष्ण जलवायु पाई जाती है। इस देश में विभिन्न भाषाएँ है, खान-पान में भिन्नता है, रीति-रिवाज, परिधानों में वैषम्य है। नृत्य व गीतों में भी पर्याप्त विविधता है।

भारतीय संस्कृति के स्वरूप को समझने के लिए उसकी विविधताओं के नीचे छिपी एकता को देखना बहुत जरूरी है। भारतीय संस्कृति में जो विविधताएँ विद्यमान है वे ऊपरी तौर पर ही है। उनमें गहराई से देखा जाए तो एकता की झलक दिखाई देती है। यह एकता जीवन की एकरूपता में एकीकरण के अवयवों में विद्यमान है। विभिन्नताएँ होने के बावजूद सांस्कृतिक ऐक्य सर्वत्र विद्यमान है। भाषा, धर्म, रीति-रिवाजों की विविधता के भीतर आश्चर्यचकित कर देने वाली एकरूपता दिखाई देती है। यहाँ विभिन्न प्रकार के धर्म, रीति-रिवाज, खानपान, वेशभूषा और भाषाएँ प्रचलित है। जिनके मूल में व्याप्त एकता को इस प्रकार से देखा जा सकता है -

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है और यहाँ विभिन्न जाति, धर्म, समुदाय तथा विभिन्न भाषा बोलने वाले लोग रहते हैं। भारत में बोली जाने वाली भाषाओं और साहित्य ने सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने में अपना विशेष योगदान दिया है। यहाँ तमिल, तेलगु, कोंकणी, असमिया, बंगाली जैसी 18 भाषाएँ एवं अनेक बोलियाँ व उपबोलियाँ बोली जाती हैं; लेकिन भाषाई विविधता के होते हुए भी सभी भाषाओं में एकरूपता पाई जाती है और सभी भाषाओं को आपस में जोड़ने व समन्वय स्थापित करने के लिए हिंदी भाषा को राजभाषा के रूप में भी अपनाया गया है। "भारत में बोली जाने वाली भाषाओं की बड़ी संख्या ने यहाँ की संस्कृति और पारस्परिक विविधता को बढ़ाया है। 1000 भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें 10,000 से ज्यादा लोगों के समूह द्वारा बोला जाता है जबकि कई ऐसी भाषाएँ भी हैं जिन्हें 10,000 से कम लोग ही बोलते हैं। भारत में कुल मिलाकर 415 भाषाएँ

उपयोग में है। भारतीय संविधान ने संघ सरकार के संचार के लिए हिंदी और अंग्रेजी इन दो भाषाओं के इस्तेमाल को आधिकारिक भाषा घोषित किया है।"[87]

सांस्कृतिक दृष्टि से अगर देखा जाये तो सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की एकता प्राचीनकाल से ही सदृढ़ रही है। यहाँ संस्कृति के विविध सम्प्रदायों, जातियों, मान्यताओं और आध्यात्मिक साधना का समन्वय हैं। हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुस्लिम जैसे अनेक धर्मों को मानने वाले लोग यहाँ रहते हैं लेकिन फिर भी सभी धर्मों के दार्शनिक एवं नैतिक सिद्धांतों में समानता पायी जाती है। राधाकुमुद मुखर्जी ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है कि "भारत को मतों और पंथों, प्रथाओं तथा संस्कृतियों, धर्मों एवं भाषाओं, विविध जातियों तथा सामाजिक संस्थाओं का अजायबघर कहा जा सकता है, किन्तु यह मृतक वस्तुओं तथा भौतिक प्रदार्थों का नहीं, बल्कि जीवित सम्प्रदायों एवं आध्यात्मिक व्यवस्थाओं का अजायबघर है।"[88]

यहाँ भौगोलिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक दृष्टि से मौलिक एकता प्राचीनकाल से ही विद्यमान है। राजनीतिक एकता को अगर देखा जाए तो यहाँ प्राचीनकाल से ही राजनीतिक एकता के प्रयत्न होते रहे हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, हर्षवर्धन, अकबर जैसे सम्राटों ने बड़े भू-भाग पर विजय प्राप्त की और राजनैतिक एकता को बनाए रखा। इसमें सबसे अधिक योगदान अंग्रेजों ने दिया। आजादी के बाद एक संविधान, एक सरकार, एक प्रशासन है जो कि विविधताओं के बावजूद एकता को कायम किये हुए है। "हमारे देश में एक संविधान है, एक सरकार और एक प्रशासन है इसलिए हम एक है, वास्तव में भावात्मक और सांस्कृतिक एकता को उजागर न करके केवल ऊपरी राजनीतिक एकता को ही प्रमाणित करता है।"[89]

भारत में विभिन्न धर्म होने के बावजूद सभी धर्मों में समान विशेषताएँ देखने को मिलती है। संतों और फकीरों का सम्मान, पारिवारिक जीवन के आदर्श, स्त्रियों का सम्मान ये सभी धर्मों में देखे जा सकते हैं। सभी धर्मों में विभिन्नताएँ होने के बावजूद सभी धर्मों के लोग एक-दूसरे का सम्मान

[87] डॉ. चंद्रमोहन अग्रवाल, 'भारतीय संस्कृति की अस्मिता', राहुल पब्लिशिंग हाउस, उत्तरप्रदेश, पृ. 17
[88] डॉ. दिनेश मांडोत, 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 9
[89] विजय देवेश, 'सांस्कृतिक इतिहास एक तुलनात्मक सर्वेक्षण', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 24

करते हुए मिलकर रहते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति के बहिरंग में वैविध्य और अनेकता है परन्तु अन्तरैक्य ने वैविध्य को अपने अन्दर समाहित कर रखा है।

आध्यात्मिकता:-

भारतीय संस्कृति ने आध्यात्मिकता को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। जिसका मुख्य स्त्रोत धर्म, दार्शनिक चिंतन, उपनिषद एवं भक्ति की परम्पराएँ है। भारतीय संस्कृति में आत्मा को अधिक महत्व देकर मोक्ष की प्राप्ति को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य माना गया है। इस मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान, भक्ति व तपस्या को अपनाने के लिए कहा गया है। आध्यात्मिकता को समझने के लिए तीन बिन्दुओं को समझना बहुत जरूरी है। "बाह्य जगत से अधिक आत्मा या अंतर्मन को समझने की चेष्ठा; 2) कण-कण में एक ही अलौकिक तत्व की उपस्थिति कबूलते हुए पशु और मानव, जीव और प्रदार्थ तथा पाप और पुण्य को एक ही समभाव से देख पाना और 3) आध्यात्मिक तटस्थता और तप की तुलना में सांसारिक सुखों और संघर्षों को कम महत्व देना।"[90]

भारतीय संस्कृति तपोवनों की संस्कृति होने के कारण इसका विकास तपोवनों व आश्रमों में हुआ है। जिससे इसमें आध्यात्मिकता अधिक दिखाई देती है। उपनिषद, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सूफी मत व भक्त कवि सभी बाह्य जगत को मिथ्या मानते हैं व अंतरमन की शुद्धता पर बल देते है। इनका मूल धर्म और ईश्वर के प्रति निष्ठायुक्त श्रद्धा रखना है और यही भारतीय संस्कृति का मूल है।

भारतीय संस्कृति में भौतिक उपलब्धियों के बजाय आध्यात्मिक सत्य के बोध पर हमेशा से ही जोर दिया जाता रहा है। भौतिक मूल्यों को भी सिरे से ख़ारिज न करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे मूल्यों को सर्वोपरि माना गया है। जिसमें भारतीय वैराग्य भी दु:खों का उपदेश न देकर आनंद प्राप्ति के लिए व आत्मा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए किया जाने वाला प्रयास है।

संयुक्त परिवार एवं वर्णाश्रम व्यवस्था :-

प्राचीन भारत के पारिवारिक जीवन की आधारशिला संयुक्त परिवार प्रथा थी। यह परिवार प्रणाली भारतीय समाज और संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है। जिसमें सभी परिवार के सदस्य

[90] विजय देवेस, 'सांस्कृतिक इतिहास एक तुलनात्मक सर्वेक्षण', हिंदी माध्यम कार्यान्वियन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 30

एक साथ रहते हैं और परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति ही परिवार पर नियंत्रण रखता है। सभी का खानपान, रहन-सहन एक साथ इकट्ठा ही होता था। संयुक्त परिवार का एकता कायम रखने व भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है लेकिन आजकल समाज का ढांचा बिल्कुल बदल गया है। जिसमें स्वार्थ की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण सयुंक्त परिवार टूटकर एकल परिवार में बदलते जा रहे हैं। इसी तरह भारतीय संस्कृति में समाज को चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, क्षुद्र में बाँट कर वर्णाश्रम व्यवस्था को अपनाया गया हैं व जीवनयापन के लिए चार आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा संन्यास आश्रम की व्यवस्था की गई हैं।

धर्म और दर्शन :-

दर्शन एक अत्यंत ही व्यापक शब्द है जिसमें तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, समाजदर्शन, अध्यात्मविद्या सब आ जाते हैं। संस्कृति को समझने के लिए धर्म व दर्शन को जानना बहुत जरूरी है। धर्म के अंतर्गत ही दार्शनिक विवेचन को समझा जाता है। भारतीय संस्कृति में धर्म और दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ का हर पक्ष धर्म से प्रभावित रहा है। अनेक बार धर्म को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से नए विचारों, मतों और व्याख्याओं का भी सामना करना पड़ा है, किन्तु फिर भी धर्म सभी को अपने अंदर समाहित करते हुए निर्बाध गति से समाज और जीवन शैली को संचालित करता रहा है।

भारत का आदि धर्म हिन्दू रहा है, पर इसके अलावा भी यहाँ बौद्ध, जैन, सिख, ईसाई, इस्लाम, पारसी, जरथ्रुष्ट आदि अनेक धर्म प्रचलित हैं। यहाँ बाहर से अनेक धर्म आये जो भारत की समन्वयशीलता की प्रवृत्ति के कारण संस्कृति के अंग बन गये। ईसाई, पारसी, मुस्लिम ये सभी समय के साथ-साथ भारतीय संस्कृति में ही एकाकार हो गये। भारतीय संस्कृति में धर्म धार्मिक विश्वास, कर्मकांड व क्रियाविधि को न दिखाकर व्यापक जीवन पद्धति को प्रकट करता है। धर्म में ऐसे सिद्धांत आते हैं, जिनकी अनुभूति महापुरुषों को सत्य की खोज के दौरान हुई थी। इस संस्कृति में प्रवृत्ति मार्ग व निवृत्ति मार्ग तथा भौतिक व आध्यात्मिक दोनों पक्षों को शामिल किया गया है।

प्रकृति की शक्तियों को भी दैवीय मानकर पूजा जाता है। इंद्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि सभी को दैवीय रूप में पूजा जाता हैं। अवतारवाद को भी भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान दिया

गया। इसी तरह अधर्म का नाश करके धर्म की पुनर्स्थापना करने के लिए अनेक महापुरुषों ने अवतार धारण किया है। जिसमें मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध व कल्कि आदि अवतारों की कल्पना की गई हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं कि संस्कृति और दर्शन दोनों ही परस्पर अंतर्सम्बंधित है। किसी भी समाज का सांस्कृतिक विकास और दर्शन का विकास दोनों ही समानान्तर चलने वाली प्रक्रियाएँ है। भारतीय संस्कृति में विश्वबंधुत्व की परिकल्पना, सार्वभौमिक एकता, विश्व कल्याण की भावना ये सभी धर्म व दर्शन के परिणामस्वरूप ही है।

समन्वयशीलता :-

भारतीय संस्कृति में समन्वय करने व आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता है। इस संस्कृति के व्यापक होने की एक महत्वपूर्ण विशेषता यहीं हैं कि यह बाह्य तत्वों को अपने में समाहित करके परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित हो जाती है। भारत पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए और अनेक देशी और विदेशी आक्रान्ता यही बस गये। इस देश में अनेक जातियों के आने और उनके समाहित होना का प्रमाण मिलता है। आर्य, द्रविड़, नीग्रों, आष्ट्रिक, यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूण, मंगोल, कुषाण, पल्लव और मुस्लिम आक्रमण से आने वाले तुर्क सभी जातियों के लोग इस देश में आये और इसी में समाहित हो गए। इन सब बाह्य जातियों ने यहाँ राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया और अपने धर्मो का प्रचार-प्रसार भी किया परन्तु भारतीय संस्कृति ने सभी धर्मो में समन्वय स्थापित करते हुए सभी धर्मों को अपने में समन्वित कर लिया। "भारतीय संस्कृति की समिश्रण, एकीकरण और समन्वय की रचनात्मक प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप इसमें विविध पुनीत धाराओं का अलौकिक समागम संभव हो सका है। जीव और ब्रह्मा, आत्मा और परमात्मा, लौकिक और पारलौकिक, भोग और योग, कामना और साधना, ग्रहण और त्याग, गृहस्थ और संन्यास आदि समन्वय साधना के प्रतीक हैं।"[91]

[91] डॉ. दिनेश मांडोत, 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 8

भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, उदारता, ग्रहणशीलता के कारण समन्वयशीलता की प्रवृत्ति अधिक व्याप्त है। जिससे भारत में अरबों, तुर्कों, मुगलों व इस्लामी संस्कृति से अनेक तत्वों को ग्रहण किया गया। इसी तरह आर्यों व अनार्यों से भी इस संस्कृति ने बहुत कुछ अपनाया। लिंग-पूजा, वृक्ष पूजा, बलि प्रथा ये सभी आर्यों से अपनाया गया है। नवागन्तुक संस्कृतियों में जो बातें उन्हें अच्छी लगी उन्हें ग्रहण करने में भारतीय संस्कृति ने कभी संकोच नहीं किया। भारतीय संस्कृति ने सर्वदा समन्वय करने के सफल प्रयास किये हैं व विभिन्न विचारधाराओं, धर्मों, परम्पराओं में विभिन्नता होने के बावजूद इनमें समन्वय स्थापित करके अपनाया गया है।

2.4 संस्कृति के अध्येता और उनकी वैचारिकी का विकास :-

संस्कृति अर्थात् 'अच्छा बनना', 'अच्छा व्यवहार करना' और 'अच्छे विचारों का प्रादुर्भाव होना है। संस्कृति जीवन की ओर देखने और जीवन जीने का एक दृष्टिकोण है। यह एक ऐसी चीज है जिसे एक परिभाषा में न बाँधकर लक्षणों के आधार पर अच्छे से जाना जा सकता है। अगर देखा जाये तो यह मानव चेतना का ऐसा विकास क्रम है जो कि अन्तरंग और बहिरंग दोनों को परिष्कृत करके एक विशेष जीवन पद्धति का निर्माण करती है। इसी संस्कृति और उसकी अवधारणा को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये है जिन्हें इस प्रकार से समझा जा सकता है :-

रामधारी सिंह दिनकर :-

दिनकर संस्कृति के प्रतिनिधि प्रश्नों पर विचार करने वाले प्रतिनिधि लेखकों में एक है। उन्होंने अपने संस्कृति सम्बंधित विचार 'संस्कृति के चार अध्याय' और 'संस्कृति, भाषा और राष्ट्र' पुस्तकों में प्रस्तुत किये हैं इनसे इनके संस्कृति सम्बंधी विचारों को समझा जा सकता है। 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक 1956 में प्रकाशित हुई थी और इसकी भूमिका भारत के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने लिखी थी। यह समय सांस्कृतिक उठा-पटक का दौर था जिसमें भारतीय समाज करवटें ले रहा था। भारत-पाक विभाजन हो चुका था और संस्कृति व परम्परा का राजनीतिकरण हो रहा था इस दौर में संस्कृति को टूटते-बिखरते देखकर दिनकर का मन उद्वेलित होता है। भारतीयता की तलाश करती यह पुस्तक उसी उद्वेलन का परिणाम है। जिसमें संस्कृति के

निर्माण की प्रक्रिया के ऐतिहासिक संदर्भों को निरूपित करने का प्रयास किया गया है व भारतीय संस्कृति को एक प्रक्रिया के रूप में समझने पर जोर देते हुए संस्कृति के उदार, सामासिक व मानवीय पक्ष को प्रस्तुत किया गया है।

1959 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित यह पुस्तक भारतीय संस्कृति का एक सर्वेक्षण है जिसमें भारत के सांस्कृतिक इतिहास को चार भागों में बाँटकर प्रस्तुत किया गया है। दिनकर के शब्दों में भारतीय इतिहास में चार बड़ी क्रांतियाँ हुई है और हमारी संस्कृति का इतिहास इन्हीं चारों क्रांतियों का इतिहास है। पहली क्रांति तब हुई जब आर्य भारतवर्ष में आए और उनका सम्पर्क आर्येत्तर जातियों से हुआ तो आर्यों ने आर्येत्तर जातियों से मिलकर जिस समाज की रचना की व इनके मिलन से जिस संस्कृति का निर्माण हुआ वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी। दूसरी क्रांति उस समय हुई जब महावीर और गौतम बुद्ध ने इस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया और जब वे उपनिषदों की चिन्तनधारा को खींचकर अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गए। इसी तरह तीसरी क्रांति तब हुई जब इस्लाम विजेता धर्म के रूप में भारत आया और उसका सम्पर्क हिंदुत्व के साथ हुआ। चौथी क्रांति उस समय हुई जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ तथा उसके सम्पर्क में आकर हिंदुत्व और इस्लाम ने नवजीवन का अनुभव किया।

भारत में सबसे पहले पुर्तगाली आए। उसके बाद डच, फ्रांसीसी व अंग्रेज व्यापार करने आए और अपने उपनिवेश स्थापित करने लगे। बक्सर के युद्ध में अंग्रेजों की विजय ने भारत में ब्रिटिश सत्ता को सुदृढ़ बनाने में योगदान दिया। धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया। अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के बाद भारत में अंग्रेजी शिक्षा का विस्तार हुआ, इसमें ईसाई मिशनरियों का व्यापक सहयोग प्राप्त हुआ। अंग्रेजों के साथ बने सम्पर्क ने देश की जनता में किस प्रकार आत्म-चेतना उत्पन्न की, किस प्रकार विभिन्न समुदायों में पुनर्जागृति की भावना उत्पन्न हुई, इसका विशद विश्लेषण इस चौथे अध्याय में किया गया है। इसके साथ-साथ नवजागरण आंदोलन के प्रवर्तक जैसे- राजा राममोहन राय, देवेन्द्र नाथ, केशवचंद्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे, तिलक, गोखले, दयानन्द सरस्वती, एनी बेसेंट, विवेकानंद, अरविन्द, महात्मा गाँधी, राधाकृष्णन, इकबाल आदि के विचार एवं भारत के मुक्ति संग्राम में उनके योगदान की व्यापक चर्चा की गई हैं। इस तरह इन चारों क्रांतियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का इतिहास इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है।

भारत की संस्कृति एक सामासिक संस्कृति है। दिनकर ने सामासिक संस्कृति के विकास के संदर्भ में परम्परा, मिथक और ऐतिहासिक तथ्यों का इस्तेमाल किया है। वे कहते हैं कि भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामासिक है; जिसका धीरे-धीरे विकास हुआ है। जिसका मूल एक तरफ आर्यों से पूर्व मोहनजोदड़ों व द्रविड़ों की महान सभ्यताओं में दिखाई देता है तो दूसरी तरफ मध्य एशिया से आये आर्यों की बहुत गहरी छाप इन पर है। पहले उत्तर पश्चिम से आने वालों से और बाद में पश्चिम से समुद्र की राह से आने वाले लोगों से यह संस्कृति प्रभावित होती रही है। इस प्रकार इसमें समन्वय और नए तत्वों को आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता के कारण नए उपकरणों को आत्मसात करके धीरे-धीरे इसने अपना स्वरूप निर्धारित किया है। "भारत की संस्कृति, आरम्भ से ही, सामासिक रही है। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, देश में जो हिन्दू बसते हैं, उनकी संस्कृति एक है एवं भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी संस्कृति की विशेषता है।"[92]

महादेवी वर्मा :-

महादेवी वर्मा ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के स्वर' में भारतीय संस्कृति पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। वे कहती है कि भारतीय संस्कृति एक अत्यंत प्राचीन संस्कृति है और प्राचीन सभ्यता वाले देशों में मानवीय मूल्यों को लेकर अनेक समस्याएँ हुआ करती है। किसी भी जाति की संस्कृति को समझने के लिए उसके विकास की दिशाओं की जानकारी अनिवार्य है। किसी भी समूह के साहित्य, कला, दर्शन आदि के साथ-साथ मानवीय मूल्यों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार संस्कृति जीवन के आन्तरिक और बाह्य सभी रूपों में जीवन को स्पर्श करती है।

संस्कृति निरंतर प्रवाहित होने वाली नदी की तरह है, जिसको एक निश्चित दायरे में नहीं बांधा जा सकता। यदि उसको बाँधने की कोशिश की जायेगी तो वह नष्ट होने के कगार पर पहुँच जायेगी। यह एक ऐसी नदी है जिसकी गति अनन्त है। यह देश-काल व जलवायु में विकसित मानव-समूह की व्यक्त और अव्यक्त प्रवृत्तियों का परिष्कार करती है और यह परिष्कार का क्रम निरंतर चलता रहता है। यह क्रम जहाँ पर बाधित होता है, वहीं संस्कृति के विनाश का खतरा मंडराने लगता है। महादेवी वर्मा इसके सम्बन्ध में लिखती हैं कि "महान और विकसित संस्कृतियाँ इसलिए नहीं नष्ट

[92] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ. 14

हो गई कि उनमें स्वभावतः क्षय के कीटाणु छिपे हुए थे, वरन अशरीरी होते-होते इसलिए विलीन हो गई कि उनकी प्राण-प्रतिष्ठा के लिए जीवन कोई आधार नहीं दे सका। प्रकृति के अणु-अणु के सम्बन्ध में मितव्ययी मनुष्य ने अन्य मनुष्यों के असीम परिश्रम से अर्जित ज्ञान का कैसा अपव्यय किया हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं।"[93] लेकिन भारतीय संस्कृति ऐसी नहीं है। यह तो एक कोने में सीमित न रहकर अत्यंत विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई है। यह तो शताब्दियों क्या सहस्त्राब्दियों तक व्याप्त है और तो आदि से लेकर आज तक विविधताओं से भरी हुई है। इसकी विविधता में एकता व समन्वयात्मकता की शक्ति के कारण मूल प्रवाह निरंतर बना रहा है। यह निश्चित पथ से कांट-छाँट कर निकाली गई नहर नहीं है बल्कि अनेक स्त्रोतों को साथ लेकर चलने वाली नदी है। महादेवी वर्मा इसकी समन्वयात्मकता को लेकर कहती है कि "भारतीय संस्कृति का प्रश्न अन्य संस्कृतियों से भिन्न है, क्योंकि वह अतीत की वैभव-कथा ही नहीं, वर्तमान की करुण गाथा भी है। उसकी विविधता प्रत्येक अध्ययनशील व्यक्ति को उलझन में डाल देती है। संस्कृति के विकास के विविध रूपों की समन्वयात्मक समष्टि है और भारतीय संस्कृति विविध संस्कृतियों की समन्वयात्मक समष्टि है।[94]

भारतीय संस्कृति एक प्राचीन संस्कृति है और प्राचीन काल से ही इसने विभिन्न परिवर्तनों के बावजूद अपने मूलभूत तत्वों को समाहित कर रखा है। अहिंसा भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व है और यह समय के साथ परिवर्तित होता रहा है। इस सिद्धांत का मूल वेदों में 'मा हिंस्यात सर्वभूतानि' के रूप में तो यज्ञों में भी हिंसा के साथ-साथ अहिंसा के समर्थकों के स्वर सुनाई पड़ते है। वही वैष्णव धर्म में संघर्ष व निराशा के काल में भी अहिंसा का सहारा लिया गया। इसी तरह राष्ट्रीय स्वतंत्रता के दौर में गाँधी जी ने भी अहिंसा धर्म का प्रतिकार किया था। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्व किंचित परिवर्तनों के बावजूद स्थाई रूप से बने हुए है। "जीवन जैसे आदि से अंत तक निरंतर सृजन है, वैसे ही संस्कृति भी निरंतर संस्कार क्रम है। विचार, ज्ञान, अनुभव, कर्म आदि सभी क्षेत्रों में जब तक हमारा सृजन क्रम चलता रहता है, तब तक हम जीवित हैं। 'जीवन पूर्ण हो गया' का अर्थ उसका समाप्त हो जाना है। संस्कृति के सम्बन्ध में यही बात सत्य है परन्तु विकास

[93] महादेवी वर्मा, भारतीय संस्कृति के स्वर(1984), राजपाल एंड संज, दिल्ली, पृ. 20
[94] महादेवी वर्मा, भारतीय संस्कृति के स्वर(1984), राजपाल एंड संज, दिल्ली, पृ. 21

की किसी स्थिति में भी जैसे शरीर और अंतर्जगत के मूल तत्व नहीं बदलते, उसी प्रकार संस्कृति के मूल तत्वों का बदलना भी संभव नहीं।"[95]

संस्कृति और सांस्कृतिक विकास को समझने के लिए उसके मूल तत्वों को ग्रहण करने के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक चेतना को समझना व उसकी सांस्कृतिक प्रवृत्ति को सुरक्षित रखना बहुत जरूरी है। महादेवी वर्मा लिखती है कि "सैकड़ों फीट नीचे भू-गर्भ में, गहरी गुफाओं में या ऊँची-ऊँची शिलाओं में मिले हुए अतीत वैभव तक ही हमारी संस्कृति सीमित नहीं, वह प्रत्येक भारतीय के ह्रदय में भी स्थापित है। हमारी खोज किसी मृत जाति के जीवन-चिह्नों की खोज नहीं, जीवित उत्तराधिकारी के लिए उसके पैतृक धन की खोज है और यह उत्तराधिकारी प्रत्येक झोंपड़े के कोने में उसे पाने को उत्कंठित बैठा है।"[96] संस्कृति मानव की चेतना का एक ऐसा विकास क्रम है, जो उसके आंतरिक और बाह्य दोनों ही रूपों को परिमार्जित करके एक विशेष जीवन पद्धति का निर्माण करती है। संस्कृति किसी एक व्यक्ति विशेष की न होकर समष्टि की होती है। जो इन पाँच इकाईयों में परिवार, समाज, नगर, राष्ट्र व विश्व के रूप में देखी जा सकती है। भारतीय संस्कृति को अगर देखा जाये तो यह जीवन मूल्यों की दृष्टि से बहुत उन्नत और भावबोध की दृष्टि से बहुत गहरी है।

श्यामाचरण दुबे :-

श्यामाचरण दुबे संस्कृति के महत्वपूर्ण अध्येता रहे हैं। उनके संस्कृति सम्बंधित विचारों को उनकी पुस्तकें 'परम्परा, इतिहासबोध और संस्कृति', 'मानव और संस्कृति' और 'समाज और संस्कृति' में देखा जा सकता है। वे संस्कृति की व्यापक और सीमित दो अर्थों में व्याख्याएँ करते हैं। मानव विज्ञान की दृष्टि से अगर संस्कृति को देखा जाए तो सीखे हुए व्यवहारों की समग्रता को ही संस्कृति की संज्ञा देते हैं। इसके अंतर्गत मानव और प्रकृति, मानव और समाज व अदृश्य जगत की शक्तियों के साथ-साथ मानव के अंतर्जगत विचार, विवेक व मूल्यों को भी संस्कृति में समाहित करके देखा जाता हैं। इसमें संस्कृति को विभिन्न अवयवों में विभाजित करके उसके भौतिक और अभौतिक सभी पक्षों को समाहित किया जाता है। इसके विपरीत सीमित व्याख्या के सम्बन्ध में वे

[95] महादेवी वर्मा, 'भारतीय संस्कृति के स्वर', पृ. 23
[96] वही, पृ. 23

लिखते हैं कि “इसके विपरीत संस्कृति की सीमित व्याख्या उसे ध्यानाकर्षी और विशिष्ट उपलब्धियों से जोड़ती है। इन व्याख्याओं में दार्शनिक चिंतन, वैचारिक उत्कर्ष और कलात्मक अवदानों को प्राथमिकता दी जाती हैं। दैनिक जीवन से जुड़े अन्य पक्ष गौण माने जाते हैं।”[97] ये संस्कृति को मानव विज्ञान से जोड़कर वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या करते हुए इसे पर्यावरण का मानव निर्मित भाग मानते हैं जिसमें मानसिक, नैतिक, भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, कलात्मक या मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष से सीखे हुए व्यवहार शामिल हैं। संस्कृति मनुष्य की जन्मजात विशेषता नहीं है वह इसे प्रजनन के माध्यम से प्राप्त नहीं करता है। बल्कि यह तो स्वयं मानव की कृति है जिसे वह समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अपनाता है।

बाबू गुलाबराय :-

बाबू गुलाबराय ने ‘भारतीय संस्कृति की रूपरेखा’ पुस्तक में अपने संस्कृति सम्बंधित विचार प्रस्तुत किये है। वे संस्कृति को संस्कार से सम्बंधित मानते हैं। व्यक्ति और जाति दोनों के अपने संस्कार होते हैं, संस्कार जहाँ व्यक्ति विशेष के होते हैं वही जातीय संस्कारों को संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति का क्षेत्र अंत्यत व्यापक है और साहित्य, संगीत, कला, धर्म, दर्शन सभी इसी में समाहित हैं। धर्म और संस्कृति को भी वे परस्पर सम्बंधित मानते हैं। धर्म और संस्कृति का अंतर केवल इतना ही है कि धर्म का आधार जहाँ श्रुति, स्मृतियों और पुराण ग्रंथों में है, वही संस्कृति का आधार परम्परा है।

सच्चिदानंद सिन्हा :-

सच्चिदानंद सिन्हा संस्कृति पर अपनी अलग दृष्टि को प्रस्तुत करने वाले महत्वपूर्ण विचारक है। आज कल्चर स्टडीज यानि संस्कृति अध्ययन दुनिया भर में सर्वोच्च शिक्षण और अनुसन्धान का विषय बना हुआ है। संस्कृति क्या है ?, कैसे बढ़ती, फैलती, बदलती और नष्ट-भ्रष्ट होती है ? सभ्यता, धर्म और संस्कृति का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? सच्चिदानंद सिन्हा की पुस्तक ‘संस्कृति विमर्श’ ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने व उन्हें रेशा-रेशा खोल कर दिखाने का विचारोत्तेजक उपक्रम है।

---

[97] श्यामाचरण दुबे, ‘समय और संस्कृति’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 81

इस पुस्तक में सच्चिदानंद जी संस्कृति के बारे में प्रचलित अनेक भ्रांतियों का खंडन करते हैं। जैविक और आध्यात्मिक आयामों के संबंधों को इस पुस्तक में रेखांकित किया गया है। वे मानते हैं कि संस्कृति, मनुष्यों का एक विशिष्ट प्रकार का गुण है जो उन्हें अन्य प्राणियों से अलग करता है। इसके अंतर्गत मनुष्यों में सभी जगह पाए जाने वाले व्यवहारों और संस्थाओं जैसे कौटुम्बिक सम्बन्ध, प्रौद्योगिकी, वस्तुओं का आदान-प्रदान, सामाजिक सम्बन्ध, कला, धर्म, भाषा आदि का अध्ययन किया जाता हैं। इसके विपरीत है, जैव वैज्ञानिकों या सोशियोलोजिस्टों का समूह जो कि संस्कृति को पूरी तरह से जैविक गुणों का विस्तार मानता है, जिसके सारे व्यवहार आनुवंशिकी से निर्धारित होते हैं।

इस पुस्तक में इन्हीं सभी दृष्टियों को समाहित करते हुए नृशास्त्रियों और सोशियों बायोलोजिस्टों के बीच के मार्ग को प्रस्तुत किया गया है। इसके सम्बन्ध में सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं कि "इसमें जीवों के व्यवहारों पर आनुवांशिकी का निर्णायक प्रभाव तो माना गया है लेकिन यह विचार अपनाया गया है कि जीवों के विकास के क्रम में विकसित स्तनपायी जीवों के लिए तेजी से बदलते परिवेश में आनुवांशिकी पर निर्भरता उनके अस्तित्व की रक्षा करने में अपर्याप्त होती है। इसी स्थिति के दबाव में आदमी में संस्कृति का विकास हुआ जिसने उसके दैनन्दिनी के सामाजिक जीवन आनुवांशिकी की भूमिका को लगभग नगण्य बना दिया है।"[98] संस्कृति मनुष्य के सर्वांगीण विकास का एक कारक है जो कला, साहित्य, नाट्य, नृत्य, संगीत तक ही सीमित न रहकर अपना व्यापक अस्तित्व रखती है। एक कवि की कविता या गायक का संगीत उतना ही सांस्कृतिक है जितना किसान या मजदूर का निर्माण कार्य।

संस्कृति के विकास को अगर देखा जाए तो इसे जीवन और मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया से जोड़ कर समझा जा सकता है। इस प्रक्रिया में उत्पत्ति का निश्चित क्षण निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि जीवन और मानव जीवन का विकास एक सातत्य है जिसमें एक कालखंड के बाद जीव की विकास प्रक्रिया के ही एक आयाम के रूप में संस्कृति की उत्पत्ति दिखाई देने लगती है। संस्कृति का विकास मानव जीवन के उस शैशवावस्था से जुड़ा हुआ है जिसका कोई निश्चित इतिहास उपलब्ध नहीं होता। इसके उद्भव विकास को समझने का मुख्य आधार है

---

[98] सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 06

नृशास्त्रियों द्वारा प्राप्त किये गये साक्ष्य। जिनके आधार पर हम संस्कृति की संभावित पगडण्डियों को समझ सकते हैं। इसके सम्बन्ध में सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं कि "यह अचानक एक समय में किसी बने-बनाये रूपों में पैदा नहीं हुई, बल्कि मानव विकास के प्रारंभिक काल में विविध चुनौतियों से मुकाबले के क्रम में मनुष्य की शारीरिक बनावट में कुछ परिवर्तन हुए और कुछ स्नायविक एवं मानसिक क्षमताएँ विकसित हुई जो आगे चलकर मनुष्य को सांस्कृतिक जीव बनाने में सहायक हुई।"[99]

ऊपरी तौर पर अगर देखा जाए तो नृशास्त्रियों का मानना है कि आज से लगभग साढ़े तीन करोड़ वर्ष पहले ओलिगोसिन काल में मानव के पूर्वज बंदरों की शाखा से अलग हुए। इस काल में दुनिया के अनेक भाग घने जंगलों से ढके हुए थे। जिससे वृक्षों पर रहने वाले जीवों के लिए यह बहुत आदर्श स्थिति थी जिसमें उन्हें खाने के लिए फल-फूल के साथ सुरक्षा व स्वछन्द विचरण के लिए पेड़ व ऊँची डालिया मिली हुई थी। लेकिन इसके बाद दो करोड़ वर्ष पहले मायोसीन काल की शुरुआत हुई जिसमें परिवर्तन होने के कारण जलवायु शुष्क और अपेक्षाकृत शीतल हो गई व घने जंगल नष्ट होने लग गये। विशाल जंगलों वाले भू-भाग घास के विशाल मैदानों में बदल जाने के कारण वृक्षों पर रहने वाले जीवों ने नयी संभावनाओं को तलाशना शुरू किया। उन्हें वृक्षों की सुरक्षा को छोड़कर घास के मैदानों के कठिन संघर्ष के जीवन में उतरना पड़ा और वही पर भोजन व सुरक्षा की व्यवस्था करनी पड़ी। पेड़ों पर रहने के कारण कारण कद में मैदान के बड़े पशुओं की अपेक्षा छोटे होने के कारण भोजन के लिए शिकार करने की मज़बूरी व शक्तिशाली मांसभक्षी पशुओं से अपनी सुरक्षा की जरूरत हुई। मायोसीन व प्लायोसीन काल में मनुष्य के विकास में हुए परिवर्तन के सम्बन्ध में सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं कि "मायोसीन से प्लायोसीन काल की अवधि में वृक्ष छोड़ मैदानों में निवास के लिए बाध्य मनुष्य सामूहिक शिकारी जीव बन गया। दूसरे सामूहिक शिकारी भेड़ियों से इनकी भिन्नता इस बात में थी कि इनके पास नुकीले चीरने-फाड़ने वाले दांत नहीं थे और न तेज दौड़ने लायक पैर की बनावट थी। लेकिन इन्हें इनके एवज में एक वरदान प्राप्त हो चुका था।"[100] धीरे-धीरे इनके पाँव हाथों में बदल गए और अब वे पिछले पैरों पर खड़े होकर लम्बी दूरी

[99] सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 06
[100] सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 42

तक चल सकते थे। लेकिन फिर भी मनुष्य के पैरों को आधुनिक रूप में आने में लाखों वर्ष लगे। मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति थी उसकी बुद्धि का क्रमिक विकास। जिससे उसकी अन्य जीवों से अलग पहचान बनी और उनमें धीरे-धीरे सामाजिक जीवन और संस्कृति के विकास की संभावनाएं पैदा हुई। मस्तिष्क के विकास की यह प्रक्रिया करोड़ों वर्षों चलती रही और यह सबसे ज्यादा मनुष्यों में ही हुई।

बुद्धि के साथ-साथ सोच-समझ कर स्थिति के अनुसार भाषा का प्रयोग भी मनुष्य की महत्वपूर्ण विशेषता है । मनुष्य की इस भाषाई क्षमता का मूल सच्चिदानंद सिन्हा उसकी अवधारणात्मक क्षमता को मानते हैं। मनुष्य की भाषा का यह विकास उसकी अवधारणा की शक्ति का ही परिणाम है। अवधारणा, मनुष्य के भाषा के विकास और उसकी संस्कृति के विकास का मुख्य आधार है। सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं कि "मनुष्य की संस्कृति उन सूचनाओं का स्रोत है जो आनुवंशिकी के प्रभाव से अलग मानव समूहों एवं व्यक्तियों के क्रियाकलाप को दिशा एवं विविध आयाम प्रदान करती है। इन सांस्कृतिक सूचनाओं का सबसे महत्वपूर्ण वाहक मनुष्य की संस्कृति की भाषा होती है। इसके अलावा दूसरी विधाएँ भी वाहक होती हैं- जैसे संगीत, नृत्य, कला आदि जिनसे भावों एवं स्थितियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है। इन सब के पीछे मनुष्य की अवधारणात्मक क्षमता है।"[101]

संस्कृति को समझाने के लिए सच्चिदानंद सिन्हा ने जैविकी और आनुवांशिकी को माध्यम बनाया है। वे आनुवांशिकी का सहारा लेते हुए ही संस्कृति के साध्य को समझाते हैं। जिस तरह आनुवंशिकी मनुष्य के जीवन और इत्तर जीवन को नियंत्रित करती है, उसी प्रकार संस्कृति भी मनुष्य जीवन को नियमित करती है। मनुष्य की संस्कृति उन समूहों की ही देन होती है जिनमें वह पलता और बड़ा होता है। संस्कृति व मानव समूहों के केंद्र में मनुष्य रहता है और व्यक्तियों को संस्कारित करने में संस्कृति एक सांचे का काम करती है। परम्परा और आनुवंशिकी के जीन दोनों ही मनुष्य को संस्कारित करने में एक तरह की भूमिका निभाते हैं। दोनों ही पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कृति के स्वभाव को निर्धारित करते हैं। परम्परा के सम्बन्ध में सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं कि "मानव समाज में लोगों के व्यवहारों का एक स्तर पर निर्धारण कर समाज को आकार देने में संस्कृति द्वारा सूचनाओं

[101] सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 45-46

के सम्प्रेषण की वही भूमिका है जो दूसरी प्रजातियों के व्यवहारों के निर्धारण में जीन की। अत: जीन की तरह संस्कृति में भी सूचनाओं को संजोने की क्षमता होनी चाहिए। यह क्षमता संस्कृतियों में उनकी परम्परा से अर्जित है।"[102]

इस प्रकार देखा जा सकता है कि संस्कृति के विभिन्न अध्येताओं ने अपने-अपने तरीके से संस्कृति को समझाने का प्रयास किया है।

2.5 संस्कृति और समाज का अंतर्संबंध :-

संस्कृति और समाज का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। संस्कृति समाज को दी हुई वह धरोहर है जिसके कारण समाज का निर्माण होता है। समाज संस्कृति को और संस्कृति समाज को आपस में जोड़ने का कार्य करते हैं। संस्कृति समाज में रहने वाले लोगों के बाह्य और आंतरिक विकास का ही योग है। जब कई लोग निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए मिलजुल कर एक साथ रहते हैं तो उसे समाज कहा जाता है और प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार की संस्कृति अवश्य पाई जाती है। जिसमें समय के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं और उन परिवर्तनों का प्रभाव समाज पर पड़ता है। संस्कृति मनुष्यों के एक समुदाय में ही रहती है जिसे समाज कहते हैं।

अगर देखा जाए तो मनुष्य, समाज और संस्कृति तीनों अन्योन्याश्रित है, जिससे एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। समाज वह कड़ी है, जो मनुष्य और संस्कृति दोनों को जोड़ता है। संस्कृति और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जिसके कारण समाज विहीन संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती और न ही संस्कृति विहीन समाज के बारे में सोचा जा सकता है। दोनों एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। समाज और संस्कृति दोनों ही किसी एक द्वारा निर्मित न होकर समूह द्वारा निर्मित है। ये दोनों ही किसी एक व्यक्ति का अर्जन व सम्पत्ति नहीं है बल्कि ये तो सामाजिक धरोहर है जिसके अर्जन, निर्माण व निर्धारण में समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपना योगदान देता है। संस्कृति ही समाज को संचालित करती है जो समाज को अच्छाई, बुराई का निर्देश व ज्ञान कराती है। संस्कृति और समाज ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करते हैं। अगर किसी भी देश की संस्कृति को समझना है तो उसके लिए समाज

---

[102] सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 23

का अध्ययन करना बहुत जरूरी है। जिसमें सामाजिक संगठनों का अध्ययन, आर्थिक व्यवस्था, कला व संस्कृति का अध्ययन करना आवश्यक है। संस्कृति शब्द का अर्थ होता है, परिमार्जन अथवा परिष्कार करना। समाज की सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्थितियों का जो परिष्कृत रूप है, उसे ही संस्कृति कहा जाता है और इस समाज के विकास को ही संस्कृति का इतिहास कहा जाता है। रेमंड विलियम्स कहते हैं कि "संस्कृति और समाज के बीच संबंधों की समस्या तभी सैद्धांतिक समस्या के रूप में सामने आती है जब संस्कृति और समाज में ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कुछ परिवर्तन घटित होते हैं।"[103]

संस्कृति के अंतर्गत वह सब कुछ समाहित है जिसे मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते या समाज का सदस्य होने के कारण उत्तराधिकार में प्राप्त करता है। समाज के सदस्य के रूप में जो भी उपलब्धियां होती है वे सभी संस्कृति में ही आती है समाज की कला, संगीत, साहित्य, शिल्प कला, धर्म, दर्शन, विज्ञान ये सभी संस्कृति के ही अंग है। किसी भी समाज की परम्पराएँ, रीति-रिवाज, भाषा, बोली, पर्व ये सभी संस्कृति में ही समाहित है। इसमें वह सब कुछ समाहित है जिसे मनुष्य समाज में सीखता है। प्रत्येक मानव समूह में हजारों वर्षों के विकास के परिणामस्वरूप संस्कृति के विभिन्न अंगों का विकास होता है और यह प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी संस्कृति में ही जन्म लेता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में भी संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रॉल्फ लिंटन ने बताया है कि व्यक्ति तीन तरह से संस्कृति के अंगों में भाग ले सकता है। "सबसे पहले वह सार्वभौमिक रूप में संस्कृति में भाग लेता है अर्थात् उन आदतों, विचारों और संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को अपनाता है, जिन्हें समाज के सभी प्रौढ़ व्यक्तियों के व्यवहार में पाया जा सकता है। दूसरे, व्यक्ति विशेष रूप से संस्कृति के अंगों में भाग लेता है अर्थात् संस्कृति के उन तत्वों को ग्रहण करता है, जो कि समाज के विशिष्ट लिंग वाले व्यक्तियों में पाए जाते हैं। तीसरे, व्यक्ति वैकल्पिक रूप से संस्कृति के अंगों में भाग लेता है अर्थात् संस्कृति के उन तत्वों को अपनाता है जो समाज के कुछ ही व्यक्तियों द्वारा अपनाए गए हैं।"[104] संस्कृति व्यक्ति

[103] मैनेजर पांडेय, 'रेमंड विलियम्स : अनुभूति की संरचनाएं', पल-प्रतिपल पत्रिका, जुलाई-दिसंबर 2016, पृ. 33
[104] डॉ.उदयपाल सिंह, भारतीय संस्कृति (2015), विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 3

के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक सभी पक्षों पर प्रभाव डालती हैं। व्यक्तियों के प्रयास से ही संस्कृति में बदलाव होते हैं तो दूसरी तरफ संस्कृति ही मानव व्यवहार को नियंत्रित करती है।

बच्चे को सबसे पहले संस्कृति की शिक्षा परिवार से ही मिलती है। परिवार में ही उसको उचित-अनुचित का व्यवहार सीखा कर सुसंस्कृत किया जाता है व संस्कृति के विभिन्न उपकरणों रीति-रिवाज, परम्परा व मूल्यों की शिक्षा दी जाती है। व्यक्ति समाज की एक इकाई है और व्यक्तियों का समूह ही समाज है। इसी समाज के विधि-विधान, क्रियाकलाप, उत्कृष्ट संस्कृति का निर्माण करते हैं। इस प्रकार संस्कृति समाज से जुड़ी हुई और समाज व्यक्ति की समष्टिगत इकाई है।

2.6 साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध :-

किसी भी मानव समूह को उसके सम्पूर्ण परिवेश के साथ पूर्ण रूप से जानने के लिए जितने भी साधन उपलब्ध है, उनमें सबसे पूर्ण साहित्य को ही माना जा सकता है। साहित्य में जाति व समाज के मनोभाव रहते हैं जिससे उसके विकास-क्रम को समझने में आसानी रहती है। साहित्य संस्कृति का प्रधान अंग है। सभी मानवीय विधाओं व कलाओं की कृतियाँ किसी न किसी देशकाल की संस्कृति की ओर संकेत करती है। किसी भी कृति में निहित विचार, भावनाएँ, कल्पनाएँ, प्रभाव ये सभी संस्कृति के ही अंग होते हैं। इसीलिए किसी भी देश की संस्कृति को अगर जानना हो तो सबसे पहले वहाँ के साहित्य का ही अध्ययन किया जाना चाहिए।

संस्कृति और साहित्य का अविछिन्न सम्बन्ध है। संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए मुख्य अंग साहित्य ही है। साहित्य के माध्यम से ही संस्कृति को संचित और संरक्षित किया जाता है और साहित्य भी संस्कृति पर पूर्ण रूप से आश्रित है। संस्कृति के अभाव में साहित्य निष्प्राण और संबलविहीन हो जाता है। शिवकुमार मिश्र कहते हैं कि "साहित्य और संस्कृति संबंधित कोई भी विचार सामाजिक जीवन में श्रमरत मनुष्य के कार्यकलाप से कटकर नहीं किया जा सकता। संस्कृति मनुष्य की होती है, साहित्य का रचयिता भी मनुष्य ही है जो समाज में रहता और श्रम करता है।

मनुष्य की आदि अवस्था से लेकर आज तक का साहित्य, कला एवं सभ्यता तथा संस्कृति का सारा विकास मनुष्य और समाज के विकास का ही परिणाम है।"[105]

संस्कृति जीवन जीने का एक तरीका है और जीवन का समग्र रूप संस्कृति में समाया हुआ है। साहित्य के द्वारा ही संस्कृति की मूल्यवान संचित उपलब्धियों को लिपिबद्ध करके संरक्षित किया जाता है। साहित्य के अभाव में संस्कृति, विचार, भाव अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते। यह संस्कृति का प्रधान अंग है जिसमें जाति के मनोगत भाव सुरक्षित रहते हैं और उनके माध्यम से ही उसके मनोगत भावों का पता लगाया जाता है। साहित्य और संस्कृति दोनों ही एक-दूसरे को समृद्ध करते हैं। प्रत्येक साहित्य एक सांस्कृतिक इकाई की उपज होता है।

भारतीय साहित्य की परम्परा को अगर देखा जाए तो यह बहुत लम्बी है और उसकी शाखाएँ और उपशाखाएँ चारों तरफ फैली हुई है। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी सभी में लिखा हुआ साहित्य अपने अन्दर संस्कृति को समाहित किये हुए है। परन्तु इस विशाल साहित्य भंडार का यहाँ अध्ययन नहीं किया जा सकता इसीलिए मूल या मुख्य रूप से धार्मिक साहित्य को यहाँ देखा जा सकता है। संस्कृति की साहित्य में प्राचीनतम अभिव्यक्ति वेद साहित्य में मिलती है। जिसमें हमारे पूर्वजों के तपोमय चिंतन और अंतर्दृष्टि का फल निहित है। वेद शब्द 'विद' धातु में 'अच' या 'धञ' प्रत्यय लगाने से बनता है। जिसका अर्थ होता है ज्ञान। वेदों की संख्या चार मानी गयी है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वेद। और इन्हें अपौरुषेय या ईश्वर कृत माना जाता है। वैदिक साहित्य में मुख्यत: तीन प्रकार के साहित्यिक ग्रंथों का बोध होता है जिसे संहिता, ब्राह्मण एवं आरण्यक व उपनिषद में विभाजित किया जा सकता है। ऋक, यजु:, साम, अथर्व चार संहितायें व प्रत्येक सहिंता से सम्बंधित ब्राह्मण ग्रन्थ है। जिनमें कुछ लोग केवल सहिंता भाग को वेद मानते हैं तो कुछ आरण्यक और उपनिषद को सम्मिलित रूप से वेद मानते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, सहिंता, पुराण, रामायण, महाभारत आदि में संस्कृति समाहित हैं।

मन्त्र भाग को सहिंता और ब्राह्मण साहित्य के अंतिम भाग को आरण्यक कहा जाता है। जिसमें यज्ञों के दार्शनिक पक्ष को समझाया गया है और आरण्यक के अंतिम भाग को उपनिषद

---

[105] शिवकुमार मिश्र, 'दर्शन, साहित्य और समाज', पृ. 15

कहते हैं जिनकी संख्या 108 मानी गई है । “ब्राह्मण और आरण्यक ये वेदों के कर्मकाण्ड की व्याख्या है। प्रत्येक वेद के अलग-अलग ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद होते थे, जैसे ऋग्वेद के दो ब्राह्मण है – ऐतरेय और कौषितकी।”[106]

ऋग्वेद समस्त विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसके काल निर्णय को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहे हैं। कोई इन्हें पचहत्तर वर्ष पूर्व का मानता हैं तो कोई दो सौ वर्ष पूर्व का। “ज्योतिष-शास्त्र की सहायता से तिलक व जेकोबी ऋग्वेद को ई.पू. 4500 वर्ष तक ले जाते हैं। विंटरनीज भारत के बाहर पाए गए वैदिक संस्कृति के चिह्नों के आधार पर ऋग्वेद को ई. पू. 3000 वर्ष का सिद्ध करते हैं। ब्हूलर मैक्समूलर के मत का खंडन करते हुए कहते हैं कि ऋग्वेद ई.पू. 1200 वर्ष के बहुत पहले का होना चाहिए । इन सब सिद्धांतों के विपरीत अविनाश चन्द्रदास भूगर्भ-शास्त्र की सहायता से ऋग्वेद को लाखों वर्ष पूर्व का सिद्ध करते हैं।”[107] ऋग्वेद में अर्थ और दर्शन के साथ-साथ राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र व विभिन्न विधाओं व शास्त्रों के मौलिक सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है। सामवेद संगीत से सम्बंधित है। जिसमें अधिकतर सोम सम्बंधित मंत्र ऋग्वेद से लिए गये है। यजुर्वेद में यज्ञों के समय किये जाने वाले मंत्रों का संग्रह किया गया है।

अथर्ववेद में राजनीति, समाजशास्त्र, आयुर्वेद जनसाधारण के धार्मिक जीवन से सम्बन्धित सिद्धांत है। साथ ही काल संबंधी ग्रंथों में संसार की क्षणभंगुरता व सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है। इसमें आयुर्वेद सम्बंधित सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

ब्राह्मण साहित्य :-

संहिंताओं के पश्चात यज्ञ से सम्बंधित गद्यात्मक साहित्य का निर्माण हुआ। वेद यज्ञों से सम्बंधित थे और यज्ञों की जो विधियाँ लिखी गई उससे एक नया वांग्मय उत्पन्न हुआ जिसे ब्राह्मण कहा गया। इसके सम्बन्ध में दिनकर लिखते हैं कि “ब्राह्मण अत्यंत नीरस ग्रन्थ हैं। उनके भीतर विधि और अर्थवाद, ये दो विषय हैं। विधियाँ यज्ञ के नियम हैं और अर्थवाद उनकी व्याख्या का प्रयास। अर्थवाद के अन्दर ही इतिहास, पुराण और आख्यायिकायों के प्रसंग आते हैं, जिनमें पुराण-

[106] बाबू गुलाबराय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', पृ. 35
[107] शिवदत्त ज्ञानी, 'भारतीय संस्कृति' , पृ. 160

साहित्य का मूल है। इस प्रकार ब्राह्मण-ग्रंथों का एक महत्व यह भी है कि वेद और वेदोत्तर साहित्य के बीच की कड़ियाँ सूचित करते हैं।"[108] ऐतरेय ब्राह्मण महत्वपूर्ण है।

उपनिषद साहित्य :-

उपनिषदों में वैदिक कर्मकांडों की प्रतिक्रिया है और ये ब्रह्मविद्या के भंडार है इनमें दार्शनिकता को अपनाकर जीव, ब्रह्मा, प्रकृति, जीवन, मरण आदि को समझाने का प्रयत्न किया गया हैं। उपनिषदों की रचना वेदों से पहले की गई या बाद में इसको लेकर काफी मतभेद रहे हैं। अनुमान लगाया जाता है कि पहले इनकी मौखिक रचना की गई और उसके बाद लिखे गये। उपनिषदों को कालक्रम के आधार पर चार भागों में विभाजित किया गया है। वृहदारण्यक, तैतिरीय, ऐतरेय, कौशीतकी उपनिषद गद्य में लिखे गये। जिन्हें प्राचीनतम वर्ग में रखा जाता है। ब्राह्मण ग्रंथों की तरह ही क्लिष्ट होने के कारण इन्हें काठक, ईसा, श्वेताश्वर, मुण्डक तथा महानारायण, उपनिषद पद्यात्मक और साहित्यिक दृष्टि से रोचक है। तीसरे वर्ग में प्रश्न, मैत्रायणीय और धार्मिक मांडूक्य उपनिषद साहित्यिक गद्य में आते हैं। अथर्ववेद के उपनिषद चौथे वर्ग में आता है। जिसकी संख्या सत्ताईस मानी जाती है। उपनिषदों के सम्बन्ध में दिनकर लिखते हैं कि "उपनिषद शब्द का अर्थ कोई-कोई पंडित'पास' बैठना लगाते हैं (उप=बैठना) जिससे यह अनुमान लगाया जाता गया है कि शिष्य गुरु के पास बैठकर वेद का तत्व समझा करते थे, इस शिक्षण के सिलसिले में जो ज्ञान निकला, वही उपनिषदों में संचित है।"[109] अर्थात् जो ज्ञान गुरु के समीप बैठकर प्राप्त किया जाता है उसे ही उपनिषद कहा जाता है।

वेदांग साहित्य :-

वेदों के शुद्ध उच्चारण का बहुत महत्व था उच्चारण में गड़बड़ हो जाने पर उससे बड़े अनिष्ट की सम्भावना रहती थी इसीलिए वैदिक साहित्य की जटिलता को दूर करने तथा उसको समझने व सहायता के लिए वेदांग साहित्य लिखा गया। जिसकी संख्या छ: है - शिक्षा, छंद, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष। 1. शिक्षा- यह शब्दशास्त्र या उच्चारणशास्त्र था जिसमें वर्ण और

[108] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 92
[109] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 93

उसके उच्चारण से सम्बंधित नियम दिए गए है। छंद पिंगल के छंद-सूत्रों के भाग में वैदिक छन्दों का वर्णन आता है। जिसमें लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार के छंदों का वर्णन है। 2. निरुक्त- वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए यह शास्त्र निकला था। वैदिक शब्दकोश निघंटु के आधार पर यास्क कृत निरुक्त में वेदों का भाष्य है। यास्क ने अपने बारह अध्यायों के निरुक्त में निघंटु के वैदिक शब्दों को अच्छी तरह से समझाया है। 3. व्याकरण- वैदिक पद-पाठ के आलोचनात्मक अध्ययन से व्याकरण सम्बंधित ज्ञान के विकास का पता चलता है। व्याकरणों में पाणिनि को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। 4. ज्योतिष- "यह आर्यों का एकमात्र भौतिकशास्त्र था।"[110] 5. कल्पसूत्र – वेदों के कर्मकांड पक्ष के लिए ब्राह्मण ग्रंथों का निर्माण किया गया उसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों की व्याख्या के लिए कल्पसूत्र बनें।

रामायण :-

भारत के साहित्यिक इतिहास में रामायण का महत्वपूर्ण स्थान है वाल्मीकि को आदि कवि कहा जाता है। यह आदि कवि वाल्मीकि द्वारा लिखा गया संस्कृत का एक अनुपम महाकाव्य है। यह संस्कृत का आदिकाव्य और सात कांडों में विभक्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जिसके रचनाकार को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहे हैं। फिर भी ई. पू. छठी शताब्दी के बाद के समय को ही इसका रचनाकाल माना जाता है। शिवदत्त ज्ञानी विभिन्न विद्वानों के मतभेदों को बताते हुए लिखते हैं कि "प्रो. जेकोबी ई.पू. छठी शताब्दी में रामायण की रचना मानते हैं। मेकडॉनेल के मतानुसार रामायण का मौलिक रूप ई.पू. 500 वर्ष के लगभग बना और बाद की मिलावट ई.पू. 200 वर्ष के पश्चात हुई। डॉ. भांडारकर रामायण की रचना पाणिनि के बाद मानते हैं। श्री चिंतामणि वैद्य वर्तमान रामायण का रचना-काल ई. पू. चौथी शताब्दी मानते हैं।"[111] इसमें महाकाव्यात्मक शैली में पारिवारिक आदर्शों को प्रस्तुत किया गया है। इसमें राम, सीता, दशरथ, भरत, लक्ष्मण के माध्यम से आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श भाई व पितृ प्रेम व भातृप्रेम के आदर्श प्रस्तुत किये गये है और ये भारतीय संस्कृति के आदर्श है।

---

[110] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 93

[111] शिवदत्त ज्ञानी, 'भारतीय संस्कृति' , पृ. 170

आदि काव्य को ही अगर देखा जाये तो उसके मूल में भी भारतीय संस्कृति है। रामायण का उदय करुणा से हुआ है जब तमसा नदी के किनारे एक बहेलिये ने काम मोहित क्रोंच पक्षी की जोड़ी को मार डाला तो उसी को देखकर आदि कवि का ह्दय द्रवित हो उठा और उनके मुख से अनायास ही श्लोक निकल पड़ा। भारतीय संस्कृति का मूल अहिंसा है और आदि काव्य का आदि श्लोक ही करुणामय है। इस प्रकार यही से भारतीय संस्कृति की झलक दिखाई देने लगती है जो अंत तक व्याप्त है।

महाभारत :-

भारतीय संस्कृति का दूसरा विशाल ग्रन्थ महाभारत है। जिसके रचयिता कृष्ण द्वैपायन व्यास है माना जाता है कि व्यास ने इसे गणेश जी को लिखवाया था। इसके रचनाकाल को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है परन्तु इसे रामायण के बाद का माना जाता है। नैतिक आदर्शों की दृष्टि से यह रामायण जैसा नहीं परन्तु इसका आदर्श व्यावहारिक और न्यायपरक है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों एवं कमजोरियों का इसमें स्पष्टत: उल्लेख किया गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के साथ नीति, राजनीति, समाज सभी को इसमें समाहित किया गया है। रामायण की तरह यह भी व्यक्ति विशेष से सम्बद्ध न होकर सम्पूर्णता को प्रस्तुत करता है। इसमें कौरवों व पांडवों के बीच हुए अट्ठारह दिन के युद्ध का वर्णन किया गया है। यह विश्व का सबसे लम्बा साहित्यिक ग्रन्थ और महाकाव्य है। जोकि हिन्दुओं का एक प्रमुख काव्य ग्रन्थ है। कौरव-पाण्डव संघर्ष के साथ-साथ इसमें अनेक आख्यानों शकुन्तलोपाख्यान, सावित्री उपाख्यान व भीष्म पितामह द्वारा धर्म की व्याख्या को भी प्रस्तुत किया गया है। विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक और नैतिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत गीता भी इसी का एक अंग है। जिसमें भारतीय संस्कृति के सभी मूल तत्व समाहित है। इसमें ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों को महत्व दिया गया है परन्तु सबसे महत्वपूर्ण है निष्काम कर्म करने का उपदेश। और यही भारतीय संस्कृति का मूल है।

पुराण :-

रामायण और महाभारत की तरह पुराण भी पौराणिक ग्रन्थ है। जिनकी संख्या अट्ठारह मानी गयी है। "मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, भविष्य, ब्रह्मांड, ब्रह्म वैवर्त, ब्रामा, वामन, वराह, विष्णु, वायु

व शिव, अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरुड़, कुर्म और स्कंद ये अट्ठारह पुराण है।"[112] इसके अलावा इनके अट्ठारह उप पुराण भी माने गये हैं। भागवत नाम के भी दो पुराण है जिसमें वैष्णवों के भागवत को महापुराण व देवी भागवत को उपपुराण कहा जाता है। पौराणिक साहित्य प्राचीन माना जाता है व अन्य सब पुराणों की नामावलियाँ इनमें होने के कारण इनका अनुक्रम करना बहुत ही कठिन कार्य है। अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, छन्दोग्योपनिषद में भी पुराण शब्द का प्रयोग किया गया। पुराणों में विभिन्न ऐतिहासिक कालों की सामग्री का मिश्रण होने के कारण इसके रचनाकाल को लेकर काफी मतभेद रहे हैं। इस तरह साहित्य की एक लंबी परंपरा है जिसमें संस्कृति समाहित है यहाँ सम्पूर्ण साहित्य को नहीं देखा जा सकता लेकिन इस प्रारम्भिक रूप से ही समझा जा सकता है कि साहित्य और संस्कृति एक दूसरे पर आश्रित है। भारतीय ज्ञान परंपरा व साहित्य के संबंध में कह सकते हैं कि "भारतीय ज्ञान परंपरा काफी समृद्ध रही है। इसने दुनिया के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद, वेदों की एक लाख श्रुतियों, उपनिषदों के ज्ञान, महाभारत के राजनैतिक दर्शन, गीता की समग्रता, रामायण के रामराज्य, पौराणिक जीवन-दर्शन एवं भागवत दर्शन से लेकर संस्कृति तमाम अध्याय रचे।"[113]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साहित्य जोड़ने का कार्य करता है। संस्कृति जहाँ मनुष्य को मनुष्यता सिखाती है वही साहित्य इस मनुष्यता को सुरक्षित रखने का कार्य करता है। दूसरे देशों के साहित्य को पढ़कर हम देख सकते हैं कि वहाँ संस्कृति का विकास किस तरह हो चुका है और किन-किन देशों की संस्कृति का प्रभाव वहाँ पर है। "इलेक्ट्रोनिक मीडिया भले ही सम्पूर्ण देशों को अपने मोहक जाल में फंसा ले, लेकिन वह किताब का पर्याय नहीं हो सकता। इन किताबों में ही तो संस्कृति और साहित्य सुरक्षित रहते हैं, उनका अध्ययन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है और पड़ोसियों को पास लाता है, बशर्ते कि हम उनके साहित्य का अध्ययन करें, उनके साहित्य के माध्यम से ही हम उनकी आत्मा का परिचय पा सकते हैं। उनका रूप-रंग अलग हो सकता है, पर आत्मा तो एक ही है।"[114] साहित्य वास्तव में चिंतन, अनुभूति और स्मृति का समुच्चय है जिसका मूल स्त्रोत मनुष्य के अतीत, वर्तमान और भविष्य के चिंतन, मनन और अनुभवों से अनुप्राणित है और यही मानव की अनुभूति और चिंतन, सांस्कृतिक परंपरा, रीति-नीति, व्यवहार, धर्म आदि से

---

[112] बाबू गुलाबराय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', पृ. 60

[113] कृष्णकुमार यादव, 'भारतीय संस्कृति की विरासत', वैचारिकी पत्रिका, मई-जून 2014, वर्ष- 30, अंक- 30

[114] विष्णु प्रभाकर, 'संस्कृति क्या है ?(2015)', सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, पृ. 12-13

निष्पन्न होकर संस्कृति का रूप धारण करते हैं और साहित्य उसे लिपिबद्ध कर भावी पीढ़ी में स्थानांतरित करता है।

2.7 धर्म और संस्कृति :-

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'धृ' धातु से हुई है। धर्म का अर्थ है धारण करना। अर्थात् जो धारण करता है, वही धर्म है। यह प्रजा को, लोगों को, समस्त प्राणीमात्र को धारण करके रखता है। "धर्म प्रजा की धारणा करता है। इसीलिए उसे 'धर्म' कहा गया है। हमारे शास्त्रों में यही बताया गया है। 'धृ' धातु का अर्थ 'जोड़ना भी होता है, अत: जो जोड़ता है वह 'धर्म' हुआ।"[115] संस्कृति और धर्म दोनों के ही सम्बन्ध बहुत जटिल रहे हैं जिससे दोनों को अलग करके देखना इतना आसान नहीं है। संस्कृति में जीवन का मूल आधार धर्म है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन धर्म से प्रभावित होता है। चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यहाँ धर्म को संकुचित और विस्तृत दो अर्थों में देखा जा सकता है। संकुचित अर्थ में यह संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अवयव है तो विस्तृत अर्थ में यह संस्कृति के समान भी है और उससे बाहर भी है।

धर्म जहाँ आंतरिक अनुभूतियों के महत्व को प्रकट करता है वहाँ वह संस्कृति की मूल आत्मा होता है। यह एक आध्यात्मिक चेतना है। धर्म की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है- उसकी विशालता और बांधने की क्षमता। आबिद हुसैन धर्म के सम्बन्ध में लिखते हैं कि "धर्म निरंतर परिवर्तित होने वाला अनुभव है। यह कोई दैवीय सिद्धांत नहीं है। यह एक आध्यात्मिक चेतना है। आस्था और आचरण, यज्ञ और अनुष्ठान, रूढ़िवादिता और अधिकार, आत्मावलोकन की कला तथा दैवी संबंधों के अधीन रहते हैं।"[116]

भारत में विविध धर्मों की एक विस्तृत श्रंखला उपस्थित है, जिसके द्वारा यहाँ रहने वाले लोगों के नैतिकता और आचार सम्बन्धी मूल्यों का निर्धारण होता है। यहाँ हमें भाँति-भाँति के धर्म देखने को मिलते हैं। प्राचीन भारत का धार्मिक विकास वैदिक काल से प्रारंभ हो जाता है। जिसमें आर्यों का मूल स्त्रोत वैदिक साहित्य है और इसमें बताये गये धर्म को वैदिक धर्म कहते हैं। ऋग्वेद में

---

[115] माधव गोविन्द वैद्य, 'अपनी संस्कृति'(2002), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 29
[116] आबिद हुसैन, 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति', पृ. 9, भूमिका

प्रकृति पूजा का उल्लेख मिलता है जिसमें ऋग्वेदकालीन आर्य, इंद्र, वरुण, अग्नि, सूर्य आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों की पूजा करते थे। वैदिक आर्य ईश्वर को निराकार व सर्वव्यापी मानते थे और प्राकृतिक जगत की विभिन्न शक्तियों को ही सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी परमात्मा का स्वरूप मानकर उनकी स्तुति करते थे। "आर्य बड़े ही भावुक और प्रकृति-पूजक लोग थे। उन्होंने प्रकृति के प्रिय और रमणीय रूपों से जैसे उषा देवी की कल्पना की थी, उसी प्रकार, प्रकृति के भयानक रूपों में से उन्होंने रूद्र की कल्पना उतारी।"[117] प्रकृति के प्रत्येक रूप में देवता की कल्पना करते रहने के कारण आर्य बहुदेवतावादी हो गए थे और इन वैदिक संहिताओं में सबसे अधिक मन्त्र इंद्र के सम्बन्ध में ही पाए जाते है क्योंकि इंद्र ने आर्यों के शत्रु वृत्रासुर का वध किया था। ऋग्वेद में आर्य देवताओं की स्तुतियाँ की गई है।

वेदों में यज्ञों में होने वाले गायन व पाठ में होने वाली अशुद्धियों को दूर करने के लिए व वेदों के सही उच्चारण, गान व अर्थ बोध के लिए जिन शास्त्रों की रचना की गई उन्हें वेदांग कहा जाता है। वेदांग के बाद ब्राह्मणों की अनुक्रमणिकाएँ, अरण्यकोष और उपनिषद के रूप माने जाते हैं। आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म, कर्मफलवाद ये सभी उपनिषदों के द्वारा ही विकसित हुए थे और ये मनुष्य का सच्चा ध्येय जन्म और मृत्यु के बंधनों से मुक्ति या मोक्ष को मानते थे। उपनिषदों का उद्देश्य बताते हुए दिनकर लिखते हैं कि "उपनिषत्कारों का उद्देश्य दर्शन की रचना नहीं बल्कि, अनेक उपायों से उस समाज का ध्यान धर्म के सूक्ष्म तत्वों की ओर ले जाना था, जिस समाज के लोग धर्म के बाहरी आचारों से उलझे हुए थे, पशु-हिंसा और यज्ञवाद को अपना परम धर्म मान रहे थे और पृथ्वी से लेकर स्वर्ग तक सर्वत्र, भोगों के लिए बैचेन थे। इस समाज के सामने, उपनिषदों के द्वारा जो आदर्श उपस्थित किया जा रहा था, वह यह था कि जीवन का सच्चा सुख भोग में नहीं, त्याग में है।"[118]

जैन धर्म :-

वेदों द्वारा यज्ञ को अधिक महत्व दिए जाने के कारण समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि हो गया था। जिसके कारण वैदिक धर्म में धीरे-धीरे विद्रोह आरम्भ होने लगा और इस विद्रोह से बौद्ध और जैन धर्म का आविर्भाव हुआ। अहिंसा और मनुष्य मात्र को समान स्थान देने के लिए उसका

---

[117] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 68
[118] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 99

उद्भव हुआ। जैन धर्म में 24 तीर्थंकर माने जाते हैं, जिसमें 24वें तीर्थंकर महावीर ने युवावस्था में घर छोड़ दिया था और 12 वर्ष की कठोर तपस्या के बाद उन्हें कैवल्य या ज्ञान की प्राप्ति हुई।

जैन धर्म के अनुसार मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना है। जिसके लिए गृहस्थों को पाँच अणुव्रत व मुनियों के लिए तीन अनुव्रत का पालन करने का उपदेश दिया गया। पाँच इस प्रकार है- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह व सच्चरित्रता। व मुनियों के तीन सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन व सम्यक चरित्र बताये गये। जैनों ने आत्मवादियों और नास्तिकों के एकान्तवादी मतों का खंडन करते हुए साधना और तपस्या पर बल दिया। उनके अनुसार आत्मा अनादि है और कर्म का आवरण हटाने के बाद आत्मा ईश्वर हो जाती है।

जैन धर्म की सांस्कृतिक देन महत्वपूर्ण है। इसके कारण भारत की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ और इसके अनेकान्तवाद के सिद्धांतों से लोगों में साम्प्रदायिक सहिष्णुता और उदार विचारधारा को अपनाने की प्रेरणा मिली। इसके कारण अहिंसा का प्रसार व ऊँच-नीच की भावना कम हुई। "जैन मतावलंबियों का सामाजिक योगदान बड़े महत्व का है। जैन धर्म में सदाचार को सर्वोपरि महत्व दिया गया है और शरीर और आत्मा की पवित्रता के लिए राग, द्वेष, मोह, क्रोध, पाप और लोभ आदि दुर्व्यसनों का परित्याग और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अक्रोध और अपरिग्रह के अर्जन पर जोर दिया है।"[119] दक्षिण में जैन धर्म का जो प्रचार हुआ, उससे भारत की एकता में वृद्धि हुई। जैन मुनियों और साहित्य के साथ संस्कृत के बहुत सारे शब्द दक्षिण पहुँचे और वे मलयालम, तेलगु और कन्नड़ भाषाओं में मिल गये। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में जैन धर्म ने सांस्कृतिक समन्वय को प्रोत्साहित करके महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बौद्ध धर्म :-

कर्मकांड, हिंसायुक्त यज्ञ के आडम्बर और पुरोहितवाद के विरुद्ध ही बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। पहले केवल ऊँची जाति वाले ब्राह्मण वर्ग को ही यज्ञ, वेदों का अध्ययन व उच्च शिक्षा के अधिकार प्राप्त थे। निम्न वर्ग के लोग इनसे वंचित थे तो इस समय एक ऐसे धर्म की आवश्यकता थी

---

[119] अनिता भंडारी, 'जैन धर्म का भारतीय संस्कृति को योगदान', जिनवाणी पत्रिका, वर्ष -41, अंक - 1, पृ. 50

जो सभी को समान अधिकार प्रदान कर सके और इस आवश्यकता को गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म के द्वारा पूर्ण किया।

गौतम बुद्ध जो ज्ञान प्राप्ति से पूर्व सिद्धार्थ के नाम से जाने जाते थे। जीवन में दुःख, वृद्धावस्था और रोगों से मुक्ति प्राप्त करने का उपाय न देखकर बहुत चिंतित रहते थे और अंत में बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु के दुःखों से प्रेरित होकर आनंद व ज्ञान की खोज में उन्होंने गृह त्याग दिया। और अंततः उन्हें बोधगया में पीपल के पेड़ के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ और सिद्धार्थ गौतम बुद्ध हो गये। उन्होंने सर्वप्रथम सारनाथ में उपदेश दिया जो उनका धर्मचक्र प्रवर्तन था। उसके बाद 45 वर्षों तक घूम-घूमकर भ्रमण करते हुए अपने धर्म का प्रचार-प्रसार किया और ज्ञान का प्रकाश फैलाया। दुःख से मुक्ति प्राप्त करने के लिए बुद्ध ने चार बातें बताई हैं, जिन्हें आर्य सत्य कहा जाता है। उन्होंने बताया कि मनुष्य दुःखी रहता है और यह दुःख अकारण ही नहीं है बल्कि इस दुःख का निरोध संभव है।

बुद्ध के अनुसार दुःख एक आर्य सत्य है। जन्म, जरा, व्याधि, मरण सभी में दुःख है। प्रिय लोगों से बिछुड़ना और अप्रिय लोगों से मिलना भी दुःख ही है। दुःख समुदाय ही आर्य सत्य है। मनुष्य को किसी न किसी कारण से दुःख होता ही रहता है और इसका मूल कारण है तृष्णा। तृष्णा और दुःख में कार्य-कारण सम्बन्ध है। जब-जब तृष्णा की पूर्ति में बाधा होती है तभी मनुष्य दुःखी होता है। दुःख निरोध आर्य सत्य है। दुःख को दूर करने के लिए उसके कारणों को दूर करना बहुत जरूरी है और इसके लिए तृष्णा का त्याग करना जरूरी है। चौथा आर्य सत्य दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद आर्य सत्य है। इसमें सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि इन आठ प्रकार के आचरणों को बताया गया है जिनका पालन करके मनुष्य दुःख के कारणों को खत्म कर सकता है। "बुद्ध ने अपने अनुयायियों से यह कहा कि मेरे उपदेशों पर विश्वास रखो, बुद्धि से उन्हें समझने की कोशिश करो और हर एक उपदेश को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करो, पवित्र-से-पवित्र जीवन बिताओं और नियमित रूप से ध्यान और समाधि करो।"[120]

---

[120] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ. 123

बुद्ध संसार और उसके समस्त तत्वों को क्षणिक मानते थे। वे ईश्वर में भी विश्वास नहीं करते थे उनके अनुसार सृष्टि का कर्ता ईश्वर न होकर कार्य-कारण सम्बन्ध है जिससे उसकी उत्पत्ति हुई है। वे संसार को क्षणिक मानते थे और यह क्षणिकवाद ही बौद्ध धर्म और दर्शन का प्रतीक है। बौद्ध धर्म आचार धर्म है और उसमें सुख और दुःख की प्राप्ति कर्म और चरित्र पर ही निर्भर है। इसमें भी उन्होंने कर्म को प्रमुख माना। दिनकर गाँधी और बुद्ध की तुलना करते हुए लिखते हैं कि "मानना पड़ेगा कि बुद्ध ने कर्म को बहुत सोच-समझकर अपना धर्म-मार्ग बनाया था। गाँधीजी और बुद्धदेव में जो समानता है, यह सिर्फ इस कारण नहीं कि दोनों ही सुधारक अहिंसा और मैत्री के पुजारी थे, बल्कि, मुख्यतः इसलिए कि दोनों का विश्वास ज्ञान की अपेक्षा कर्म पर अधिक था।"[121]

बौद्ध धर्म जन्मान्तरवाद और कर्मफलवाद को लेकर वैदिक धर्म से काफी समानता रखता है। उनके अनुसार जीवन दुःख है और इस दुःख का भोग करने के लिए बार-बार जन्म लेना पड़ता है। मनुष्य के भीतर जो वासनाएँ है उन वासनाओं के कारण ही वह विभिन्न कर्मों में प्रवृत्त होता है और इन कर्मों के अनुसार ही उसे पुनर्जन्म मिलता है। यह जन्म-मरण का प्रवाह निरंतर चलता रहता है और इसकी मुक्ति का उपाय है मोक्ष या निर्वाण। "दुःख दूर करने का एकमात्र उपाय इच्छाओं का त्याग है। इच्छाओं का त्याग करने पर निर्वाण प्राप्त होता है। निर्वाण का अर्थ बुझ जाना है। निर्वाण प्राप्त कर लेने पर पुनर्जन्म नहीं होता और मनुष्य सारे बन्धनों से छुटकारा पा जाता है।"[122]

बुद्ध के अनुयायी भिक्षुक और उपासक दो भागों में बँटे हुए थे। इसमें बुद्ध, धम्म और संघ तीन रत्न थे। उपासक और भिक्षुक दो प्रकार के संघ के सदस्य हुए जिसमें भिक्षुओं के लिए शरणत्रय और दस शिक्षापदों का विधान किया गया था। इसमें भिक्षुओं के लिए दस और गृहस्थों के लिए पाँच व्रतों का पालन करना अनिवार्य था। "दस शिक्षापदों में अहिंसा-व्रत को सर्वोच्च स्थान मिला। इसके सिवा सत्य, अस्तेय(चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह(संग्रह न करना), नियत समय के अतिरिक्त भोजन न करना, नृत्य, गीत आदि से विरत रहना, माला, ग्रन्थ आदि का सेवन न करना, दूसरों के द्वारा दी गई वस्तु का त्याग तथा कोमल शय्या पर न सोना- ये अन्य शिक्षापद हैं।"[123]

---

[121] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ. 126
[122] रामजी उपाध्याय, 'भारतीय धर्म और संस्कृति', पृ. 32
[123] रामजी उपाध्याय, 'भारतीय धर्म और संस्कृति', पृ. 33

बुद्ध की मृत्यु के बाद बौद्ध धर्म में दो शाखाएँ हीनयान और महायान बन गई। हीनयान में तप, आत्मनिग्रह को आवश्यक मानते हुए आध्यात्मिक और नैतिक सिद्धांतों पर अधिक बल दिया गया। इसमें बुद्ध के उपदेशों पर चलते हुए निजी निर्वाण प्राप्त करने की बात की गयी। महायान में साधक मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन करते हुए दान, शील, प्रज्ञा, वीर्य, और ध्यान के द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।

बुद्ध के वचनों का संग्रह करने के लिए राजगृह, वैशाली, पाटलीपुत्र और कश्मीर में चार बौद्ध संगीति भी हुई। जिनमें बुद्ध के उपदेशों का संग्रह तीन पिटक विनय पिटक, धर्मसूत्र पिटक व अभिधम्म पिटक में किया गया।

बौद्ध धर्म के सांस्कृतिक योगदान को अगर देखा जाये तो बौद्ध धर्म ने चित्रकला, स्थापत्य कला व मूर्तिकला की अभिवृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। गांधार, मथुरा, साँची, अजंता, एलोरा आदि केन्द्रों में बौद्ध धर्म से सम्बंधित अनेक कलाओं का विकास हुआ। जिनका उपयोग धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए किया गया था। मूर्तिकला के विकास में भी बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूर्तियाँ अशोक के स्तम्भों पर मिलती है। बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए अशोक ने असंख्य स्तूप, चैत्य व गुफाएँ बनवाई। अजंता की चित्रकारी, कार्ले के गुहामंदिर, साँची, अमरावती और भरहुत के स्तूप बौद्ध धर्म के अन्यतम नमूने है। "अजंता की चित्रशैली सफल है। चित्रों में भावों की अभिव्यक्ति बड़ी कुशलता से की गई है तथा शारीरिक सुन्दरता का रमणीय चित्रण है। अजंता की गुफाएँ वास्तुकला की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं।"[124]

सिख धर्म :-

सिखों के प्रथम गुरु, गुरुनानक देव ने सिख धर्म का प्रवर्तन किया। उन्होंने ईश्वर को निर्गुण, निराकार मानकर मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए हिन्दू-मुसलमान के अन्धविश्वासों का जमकर विरोध किया। उन्होंने अपने उपदेशों के माध्यम से भाईचारा, सहिष्णुता, प्रेम व भक्ति का प्रकाश फैलाया तथा समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, रूढ़ियों, पाखंडों व जाति-पांति का विरोध करते हुए

---

[124] रामजी उपाध्याय, 'भारतीय धर्म और संस्कृति', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 36

मानव की समानता पर बल दिया। सिख धर्म में गुरुनानक के बाद नौ गुरु हुए। दसवें व आखिरी गुरु गोविन्द के साथ ही गुरु की परम्परा समाप्त हो गई।

नानक किसी भी धर्म से घृणा नहीं करते थे। सभी धर्मों का आदर करते हुए उनमें व्याप्त बुराईयों का उन्होंने विरोध किया। गृहस्थ और संन्यासी का भेद मिटाकर साधना और चरित्र-निर्माण पर उन्होंने बल दिया। "सिक्ख धर्म में विशेष ध्यान चरित्र-निर्माण पर दिया गया, जिससे लोग अपने कर्तव्य का पालन कर सकें। गुरुनानक ने जाति-व्यवस्था को थोथा बताया और कहा कि प्रत्येक व्यक्ति में ब्राह्मणों का ज्ञानयोग, क्षत्रियों का कर्मयोग, वैश्यों की व्यवहार कुशलता तथा शूद्रों की समाज सेवा एक साथ रहनी चाहिए। मनुष्य को कठिन से कठिन परिस्थिति में निडर और शांत रहना चाहिए।"[125] नानक ने एक संगत का निर्माण किया जिसमें धर्म, जात-पांत, देश, वर्ण आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता था।

इस्लाम धर्म :-

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद साहब थे। 40 वर्ष की उम्र में ज्ञान प्राप्त होने के बाद अल्लाह के पैगम्बर के रूप में उन्होंने इस्लाम धर्म चलाया। यह उन्होंने सोच-समझकर नहीं निकाला था बल्कि उन्हें समाधि की अवस्था में इसका दर्शन हुआ था। जिसे इलहाम कहा जाता है। मुहम्मद साहब को इलहाम होने के बाद लोग उन्हें पैगम्बर, नबी या रसूल कहने लगे थे। भगवान का सन्देश पृथ्वी पर लाने वाले पैगम्बर। नबी अर्थात् किसी उपयोगी परम ज्ञान की घोषणा करने के कारण उन्हें नबी कहा गया। रसूल भी दूत को ही कहा जाता है। मोहम्मद साहब ने मनुष्य और परमात्मा के बीच मध्यस्थ या धर्मदूत का काम किया था। इस्लाम धर्म का अर्थ बताते हुए दिनकर लिखते हैं कि "इस्लाम अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'शांति में प्रवेश करना' होता है- अत: मुस्लिम वह व्यक्ति है, जो "परमात्मा और मनुष्य के साथ पूर्ण शांति का सम्बन्ध" रखता हो। अतएव, इस्लाम शब्द का लाक्षणिक अर्थ होगा- वह धर्म जिसके द्वारा मनुष्य भगवान की शरण लेता है तथा मनुष्यों के प्रति अहिंसा एवं प्रेम का बर्ताव करता है।"[126]

---

[125] रामजी उपाध्याय, 'भारतीय धर्म और संस्कृति', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 98
[126] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 211

इस्लाम का मूल है कि अल्लाह के सिवा कोई पूजनीय नहीं है और उसके रसूल मुहम्मद है और प्रत्येक मुसलमान के लिए पाँच धार्मिक कार्य निर्धारित किये गये हैं – अल्लाह एक है का कलमा पढ़ना, दिन में पाँच वक्त की नमाज पढ़ना, रमजान के महीने में रोजा रखना, जकात अर्थात् अपनी आय का ढाई प्रतिशत दान में देना, हज करना अर्थात् मक्का मदीना के तीर्थों पर जाना।

इस्लाम एकेश्वरवाद में विश्वास करता है। कुरान में इसी बात पर जोर दिया जाता है कि ईश्वर एक है और उसके सिवा किसी और की पूजा नहीं की जानी चाहिए। कुरान में देवदूत या फरिश्तों की भी मान्यता है जो मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति करने में सहायक होते हैं। "कुरान में देवों और देव-दूतों का नाम 'मलक' या फ़रिश्ता है। मलकों और फ़रिश्ता को हम देख नहीं सकते, न वे प्रकट होकर मनुष्यों से सम्पर्क ही रख सकते हैं। अगर मलकों में मनुष्यों के बीच रहकर काम करने की शक्ति होती तो नबी या पैगम्बर मनुष्य नहीं, मलक ही होते। भगवान मुहम्मद साहब को पैगाम भेजते थे, वे पैगाम कभी-कभी जिबरील ले आते थे।"[127]

इस्लाम पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता है। जिसमें हम न तो पहले जन्मे थे और न ही बाद में जन्म लेंगे। इसमें तो 'बरजख' को माना गया है, जिसमें मरने के बाद जीवन समाप्त न होकर कब्र से ही दूसरे जीवन का आरम्भ होगा। इसमें आत्मा को क़यामत के दिन का इन्तजार करना पड़ता है। क़यामत का दिन आने के बाद उसे अल्लाह के पास जाना पड़ता है। जहाँ उसे उसके पाप, पुण्य के हिसाब से पुण्य अधिक होने पर स्वर्ग और पाप अधिक होने पर (दोजख) नरक मिलता है। "बरजख का शाब्दिक अर्थ दो वस्तुओं के बीच खड़ी होने वाली कोई बाधा या वस्तु है। समझा यह जाता है कि मनुष्य के पार्थिक जीवन के बाद एक और जीवन आएगा। तब तक जीवन को कब्र में पड़ा रहना होगा। बरजख के मानी कब्र के होते हैं। अतएव, इस प्रसंग में बरजख से अभिप्राय उस लम्बी अवधि से है, जिसमें मनुष्य को अपना पार्थिव जीवन समाप्त करके क़यामत के इन्तजार में कब्र में पड़ा रहना हैं।"[128]

इस्लाम के शिया और सुन्नी दो समुदाय है। हजरत अली के पक्षपाती लोगों को शिया और बाकी लोगों को सुन्नी कहा जाता है। भारतीय और अरब के व्यापारी व्यापार के दौरान एक-दूसरे के

---

[127] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली,, पृ. 212
[128] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 213

रहन-सहन और आचार-विचारों से प्रभावित हुए। महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी ने भी भारत पर आक्रमण किए और धीरे-धीरे भारत में मुसलमानों का शासन स्थापित हो गया। 17वीं शताब्दी में भारत में मुग़ल साम्राज्य स्थापित होने के बाद मुसलमान शासकों ने अपने धर्म और संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। अपने आगमन से लेकर आज तक इस्लाम हर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति को प्रभावित कर रहा है। कला, संगीत, साहित्य, स्थापत्य सभी क्षेत्रों में इस्लामी संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ा। "उन्होंने जाति-पांति का खोखलापन बताकर भक्ति द्वारा सर्वोच्च पद की प्राप्ति संभव बतलाई। मुसलमानों के सूफी सम्प्रदाय का इन संतों पर प्रभाव पड़ा और उन्होंने मनुष्य-मनुष्य के बीच के भेदभाव को समाप्त करने की कोशिश की। इस प्रकार इस्लाम के प्रभाव से हिन्दू-समाज में एक नई चेतना जागी तथा निम्न वर्ग के हिन्दुओं में नयी आशा, उत्साह और विश्वास का संचार हुआ। इसके सिवा इस्लाम के प्रभाव से हिन्दुओं में निर्गुण उपासना बढ़ी और मूर्तिपूजा कम हुई।"[129]

इस्लाम का भारतीय भाषाओं पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। इसके कारण अरबी, फारसी व उर्दू भाषा के काफी शब्द हिंदी में प्रचलित हो गए। इस्लाम के बाद ही सूफी सम्प्रदाय का जन्म हुआ। यह इस्लाम में रहस्यवादी विचारों एवं उदार प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। संसार से विरक्ति, एकांतमय जीवन और ईश्वर की प्रति अनुराग सूफियों के आचरण का मुख्य आधार है। सूफी धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दिनकर लिखते हैं कि "जो लोग कुरान के उस पक्ष से प्रभावित थे जो ईश्वर-समाधि, ईश्वर चिंतन और ईश्वर के पास पहुँचने पर जोर देता था, वे लोग धर्म की औपचरिकता के घेरे से निकलकर सूफी हो गए। सभी धर्मों के समान इस्लाम का जन्म भी आध्यात्मिक बैचैनी से हुआ था। यही बैचेनी सिमटकर सूफियों में चली गई।"[130]

सूफी सम्प्रदाय के अनुसार रूह अलहक्क या परमात्मा से बिछुड़ गई और उससे मिलना ही उसका उद्देश्य है। सूफी अल्लाह के साकार और निराकार दोनों रूपों को मानते हैं। इसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति की जाती है।

सूफी धर्म इस्लाम धर्म का अंग होने बावजूद इसमें कट्टरता का अभाव है और इस धर्म के मूल में प्रेमतत्व है जिसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम को प्राप्त करने पर बल दिया

---

[129] रामजी उपाध्याय, 'भारतीय धर्म और संस्कृति', पृ. 66
[130] रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ. 221

गया। इसके चार सम्प्रदाय प्रसिद्ध है- ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती का 'चिश्ती सम्प्रदाय', जियाउद्दीन का 'सुहावार्दिया सम्प्रदाय', अब्दुल कादिर जिलानी का 'कादिरी सम्प्रदाय', बहाउद्दीन नक्शबंद का 'नक्शबंदिया सम्प्रदाय' प्रमुख हैं। सूफी धर्म का भारत में आगमन 9वीं-10वीं शताब्दी में हुआ और इसके प्रचार-प्रसार का श्रेय ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती को दिया जाता है।

सूफी धर्म का सांस्कृतिक प्रभाव अगर देखा जाए तो उससे मध्य भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन में एक नवीन शक्ति और गतिशीलता का संचार हुआ। इन्होंने समाज की आर्थिक और धार्मिक विषमताओं को दूर कर मानवीय एकता पर बल दिया। इन्होंने जन समाज को ईश्वर के प्रेम से परिचित कराने के साथ-साथ समाज और धर्म से बनी खाईयों को अपनी मधुर वाणियों से पाटा और व्यक्तिगत चरित्र और चिंतन को सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं से अधिक महत्व प्रदान किया। सामाजिक स्तर पर भी उन्होंने जाति प्रथा का पुरजोर विरोध किया।

सांस्कृतिक दृष्टि से सभी ललित कलाओं को प्रेरित करने के साथ-साथ उन पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। प्रेम और सौन्दर्य के बाद उन्होंने सबसे अधिक महत्व संगीत को दिया। कुप्रथाओं, आडम्बरों व पृथकतावादी तत्वों का विरोध करते हुए पारस्परिक सहयोग और समन्वय की भावना को महत्व दिया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों में ही समन्वय स्थापित करते हुए एक ऐसे समाज की कामना की जिसमें सभी को मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का पूर्ण अवसर प्राप्त हो सकें।

ईसाई धर्म :-

ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह थे और इस धर्म की स्थापना ईसा मसीह के द्वारा जेरुसलम में की गई थी। इस धर्म का मूल दर्शन एक ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास है जिसने इस संसार का निर्माण किया है। सृष्टि पर सहायता की आवश्यता होने पर वह अपना दूत यहाँ भेजता है। यीशु एक ऐसे ही दूत या मसीहा थे जो लोगों की ईश्वर प्राप्ति में सहायता करना चाहते थे।

ईसाईयों के पवित्र ग्रन्थ को बाईबिल कहा जाता है। इस धर्म की शिक्षा है कि सभी मनुष्य समान है और मनुष्य को मनुष्य से घृणा नहीं करनी चाहिए। दया, प्रेम और सहनशीलता इस धर्म के

प्रमुख सिद्धांत है और मानव सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। ईसा ने आचरण की पवित्रता और अहिंसा पर सबसे अधिक बल दिया।

2.8 कला एवं संस्कृति :-

किसी भी देश की संस्कृति स्वयं को धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत, स्थापत्य एवं कला के रूप में अभिव्यक्त करती है जिसमें भारतीय संस्कृति के उन्नयन एवं उसे सतत रूप से अक्षुण्ण बनाये रखने में यहाँ की पारम्परिक कलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कला संस्कृति में एक मूल्यवान विरासत है। जिसका सृजन और उन्नयन मानव विकास के साथ-साथ होता रहा है। वास्तव ने कला हमारी संस्कृति के विविध पक्षों को प्रतिबिम्बित करने का सशक्त माध्यम रही है जिसमें संस्कृति की अभिव्यक्ति से ही कला का जन्म होता है। संस्कृति अगर मन व प्राण है तो कला उसका शरीर या मूर्त रूप है। कलात्मक रूपों को ही संस्कृति कहा जाता है और कला के द्वारा ही संस्कृति विस्तृत होती है।

भारतीय कला का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। जिसके कारण नगर, गाँव सभी जगह इसके सूत्र व्याप्त है जैसे बंगाल की अल्पना, राजस्थान की मेंहदी व मांडने, महाराष्ट्र की रंगोली के आकृतिपरक अलंकरण व साँची और भरहूत के महान स्तूप, अजंता के भित्ति चित्र व गुफाएँ, वेरूल के कैलाश मंदिर कला के प्रमुख केंद्र हैं। संस्कृति ने अपने लिए आवश्यक कलाओं की उद्भावना और सृष्टि की है। कला को श्री व सौन्दर्य से जोड़ते हुए वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं कि "कला श्री व सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने का साधन है। प्रत्येक कलात्मक रचना में सौन्दर्य व श्री का निवास रहता है। जिस सृष्टि में श्री नहीं वह रसहीन होती है। जहाँ रस नहीं, वहाँ प्राण भी नहीं रहता। जिस तरह रस, प्राण और श्री तीनों एकत्र रहते हैं वहीं कला रहती है।"[131] कला की उत्पत्ति का मूल संस्कृति ही होती है। प्रत्येक युग की कला उस युग की सांस्कृतिक विकास से अभिव्यंजना की सामग्री लेती है। चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य में दया, क्षमा, वीरता जैसे गुणों का ही उद्घाटन किया जाता है जो कि किसी भी समय व समाज विशेष की संस्कृति को प्रकट करते हैं। कला

[131] वासुदेवशरण अग्रवाल, 'कला एवं संस्कृति', पृ. 195

अनुभूति की अभिव्यंजना का साधन है जिसमें कलाकार विशिष्टतापूर्वक किसी वस्तु का निर्माण करता है।

2.9 संस्कार और संस्कृति :-

अगर देखा जाए तो संस्कृति एक अखंड इकाई न होकर अलग-अलग खण्डों में विभक्त होती है। इन खण्डों के समन्वित होने से संस्कृति का निर्माण होता है जिसका एक प्रमुख अवयव संस्कार भी व्यक्ति में संस्कृति का ही प्रतिबिम्ब होता है। संस्कृति और संस्कार दोनों ही परस्पर अंत:सबंधित रहते हैं। मनुष्य को संस्कारित करने व व्यक्तित्व के उत्थान के लिए उसके पैदा होने से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कारों का नियोजन किया गया है। जिसमें व्यक्तियों को संस्कारित करने में संस्कृति एक सांचे का काम करती है। जिससे उसका सामाजिक और व्यक्तिगत विकास आसानी से हो सकें। संस्कारों से आत्मा और अंत:करण की शुद्धि होती है। यह व्यक्ति के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक व धार्मिक परिष्कार के लिए की जाने वाली क्रिया है। जिसका मूल विशुद्ध पवित्रता और विघ्न बाधाओं व अशुभ शक्तियों से जीवन की रक्षा करना है।

संस्कार शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ को देखा जाए तो संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति 'सम' उपसर्ग 'कृ' धातु व 'धञ' प्रत्यय से हुई है। जिसका अर्थ शुद्धता, पवित्रता, धार्मिक विधि-विधान के संदर्भ में किया जाता है। अंग्रेजी में इसके लिए 'सैक्रामेंट' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिसका अर्थ धार्मिक विधि-विधान या ऐसे कार्य से लिया जाता है जो आंतरिक सौन्दर्य के आत्मिक सौन्दर्य या बाह्य प्रतीक माने जाते हैं। संस्कार शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। मीमांसा में 'विधिवत शुद्धि' तो अद्वैत वेदांत में 'आत्म व्यंजक शक्ति' को संस्कार मानते हैं। "संस्कृति शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। संस्कृत शब्द का भी यही अर्थ है। अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' में वही धातु है जो 'एग्रीकल्चर' में है। इसका भी अर्थ 'पैदा करना व सुधारना' है। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं।"[132]

---

[132] बाबू गुलाबराय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', पृ. 01

संस्कारों की संख्या को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहे हैं। इनकी संख्या मनु ने 12, व्यास ने 16, गौतम ने 40, वैखानक ने 18 व पाणिनि ने 13 मानी हैं। मतवैभिन्न होने के बावजूद मूल रूप से सभी धर्म शास्त्रकार संस्कारों की संख्या 16 मानते हैं। जो निम्न प्रकार से है:-

गर्भाधान संस्कार :-

हिन्दू धर्म में गर्भाधान पहला संस्कार है जिसमें विवाहोपरांत पुरुष स्त्री में अपना बीज स्थापित करता है और नस्ल को उत्कृष्ट करने का कार्य इस संस्कार द्वारा किया जाता है। गर्भाधान के लिए रजोदर्शन के बाद चौथी रात्रि से लेकर सोलहवीं रात्रि तक के समय को उपयुक्त माना जाता है और गर्भाधान के लिए दिन का समय उपयुक्त न मानकर अर्द्ध रात्रि के समय को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। स्वस्थ, सुन्दर, सुशील संतान की प्राप्ति के लिए माता-पिता को भी उदात्त व आदर्शमय होना चाहिए। गर्भाधान के लिए कई बातों का ध्यान रखने की बात शास्त्रों में की गयी है। मूल-नक्षत्र को वर्जित किया गया है व चंद्रमा की स्थिति व मासिक धर्म के कितने दिन बाद गर्भ धारण किया जा सकता है, व करना चाहिए। इन सब बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

पुंसवन संस्कार :-

यह गर्भ ठहरने के तीसरे माह में पुत्र प्राप्ति की कामना के लिए किया जाता है। पुंसवन का शाब्दिक अर्थ ही पु(पुरूष संतति) + सवन(पैदा करना) है। इस संस्कार से तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्र प्रदान करने वाले देवताओं को प्रसन्न किया जाता है। इस संस्कार में पुरुषत्व का प्रतीक माने जाने वाले वृक्ष बड़ व गूलर की छाल व फूलों का रस गर्भवती स्त्री के नाक के दाहिने छिद्र में डाला जाता है ताकि गर्भपात न हो और पुत्र की प्राप्ति हो।

सीमन्तोन्न्यन संस्कार :-

गर्भवती स्त्री को अमंलकारी शक्तियों से बचाने`के लिए चौथे, छठे व आठवें मास में यह संस्कार किया जाता है। इस समय बच्चे के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास के लिए गर्भवती स्त्री को खुश रखा जाता है तथा पुरुष मातृ पूजा करके प्रजापत्य की आहुति देता है। पूजा में गर्भिणी

स्त्री को दुष्ट शक्तियों से दूर रखने के लिए वह प्रतीक के रूप में तीन गुच्छे, सफ़ेद चिह्न के तीन शाही कांटे भी अपने पास में रखता है।

जातकर्म संस्कार :-

यह संतान जन्म के पश्चात किया जाने वाला संस्कार है। यह संस्कार बच्चे का नाभिच्छेदन करने व अनिष्टकारी शक्तियों से बचाने के लिए किया जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से इसमें बच्चे के कान, नाक व रंध्रों को साफ करके उसे सोना, घी व शहद को गृह्योक्त मंत्रों से बच्चे को प्राशन कराया जाता है।

नामकरण संस्कार :-

शिशु का नाम रखने के लिए जन्म के 10वें व 12वें दिन धार्मिक क्रियाओं के साथ शुभ तिथि, नक्षत्र व मुहूर्त में नाम का निर्धारण किया जाता है। ब्राह्मण ग्रंथों, गुह्य सूत्रों व स्मृतियों में नामकरण संस्कार का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें माँ अपने बच्चे को कपड़े से ढँक कर पिता की गोद में देती है जिसके बाद विभिन्न देवताओं की पूजा करके सोम, अग्नि की आहुति प्रदान की जाती है व देवताओं के नाम, मास के नाम व नक्षत्र के नाम व व्यावहारिक नाम संतान को प्रदान किये जाते हैं।

निष्क्रमण :-

इस संस्कार में बच्चे को चौथे मास में पहली बार घर से बाहर निकालकर सूर्य व चन्द्र के दर्शन कराये जाते हैं। निष्क्रमण का मूल अर्थ ही है- घर से बाहर निकालना। इससे पहले बच्चे व माँ को अन्दर ही रखा जाता है बाहर आने की अनुमति उन्हें नहीं होती। इस संस्कार के बाद नवजात शिशु को प्रकोष्ठ से बाहर निकालकर उन्मुक्त वातावरण व सूर्य व चंद्रमा के प्रकाश में स्वछंद विकास के लिए रखा जाता है।

अन्नप्राश्न संस्कार :-

इस संस्कार में बच्चे के जन्म के छठे मास में पहली बार अन्न का आहार दिया जाता है। शिशु के दांत निकलने के बाद उसे घी, दही, दूध, खीर, चावल का पानी या कुछ तरल प्रदार्थ चटाया या खिलाया जाता है। इसके लिए कुछ मन्त्रों का उच्चारण भी किया जाता है।

चूडाकर्म संस्कार :-

इसे मुंडन संस्कार भी कहा जाता है। शिशु के पहले या तीसरे वर्ष में सिर के बाल पहली बार मुंडवाने के लिए यह संस्कार किया जाता है। यह संस्कार मंदिर में शुभ दिन के अवसर पर विधिपूर्वक हवन-पूजन के साथ करते हुए देवों की स्तुति व पूजा अर्चना के साथ संपन्न किया जाता है।

कर्णबेध :-

शिशु के शोभन या अलंकरण के लिए तीसरे या पाँचवे वर्ष में यह संस्कार किया जाता है। जिसमें शिशु के कान बिंधे जाते हैं। इसमें विभिन्न धार्मिक क्रियाओं के साथ सोने या चाँदी की किसी नोकदार सुई से किसी वृद्ध महिला या स्वर्णकार द्वारा कानों का छेदन करके कानों में सोने, चाँदी या तांबे की बालियाँ पहनाई जाती है। इस संस्कार से नाड़ी संस्थान अच्छा रहता है।

विद्यारम्भ संस्कार :-

पाँच वर्ष की उम्र में शिक्षा प्रारंभ कराने के उद्देश्य से देवताओं की स्तुति करके गुरु के पास बैठाकर अक्षर ज्ञान कराने हेतु यह संस्कार किया जाता है। इसमें शुभ मुहूर्त के अवसर पर गुरु द्वारा पट्टी पर ओम व स्वास्तिक के बाद वर्णमाला लिखकर बच्चे को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है। इसमें गुरु को वस्त्र, धन, आभूषण आदि उपहार दिए जाते हैं व बच्चे को उसकी रुचि के अनुसार पुस्तकें, खिलौने, भोज्य पदार्थ व अन्य वस्तुएँ दी जाती है।

उपनयन संस्कार :-

प्राथमिक शिक्षा के बाद बालक को शिक्षा के लिए गुरु के पास ले जाकर ब्रह्मचर्याश्रम का प्रारंभ किया जाता है। इसे यज्ञोपवीत संस्कार भी कहते हैं इस संस्कार से बालक को वर्ण और जाति

का सदस्य बनाकर द्विज कहा जाता है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों व वैश्यों को ही उपनयन संस्कार का अधिकार दिया गया है। शूद्रों को इस संस्कार का अधिकार नहीं है। उपनयन का शाब्दिक अर्थ ही है 'गुरु के समीप जाना'। जिसमें बच्चे को अनुशासन में रहकर समाज के अनुरूप आचरण करना व मन्त्रों को सिखाया जाता है। इस संस्कार के बाद नियमित, गंभीर नव अनुशासित जीवन का आरम्भ होता है। हिन्दू समाज में यज्ञोपवीत संस्कार का महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें बालक को तीन सूत्रों वाला धागा (जनेऊ) मन्त्रों के साथ पहनाया जाता है। जीवन को अनुशासित करने के लिए इस संस्कार का महत्वपूर्ण योगदान है।

वेदारम्भ संस्कार :-

वेदों के पठन-पाठन का अधिकार लेने के लिए यह संस्कार किया जाता है। वैदिक युग में वेदों का अध्ययन करना अनिवार्य था। इसमें वेदों के अध्ययन से पूर्व वेदांगों का अध्ययन भी किया जाता है।

केशांत :-

इसमें सोलहवें वर्ष में ब्रह्मचारी के बाल कटवाए जाते हैं। इसमें दाढ़ी मूंछ आदि का पहली बार क्षौर कर्म किया जाता है। मनु के अनुसार ब्राह्मण का सोलहवें, क्षत्रिय का बाईसवें वर्ष में व वैश्य का चौबीसवें वर्ष में केशांत संस्कार किया जाना चाहिए।

समावर्तन या दीक्षांत संस्कार :-

यह संस्कार शिक्षा की समाप्ति पर किया जाने वाला संस्कार है। इसमें विद्यार्थी अपने आचार्य को गुरुदक्षिणा देकर आशीर्वाद ग्रहण करके घर लौटता है। यह संस्कार वेदाध्ययन पूर्ण होने के बाद शिक्षा की पूर्णता और गृह की ओर प्रत्यावर्तित होने के भाव का प्रतीक है। इसमें ब्रह्मचारी दोपहर के समय आचार्य को प्रणाम करके हवन करता है उसके बाद स्नान करके अपनी पवित्रता, यश, ऐश्वर्य के लिए देवताओं से प्रार्थना करता है। इसमें यज्ञ करके प्रार्थना की जाती है कि नवस्नातक को अधिक से अधिक शिष्य प्राप्त हो। इसके बाद स्नातक गुरु का आशीर्वाद लेकर घर आता है।

विवाह :-

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के अवसर पर किया जाने वाला यह सबसे महत्वपूर्ण और गौरवशाली संस्कार माना जाता है। इस संस्कार के बाद वैयक्तिक स्थिति समाप्त होकर उसकी नयी सामाजिक जिम्मेदारियों का आरम्भ होता है।

अंत्येष्ठी संस्कार :-

यह संस्कार मनुष्य की मृत्यु होने पर उसके पार्थिव शरीर का दाह संस्कार है। यह मनुष्य जीवन का अंतिम संस्कार है। दाह संस्कार करने से पूर्व अनेक धार्मिक कृत्य करके मंत्रोच्चार किए जाते हैं व दाह संस्कार होने या शव के जलने के बाद स्नान करके ही घर लौटते हैं।

इस प्रकार मनुष्य को अच्छे संस्कारों वाला बनाने व उसके सर्वांगीण विकास के लिए सोलह संस्कार किये जाते हैं। ये सभी संस्कार व्यक्ति के विकास में सहयोग प्रदान करते हैं। किसी भी जाति की संस्कृति लंबे समय से चले आ रहे पुरखों के जीवन-प्रवाह के समुदित संस्कार ही है। ये संस्कार जीवन में इस तरह घुल-मिल जाते हैं कि इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। ये संस्कार, आचार, विचार, भाषा, वेश-विन्यास, खान-पान सर्वत्र अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं और यही संस्कृति है।

2.10 सभ्यता और संस्कृति :-

संस्कृति एक ऐसी सामाजिक साधना है, जो अतीत के भव्य चित्रों को लेकर भविष्य के आदर्शों का निर्माण करती है। अगर सभ्यता और संस्कृति की बात की जाए तो सामान्यतया लोग सभ्यता और संस्कृति को एक ही समझ लेते हैं लेकिन ये दोनों एक न होकर अलग-अलग है। मूल रूप से अगर देखा जाये तो सभ्यता संस्कृति का अंग है या संस्कृति का स्थूल व बाह्य रूप है। सभ्यता का आंतरिक प्रभाव ही संस्कृति है। जहाँ सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है वही संस्कृति व्यक्ति के अन्दर का विकास है।

सभ्यता शब्द 'सभा' से बना हुआ है। सभा के अनुकूल जो आचरण व व्यवहार किया जाता है या जिससे व्यवहार और आचरण में सहायता मिलती है, उसे ही सभ्यता कहा जाता है। या सभा

में उपस्थित होने की योग्यता जिसमें होती है उसे ही सभ्य कहा जाता है। "सभ्यता' का अर्थ है मनुष्य के रहन-सहन की श्रेष्ठता। 'सभ्य' शब्द 'सभा' से बना है; सभा का सदस्य या उससे सम्बंधित सभ्य है। सभ्य के गुण या भाववाचक संज्ञा 'सभ्यता' है।"[133] प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्रदार्थों, तत्वों और शक्तियों का उपयोग कर मनुष्य ने भौतिक क्षेत्र में जो असाधारण उन्नति की है, उसी को सभ्यता कहा जाता है। सभ्यता व्यक्ति के बहिरंग से तो संस्कृति अन्तरंग से सम्बंधित होती है। संस्कृति के बाह्य रूप को ही सभ्यता कहा जाता है। माधव गोविन्द वैद्य धर्म, सभ्यता व संस्कृति के अंत:सम्बन्ध के सम्बन्ध में लिखते हैं कि "धर्म' ही संस्कृति की नींव है। धर्म की नींव पर खड़ी इमारत यानी संस्कृति। और इस इमारत की सजावट यानी सभ्यता। स्वच्छता यह संस्कृति है तो इस्त्री (प्रेस) सभ्यता है। आपका रहन-सहन, आपके मकान के आकार-प्रकार, खाने की व्यवस्था, कपड़ों के रंग और रूप, कानून और नियम ये सारे सभ्यता के विषय हैं। सभ्यता बहिरंग है, संस्कृति अन्तरंग है। अन्तरंग और बहिरंग में मेल होना चाहिए।"[134]

सभ्यता शब्द अंग्रेजी भाषा के 'सिविलाइजेशन' शब्द से बना हुआ है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के सिवियस और सिविस शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है- 'मूर्त नगर या नगर के निवासी'। मानव द्वारा निर्मित भौतिक एवं मूर्त वस्तुओं को सभ्यता में सम्मिलित किया जाता है। सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है। मोटर, गाड़ी, पोशाक, खान-पान, रहन-सहन, सड़क, हवाई जहाज तथा अन्य सभी स्थूल वस्तुएँ सभ्यता की ही चीजें हैं। सभ्यता मूर्त होती है और मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने का साधन है। सभ्यता की सभी चीजों को हम देख सकते हैं, छू सकते हैं और इन्द्रियों द्वारा अनुभव कर सकते हैं। सभ्यता संचयी होती है और इसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। सभ्यता को परिभाषित करते हुए मैकाइवर और पेज लिखते है कि "मनुष्य ने अपने जीवन की दशाओं को नियंत्रित करने के प्रयत्न में जिस सम्पूर्ण कला-विन्यास और संगठन की रचना की उसे सभ्यता कहते हैं।"[135] इसी तरह ओडम ने भी लिखा है कि "संस्कृति के अभौतिक पहलू के अति-विशेषीकरण को सभ्यता के नाम से जाना जाता है।"[136]

---

[133] पृथ्वी कुमार अग्रवाल, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा'(2000), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

[134] माधव गोविन्द वैद्य, 'अपनी संस्कृति'(2002), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 6, भूमिका

[135] डॉ. एम. एम. लवानिया, शशि के जैन, 'सैद्धान्तिक समाजशास्त्र', राजपाल एंड संज, दिल्ली, पृ.सं. 58

[136] डॉ. एम. एम. लवानिया, शशि के जैन, 'सैद्धान्तिक समाजशास्त्र', पृ. सं. 58

सभ्यता संस्कृति के बाद की अवस्था है। मनुष्य जैसे-जैसे भौतिक विकास करता है, वैसे-वैसे ही उसकी संस्कृति का विकास होता जाता है। सभ्यता और संस्कृति के अंत:संबंधों को अगर देखा जाये तो कहा जा सकता है कि संस्कृति एक ऐसी चीज है, जिसे लक्षणों के आधार पर जाना तो जा सकता है किन्तु उसको परिभाषित करना इतना आसान नहीं है। संस्कृति वह है जो हममें व्याप्त है। खान-पान, रहन-सहन, ये सभ्यता के अंतर्गत आते हैं परन्तु भोजन करने और कपड़े पहनने की जो कला है वह संस्कृति है। व्यवहार में अगर देखा जाये तो यह जरूरी नहीं है कि सुसभ्य आदमी सुसंस्कृत भी हो। अच्छे कपड़े पहनकर इन्सान सभ्य या सुसंस्कृत दिख सकता है परन्तु जरूरी नहीं है कि अच्छी पोशाक पहनने वाला हर आदमी आचार-विचार और व्यवहार में भी अच्छा हो और यह तबियत से नंगा होना संस्कृति के खिलाफ है। इसको उल्टा करके भी देखा जा सकता है। गली-मुहल्ले या गन्दी बस्तियों में रहने वाले भी व्यवहार में अच्छे हो सकते हैं। इसी सन्दर्भ में दिनकर लिखते हैं कि “कहा नहीं जा सकता कि हर सुसंस्कृत आदमी सभ्य भी होता है, क्योंकि सभ्यता की पहचान सुख-सुविधा और ठाट-बाट हैं। मगर बहुत से लोग हैं जो सड़े-गले झोंपडों में रहते हैं, जिनके पास अच्छे कपड़े भी नहीं होते और न कपड़े पहनने के अच्छे ढंग ही मालूम होते हैं, लेकिन फिर भी उनमें विनय और सदाचार होता है, वे दूसरों के दु:ख से दु:खी होते हैं तथा दूसरों का दु:ख दूर करने के लिए वे खुद मुसीबत उठाने को भी तैयार रहते हैं।”[137]

बहुत-सी आदिवासी जनजातियाँ पूर्ण रूप से सभ्य नहीं है। सभ्यता के सभी मापदंड उनके पास नहीं है परन्तु फिर भी मानवीय मूल्यों की उनमें कहीं कमी नहीं है। वे सुसभ्य तो नहीं है परन्तु सुसंस्कृत है। संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा सूक्ष्म है जबकि सभ्यता स्थूल है जो संस्कृति के अन्दर ही समाहित रहती है जैसे फूलों में सुगंध व्याप्त रहती है। संस्कृति में स्थायीत्व अधिक होता है। संस्कृति को नष्ट करना इतना आसान नहीं है परन्तु संस्कृति इतनी जल्दी नहीं आ सकती। अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस तरह खाते-पीते हैं, रहते हैं, सोचते हैं, समझते हैं उससे ही उनकी संस्कृति का निर्माण होता है। दिनकर लिखते हैं कि “असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी

---

[137] रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति भाषा और राष्ट्र (2008), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 11

संस्कृति हैं, यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं। इसीलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे जीवन में व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है।"[138]

संस्कृति का प्रभाव आत्मा के साथ-साथ जन्म-जन्मान्तर तक चलता रहता है। सभ्यता को माप-निर्धारित करके प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु संस्कृति को माप में निर्धारित करना कठिन है। संस्कृति साध्य है और सभ्यता उसको प्राप्त करने का साधन है। "संस्कृति आत्मा है, सभ्यता देह है। सभ्यता एक शब्द में संस्कृति की अभिव्यक्ति का साधन है। संस्कृति का अपने में स्वयं मूल्य है, साधन की उपयोगिता है या संस्कृति के द्वारा मूल्य है। रेडियो सभ्यता का सूचक है, वह बाह्य है, देह है, साधन है, हमारे विचारों को संसार तक पहुँचाने में उपयोगी है, रेडियो से जो भाषण दिया जाता है- वह संस्कृति का सूचक है, आंतरिक है, आत्मा की अभिव्यक्ति है, साध्य है, इसकी उपयोगिता या अनुपयोगिता की जाँच नहीं होती है प्रत्युत इसका तो सांस्कृतिक पैमाने से मूल्य आँका जाता है।"[139] इन दोनों शब्दों का प्रयोग मनुष्य की उपलब्धियों, कृतियों व परिस्थिति के संदर्भ में किया जाता है।

सभ्यता का सम्बन्ध भौतिकता से है जिससे सभ्यता का विस्तार संस्कृति की अपेक्षा अधिक तेजी से होता है। संस्कृति आंतरिक प्रवृत्ति है जिसका प्रसार धीरे-धीरे होता है। जब दो संस्कृतियाँ मिलती है तो एक-दूसरे को प्रभावित करती है और वे आदान-प्रदान से आगे बढ़ती है। जब दो देश भी आपस में मिलते हैं तो उसमें उनकी संस्कृति का प्रभाव पड़ता है यह आदान-प्रदान की प्रक्रिया ही संस्कृति की जान है और इसी के सहारे वह अपने आप को जिन्दा रखती हैं। वैसे अगर देखा जाये तो सभ्यता का हस्तांतरण संस्कृति की अपेक्षा सरल है। संस्कृति मानव की आत्मा की अभिव्यक्ति है। जब आत्मा इसके लिए प्रयत्न करें तब ही इसका संचार समान मस्तिष्क वालों में होता है। सभ्यता संस्कृति की वाहक है और यह जब तक बाधाएँ नहीं आती तब तक निरंतर प्रगति करती रहती है लेकिन संस्कृति की प्रगति की कोई निश्चित सीमा नहीं है। "सभ्यता को इच्छानुसार

---

[138] रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति, भाषा और राष्ट्र(2008), लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ. सं. 13

[139] डॉ. एम. एम. लवानिया, शशि के जैन, 'सैद्धान्तिक समाजशास्त्र', पृ. 62

ओढ़ा जा सकता है, उसे तत्काल स्वीकार किया जा सकता है जबकि संस्कृति को आत्मसात करने में दीर्घावधि की अपेक्षा होती है।"[140]

सभ्यता और संस्कृति के संबंधों को अगर देखा जाए तो कहा जा सकता है कि दोनों आपस में इतने घुले-मिले हुए है कि इनको विभाजित करना मुश्किल है। जो चीजें सभ्यता में आती है वे संस्कृति के प्रतीक है और इनके निर्माण की जो कला है वह संस्कृति का अंग है। गाड़ी-मोटर, रेल, हवाई जहाज, भोजन, पोशाक ये सब सभ्यता के प्रतीक है परन्तु इनको बनाने में जिस ज्ञान या रुचि का प्रयोग होता है, वह संस्कृति है। गाड़ी सभ्यता का प्रतीक है लेकिन जब कोई भी गाड़ी लाते है तो सबसे पहले जो पूजा-पाठ या तिलक किया जाता है वह संस्कृति का प्रतीक है। इस प्रकार ये दोनों आपस में अन्योन्याश्रित है। संस्कृति का हस्तांतरण पीढ़ियों तक चलता रहता है। संस्कृति भी सभ्यता का मार्गदर्शन करती है और उसे प्रभावित करती है। सभ्यताओं के इतिहास में अगर देखा जाए तो भारतीय सभ्यता की एक विशेष अस्मिता है। भारतीय सभ्यता में एक अविशृंखल निरंतरता है जिससे पाँच हजार वर्ष पुरानी इस सभ्यता में आज भी अतीत और वर्तमान के बीच की कड़ियाँ सशक्त है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सभ्यता का संबंध जहाँ हमारे बाहरी जीवन खानपान, रहन-सहन, बोलचाल से है वही संस्कृति का संबंध सोच, चिंतन और विचारधारा से है लेकिन सभ्यता और संस्कृति में भेद होते हुए भी दोनों परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बंधित है। जहाँ संस्कृति ने मानव को पशुतुल्य जीवन से ऊपर उठाया है वहीं सभ्यता ने उसे श्रेष्ठ प्राणी होने का गर्व प्रदान किया है।

2.11 परम्परा, इतिहास और संस्कृति :-

परम्परा और संस्कृति को अगर देखा जाए तो व्यवहार में दोनों का प्रयोग एक ही अर्थ को ध्वनित करने के लिए कर लिया जाता है फिर भी ये दोनों एक न होकर अलग-अलग है। संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है और परम्पराएँ उसकी अपेक्षाकृत दीर्घजीवी धाराएँ और उपधाराएँ है। परम्परा संस्कृति का वह भाग है जिसमें भूत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य तक एक निरंतरता बनी हुई रहती है। जीवन के हर क्षेत्र में परम्परा समान रूप से प्रभावी हो यह जरूरी नहीं है।

[140] डॉ. मुकेश अग्रवाल, 'भाषा, साहित्य और संस्कृति', पृ. 424

सामाजिक संस्थाओं, व्यवहारों की परम्पराओं में परिवर्तन तीव्र गति से तो धार्मिक विश्वासों, रूढ़ियों की परम्पराओं में परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं। संस्कृति और परम्परा के अंत:सम्बन्ध में श्यामाचरण दुबे लिखते हैं कि "संस्कृति की संज्ञा मानव के सीखे हुए व्यवहार-प्रकारों को दी जाती है। वैसे तो संस्कृति का पूरा स्वरूप ही ऐतिहासिक संदर्भों से निर्मित होता है, किंतु उसके ऐसे मूल्यों और व्यवहार-प्रकारों को, जिनकी जड़े इतिहास में बहुत गहरी हैं, परम्परा कहा जाता है।"[141]

परम्परा और उससे अनुप्राणित संस्कृति मनुष्य के सामूहिक अस्तित्व का अंग होती है। अनेक समसामायिक विचार-प्रक्रियाएँ और सामाजिक प्रक्रियाएँ परम्परा द्वारा ही पोषित और प्रभावित होती है। व्यक्ति और समाज को भी परम्परा से एक विशेष पहचान मिलती है। परम्पराएँ अतीत को वर्तमान और वर्तमान को भविष्य से जोड़ते हुए सामाजिक जीवन को निरंतरता प्रदान करते हुए उसका स्वरूप निर्धारित करती है। परम्पराएँ हर समाज का अविभाज्य अंग होती है। समाज में संस्कृति द्वारा संस्कारित व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों का ताना-बाना ही संस्कृति का निर्माण करता है। ये परम्पराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रहती है और इनके माध्यम से ही संस्कृति के ये तत्व पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज में जीवित रहते हैं। परम्पराओं का महत्व बताते हुए श्यामाचरण दुबे कहते हैं कि "मेरी दृष्टि में शास्त्रीय परम्पराओं और स्थानीय, जातीय एवं क्षेत्रीय परम्पराओं का सहअस्तित्व भारतीय समाज को विश्रृंखलन से बचाए रखने में सहायक हुआ है।"[142]

2.12 संस्कृति का बदलता हुआ संदर्भ :-

आज समय के साथ-साथ स्थितियाँ और परिस्थितियाँ बदल रही है और यह परिवर्तन की गति और प्रक्रिया अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न है फिर भी इसके सर्वव्यापी प्रभाव को सर्वत्र देखा जा सकता है। इसमें अगर हमारी संस्कृति की बात की जाए तो यों तो यह सदा से ही परिवर्तनशील रही है परन्तु पिछले कुछ सालों से इसमें अविस्मरणीय परिवर्तन हो रहे हैं। जो एक तरफ अच्छे माने जा रहे हैं जैसे- विज्ञान और प्रविधि की अविस्मरणीय प्रगति, देशों के बीच परस्पर बढ़ता आर्थिक व राजनीतिक अन्तरावलम्बन और इलेक्ट्रॉनिकी से उपजी जनसंचार क्रांति से देशों

[141] श्यामाचरण दुबे, 'समय और संस्कृति', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 14
[142] वही, पृ. 39

के बीच की दूरियाँ कम होकर विश्व संस्कृति का निर्माण हो रहा है तो दूसरी तरफ ये परिवर्तन खतरनाक भी साबित हो रहे हैं। आज विश्व स्तर पर हो रहे सांस्कृतिक टकराव में पश्चिम की आधुनिकता सर्वाधिक अपनायी जा रही है जो कि व्यक्ति के सामाजिक संबंधों, परिवार, विवाह और यौन व्यवहारों को पारम्परिकता से काटकर अपने अनुरूप बनाने में लगी हुई है। तो दूसरी तरफ भूमण्डलीकरण के इस दौर में अनवरत विस्तारवादी प्रौद्योगिकियाँ उपभोक्तावाद को फ़ैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यह उपभोक्तावाद समस्त संस्कृतियों को किनारे कर जीवन की समृद्धता और उपभोग को ही सर्वश्रेष्ठ साबित करके उसे ही बढ़ा रहा है। जिसके कारण हमारी संस्कृति से जो श्रेष्ठ है वे विशेषताएँ दूर हटती जा रही है। भारतीय संस्कृति में पश्चिमीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति ने एक ओर जहाँ धर्म निरपेक्षता, तार्किकता और व्यक्तिवादी सोच को बढ़ावा दिया, वही दूसरी ओर बढ़ता उपनिवेशवाद बर्बर, आक्रामक व सांस्कृतिक धरोहर के प्रति नफ़रत उत्पन्न करने वाला है।

आज आधुनिकता के व्यापक प्रयोग के कारण हम एक प्रकार के सांस्कृतिक द्विखंडन के दौर से गुजर रहे हैं। सांस्कृतिक आक्रमण का खतरा बढ़ता जा रहा है। यह सांस्कृतिक संकट जीवन जीने में, मानवीय सम्बन्धों में व पारस्परिक व्यवहार में आसानी से देखा जा सकता है। परम्पराएँ अपने आप को नए रूप में अभिव्यक्त करने के लिए आधुनिकता को अपना रही है। धर्म भी राजनीति से साठगाँठ करके सहिष्णुता के सांस्कृतिक आदर्श को ख़त्म कर रहा है। जिससे धर्म, समुदाय और परम्पराओं के बीच भी काफी संघर्ष बढ़ा है।

आज की राजनीति धर्म को आगे करके संप्रभुता बढ़ाने के प्रयास में लगी हुई है। जिसमें सहिष्णुता और सहानुभूति की जगह नफ़रत और अलगाव को प्रतिष्ठा मिली हुई है। इसके कारण आध्यात्मिक उन्नति, सामाजिक समरसता, सर्वधर्म समभाव जैसी सांस्कृतिक विशेषताओं को नुकसान हो रहा है।

आज सांस्कृतिक संकट नकली पश्चिमीकरण, उग्र भोगवाद, धार्मिक रुढ़िवाद, कट्टरवाद, पुनरुत्थानवाद के रूप में दिखाई दे रहा है। पश्चिमी सभ्यता के बाह्य रूपों का अनुकरण सांस्कृतिक प्रगति के नाम पर हमें अपनी जड़ों से काटकर बहुत दूर ले जा रहा है। पूँजीवाद और विशेष रूप से

उसके द्वारा निर्मित उग्र व्यावसायिक और उपभोक्तावादी समाज संस्कृति का नाश कर रहा है। इससे बचने के लिए जितना जरूरी संस्कृति के तत्वों का संरक्षण करना होगा उतनी ही विवेकशीलता से हमें पुरानी संस्कृति के पतनशील तत्वों को त्यागना भी होगा।

जिस तरह जल के बिना मछली के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती उसी तरह संस्कृतिविहीन मनुष्य के जीवन की भी कल्पना नहीं की जा सकती। लेकिन आज संस्कृति के विकास में विज्ञान और तकनीकी की अति विशेषज्ञता मनुष्य को अंधी गली में ले जा रही है। उसकी बढ़ती रफ़्तार विकास के बजाय विनाश के करीब जा रही है। यह युग युद्ध, शक्ति-प्रदर्शन, मिसाईलों व परमाणु बम का युग है जिसमें किसी को भी पल भर में नष्ट किया जा सकता है। इसके लिए संस्कृति, अप-संस्कृति, विसंस्कृति, सांस्कृतिक अतिक्रमण जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। आज विविध विषयों के जानकार, कलाकार, साहित्यकार, रंगकर्मी, पत्रकार सभी सांस्कृतिक अतिक्रमण या संस्कृति के ह्रास की बात कर रहे हैं। इसी अप-संस्कृति के सम्बन्ध में सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं कि "असली अर्थ में यही अप-संस्कृति है जिसमें जीवन के लिए प्रकृतिजन्य सहज प्रवृत्ति का विस्तार नहीं है बल्कि इसके विपरीत सीमाहीन अहम् और उन्माद आदमी को निर्वैयक्तिक नर-संहार और सर्वनाश के लिए प्रेरित करता है। दरअसल ये प्रवृत्तियाँ संस्कृति का आत्यंकित निषेध है जिसको एक शब्द में 'निहिलिज्म' ही कह सकते हैं।"[143]

शरणार्थी और एक देश से दूसरे देश में जाने वाले प्रवासी भी नए समाज में घुल-मिल नहीं पाते है। जिससे प्रजातीय, धार्मिक व आर्थिक संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होती है और वे एक विचित्र से सांस्कृतिक शून्य में जीने के लिए बाध्य होते हैं। वर्तमान समय की स्थितियों के सम्बन्ध में बताते हुए श्यामाचरण दुबे लिखते हैं कि "हम आज की स्थिति का सही आकलन नहीं कर पा रहे हैं और न हमारे पास भविष्य के कोई विश्वसनीय दिशा-संकेत है। हमें न आने वाली समस्याओं का सही पूर्वानुमान है और न ही हम समर्पित और प्रतिबद्ध भावना से इस क्षेत्र में कोई प्रयत्न कर रहे हैं। परिवर्तन के प्रबंधन में भी हमने अपनी क्षमताओं को विकसित नहीं किया है। हमारी निर्णय-शक्ति

[143] सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 87

ही पक्षाघात हो गयी है। लक्ष्यहीन और दुर्बल अवसरवादी नीतियाँ संक्रमण की प्रक्रिया को और भी पीड़ादायक बना रही हैं।"[144]

आज अनेक विघटनकारी शक्तियाँ हमारी सांस्कृतिक नींव पर हमला कर रही है। अपसंस्कृति की विकृतियाँ भी समृद्ध वर्ग से बाहर निकलकर लोक-संस्कृतियों में अपना विष घोल रही है। आधुनिकीकरण के कारण व्यक्ति केन्द्रिकता में बढ़ोत्तरी व सामाजिक सरोकारों का ह्रास हुआ है। धर्मनिरपेक्षता की जगह भी धर्म के आधार सिद्धांतों को विस्मृत करके धर्म विमुखता में बढ़ोतरी हो रही है। तांत्रिक और चमत्कारी बाबाओं में बढ़ोतरी हो रही है। आर्थिक उदारता, खुलापन व वैश्वीकरण के कारण अपसंस्कृति बढ़ रही है। धर्म को राजनीतिक लाभ का साधन बनाकर उसकी उदात्त भावनाएँ व मंगलकारी सिद्धांतों को भुलाकर विवेकहीन धर्मान्धिता को प्रश्रय दिया जा रहा है।

भारतीय समाज और संस्कृति दोनों ही आज संक्रमण के भयावह दौर से गुजर रहे हैं। एक ही समय में दो विपरीत ध्रुवों का आकर्षण एक तरफ पश्चिम की जीवन-शैली तो दूसरी ओर सांस्कृतिक अस्मिता के आग्रह ने उसमें लक्ष्य भ्रम उत्पन्न कर दिया है। आज की इस आधारहीन अवसरवादी संस्कृति में सामाजिक विवेक का ह्रास होकर पारस्परिक सहयोग के मूल्यों व व्यवहार-प्रकार का अवमूल्यन होता जा रहा है और संस्कृति में व्यक्ति केन्द्रिकता बढ़ती जा रही है।

आज सांस्कृतिक परिदृश्य में अप संस्कृतियों के उदय को सबसे भयावह पहलू माना जा रहा है। श्यामाचरण दुबे इसके सम्बन्ध में लिखते हैं कि "बदलते सांस्कृतिक परिदृश्य का सबसे भयावह पहलू है अप-संस्कृतियों का उदय। इनके प्रभाव से समाज के विशेषाधिकार प्राप्त अंग सामाजिक सरोकारों से कट जाते हैं और व्यक्ति-केन्द्रित भोगवादी जीवन-दृष्टि से नियंत्रित होने लगते हैं। यह नव-सुखवाद सुख की व्याख्या करता है। यह 'प्ले ब्वाय' और 'पेंट-हाउस' की संस्कृति है, जो शरीर के अनिर्बंध प्रदर्शन की खोज करती हैं।"[145] यह अपसंस्कृति अनियंत्रित विकास और छद्म आधुनिकता की देन है जिसमें समाज दिशाहीन और धुरीहीन हो जाता है।

---

[144] श्यामाचरण दुबे, 'समय और संस्कृति', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 130
[145] श्यामाचरण दुबे, 'समय और संस्कृति', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 171

आज की संस्कृति की संसाधनों पर निर्भरता से पैदा होने वाली राष्ट्रों की आपसी टकराहट भी मानव प्रजाति को नष्ट होने की दिशा में बढ़ा रही है। संसाधनों के लिए पहले भी विश्वयुद्ध हो चुके हैं। ऐसे संघर्ष महाशक्तियों के प्रभाव, विस्तार व आर्थिक फैलाव के कारण उत्पन्न हो रहे हैं। ऐसे समय में आत्मालोचन करके मनुष्य के इतिहास और वर्तमान स्थितियों को समझते हुए एक नया प्रतिमान तैयार करना है। जिसमें छोटे सांस्कृतिक समुदायों के अस्तित्व को भी कायम रखते हुए स्थानीय समुदाय और परिवेश को जीवन देने वाले तत्वों को केंद्र में रखते हुए तकनीकी, कला, साहित्य, संगीत, स्थापत्य सभी का विकास करना है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज धीरे-धीरे सब कुछ बदल रहा है। जिसमें उपभोक्तावाद की एक नयी जीवन शैली अपना वर्चस्व स्थापित कर रही है। जिसमें सुख और भोग के लिए चारों तरफ उत्पादन बढ़ाने पर बल दिया जा रहा है।

2.13 विदेशों में भारतीय संस्कृति :-

भारतीय संस्कृति ने अपने को भारत की भौगोलिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं रखा है बल्कि विदेशों में भी इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। भारत के धर्म, दर्शन, साहित्य, गणित, कला, विज्ञान सभी बहुमूल्य सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार विश्व के विभिन्न देशों में हुआ है। भारतीयों के विदेशिक व्यापार और प्राचीन भारतीयों की धर्म-प्रचार वृत्ति के कारण भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा है। अशोक ने ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका व दक्षिणी यूरोप में विभिन्न देशों में बौद्ध धर्म प्रचारक भेजकर वहाँ अपने धर्म के केंद्र स्थापित किये थे। साथ ही अपने बेटे महेंद्र और बेटी संघमित्रा को भी बौद्ध धर्म का प्रसार करने के लिए श्रीलंका भेजा था। चीन, कोरिया, जापान, एशिया के देशों में बौद्ध धर्म व जावा, सुमात्रा, बोर्नियों, बाली द्वीपों में ब्राह्मण धर्म के चिह्न आज भी विद्यमान है। फाह्यान, यूएनच्वांग, इत्सिंग आदि बौद्ध चीनी यात्री भारतीय भूमि के दर्शन करने व ज्ञान पिपासा शांत करने के लिए भारत की पवित्र भूमि पर आए थे। इस तरह विदेशी पर्यटकों की भारत यात्रा और भिक्षुओं व धर्म प्रचारकों की विदेश यात्राओं के कारण भारतीय व विश्व संस्कृतियों का आदान-प्रदान हुआ है।

अगर प्रमुख देशों को देखा जाए तो मॉरीशस, गुआना, सूरीनाम, फिजी, ट्रिनिडाड, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, बर्मा, मलेशिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया, श्रीलंका आदि देशों में भारत आज भी विद्यमान है। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भारतीय संस्कृति की झलक प्रमुख रूप से दिखाई देती है। इसमें से लाओस, कम्बोडिया और वियतनाम को इंडो-चायना या हिन्द-चीन कहा जाता है। इसका मुख्य कारण है कि दो हजार वर्ष पहले ही इन देशों में भारत और चीन के लोग जाकर बस गये थे। जिसके कारण हिन्द-चीन के इन देशों पर भारत और चीन का बहुत अधिक प्रभाव है। इसमें भी धर्म की दृष्टि से भारत का प्रभाव यहाँ दिखाई देता है। कम्बोडिया में चंपा (अन्नाम) और कम्हुजा (कम्बोडिया) के प्रसिद्ध राज्यों पर भारतीय मूल के हिन्दू राजाओं का शासन था। भारतीय ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। शासन भी हिन्दू राजव्यवस्था और ब्राह्मणवादी न्यायशास्त्र के अनुसार चलता था। वियतनाम में भी चाम लोगों ने बड़ी संख्या में हिन्दू मंदिरों का निर्माण किया। चाम लोग शिव, गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और लोकेश्वर की पूजा करते थे। दक्षिण पूर्व एशिया में खासकर बर्मा, थाईलैंड, लाओस, कम्बोडिया में लोग एक-दूसरे का अभिवादन पश्चिम के देशों की तरह हाथ मिलाकर नहीं करते बल्कि हाथ जोड़कर नमस्ते की मुद्रा में करते हैं।

विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार का मुख्य कारण है कि भारत से जब मजदूर लोग जहाँ-जहाँ गये तो अपने साथ हनुमान चालीसा, रामचरितमानस, रामायण, या फिर तुलसी, सूरदास, कबीर, रहीम व मीरा के भजनों की अमूल्य निधि भी लेते गये। गाने-बजाने के लिए भी किसी के पास ढोलक, तबला था तो किसी के पास झांझ मंजीरा किसी के पास सारंगी और हारमोनियम। जब भी ये कष्ट में होते रामायण, गीता पढ़कर या भजन-गीत गाकर अपने कष्टों को भुलाने की कोशिश करते थे। मॉरीशस में भी भारतीय संस्कृति की झलक प्रमुख रूप से देखने को मिलती है। 19 वीं शताब्दी में भारतीय मजदूर जब मॉरीशस गये थे तो वे अपने साथ संस्कार, रीति-रिवाज, जीवन-शैली के साथ-साथ भाषा और संस्कृति भी लेकर गये थे। जिसके कारण आज मॉरीशस के लोक साहित्य में भारत के भोजपुरी हिन्दू समाज का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। जिसमें उनकी धर्म, नीति, रीति-रिवाज, समाज, कला, साहित्य, सभ्यता आदि की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मॉरीशस में भोजपुरी अधिकता से बोली जाती है। "ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तो मॉरीशस में भोजपुरी

का महत्व और बढ़ जाता है। जहाँ के लगभग चार लाख से अधिक प्रवासी भारतीय नित्य प्रति भोजपुरी बोलते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हम लोगों ने एक शताब्दी के बाद भी धार्मिक आस्था, आचार-विचार, वेशभूषा, संस्कृति-सभ्यता, कला-कौशल आदि भारत ही जैसे ज्यों के त्यों बनाये रखे हैं। इसका सारा श्रेय भोजपुरी भाषा को है।"[146] जमैका में भी कई सामाजिक और सांस्कृतिक संगठनों ने भारतीय संस्कृति को बचाने की भरसक कोशिश की है। जिनमें सनातन धर्म मंदिर और प्रेमा सत्संग ऑफ जमैका जैसी संस्थाओं ने हिन्दू धर्म को बचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि आज भारतीय संस्कृति भारत तक ही सीमित न रहकर विदेशों में भी अपना वर्चस्व रखती है।

निष्कर्ष :-

सम्पूर्ण अध्याय को सारांश रूप में कहा जा सकता है कि व्युत्पत्तिपरक अर्थ के दृष्टिकोण से देखा जाए तो 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम' उपसर्ग के साथ संस्कृत के 'कृ' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होती है। जिसका अर्थ है- 'संशोधन करना' अथवा 'सुन्दर या पूर्ण बनाना'। इसके अनुसार मनुष्य अपने को पूर्ण बनाने के लिए जो चेष्टायें करता है वे सभी इसके अंतर्गत समाहित है। बहुत-सी बार सुरुचि और शिष्ट व्यवहार के लिए भी संस्कृति शब्द का प्रयोग किया जाता है। संस्कृति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'कल्चर' शब्द का समानार्थी माना जाता है। 'कल्चर' शब्द की उत्पत्ति 'कल्टुरा' और 'कोलेरे' शब्द से हुई हैं। जिसका अर्थ जोतना, तहजीब, शिष्टता, कृषि, खेती, काश्त, उत्पादन, पालन, तरक्की आदि से है।

संस्कृति और समाज का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। संस्कृति समाज को दी हुई वह धरोहर है जिसके कारण समाज का निर्माण होता है। समाज संस्कृति को और संस्कृति समाज को आपस में जोड़ने का कार्य करते हैं। संस्कृति समाज में रहने वाले लोगों के बाह्य और आंतरिक विकास का ही योग है। जब कई लोग निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए मिलजुल कर एक साथ रहते हैं तो उसे

[146] डॉ. कमल किशोर गोयनका, 'मॉरिशस के भोजपुरी लोक-गीतों में संस्कृति', संस्कृति पत्रिका, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, संपादक, मोहिनी हिंगोरानी, मार्च 2005, संयुक्तांक - 89

समाज कहा जाता है और प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार की संस्कृति अवश्य पाई जाती है। जिसमें समय के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं और उन परिवर्तनों का प्रभाव समाज पर पड़ता है।

अगर देखा जाए तो मनुष्य, समाज और संस्कृति तीनों अन्योन्याश्रित है, जिससे एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। समाज वह कड़ी है, जो मनुष्य और संस्कृति दोनों को जोड़ता है। संस्कृति और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जिसके कारण समाज विहीन संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती और न ही संस्कृति विहीन समाज के बारे में सोचा जा सकता है। दोनों एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं।

संस्कृति और साहित्य का अविछिन्न सम्बन्ध है। संस्कृति जहाँ अपने में समाज, धर्म, राजनीति, इतिहास, कला सभी को समाविष्ट किए हुए है तो इन विभिन्न संस्कृति रूपों को अभिव्यक्त करने का मुख्य अंग साहित्य ही है। साहित्य के माध्यम से ही संस्कृति को संचित और संरक्षित किया जाता है, संस्कृति के अभाव में साहित्य निष्प्राण और संबलविहीन हो जाता है। संस्कृति जीवन जीने का एक तरीका है और जीवन का समग्र रूप संस्कृति में समाया हुआ है। साहित्य के द्वारा ही संस्कृति की मूल्यवान संचित उपलब्धियों को लिपिबद्ध करके संरक्षित किया जाता है। साहित्य के अभाव में संस्कृति, विचार, भाव, परम्पराएँ अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती। यह संस्कृति का प्रधान अंग है जिसमें जाति के मनोगत भाव सुरक्षित रहते हैं और उनके माध्यम से ही उसके मनोगत भावों का पता लगाया जाता है। इस तरह साहित्य और संस्कृति दोनों ही एक-दूसरे को समृद्ध करते हैं। प्रत्येक साहित्य एक सांस्कृतिक इकाई की उपज होता है।

संस्कृति और संस्कार दोनों ही परस्पर अंत:संबंधित रहते हैं। मनुष्य को संस्कारित करने व व्यक्तित्व के उत्थान के लिए उसके पैदा होने से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कारों का नियोजन किया गया है। जिसमें व्यक्तियों को संस्कारित करने में संस्कृति एक सांचे का काम करती है। जिससे उसका सामाजिक और व्यक्तिगत विकास आसानी से हो सकें। संस्कारों से आत्मा और अंत:करण की शुद्धि होती है। यह व्यक्ति के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक व धार्मिक परिष्कार के लिए की जाने वाली क्रिया है। जिसका मूल विशुद्ध पवित्रता और विघ्न बाधाओं व अशुभ शक्तियों से जीवन की रक्षा करना है।

भारतीय संस्कृति ने अपने को भारत की भौगोलिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं रखा है बल्कि विदेशों में भी इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों व मॉरीशस, गुआना, सूरीनाम, फिजी, ट्रिनिडाड, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, बर्मा, मलेशिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया, श्रीलंका आदि देशों में भारतीय संस्कृति की झलक प्रमुख रूप से दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बाबूराम, 'निबंधकार वासुदेवशरण अग्रवाल', पृ. 42-43
2. बाबूराम, 'हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ. 93
3. आबिद हुसैन, 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति', पृ. 03
4. रामधारी सिंह 'दिनकर', 'संस्कृति भाषा और राष्ट्र', पृ. 13
5. डॉ. दिनेश मांडोत 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', पृ. 03
6. देवराज, 'भारतीय संस्कृति', पृ. सं. 20
7. देवराज, 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन', पृ. 173
8. प्रभाकर क्षोत्रिय, 'कालिदास में भारतीय संस्कृति', समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2010, पृ. 145
9. देवराज, 'भारतीय संस्कृति', पृ. 42
10. विनय गुप्त, 'राम-कथा परंपरा और भारतीय संस्कृति', श्याम पब्लिशिंग हाउस, जालंधर, पृ. 08
11. डॉ. दिनेश मांडोत 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.सं. 03
12. डी.डी शर्मा, 'उत्तराखंड का लोकजीवन और लोकसंस्कृति'(2012), अंकित प्रकाशन, हल्दवानी, पृ.सं. 184
13. सच्चिदानंद त्रिपाठी, 'भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास'(2012), डी.पी. एस. पब्लिशिंग हॉउस, नई दिल्ली, पृ.सं. 95
14. सच्चिदानंद त्रिपाठी, 'भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास', पृ.सं. 95
15. वही. पृ. 43
16. ओमप्रकाश जोशी, 'विश्व की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति', पृ.सं. 04
17. निर्मल वर्मा, 'भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र'(1991), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 43
18. डॉ. दिनेश मांडोत, 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 05
19. डॉ. चंद्रमोहन अग्रवाल, 'भारतीय संस्कृति की अस्मिता', राहुल पब्लिशिंग हाउस, उत्तरप्रदेश, पृ. 17
20. डॉ. दिनेश मांडोत, 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 9
21. विजय देवेश, 'सांस्कृतिक इतिहास एक तुलनात्मक सर्वेक्षण', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 24
22. वही, पृ. 30
23. डॉ. दिनेश मांडोत, 'भारत की सांस्कृतिक विरासत', अंकित पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 8
24. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ. 14
25. महादेवी वर्मा, भारतीय संस्कृति के स्वर(1984), राजपाल एंड संज, दिल्ली, पृ. 20
26. वही, पृ. 21
27. वही, पृ. 23
28. वही, पृ. 23
29. श्यामाचरण दुबे, 'समय और संस्कृति', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 81
30. सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 06
31. वही, पृ. 06
32. वही, पृ. 42
33. वही, पृ. 45-46
34. वही, पृ. 23
35. मैनेजर पांडेय, 'रेमंड विलियम्स : अनुभूति की संरचनाएं', पल-प्रतिपल पत्रिका, जुलाई-दिसंबर 2016, पृ. 33
36. डॉ. उदयपाल सिंह, भारतीय संस्कृति (2015), विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 3
37. शिवकुमार मिश्र, 'दर्शन, साहित्य और समाज', पृ. 15
38. बाबू गुलाबराय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', पृ. 35
39. शिवदत्त ज्ञानी, 'भारतीय संस्कृति', पृ. 160

40. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 92
41. वही, पृ. 93
42. वही, पृ. 93
43. शिवदत्त ज्ञानी, 'भारतीय संस्कृति' , पृ. 170
44. बाबू गुलाबराय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', पृ. 60
45. कृष्णकुमार यादव, 'भारतीय संस्कृति की विरासत', वैचारिकी पत्रिका, मई-जून 2014, वर्ष- 30, अंक- 30
46. विष्णु प्रभाकर, 'संस्कृति क्या है ?(2015)', सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, पृ. 12-13
47. माधव गोविन्द वैद्य, 'अपनी संस्कृति'(2002), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 29
48. आबिद हुसैन, 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति', पृ. 9, भूमिका
49. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 68
50. वही, पृ. 99
51. अनिता भंडारी, 'जैन धर्म का भारतीय संस्कृति को योगदान', जिनवाणी पत्रिका, वर्ष -41, अंक - 1, पृ. 50
52. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ. 123
53. वही, पृ. 126
54. रामजी उपाध्याय, 'भारतीय धर्म और संस्कृति', पृ. 32
55. वही, पृ. 33
56. वही, पृ. 36
57. वही, पृ. 98
58. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 211
59. वही, पृ. 212
60. वही, पृ. 213
61. वही, पृ. 66
62. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 221
63. वासुदेवशरण अग्रवाल, 'कला एवं संस्कृति', पृ. 195
64. बाबू गुलाबराय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा', पृ. 01
65. पृथ्वी कुमार अग्रवाल, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा'(2000), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
66. माधव गोविन्द वैद्य, 'अपनी संस्कृति'(2002), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 6, भूमिका
67. डॉ. एम.एम. लवानिया, शशि के जैन, 'सैद्धान्तिक समाजशास्त्र', राजपाल एंड संज, दिल्ली, पृ.सं. 58
68. वही, पृ. सं. 58
69. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति भाषा और राष्ट्र (2008), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 11
70. वही, पृ. सं. 13
71. डॉ. एम.एम. लवानिया, शशि के जैन, 'सैद्धान्तिक समाजशास्त्र', पृ. 62
72. डॉ. मुकेश अग्रवाल, 'भाषा, साहित्य और संस्कृति', पृ. 424
73. श्यामाचरण दुबे, 'समय और संस्कृति', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 14
74. वही, पृ. 39
75. सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श', वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृ. 87
76. श्यामाचरण दुबे, 'समय और संस्कृति', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 130
77. वही, पृ. 171
78. डॉ. कमल किशोर गोयनका, 'मॉरीशस के भोजपुरी लोक-गीतों में संस्कृति', संस्कृति पत्रिका, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, संपादक, मोहिनी हिंगोरानी, मार्च 2005, संयुक्तांक - 89

अध्याय तृतीय : चयनित हिंदी यात्रा साहित्य : समग्र विश्लेषण

3.1 प्रयाग शुक्ल – सम पर सूर्यास्त (2002)

3.2 गगन गिल – अवाक् (2008)

3.3 हरिराम मीणा – जंगल जंगल जलियांवाला (2008)

3.4 अशोक जेरथ – अनाम यात्राएं (2011)

3.5 कृष्णा सोबती – बुद्ध का कमंडल (2012)

3.6 पंकज बिष्ट – खरामा-खरामा (2012)

3.7 अनिल यादव – वह भी कोई देस है महराज (2012)

3.8 अजय सोडानी – दर्रा-दर्रा हिमालय (2014)

3.9 मधु कांकरिया – बादलों में बारूद (2014)

3.10 राकेश तिवारी – सफर एक डोंगी में डगमग (2014)

3.11 नीरज मुसाफिर – सुनो लद्दाख (2017)

3.12 अजय सोडानी – दरकते हिमालय पर दर-ब-दर (2018)

3.13 अजय सोडानी – इरिणालोक (2019)

3.14 उमेश पंत – दूर दुर्गम दुरस्त (2020)

3.1 सम पर सूर्यास्त – प्रयाग शुक्ल :-

लेखक परिचय - जन्म - 28 मई 1940 को कलकत्ता में।

प्रारम्भिक शिक्षा - गाँव तिवारीपुर, जिला फतेहपुर, उत्तरप्रदेश से हुई व बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक।

लेखन - आठ कविता-पुस्तकें, पाँच कहानी-संग्रह और तीन उपन्यास - 'गठरी', 'कल और आज' तथा 'लौटकर आने वाले दिन' प्रकाशित। रंगमंच और सिनेमा पर भी लेखन साथ ही कला-परख पर एक पुस्तक 'देखना' प्रकाशित है।

अनुवाद - बांग्ला से जीवनानंद दास और शंख घोष की कविताओं का अनुवाद हिन्दी में किया। बांग्ला से ही बंकिमचंद्र के निबंधों का अनुवाद नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित है। विश्व-कविता से भी कई कवियों के अनुवाद प्रकाशित किए हैं। जिनमें ओक्तोवियों पाज की कविताओं के अनुवाद साहित्य अकादमी से प्रकाशित हैं।

सम्पादन - 'कला समय समाज', 'कविता-93' और 'ड्राइंग-94' (अंग्रेजी में) सम्पादन। 'कल्पना' और 'दिनमान' के संपादकीय विभाग में रहने के बाद 'नवभारत टाईम्स' से सम्बद्ध।

यात्राएँ - 1984 में आयोवा (अमेरिका) के इन्टरनेशनल राईटिंग प्रोग्राम में शामिल हुए। 1979 में फ्रांस, ब्रिटेन और पश्चिमी जर्मनी की यात्रा, 1987 में सोवियत संघ, 1995 में चीन भ्रमण व 1999 में रूस की यात्रा।

कवि, कथाकार और कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल का यात्रा वृत्तांत 'सम पर सूर्यास्त' 2002 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। जिसमें कविता के गुण, कथा की सरसता और रोचकता, चित्रात्मकता के साथ प्रकृति और जीवन के बहुतेरे मर्म को प्रस्तुत किया गया है। उदयपुर, कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई, चैन्नई, महाराष्ट्र, गुजरात, कानपुर, लखनऊ, सागर, जोधपुर, वाराणसी, सारनाथ, उज्जैन आदि नगरों की यात्राओं के संस्मरणों का समन्वय इसमें किया गया हैं। जिससे इसमें देश के विभिन्न अंचलों की यात्राओं में कहीं राजस्थान की मरुभूमि दिखाई देती है तो कहीं केरल, ब्रह्मपुत्र व दीव की लहरें स्वागत करती है।

‘दीव की लहरें’ यात्रा लेख में दीव की प्राकृतिक सुंदरता का चित्रण किया गया है। दीव एक बहुत ही सुंदर द्वीप है, जहाँ दिन-रात तेज हवाओं से समुद्री लहरें टकराती रहती हैं। दमन दीव, गोवा, दादरा नगर हवेली ये सभी पुर्तगाली शासन में रहे थे। जिनके कारण इनकी निशानियाँ आज भी यहाँ विद्यमान हैं। इसमें से एक प्रमुख है पुर्तगालियों के समय की चारों तरफ से पानी से घिरी हुई जेल। अपने अंदर क्रूरताओं का इतिहास छुपाये हुए भी यह कितनी आकर्षक लगती है इसके संबंध में प्रयाग शुक्ल लिखते हैं कि “हम इन्हें प्रायः सराहते हुए भी देखते हैं - कभी उनके वास्तुशिल्प को, कभी उनमें टँकी हुई किसी कारीगरी और कला को और कभी उनमें प्रतिबिंबित होने वाली सुबहों और शामों को सराहते हुए। हम उन्हें सराह पाते हैं तो इसीलिए कि ‘क्रूरताएँ’ अतीत की चीज हो चुकी हैं। और उनके रोमांचक और डरावने किस्से भी हमें अपने से बहुत दूर लगते हैं।”[147]

‘मोलेला की माटी’ में उदयपुर व राजसमंद के मार्ग में स्थित मोलेला गाँव की मिट्टी से बनी मूर्तियों व अन्य सामग्रियों के संबंध में बताया गया है। मोलेला में मूर्तियों पर रंग चढ़ाने व रंग लेप की परंपरा रही है। जिसके लिए यहाँ देश-विदेश से कला-पारखी, कलाकार व कलाप्रेमी आते हैं। यहाँ की मूर्तिकला से अभिभूत होकर लेखक इसकी तुलना साँची, कोणार्क व खजुराहो के मूर्तिशिल्प से करते हैं। वे मोलेला गाँव के कलाकारों के संबंध में लिखते हैं कि “आकृतियों और चीजों के नाक-नक्श मोलेला के कलाकार इतनी खूबसूरती, बारीकी, चपलता-सहजता से उभारते हैं कि उनसे आँख जल्दी हटती भी कहाँ है। माटी की पाटी पर छवियाँ उत्कीर्ण की गई-सी लगती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे हमारे मंदिर मूर्तिशिल्पों-साँची-कोणार्क-खजुराहो में ‘उत्कीर्ण’ हैं।”[148]

नारियल, पानी, केला, खपरैल की छतें व भाँति-भाँति की नावें केरल की पहचान है। इसके साथ ही साक्षरता, राजनीतिक जागरूकता व सांस्कृतिक साहित्यिक सक्रियता में भी केरल बहुत आगे है। ‘चैन्नई में हिन्दी’ लेख में भाषाई राजनीति पर प्रकाश डाला गया है। चैन्नई में हिन्दी भाषा की स्थिति के संबंध में लेखक कहते हैं कि “किसी भाषा के दिख जाने पर, उस भाषा के व्यक्ति को एक सहज-स्वाभाविक प्रसन्नता होती है, और वह उस जगह में अपने को ‘अजनबी’ नहीं पाता। इस दृष्टि से देखें तो चैन्नई में हिन्दी भाषी अपने को कुछ अजनबी ही पाएंगे। सारे नामपट तमिल या

[147] प्रयाग शुक्ल, ‘सम पर सूर्यास्त’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 38
[148] प्रयाग शुक्ल, ‘सम पर सूर्यास्त’, पृ. 41

अंग्रेजी में हैं, और हिन्दी कहीं दिखती नहीं है, हिन्दी ही क्यों, बांग्ला, ओडिसी, गुजराती, मराठी आदि भी वहाँ नहीं दिखती हैं।"[149] इसी तरह 'भोपाल में अंग्रेजी' लेख में आज के दौर में बढ़ रहे अंग्रेजी प्रेम को दिखाया गया है। एक हिन्दी भाषी शहर होने के बावजूद हर जगह अंग्रेजी का प्रयोग मिलता है। वैश्वीकरण के इस दौर में बढ़ते अंग्रेजी प्रयोग को लेकर लेखक गहरी चिंता व्यक्त करते हैं वे कहते हैं कि "अंग्रेजी का ऐसा आकस्मिक हमला- एक हिन्दी भाषी शहर में – मैं पहली बार झेल रहा था, और थोड़ी देर के लिए सन्न रह गया था। इस अनुभव के कारण भी कि इस हमले के सामने मैं निहत्था खड़ा हूँ और हमला स्वयं उन हिन्दी भाषी नागरिकों ने किया है जो अभी कल तक ऐसा करने की सोचते भी नहीं थे या सोचते भी थे तो इतने बड़े पैमाने पर नहीं।"[150] 'काली दिल्ली' में दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण की समस्या पर गहरी चिंता व्यक्त की गई है। 'नाच री कठपुतली गोरी' में उदयपुर के भारतीय लोककला मण्डल व कठपुतली चित्रण के लिए प्रसिद्ध देवीलाल सामर के कठपुतली नृत्य का चित्रण किया गया है। उछलती, कूदती, मुड़ती, हटती, बढ़ती, लचकती, मटकती कठपुतलियाँ सभी को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती है। इसी कठपुतली नृत्य के संरक्षण के लिए देवीलाल सामर ने 1952 में उदयपुर में ही भारतीय लोक कला मंडल की स्थापना की थी। कठपुतली नृत्य के व्यापक प्रचार-प्रसार और संरक्षण के संबंध में प्रयाग शुक्ल कहते हैं कि "निश्चय ही वे विलक्षण व्यक्तियों में थे, उनके नाम और काम की अनुगूँज साठ और सत्तर के दशक में खूब सुनाई पड़ती थीं। और यह भी याद है कि कठपुतली-कला को जो जादुई स्पर्श उन्होंने दिया, उसके चर्चे भी जहाँ-तहाँ सुनने को मिल जाते थे। पर, मैं लोककला मंडल के परिसर में पहुँचकर और वहाँ लगी उनकी मूर्ति को देखकर सोचे बिना नहीं रह सका कि उनको जितना याद किया जाना चाहिए, उतना याद हम नहीं कर रहे हैं।.."[151] 'सम पर सूर्यास्त' लेख में राजस्थान के जैसलमेर जिले में रेत के टीलों वाले 'सम' गाँव में होने वाले सूर्यास्त का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में देखा जा सकता है कि छोटी-छोटी टिप्पणियों में स्थान विशेष के साथ लेखक की गहरी संवेदना हर जगह से जुड़ी हुई है। दैनिक जीवन में साधारण-सी लगने वाली चीजें हमेशा मामूली ही नहीं होती, उनको अनदेखा करके हम उसके सौन्दर्य और बहुतेरे पक्षों से

[149] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 47
[150] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 49
[151] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 63

वंचित रह जाते हैं। इसमें से अधिकतर टिप्पणियाँ इसी वंचित सौन्दर्य की ओर संकेत करती है। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से सभी पक्षों को प्रस्तुत करने वाला यह वृत्तांत अपने छोटे कलेवर में ही विविधवर्णी छवियों को प्रस्तुत करने में सक्षम है। "इनमें हवा-पानी-वनस्पतियों-फूलों के संस्मरण भी हैं, और शहरों-गलियों की मर्मभरी गूँजे भी। साहित्यिक स्मृतियों से भी ये लैस हैं और हिन्दी के कई महत्वपूर्ण कवियों की काव्य-पंक्तियों, इनमें जिस तरह याद की गयी है, वे बरबस ही हमें अपनी धरोहर से जोड़ देती हैं।"[152]

3.2 अवाक् – गगन गिल :-

लेखिका परिचय - जन्म – 18 नवंबर 1959 को नई दिल्ली में।

शिक्षा - एम.ए. (अंग्रेजी), दिल्ली विश्वविद्यालय से। लगभग ग्यारह साल तक टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप और संडे ऑब्जर्वर में साहित्य सम्पादन। 1990 में आयोवा इंटरनेशनल राईटिंग प्रोग्राम द्वारा आमंत्रित। 1992-93 में हावर्ड युनिवर्सिटी की नीमेन पत्रकार फैलो। 1994-96 में संस्कृति विभाग की सीनियर फैलो।

कविता-संग्रह - 'एक दिन लौटेगी लड़की' (1989), 'अंधेरे में बुद्ध' (1996), 'यह आकांक्षा समय नहीं' (1998), 'थपक-थपक दिल थपक-थपक' (2003) एवं दो गद्य पुस्तकें – 'दिल्ली में उनींदे' (2000), 'अवाक् (2008)।

यात्राएँ - साहित्यिक सांस्कृतिक विमर्श हेतु अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, चीन आदि अनेक देशों की यात्राएँ। निजी भ्रमण में बौद्ध धर्म व संस्कृति से जुड़े स्थान विशेषकर तिब्बत प्रिय। 2007 में तिब्बत की दो यात्राएँ, पहली कैलाश-मानसरोवर की और दूसरी नेपाल बॉर्डर से तिब्बत की राजधानी ल्हासा तक सड़क मार्ग से।

2008 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित गगन गिल का 'अवाक्' विश्व की कठिनतम यात्राओं में मानी जाने वाली कैलाश मानसरोवर की यात्रा का एक महत्वपूर्ण वृत्तांत है। अवाक् अर्थात् जिसे सन्न, स्तब्ध, हतोत्तर, उत्तरहीन ब्रह्म, अंतराकाश, अव्यक्त, अशब्द, परम तत्व, शाश्वत मौन, निमुहाँ,

[152] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. फ्लैप पेज से

गूँगा, शांत व प्रदक्षिणाशील आदि शब्दों से जाना जा सकता हैं। इसी अवाक् की अलौकिक अनुभूतियों को शब्दबद्ध करने का प्रयास इस यात्रा वृत्तांत में किया गया है। जिसमें तिथि और समय के फेर को प्रस्तुत न करके उन साधारण-सी घटनाओं का उल्लेख किया गया है जो कि साधारण होने के बावजूद साधारण में भी असाधारण को समेटे हुए है। अपने पति निर्मल की आखिरी इच्छा को पूरी करने के विशेष प्रयोजन से की जाने वाली इस यात्रा के लिए लेखिका किसी भी तरह से कैलाश जाना चाहती है। कंधे के दर्द से बेहाल और शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद पति की आखिरी कमीज, दारजी की दास्तार, माँ की चुन्नी, कन्नू की कॉपी का पृष्ठ और रिनपोछे की अंगुली का नाखून जैसी वस्तुएँ वही माँ के चरणों में छोड़कर आना चाहती है। अनेक कठिनाईयों के बावजूद इस कठिन तीर्थयात्रा के लिए जा कर वह निर्मल के प्रति अपने समर्पण व आस्था को दिखाती है। लेखिका ने निर्मल के जीते-जी यह तीर्थयात्रा करने का वादा किया था और इसी वादे को पूरा करती हुई यूनानी सहेली वैल्ली, जिस समय निर्मल अस्पताल में बिस्तर पर पड़े थे। तो यह तीर्थयात्रा करके मानसरोवर में खड़े होकर उन्हें पुण्य प्रदान कर रही है। "जब वह अस्पताल में बिस्तर पर पड़े थे, वैल्ली मानसरोवर के जल में खड़े हो कर निर्मल का नाम ले-लेकर देवताओं को पुकार रही थी। अस्पताल में ही मैंने उन्हें मानसरोवर से लाया जल पिलाया था, उन्होंने कैलास-मानसरोवर की तस्वीरों का दर्शन किया था।

- तुम ठीक हो जाओगे, तो मैं खुद जाऊँगी, तुम्हारी परिक्रमा करने..."[153] इसी वादे को निभाती हुई लेखिका निर्मल के निधन के बाद उनके शरीर का पहना हुआ अंतिम वस्त्र कैलाश में देवी को समर्पित करने व निर्मल को पूर्ण मोक्ष प्रदान करने के लिए इस तीर्थयात्रा की शुरुआत करती है। यह यात्रा आस्था व निष्ठा को किनारे कर निर्मल, मानसिक शांति के लिए की गई अंतर्यात्रा है। जीवन-मरण की अनवरत प्रक्रिया को शाश्वत सत्य मानते हुए लेखिका निर्मल द्वारा 'अंधेरे में बुद्ध' के लिए अनुवाद किये गए मोरिस ब्लांशों को बार-बार दोहराती है "जो भी ईश्वर को देखता है, मर जाता है, मरना एक ढंग है ईश्वर को देखने का..."[154] निर्मल ने इस ईश्वर को देखा होगा या नहीं; बताया नहीं जा सकता और जो प्रार्थनाएँ लेखिका करती है वो भी पता नहीं वहाँ पहुँचती हैं या नहीं पहुँचती हैं।

[153] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 14

[154] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 19

यहाँ से उसे जाना नहीं जा सकता। इसी को जानने के लिए लेखिका को कैलाश जाना है "दूर कैलाश-हिमालय की घाटियों में, मुझे लगता है, डॉक्टर नहीं, महादेव जी मुझे खींच रहे हैं, कि मैं मनुष्य नहीं, कोई पतंग हूँ, जो उड़ना चाहती है... बस एक झटका और, कि मैं आसमान में होऊँगी।"[155]

यह यात्रा वृत्तांत गगन गिल की कैलाश-मानसरोवर की यात्रा की अलौकिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। जिसमें यह मात्र बाह्य यात्रा को ही प्रस्तुत नहीं करता है बल्कि अंतर्यात्रा को भी अभिव्यक्त करता है। कैलाश को अगर देखा जाए तो कैलाश किसी धर्म, अनुष्ठान से दूर तीर्थयात्रियों का एक अनौपचारिक संप्रदाय है जिसका भारत से बहुत पुराना संबंध रहा है। लगभग पाँच हजार वर्षों से भारत और तिब्बत के अच्छे संबंध व धार्मिक घनिष्ठता होने के कारण भारतीय हिंदुओं को तिब्बत जाने व तिब्बती बौद्धों के लिए भी भारत में तीर्थयात्रा को लेकर बिना किसी वैमनस्य के तीर्थयात्राएँ होती रही हैं लेकिन 1959 में तिब्बत को अधिगृहीत करने के बाद लगभग 22 वर्षों तक इस यात्रा की अनुमति नहीं दी गई। फिर 1981 में भारत-चीन कटूता कम होने के बाद दोनों देशों के बीच समझौता करके करीब 500 यात्रियों को भारत से सीधे पश्चिमी तिब्बत में प्रवेश कराके इस यात्रा को करने की अनुमति प्रदान की गई। लगभग तीस दिन में सम्पन्न होने वाली इस यात्रा का मार्ग अत्यंत दुर्गम व पहाड़ों के स्खलन से भरा हुआ है लेखिका लिखती भी है कि "यह यात्रा औसतन 15,000 फीट से 18,500 फीट की ऊँचाई पर जीवित रहने की चुनौती ही नहीं है, इतनी ऊँचाई पर एक मनुष्य के अंतरतम में क्या विभीषिका होती है, उससे बच आने की कसौटी भी है। इस यात्रा का मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक परीक्षण शारीरिक यातना से कुछ भी कम नहीं।"[156]

कैलाश जाना अर्थात् देव-पर्वत कैलाश अर्थात् आदिम-स्मृति में जाना है। कैलाश के दर्शन पुण्यकारी है और इसका स्थान और कोई नहीं ले सकता। "कैलाश-मानसरोवर इस महाद्वीप की सामूहिक जातीय को जिस तरह झंकृत करता है, कोई दूसरा शब्द नहीं, कोई दूसरा स्थान नहीं।"[157] वेदों के रुद्र, पुराणों के शिव, आदिवासियों के भैरव, भोले शंकर कभी शिकारी, कभी वैरागी, कभी

[155] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 21

[156] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 217

[157] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 211

नटराज, कभी तांडव तालित, सृष्टि को नियमों में बांधकर नियमों का विध्वंस करने वाले शिव सदाशिव है। जो कैलास पर रहते हैं। "कैलाश मानसरोवर दुनिया में सबसे ऊँचा पर्वत-शिखर होने के कारण तो आकर्षित करता ही है, हिन्दू धर्म में भगवान शिव का निवास स्थान माना जाने के कारण अनेक मिथक परिप्रेक्ष्य के साथ-साथ बौद्ध भिक्षुओं के लिए बहुत पवित्र और धार्मिक महत्व रखता है।"[158]

हर यात्रा में बाह्य के साथ-साथ आंतरिक चेतना की अनुभूतियों को महसूस करने का अवसर मिलता है। इस अंतर्यात्रा में भी अनेक व्यक्ति आते-जाते रहते हैं। जिससे एक तरफ उनकी छवियों, उक्तियों, संवाद, भंगिमाओं, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया गया है तो दूसरी तरफ धर्म, दर्शन, विवेक व आस्था को अभिव्यक्त किया गया है। यह मन की पीड़ा को शांति प्रदान करने के लिए की गई तीर्थयात्रा है इसी तीर्थयात्रा के लिए लामा अंगारिका गोविंदा का कथन उद्धत करते हुए लेखिका कहती हैं कि "तीर्थयात्रा केवल बाहर की दुनिया से आरंभ नहीं होती, उसकी वास्तविक लय हमेशा भीतर से शुरू होती है, एक अदृश्य भीतरी बिन्दु से.."[159]

इस यात्रा में लेखिका की रिश्तेदार दंपति के साथ-साथ अनेक अजनबी लोगों से मुलाकात होती है। साथ ही पड़ोसी देश चीन, नेपाल व तिब्बत में गाईडों, ड्राईवरों, घोड़ा चालकों से मिलती है। जिनसे सभी से लेखिका का अपनापन है लेकिन फिर भी वह अपने मन की यादों में लिपटी, स्वास्थ्य से जूझते हुए, पीड़ा को सहते हुए अनेक सदस्यों के बीच भी अपने अंतरद्वन्द्व से मुक्त नहीं हो पाती है। इसीलिए यात्रा से ज्यादा अंतर्यात्रा को अभिव्यक्त करने वाला यह यात्रा वृत्तांत अन्य यात्रा वृत्तांतों से बिल्कुल अलग है। यह एक आध्यात्मिक यात्रा है जिसमें विश्वास, मिथक व भौगोलिक समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है। यह यात्रा बाहर की नहीं है बल्कि उसके अंदर के अनजान कोनों तक ले जाने वाली यात्रा है। जिससे इसमें बाह्य चित्रण से अधिक दार्शनिकता का पुट आ गया है। मानसरोवर पहुँचकर लेखिका देखती है कि मानसरोवर उजाड़ पड़ा हुआ है उस पर सिर्फ एक झीना-सा धुंध का परदा पड़ा है। वहाँ की दिव्यता को प्रस्तुत करते हुए लेखिका कहती है

---

[158] डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा, 'अवाक्, कैलाश मानसरोवर एक अंतर्यात्रा', प्रेरणा पत्रिका, जुलाई-दिसंबर (2010), पृ. 175
[159] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 43

कि "कैसी है यह जगह ? कुछ ही दिनों में इसने एक-एक करके सारे कवच उतरवा लिए - ज्ञान के, आस्था और शंका के।

अवाक् ? क्या यह सही शब्द है, उसे कहने को, जो इस समय हो रहा है हमारे साथ ?

बूँद-बूँद टपकता सन्नाटा

बाहर सृष्टि में झर रहा है कि कहीं भीतर ?"[160]

हर जगह यह दार्शनिक रोमांच दिखाई देता है। जिसमें गहरे दृष्टा भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। भीतर ही भीतर उठने वाले अलक्षित, चेतन सूक्ष्म भावों को बहुत ही आत्मीय ढंग के साथ अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लेखिका एक अन्य लोक की यात्रा करने लग जाती है। इसी आंतरिकता के भूगोल को प्रस्तुत करते हुए इस यात्रा वृत्तांत के संबंध में अशोक वाजपेयी कहते हैं कि "कवयित्री गगन गिल का यह अंतर्यात्रा-वृत्तांत हिन्दी का एक अनोखा दस्तावेज है जिसमें वृत्तांत का ठोसपन, कथा का प्रवाह और कविता की सघन आत्मीयता सब एक साथ है। उसमें स्मृतियों, संस्कारों, अंतर्ध्वनियों, जीवन की लय आदि सबका एक वृंद वादन लगातार सुनाई देता है। कुछ इस तरह का भाव कि सब कुछ एक-दूसरे से जुड़ा है, प्रतिकृत और झंकृत है।"[161]

यह यात्रा वृत्तांत अपने साथ पाठक को भी लेकर चलता है। प्रकृति, मनुष्य, हिमालय, झीलें, नदियाँ, जल, वायु सब एक निरंतर प्रवाह में आकस्मिक, अप्रत्याशित व रहस्यमय रूप से चलते रहते हैं। अंतर्यात्रा के साथ-साथ लेखिका अपने बाह्य परिवेश के प्रति भी काफी जागरूक है। आस्था को साथ लेकर भी वह तथ्यों को प्रस्तुत करती है। ऊपर काफी ऊँचाई पर होने के कारण ऑक्सीजन की कमी, साधनों की कमी व डॉक्टरों की सुविधा नहीं होने के कारण अनेक व्यक्तियों की रास्ते में ही मृत्यु हो जाती है। इसी तरह वहाँ जाने वाले तीर्थयात्री, पर्वतारोही व बौद्ध भिक्षु रास्ते में जाते समय कचरा फेंक देते हैं जिससे उनके द्वारा फेंके गए सामान व बोतलों से यहाँ अत्यंत गंदगी फैल गई है। जिसके लिए आस्था और ग्लोबल वार्मिंग जैसे संवेदनशील मुद्दों को लेकर लेखिका प्रश्न खड़े करती है। वह कहती है कि "एक नहीं, दो नहीं, तीन-चार जगह हम रूकते हैं, जहाँ से भी

[160] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 200

[161] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. फ्लैप पेज

जल भरते हैं, साफ नहीं, कुछ तो तैर रहा है, इसे फेंक दें कहीं तो साफ मिलेगा।"[162] लेकिन वही मटमैला पानी ही लेकर संतोष करना पड़ता है और कहती है कि खैर मैला हुआ तो क्या हुआ मानसरोवर का तो है पीयेंगे नहीं तो पूजा-स्थल में ही रख देंगे। लेकिन जो पानी पीने योग्य नहीं वह पूजा योग्य कैसे हो सकता है। इसी चिंता को अभिव्यक्त करते हुए एक और प्रश्न आस्था को लेकर करते हुए वह कहती है कि "विडंबना - क्या इसे हम हमारी सभ्यता की विडंबना कह सकते हैं ? जो पीने योग्य नहीं, वह पूजा योग्य फिर भी है"[163]

इस पुस्तक का सबसे आकर्षक भाग है बीच-बीच में आने वाले उद्धरण। हर जगह धार्मिक ग्रंथों, महाशिवपुराण, स्कन्ध पुराण, ऋग्वेद व विचारकों की पंक्तियों जैसे बादलेयर, अक्का महादेवी व मिलारेपा संत कवि की कविताओं को उद्धत करके इसे विशिष्ट बनाया गया है। लेखिका कहती भी है कि "अक्का महादेवी के वचन मेरे साथ लगभग पूरी यात्रा करते रहे, महाभारत की उक्तियाँ भी, बादलेयर और ओडेन की कविताएँ भी। जो मन यात्रा करने गया था, वह सभ्यता, शिक्षा-दीक्षा, पूर्वजों के लेखन-कथन से सींचा मन था। उसमें उतनी तरह की खाद-मिट्टी न होती तो 'अवाक्' भी न होती।"[164]

हर साहित्यकार की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है जिसका रूप परिवर्तित होता रहता है, कभी निबंधात्मक, कभी कथात्मक तो कभी आलोचनात्मक। भाषा के स्तर पर अगर देखा जाए तो कैलाश अनुभव की अभिव्यक्ति विशिष्ट ढंग से की गई है। लेखिका के कवयित्री होने का प्रभाव इस पुस्तक पर सीधा दिखाई दे रहा है। जिसमें इसकी भाषा गद्य के साथ काव्यात्मक अधिक होती दिखाई देती है। जिससे गद्य, कविता और मौन मिलकर अभिव्यक्त हो रहे हैं। इसके अनूठे गद्य के बारे में अशोक वाजपेयी कहते हैं कि "यह अनूठा गद्य है जिसमें गद्य और कविता, वृत्तांत और चिंतन के पारंपरिक द्वैत झर गये हैं और जिसमें होने की, मनुष्य होने के रहस्य और विस्मय का निर्मल आलोक, अपनी कई मोहक रंगतों में आर-पार फैला हुआ है।"[165]

[162] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 115
[163] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 116
[164] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 212
[165] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. फ्लैप पेज

इस प्रकार देख सकते हैं कि इस पुस्तक में कैलास मानसरोवर का अनुपम सौन्दर्य, पहाड़, सपाट मैदान, ऊँची-नीची पगडंडियाँ, झीलें, तिब्बतियों की संस्कृति, बौद्ध धर्म के प्रति आस्था, दलाईलामा के प्रति निष्ठा जैसी संपूर्णता को एकाकार करके प्रस्तुत किया गया है। इस यात्रा वृत्तांत की गणना बीबीसी सर्वेक्षण के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी यात्रा वृत्तांतों में भी की गयी है।

3.3 जंगल जंगल जलियांवाला - हरिराम मीणा :-

लेखक परिचय - जन्म - 1 मई 1952 को ग्राम बामनवास, जिला सवाईमाधोपुर, राजस्थान में, राजस्थान विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में स्नातकोत्तर डिग्री।

रचनाएँ - विभिन्न प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में कविता, लेख, यात्रा-वृत्त व साक्षात्कार प्रकाशित।

यात्रा वृत्तांत :- 'साईबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक', 'जंगल-जंगल जलियांवाला' व 'आदिवासी लोक की यात्राएं'।

संस्कृतियों के समन्वय वाले भारत देश में आदिवासी संस्कृति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। आज पर्यावरण संकट जैसी समस्याओं का मूल समाधान या पर्यावरण को बचाए रखने में सबसे बड़ा योगदान आदिवासी संस्कृति का ही है। आदिवासियों की समस्याओं को साहित्य के रूप में लाने के लिए विभिन्न आदिवासी, गैर-आदिवासी लोगों ने लेखन कार्य किया हैं। जिनमें से पिछले डेढ़ दशक की अवधि में अपना विशिष्ट योगदान देने वाले लोगों में महाश्वेता देवी, रमणिका गुप्ता, तेजिंदर सिंह, रामशरण जोशी, कथाकार संजीव, प्रो. वीरभारत तलवार, प्रो. रविभूषण आदि शामिल हैं। आदिवासी बुद्धिजीवी लेखकों में रामदयाल मुंडा, मंगल सिंह मुंडा, लक्ष्मण गायकवाड, वाहरु सोनवणे, सी. के. जानू, महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, हरिराम मीणा और अनुज लुगुन जैसे महानुभावों का नाम सम्मान के साथ लिया जा सकता है।

उक्त साहित्यकारों में हरिराम मीणा ऐसा व्यक्तित्व हैं जिन्होंने अपने साहित्य में आदिवासियों को केंद्र में रखकर उनके खिलाफ हो रही साजिशों को बेनकाब करने की कोशिश की है। इनका 'जंगल जंगल जलियांवाला' महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें राष्ट्र की आजादी में योगदान देने

वाले इतिहास के पन्नों से गायब आदिवासियों के बलिदान की तीन बड़ी घटनाओं के स्थानों की यात्रा करके उन्हें प्रस्तुत किया गया है। जलियांवाला बाग हत्याकांड से भी वीभत्स राजस्थान के दक्षिणी प्रांत बांसवाड़ा के मानगढ़ पर्वत पर हुए मानगढ़ हत्याकांड व नरसंहार को इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित किया गया है । इन्हीं उपेक्षित स्थानों की यात्रा करके अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आदिवासियों के विद्रोह की गाथा को इस यात्रा वृत्तांत में अभिव्यक्त किया गया है। लेखक कहते हैं कि "यह ईमानदार इतिहासकारों का धर्म व कर्म है कि वे इनका इतिहास लिखें। आम जनता के ऐसे ही संघर्षों का इतिहास देश का असली इतिहास है, जिसे लिपिबद्ध होना चाहिए। जब तक यह काम न होगा, तब तक इतिहासकारों की भूमिका सीमित तो रहेगी ही, संदिग्ध भी मानी जाती रहेगी।"[166]

राजस्थान में मेवाड़ के दक्षिणी पश्चिमी भाग में रहने वाले आदिवासी जनजाति के भील व मीणाओं पर राज्य, प्रशासन, जागीरदार व अंग्रेजों द्वारा अनेक तरह के अत्याचार किये जाते थे। इन्हीं अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह करने लिए 20वीं सदी के आरंभ में डूँगरपुर, बांसवाड़ा (वागड़) प्रांत में 20 दिसंबर 1858 को डूँगरपुर राज्य के बांसिया ग्राम में एक बंजारा परिवार में जन्मे क्रांतिकारी मसीहा गुरु गोविंद गिरी के नेतृत्व में शक्तिशाली भील आंदोलन आरंभ हुआ। जिसमें भीलों के उत्थान हेतु सामाजिक धर्म सुधार आंदोलन व शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई गयी। गोविंद गुरु ने भीलों को संगठित करने का कार्य किया और नैतिक व आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करके उनकी सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं में अनेक सुधार किये। जिससे हजारों भील उनके अनुयायी बने और सदियों पुराने सामाजिक धार्मिक बंधन व रूढ़ियों से स्वतंत्र होने लगे। जिससे 1883 ई. में सम्प सभा की स्थापना करके भीलों में मेल मिलाप व एकता स्थापित करने, व्यसनों, बुराईयों, कुप्रथाओं के परित्याग व विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, शिक्षा, सदाचार, सादगी व सरल, सहज जीवन अपनाने व अपराधों से दूर रहने के लिए जागृत किया और इन सभी गतिविधियों का मुख्य केंद्र मानगढ़ था। सम्प सभा का पहला अधिवेशन भी 1903 ई. में इसी मानगढ़ पहाड़ी पर किया गया।

[166] हरिराम मीणा 'जंगल जंगल जलियांवाला', पृ. फ्लैप पेज

विद्रोह के मूल कारणों को अगर देखा जाए तो वह शोषण रहा है। उस समय सत्ता पक्ष द्वारा भीलों के साथ दुर्व्यवहार करके शोषण किया जाता था। राज्य के अधिकारी, जागीरदार, उनके कामदार सब मिलकर भू-राजस्व, जंगल कानून, बैठ बेगार, आबकारी, वन उत्पाद पर शुल्क आदि लगाकर भीलों के साथ कठोर व्यवहार करते थे। साथ ही गोविंद गिरी की शिक्षाओं से भीलों में जो सुधार हो रहे थे उन समाज और धर्म सुधार आंदोलनों को सत्ता के लिए चुनौती मानते हुए भीलों को कुचलने के प्रयास किए जाते थे। जिससे गुजरात के ईडर, सूँथ, बांसवाड़ा, डूँगरपुर राज्यों में भील क्षेत्रों में बढ़ते प्रभाव से भीलों का दमन किया जाने लगा। अप्रैल 1913 में डूँगरपुर पुलिस ने भीलों को गिरफ्तार कर लिया लेकिन तीन दिन बाद वापस मुक्त करके डूँगरपुर से बाहर जाने की सलाह दी जिससे परेशान होकर सूँथ राज्यों की सीमा पर स्थित मानगढ़ की पहाड़ी की ओर चले गए और उसी को अपना केंद्र बनाकर वही से भील आंदोलन का संचालन करने लगे। लेकिन वहाँ पर भी 1913 में संतरामपुर के पुलिस इंस्पेक्टर ने यूसुफ खान और गुल मोहम्मद को मानगढ़ पहाड़ी की स्थिति जानने के लिए भेजा उस पहाड़ी पर पहुँचने पर भीलों ने पुलिस वालों को बंदी बना लिया। "आदिवासियों की उक्त कार्यवाही से सूँथ, बांसवाड़ा, डूँगरपुर, संतरामपुर और ईडर रियासतें सावधान हो गई। इन रियासतों के राजा-जागीरदारों ने गवर्नर जनरल सहायक (ए.जी.जी) से प्रार्थना की कि गोविंद गुरु को गिरफ्तार किया जाये और आदिवासियों की एकजुटता और विद्रोह को कुचला जाए।"[167]

मेवाड़ भीलकोर, राजपूत और जाट रेजीमेंट की कंपनियों को दमन के लिए भेजा गया और उन्होंने आकर मानगढ़ पहाड़ी को चारों तरफ से घेर लिया। 17 नवंबर 1913 को मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन सेनाओं ने मानगढ़ पहाड़ी पर सामाजिक चेतना के अनुष्ठानों में व्यस्त दूर-दूर से आये हजारों भीलों पर अंधाधुंध गोलियाँ बरसाना शुरू कर दिया जिससे इस भीषण नरसंहार में 1500 से अधिक भील मारे गए। गोविंद गिरी व डूंगरपुर के पटेल पुंजा धीर को बंदी बना लिया गया व कठोर कारावास की सजा सुनाई और भील क्रांति को निर्दयतापूर्वक कुचल दिया। "घड़ी भर में लाशों का ढेर लग गया। लहू लथपथ तड़फती देह। भोले-भाले औरत-मर्द और मासूम बच्चे इधर-उधर भागते दिखे। लुढ़कने लगे पहाड़ पर और घाटी की गहराईयों में। खून से लथपथ अंचल के पत्थर, मिट्टी

[167] हरीराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 28

और हरियाली। तीर-कमानों तक हाथ न पहुँच पाये, बीमार, बूढ़ों व बच्चों को न छुपा पाये, वे संघर्षशील जन अपने आपको भी न संभाल पाये और भून दिये गए अकस्मात, परिंदों के झुंड की तरह।"[168] यह उस हत्याकांड की यथार्थ अभिव्यक्ति है जिसमें थकान से सुस्ताते भोले, मासूम से लोगों के मांस के लोथड़े इधर-उधर बिखर गए। सब तरफ बारूद की दुर्गंध ही दुर्गंध हो गई। चारों तरफ मानवता के सामूहिक संहार का हृदय-विदारक दृश्य दिखाई दे रहा था जिसका यथार्थ चित्रण इस यात्रा वृत्तांत में किया गया है। आदिवासी इलाके की भीलों की इस घटना को 'राजस्थान का जलियांवाला बाग हत्याकांड' के नाम से जाना जाता है।

इस पुस्तक में आंदोलन के साथ-साथ वर्तमान समय के आदिवासियों की वास्तविक स्थिति और उस समय गोविंद गिरी के उपदेशों से भीलों में जो सुधार हुए थे उनका भी चित्रण किया गया हैं। सम्प सभा द्वारा प्रवर्तित धर्म व समाज सुधार आंदोलन ने भीलों के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। जिससे गोविंद गिरी के उपदेशों से भीलों में अनेक सुधार हुए। नशा व शराब की प्रवृत्ति भी अत्यंत कम हुई। भील अपने प्राकृतिक अधिकारों व जागीरदारों द्वारा किये जाने वाले शोषण व उत्पीड़न के प्रति जागरूक हुए। गुरु गोविंद गिरी के लोगों पर पड़े प्रभाव को आज तक देखा जा सकता है। इसके संबंध में बताते हुए लेखक कहते हैं कि "इस इलाके के आदिवासी तो बहुत भोले-भाले और ईमानदार हैं। गुरु गोविंद के उपदेशों को अब तक मानकर चलते हैं। दारू-तंबाकू नहीं के बराबर। चोरी-डकैती का तो सवाल ही नहीं। हाँ, झाबुआ साईड के मामा भील जरूर डकैती कर जाते हैं, पर यहाँ नहीं। यहाँ लूटने को है ही क्या।"[169] ये पंक्तियाँ आदिवासियों की वास्तविक स्थिति से रू-ब-रू कराती है। यहाँ के आदिवासी बहुत ही भोले-भाले और ईमानदार है चोरी डकैती नहीं करते हैं दारू और तम्बाकू का सेवन भी यहाँ नहीं करते हैं क्योंकि गुरु गोविन्द गिरी के उपदेशों का अनुसरण वे अभी भी करते हैं। गुरु गोविन्द गिरी के अनुयायी होने के कारण अब भी वहाँ 'जय गुरु महाराज' का अभिवादन किया जाता है। यह संबोधन संग्रामी, आदिवासी समाज के सेवक व संत गोविन्द गिरी के प्रति श्रद्धा व आस्था की महान परम्परा का प्रतीक है।

[168] हरीराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 31
[169] हरीराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 18

मानगढ़ हत्याकांड की तरह ही भूला बिलौरिया और पालचित्तरिया की शहादत का चित्रण भी इस पुस्तक में किया गया है। कुल मिलाकर दो ढाई सौ घरों की छितरी-बिखरी बस्ती के गाँव भूला-बिलोरिया में अभी तक बिजली नहीं पहुँची है। यहाँ पर भी आदिवासियों का सामूहिक संहार करके सामान लूटकर बचे हुए घर-झोंपड़े जला दिये गए व मवेशी, अन्न, चारा सब कुछ भस्म कर दिया गया था। लेखक इस हत्याकांड के मूल को खोजने की कोशिश करता है। जिससे मेवाड़ भील कोर के मुख्यालय में एक पत्र प्राप्त हुआ इसके आधार पर लेखक कहते हैं कि "इस हत्याकांड की पृष्ठभूमि में आदिवासियों के अनेक दु:ख-दर्द थे, जिनमें अकाल, रियासत व जागीरदारों के द्वारा लिए जाने वाली बेगार, वन संपदा के उपयोग पर सत्ता की पाबंदी, भारी लगान, छोटे-ठिकानेदारों, उनके मातहत अफसरों व कर्मचारियों द्वारा अन्य प्रकार के शोषण, जिनमें आदिवासी महिलाओं का दैहिक शोषण आदि प्रमुख थे।"[170]

मोतीलाल तेजावत का जन्म उदयपुर जिले के कोल्यारी गाँव में एक ओसवाल परिवार में 8 जुलाई 1887 में हुआ था। उनके नेतृत्व में हुए एकी आंदोलन में आसपास के भील व गरासियों के अलावा उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाडा व गुजरात के आदिवासी भी शामिल हुए थे। इस आंदोलन के माध्यम से उन्होंने आदिवासियों में जागृत्ति लाने का कार्य किया था। उन्होंने एकी आंदोलन की शुरुआत की और घर-घर जा कर आदिवासियों के दु:ख, दर्द को सुनकर उनमें प्रचलित कुरीतियों, मद्यपान, गौवध, कन्या-विक्रय, जादू-टोना आदि को छोड़ने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार आदिवासियों में जागृति पैदा करने में तेजवात जी का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

पालचित्तरिया गाँव के हत्याकांड के तथ्यों की खोज करने के लिए लेखक 10 जुलाई 2006 को जयपुर से उदयपुर जाते हैं और फिर वहाँ से पालचित्तरिया गाँव की तरफ आगे बढ़ते हैं। पथरीली ऊबड़-खाबड़ जमीन पर बसा करीब डेढ़ हजार घरों की बस्ती के पालचित्तरिया गाँव के एक हजार से अधिक आदिवासी अपने भीतर इतिहास के बड़े भाग को छुपाये हुए हैं जिसे आज तक किसी इतिहासकार ने सामने लाने की कोशिश नहीं की और अभी भी वहाँ के स्थानीय पटेल जाति के व अन्य लोग उसे छुपाये रखना चाहते हैं। घटना की असली भयावहता वहाँ के कुओं से

[170] हरीराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 58

पता चलती है जिनमें लाशों को डालकर ऊपर से मिट्टी से भर दिया जाता था। "लक्ष्मणपुरा का कोई आदमी हमें कुओं के बारे में कुछ भी नहीं बताता है। कुएँ तो यहाँ दर्जन भर बताए जाते हैं, जिनमें लाशों को डालकर ऊपर से मिट्टी डाल दी गई थी ताकि कोई नामोनिशान शेष न रहे। यह कुएँ पटेलों के थे और गाँव में पटेलों का दबदबा है।"[171]

इस घटना को हुए अभी सौ वर्ष ही हुए हैं अर्थात् बहुत लंबी अवधि अभी नहीं निकली है साथ ही तत्कालीन समय में गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी ने शहीद-स्मारक बनवाकर कार्यक्रम करवाया और कांग्रेस सरकार ने भी शहीद-दीवार बनाकर बलिदान के इस स्थल को स्वीकार करके उसे सभी के सामने लाने का प्रयास किया है फिर भी लोग इस तरह का रुख क्यों अपनाते हैं। लेखक के काफी प्रयास करने के बावजूद पटेल परिवार के लोग लाशों वाले कुएँ खोदने के लिए तैयार नहीं होते हैं। वहाँ का ही स्थानीय सुरेश इस संबंध में लोगों की इस मानसिकता के मूल कारणों के बारे में बताता है। जिसमें सबसे प्रमुख है कि इस बड़े हादसे की स्मृतियाँ दिल दहलाने वाली है; जिससे यहाँ के हताहत होने वालों के वंशजों में इस घटना का आज तक खौफ है। दूसरी तरफ यहाँ के लोगों में यह आशंका है कि अगर इस घटना का अधिक प्रचार-प्रसार हुआ तो यह सम्पूर्ण क्षेत्र राष्ट्रीय बलिदान की दृष्टि से सुरक्षित क्षेत्र घोषित हो जायेगा। इतना सब कुछ होने के बावजूद लेखक हर संभव प्रयास करके तथ्यों को खोज निकालने की कोशिश करता है जिसमें कुछ सफलता भी प्राप्त होती है।

इस यात्रा वृत्तांत में राजस्थान के पहाड़ी प्रदेशों विशेषकर दक्षिणी राजस्थान के डूंगरपुर, बांसवाडा क्षेत्र के मानगढ़ व पहाड़ी प्रदेशों के सामाजिक-सांस्कृतिक वैविध्य के विवरण के साथ-साथ विशेष रूप से आदिवासी लोगों के संघर्षमय जीवन का चित्रण किया गया है। बांसवाडा की तरफ जाते ही बागीडोरा, मलवासा व बांसला जैसे छोटे गाँवों के अलावा पूरे अंचल में गहरी हरियाली के बीच लकड़ी-कोलू-पत्तों की बनी एकाकी टापरियां ही टापरियां व बस्तियों के इर्द-गिर्द डूंगरियों-पहाड़ों-तलहटियों-नदी-नालों के निकट मासूम हँसते-मुस्कराते किशोर-किशोरियाँ मिलते हैं। साथ ही बीच-बीच में आने वाली आदिवासी गीतों की स्वर लहरियाँ सहज ही आकर्षित करती

[171] हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 84

है । जो सभ्य समाज आदिवासियों को बर्बर कहते हैं तथा तमाम घिनौने आक्षेप लगाते है उनमें कितनी सत्यता है । वास्तविकता यह है कि आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन का लगातार शोषण होने से आदिवासी लोग आज भी अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर हो रहे हैं।

इस यात्रा वृत्तांत में विशेष रूप से आदिवासी संस्कृति का चित्रण किया गया है । जिसमें आदिवासी लोगों की जीवन रीति, रहन-सहन, खान-पान आदि का चित्रण प्रमुख हैं। यहाँ के भील व गरासिया जनजाति के लोगों की कर्मठता व साहसीपन को बताया गया है। उनकी सुरा-बावड़ी व वहाँ के आदिवासियों के कष्टपूर्ण जीवनयापन के तरीकों, बागड़ी बोली व गुरु गोविन्द सिंह ने भीलों व आदिवासियों के उत्थान के जो प्रयास किये हैं । उनके बारे में विस्तार से बताया गया है । इस प्रकार स्पष्ट है कि राजस्थानी प्रदेश के दक्षिणी भाग के पहाड़ी क्षेत्र के आदिवासियों का रहन-सहन, आचार-अनुष्ठान, त्योहार, भाषा आदि सभी का चित्रण इस यात्रा वृत्तांत में किया गया हैं।

3.4 अनाम यात्राएं - अशोक जेरथ :-

मनुष्य जाति का इतिहास उसकी यायावरी प्रवृत्ति से सम्बद्ध है। सम्भवत: यह मानव की एक मूल प्रवृत्ति है। प्रारम्भ में यह उसके लिए आवश्यक भी थी। परंतु धीरे-धीरे सौन्दर्यबोध के विकास के साथ चतुर्दिक फैले हुए जगत का आकर्षण उसके लिए बढ़ता गया है। यहाँ के देशों में विविधता है, ऋतुओं में परिवर्तन होता है और साथ ही साथ प्रकृति के रूपों में विभिन्नता और सौन्दर्य का वैचित्र्य है। इसके अतिरिक्त सर्जन में स्वत: एक गति है, जिसके साथ ताल मिलाकर चलना स्वत: एक उल्लास है। इस प्रकार सौन्दर्यबोध की दृष्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा साहित्य कहा जाता है। साहित्यिक यायावर को एक अद्भुत आकर्षण अपनी ओर खींचता है। जिससे वह मंत्रमुग्ध की भाँति उसकी ओर खिंच जाता है। संसार के लोग इस पुकार को सुन नहीं पाते या सुनकर भी अनसुना कर देते हैं। वे चलते हैं, यात्रा करते हैं, पर वे तेली के बैल की तरह अपने भार के साथ कोल्हू के चारों ओर घूमने में ही अपने परिश्रम की सार्थकता मान बैठते हैं। पर साहित्यिक यायावर मुक्त मनोवृत्ति के साथ घूमता है, उसकी यात्रा घुमक्कड़ी का अर्थ अपने आप पूर्ण होता है । संसार के बड़े-बड़े यायावर अपनी मनोवृत्ति में साहित्यिक थे । फाह्यान, ह्वेनसांग,

इब्नबतूता, अलबरूनी, मार्कोपली, बर्नियर और टेवर्नियर आदि जितने भी प्रसिद्ध घुमक्कड़ हुए हैं अथवा देश-विदेश के साहसी अन्वेषक हुए हैं, सब में 'साहित्यिक यायावर' का रूप रक्षित है। वे नि:संग भाव से घूमते रहे हैं। घूमना ही उनके लिए प्रधान उद्देश्य रहा है।

ऐसी ही यायावरी की प्रवृत्ति हिंदी, अंग्रेजी और डोगरी के प्रतिष्ठित लेखक अशोक जेरथ में दिखाई देती है। केंद्रीय विद्यालय में अध्यापन शुरू कर कुछ समय तक सरकारी कॉलेजों में प्रवक्ता के तौर पर कार्य कर अंतत: शिलांग में रीडर नियुक्त हुए। लेकिन संप्रेषण में रुचि उन्हें आकाशवाणी में खींच लाई, जहाँ विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए अंतत: वरिष्ठ केंद्र निदेशक के रूप में कार्य किया। संप्रति : पत्रकारिता, रचनात्मक लेखन और हिमालयी अध्ययन केंद्र में कार्यरत है। अब तक इनकी 43 कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों में डॉ. जेरथ की रचनाएँ प्रकाशित है।

‘अनाम यात्राएँ’ पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में की गई साहसिक यात्राओं का वृत्तांत है जिसमें पश्चिमी हिमालयी सांस्कृतिक क्षेत्र व अनेक हिमानियों के साथ-साथ दूसरे दुर्गम इलाकों की साहसिक यात्राएँ है। अल्मोड़ा में प्रवास के दौरान शुरू हुए इन यात्राओं के सिलसिले में कुमाऊँ-गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर के पर्वतीय व सांस्कृतिक क्षेत्रों के साहस की यात्राओं से हिमालयी संस्कृति को करीब से देखकर प्रस्तुत किया गया है।

अक्सर लोग यात्राओं से घबराते है। जिसके कई कारण है - आर्थिक अभाव, साथ की कमी या वैसे ही मन नहीं करता, आलस्य में रचा-बसा मन आराम करना चाहता है। हमारा शरीर ‘हड्ड हराम’ है, आराम चाहता है पर जितना इसे मांजा जाए, उतना ही यह निखरता है। हिमालयी श्रृंखलाएं, हिममंडित शिखर व्यक्ति को बार-बार बुलाते रहते हैं। इनके ऊपर गूंजते संगीत के स्वर और लोक-कथाएँ आत्मविभोर कर देती है और इनके अजस्त्र जलस्त्रोत जहाँ नैसर्गिक परिवेश को जन्म देते हैं, वहीं पर थके हुए मन और शरीर को संबल प्रदान करते हैं। लेखक ने पश्चिमी हिमालयी सांस्कृतिक क्षेत्र व अनेक हिमानियों के साथ-साथ दूसरे दुर्गम इलाकों की यात्राएँ की है। जिनका विशद विवरण इस पुस्तक में किया गया है। ये यात्राएँ कुमाऊँ-गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश और जम्मू कश्मीर के पर्वतीय एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों से ही सम्बंधित हैं, मात्र द्वारिकापुरी की यात्रा को छोड़कर

यात्राओं का निरंतर सिलसिला लेखक के अल्मोड़ा में प्रवास के दौरान शुरू हुआ, जिसमें सारे उत्तरांचल के साथ हिमानियों को भी ट्रैक किया गया है।

इस यात्रा वृत्तांत में कमरुनाग झील, भागानुसार की यात्रा, पांगणा, चिणडी देवी, करसोग के साथ ही अन्य यात्रा स्थलों की यात्रा को प्रस्तुत किया गया हैं तथा अन्य अवतरणों के अंतर्गत भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की यात्राओं का चित्रण किया गया है। जिसमें 'धीरे बहो रे सतलुज' के अंतर्गत किन्नोर की यात्रा, निचार, टोपरी, कामरू, सांगला, छितकुल, बटरोही, किन्नोरी शादी, रीब्बा, मोरंग बेरंड / बेरीनाग, रिकांगपीओ, कोठी आदि का चित्रण किया गया हैं।

इसमें यात्राओं के ब्यौरों के साथ ही रास्ते में मिलने वाले सभी सहयोगियों और मार्गदर्शकों का सीधा-सहज और बिना किसी लाग लपेट के वर्णन भी किया गया है। जो इन संस्मरणों को और भी मनोरंजक और दिलचस्प बना देते हैं। अल्मोड़ा के अपने प्रवास के दौरान लेखक ने उतरांचल के साथ-साथ तीन हिमानियों तपोवन, पिंडारी, कफनी एवं संतोपंथ के साथ-साथ गोमुख की यात्राओं ने न केवल जीवंतता प्रदान की, अपितु अनेक नई जगहों ऊँचे पठारों और हिमालयाई संस्कृति को बहुत करीब से देखकर स्वयं भी उनके रंग में रंग गए।

'यात्रा कमरूनाग झील' की इस प्रकरण में कमरूनाग मंदिर की प्राचीन परंपराओं, मान्यताओं व विश्वासों का चित्रण किया गया है, पांगणा से शुरू होकर कमरूनाग मंदिर व झील तक की इस यात्रा का चित्रण अत्यंत ही सजीव ढंग से किया गया है। इसमें कमरूनाग मंदिर की धार्मिक परम्पराओं जैसे- खमिशर देवता, बकरे की बलि, सरोवरनुमा ताल में चढ़ावे की अनूठी परंपरा, विधिवत रूप से श्रृंगार व पूजा-अर्चना, कमरनाग मेला, वर्षा के देवता के रूप में नाचता मोर, सिंहासन पर रखे हुए नाग देवता, मुखौटों की पूजा, सात योगी योगिनियों वाले वृक्षों की पूजा, गुरु के चयन की परंपरा, बारिश में भीगने पर एक घर में शरण लेने पर स्वागत सत्कार व कमरनाग के संबंध में पांडवों की रत्नयक्ष संबंधी मान्यताओं का चित्रण किया गया है। 'कमरूनाग' के सम्बन्ध में लेखक कहते हैं कि कमरूनाग एक श्रद्धा स्थल है। जहाँ शेर के स्वरूप में खमिशर नाम का देवता इसका रक्षक था। यहाँ पर चढ़ावे को लेकर एक अनोखी परंपरा है। जिसमें परंपरागत रूप से एक बकरे की बलि दी जाती है। यह मंदिर एक तालाब के किनारे स्थित है जिसके जलस्त्रोत को अत्यंत पवित्र माना जाता है। कमरूनाग में जितना भी चढ़ावा आता है। सभी यहाँ पर ही चढ़ाया जाता है।

‘अन्तस् को छिलती एक गुमनाम यात्रा’ इस प्रसंग में लेखक ने वल्लभ डोभाल जी से हुई अपनी मुलाकात का चित्रण किया है। जिसमें चरण-स्पर्श, श्राद्ध, कर्मकांड जैसी प्राचीन मान्यताओं के साथ ही डोभाल जी के विराट व्यक्तित्व का दिग्दर्शन किया जा सकता है।

‘अतीत के पंखों पर उड़ान भरते दो दिन’ इसमें प्राचीन संस्कार, विचार, सोच आदि के बारे उल्लेख किया गया है। एक स्थान पर पवित्र-स्नान की परंपरा को भी दर्शाया गया है। आगे के प्रसंगों में ‘बहुत भीगा था दूसरा दिन’, जिसमें चिंडी देवी, करसोग में ममलेश्वर तथा दूसरे स्थल का उल्लेख हुआ है। पाषाण अट्टालिकाओं के खुलते-बंद होते वरकों में वह सब कुछ बिखरा पड़ा है जिसे इतिहासवेत्ताओं, कला इतिहासकारों, स्थापत्य के अन्वेषियों तथा अनुसंधित्सुओं ने सदा खंगालना चाहा है। पर आने वाली पीढ़ी इस ज्ञान एवं सूचनाओं के अजस्त्र स्त्रोत के बारे में मात्र ‘एक था राजा’ की उक्ति से बुजुर्गों से ही सुनेगी। एक और प्रसंग ‘अद्भुत है बिजली महादेव की यात्रा’ में कुल्लू-मनाली का लेखक ने दर्शन कराया है। लेखक के मन में बार-बार उन्हीं श्रद्धा-स्थलों को देखने की ललक जाग उठती है। जहाँ का विलक्षण इतिहास और स्थापत्य परम्पराओं के कारण प्रभावित होता है।

‘संसार की सबसे पुरानी संसद : मलाणा’ में चंद्रखणी पर्वत के पठार पर स्थित मलाणा गाँव विश्व-भर की संसदीय प्रणाली का अग्रणी गाँव है। सोचा भी नहीं जा सकता, पर यह है अटल सत्य। 500 परिवारों की कुल जनसंख्या लिए यह गाँव घने जंगलों, ऊँचे घुमावदार मार्गों और अति कठिन पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा है। शायद यही कारण है कि बाहरी प्रभावों और कुल संसार से यह अछूता रहा है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ‘अनाम यात्राएँ’ अशोक जेरथ का एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जिसमें भारतीय संस्कृति की झलक विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। इसमें लेखक का उद्देश्य मात्र यात्रा करना ही नहीं है बल्कि लोक जीवन की झाँकियों को भी प्रस्तुत करना है। लोक मान्यताएँ, लोक विश्वास, लोक संस्कृति किसी भी क्षेत्र या समुदाय की विशिष्ट पहचान होते हैं। इन्हीं क्षेत्र विशेष के लोकजीवन की रोचक झलक इसमें प्रस्तुत की गयी है। लेखक ने अपनी इस यात्रा में ग्रामीण जीवन के अभावों एवं संस्कृति को भी रोचक अंदाज में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें लेखक अपनी यात्रा में पड़ने वाले ग्रामीण अंचलों के रीति-रिवाजों,

परम्पराओं को रोचकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। लेखक ने इन अंचलों के अच्छे-बुरे सभी रीति-रिवाजों का चित्रण पूरी सच्चाई के साथ किया है। आधुनिक युग की भौतिकता की चकाचौंध में जीवन-मूल्यों के प्रति आग्रह का भाव इस यात्रा वृत्तांत में गूंजता है।

3.5 बुद्ध का कमंडल : लद्दाख – कृष्णा सोबती :-

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी की प्रतिष्ठित लेखिका कृष्णा सोबती ने सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। भारतीय साहित्य में अगर देखा जाए तो ये अपनी संयमित अभिव्यक्ति और सुथरी रचनात्मकता के लिए जानी जाने वाली विश्वसनीय उपस्थिति हैं। उपन्यासकार, कहानीकार, संस्मरणकार, विलक्षण गद्यकार कृष्णा सोबती ने अपनी लंबी साहित्यिक यात्रा में हर नई कृति के साथ अपनी विशिष्टताओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है और विशिष्ट तरीके से लिखना इनकी अपनी खास विशेषता है। इनकी 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रों मरजानी', 'यारों के यार', 'तिन पहाड़', 'बादलों के घेरे', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'जिंदगीनामा', 'ऐ लड़की', 'दिलो-दानिश, 'हम हशमत', 'समय सरगम' जैसी रचनाओं ने पाठकों को सहज ही आकर्षित किया हैं। इसी कड़ी में सहज रूप से सभी का ध्यान आकर्षित करता 'बुद्ध का कमंडल' यात्रा संस्मरण लद्दाख यात्रा का एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसका रंगीन पन्नों पर भारी साज-सज्जा व विशिष्टता में छपी होने के कारण जितना बाहरी रूप आकर्षित करता है, उतना ही अधिक इसका अंतस गहराई में लेकर जाता है। हर पन्ने पर नयनाभिराम दृश्य जो लेखिका के साथ-साथ मानसिक यात्रा कराते चलते हैं। पाठक के कल्पनालोक के पहाड़, पर्वत, दर्रे, गोम्पा, नदियाँ, झीलें, बादल, बर्फ सब कुछ शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्राप्त करके चित्रों में अपना प्रत्यक्ष रूप प्रस्तुत कर रहे हैं। इस रंगीन छपाई व चित्रों के चक्कर में इसकी कीमत जरूर पाठकों से दूर होती जा रही है परंतु यह विशेषता ही इसे अन्य यात्रा वृत्तांतों से विशिष्ट बनाकर आकर्षित करती है।

पुस्तक के बाहरी आवरण के बाद अगर इसके अंतस् को देखा जाए तो यह एक यात्रा मात्र नहीं है बल्कि इसमें लद्दाख के हर पक्ष को बहुत गहराई के साथ महसूस करके अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। वहाँ का समाज, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, धर्म सब कुछ इसमें समाहित हैं। लेखिका की

वैयक्तिक स्मृतियों, जातीय अवधारणाओं, ऐतिहासिक, भौगोलिक वृत्तांतों का सम्मिलित समुच्चय इसमें दिखाई देता है।

इस वृत्तांत में अध्ययनशीलता और यायावरी प्रवृत्ति समानांतर रूप से शुरू होती है। अगर देखा जाए तो इस लद्दाख यात्रा का मूल कारण लेखिका की यह अध्ययनवृत्ति ही है। यात्रा की शुरुआत उस समय होती है जब लेखिका देश के अधिकांश पर्वतीय स्थान शिमला, चैल, कसौली, मसूरी, चकराता, नैनीताल, रानीखेत, अल्मोड़ा, मुक्तेश्वर, धर्मशाला, पालमपुर, कौसानी, इम्फाल, शिलांग, दार्जिलिंग, गंगटोक देख लेने के पश्चात दक्षिण भारतीय पहाड़ों पर जाने के लिए सोचती है लेकिन जब एक दिन शास्त्री भवन की लाइब्रेरी में यूनेस्को द्वारा प्रकाशित मदनजीत सिंह की 'हिमालय आर्ट' में लद्दाख के चित्रों को देखकर दक्षिण भारत की ओर, की जाने वाली पहाड़ों की यह यात्रा पहाड़ों के अनोखे विस्तार, अद्भुत लैंडस्केप लद्दाख की ओर रुख मोड़ लेती है और लेखिका बुक शॉप पर जाकर लद्दाख से संबंधित जानकारी वाली किताबें खरीदती है। यात्रा में किताबों की महत्ता को बताते हुए वह कहती भी है कि "यात्री के लिए जितना टूरिस्ट सेंटर जरूरी है, उतनी ही बुकशॉप भी।"[172] इस प्रकार अध्ययनशीलता के कारण प्रारंभ हुई यायावरी वाली इस किताब की शुरुआत हिमालय की स्वायत्तता को बताते हुए होती है। उँचाईयों के गहरे सर्द ताप के मौन गांभीर्य से सृजित देश का मस्तक महान हिमालय भारतीय जनमानस का भौगोलिक और आध्यात्मिक स्त्रोत है। इसी भारतीय जन के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक स्त्रोत हिमालय के संबंध में लेखिका कहती है कि "हिमालय की स्वायत्तता अदम्य है। प्रकृति द्वारा सिरजित हिमालय एक ऐसा पाठ है, जो न किन्हीं हाथों द्वारा लिखा जा सकता है, न निर्मित किया जा सकता है।"[173]

हजारों मीलों में अपना साम्राज्य स्थापित किये हिमालय सैकड़ों रंग-रूपों में सुशोभित है जो कि मानवीय हाथों से निर्मित न होकर प्रकृति की महिमा है। अपने इतिहास, संस्कृति व प्रकृति के लगाव को प्रस्तुत करते हुए लेखिका हिमालय की महत्ता व इसे भूगोल और इतिहास का महानायक बताते हुए लिखती है कि "हिमालय देश की चारों दिशाओं में फैले भारतीय जनमानस का भौगोलिक, आध्यात्मिक स्त्रोत है। शिखरों पर स्थित तीर्थों का पवित्र प्रतीक है। भारतीय मन की

---

[172] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल'(2012), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 20
[173] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 01

रुचियों को उद्वेलित करती कलात्मक अभिव्यक्तियाँ इसी उद्गम से निकली नदियों के साथ-साथ प्रवाहित होती रही हैं। भारत-भूमि और इसके नागरिकों के मानस को सींचती रही हैं। हिमालय हमारे भूगोल और इतिहास का महानायक है। हमारी संस्कृति और इतिहास की महागाथा है।"[174]

उत्तरी भारत में काराकोरम पर्वत व हिमालय के बीच प्रकृति के बहुत कम रंगों से सृजित, अद्भुत, अविस्मरणीय, अप्रतिम सौन्दर्य से भरपूर केंद्रशासित प्रदेश लेह-लद्दाख समुद्र तल से 11,500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। श्वेत निर्मल बादल, नीला आकाश, भूरे बंजर पहाड़ व बर्फीले शिखर, ग्रे काली तांबई व दालचीनी रंगों की चट्टानें, रेगिस्तान की सूखी रेत, दर्रे, झीलें व पहाड़ों के बीच की घाटियाँ। कुल मिलाकर बहुत सारी विविधताओं को अपने में समाहित किए लद्दाख को अनेक नामों से जाना जाता है। मारयुल(लाल धरती), मांगयुल(बहुत से लोगों का घर), की खापान-पा(बर्फ की धरती), बुद्ध थान, बौद्ध विहार गोम्पाओं का निवास स्थान 'बुद्ध का कमंडल'। लद्दाख के इसी बुद्ध के कमंडल नाम के आधार पर इस यात्रावृत्त का नाम 'बुद्ध का कमंडल' रखा गया है। लद्दाखी दैवीय शक्तियों में विश्वास करते हैं व मानते हैं कि हर देवता अपने-अपने आकार, विशेष रंग और गुण का प्रतीक है। वे 'लाह' को भी देवता ही मानते हैं "लद्दाख में मानते हैं कि हर देवता अपने-अपने विशेष रंग और गुण का प्रतीक है। लद्दाखी दैवीय शक्तियों में विश्वास रखते हैं। इनकी भाषा में 'लाह' देवता है।

लाहमिन असुर है

मी मनुष्य है

दुरबी शैतान है

मथाल नरकवासी

शिखरों के देवता शिव और उनकी धर्मिणी महिषासुर-मर्दिनी के रूप में यहाँ चित्रित हुई हैं। इसी तरह बाहुल्य की देवी और महासरस्वती और लक्ष्मी भी।"[175]

---

[174] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 08

[175] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल'(2012), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 46

प्रकृति का सान्निध्य सभी को सहज ही अपनी तरफ आकर्षित करता है और इसी से सम्मोहित हो सभी प्रकृति की गोद में, विशेषकर पहाड़ों में भाग निकलते हैं। लेखिका को भी प्रकृति की गोद बेहद पसंद है। जो लगातार उसके भीतर नई ऊर्जा का संचार करती रहती है। इसी ऊर्जा और उल्लास को सर्वत्र देखा जा सकता है। लद्दाख को अगर देखें तो इसका अपना विशिष्ट भौगोलिक परिवेश है बर्फ से ढँके हुए पहाड़, पानी की कमी के कारण रेगिस्तान व वनस्पति का अभाव जिससे जलवायु अत्यंत शुष्क व कठोर है इसी कारण यहाँ एक तरफ तीखी धूप से तपती चट्टानें है तो दूसरी तरफ ठंडक प्रदान करती छाँव। वनस्पति विहीन पथरीली चट्टानें व घाटियों में तेज हवाएँ चलती रहती है। यहाँ के मौसम की विशिष्टता को बताते हुए लेखिका कहती है कि "यहाँ का दिन इतना गर्म कि प्यास से गला सूखने लगे। रात इतनी सर्द कि किसी भी गरमाहट को चीर दे। रात का तापमान शून्य से नीचे और दुपहर ऐसी जैसी मैदानों में हो। पूरे वर्ष में तीन-चार बार बूँदाबाँदी और दो-तीन इंच बर्फ। आसमान यहाँ का धुला-धुला मगर गर्मी की कमी नहीं।"[176] इतनी विषमता और विविधता होने के बावजूद लेखिका लद्दाख के हर कोने-कोने को देखने के लिए लालायित रहती है।

लेखिका ने लद्दाख को अत्यंत निरपेक्ष भाव से देखा है कही भी किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं है। जिसमें पुरातात्विक और ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करने के लिए आँखिन देखी पर अधिक विश्वास किया है। अधिकांश गोम्पा व मदिरों में लेखिका स्वयं उपस्थित रही है। जिससे विवरण अधिक प्रामाणिक, सटीक और तथ्यपरक बने हैं। ऐतिहासिक संदर्भों को अगर देखा जाए तो यहाँ के राजाओं के सम्पूर्ण इतिहास को बताते हुए उनके व्यापार-वाणिज्य व दूसरे देशों जैसे चीन अफगानिस्तान, तिब्बत, बर्मा के साथ के संबंधों को बताते हुए बौद्ध धर्म व गोम्पाओं का भी स्थूल विवरण प्रस्तुत किया गया है। कलिंग युद्ध के बाद में अशोक महान ने जिस दिन बौद्ध धर्म को अपनाया था। उस घटना को यहाँ आज भी धूमधाम से मनाया जाता है। बौद्ध धर्म का सबसे अधिक विकसित रूप कुषाण काल में देखने को मिला और यातायात के साधनों के अभाव व भौगोलिक दूरियाँ होने के बावजूद अशोक महान ने बहुत से प्रचारक बौद्ध धर्म का प्रचार करने कश्मीर व अफगानिस्तान की तरफ भेजे जिससे बौद्ध धर्म दूर-दूर तक देश-विदेश में फैले। अन्य

[176] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल'(2012), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 48

देशों से संबंधों के बारे में लेखिका कहती है कि "लद्दाख का सांस्कृतिक और व्यापारिक विकास जितना भारत से जुड़ा रहा है उतना ही उसकी भौगोलिक सीमाओं के आर-पार के देशों से भी। लद्दाख से खेतान और यारकंद, कर्राकुर्रम से यारकंद और लेह-हिन्दुकुश से बिक्टीरिया और तक्षशिला और गांधार जैसे राजपथों से होकर पैदल रास्ते व्यापार होता रहा है।"[177]

लद्दाख के प्राकृतिक सौन्दर्य, राजपरिवार, उनके पदानुक्रमों, महल, राजकाज व अन्य राजाओं के साथ संबंध सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया हैं। यात्रा के साथ-साथ किसी प्रदेश विशेष के इतिहास व भूगोल की जानकारी प्राप्त करके उसे प्रस्तुत करना अपने आप में बहुत महत्व रखता है। यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ पर्यटक स्थल भी है जैसे- लेह महल, लेह का किला, थिकसे, शे, हैमिस, फियांग, गोम्पा का बौद्ध मंदिर, लामयुरु का प्राकृतिक सौन्दर्य, आलची गोम्पा, थिकसे विहार, लद्दाख के बौद्ध मंदिर, चुंघीघर अर्थात् लद्दाख से बाहर विदेशों में लद्दाख से तिब्बत, चीन और यारकंद जानेवाली और वहाँ से आनेवाले माल की आवाजाही घोड़ों और खच्चरों के जरिए की जाती है और यही स्थान चुंघीघर कहलाता था। "यहाँ से बाहर विदेशों में लद्दाख से तिब्बत, चीन और यारकंद जाने वाली और वहाँ से आने वाले जींसों और बाहर से आने वाले माल की आवा-जाही उन दिनों घोड़ों और खच्चरों के जरिए होती थी।"[178]

कठिन परिस्थितियों में भी बहादुर लोग बर्फीले अंधड़ व आँधी-तूफ़ानों को सहते हुए दर्रों के बीच चलते रहते हैं। इन कठिन व दुर्गम रास्तों के दर्रों में हर तरह की कठिनाईयों का सामना करने के लिए ये कारवां हमेशा तैयार रहते हैं। लद्दाख में सड़कों की बजाय कठिन व दुर्गम रास्तों से जुड़े हुए दर्रों की आवश्यकता है। जिससे कर्राकुर्रम दर्रा, चांगला दर्रा, जोजिला दर्रा जैसे पर्वतों की ऊँची चोटियों में दुबके दर्रों को पार करके खच्चरों व घोड़ों पर सामान लादकर आँधी, तूफ़ानों का सामना करते हुए दूसरे देशों से व्यापार किया जाता था। लद्दाख के व्यापारिक प्रवेश द्वार कर्राकुर्रम और सुभत के दर्रे के संबंध में लेखिका कहती है कि "इन्हीं दर्रों की राह लद्दाख से कारवां आते-जाते रहते थे। रोमांचकारी है यह सोचना कि पर्वतों की ऊँची चोटियों में दुबके दर्रों को पार करना कितना खतरनाक होता होगा। विस्मयकारी है यह सोचना कि लद्दाख जैसे क्षेत्र से सदियों-सदियों खच्चरों

---

[177] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 120

[178] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल'(2012), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 119

और घोड़ों पर सामान लादे कारवां कैसे आँधी-अंधड़ का सामना कर दूसरे देशों से व्यापार करते होंगे।"[179] समुद्रतल से 5,575 फीट की ऊँचाई पर स्थित लद्दाख व तिब्बत की प्राकृतिक सीमा व इन दर्रों में भीषण बर्फीली आँधियों में अनेक कारवां फँस कर नष्ट हो जाते थे। इसी तरह समुद्रतल से 11,578 फीट की ऊँचाई पर श्रीनगर के उत्तर-पूर्व में जांस्कर शृंखलाओं के मध्य स्थित जोजीला दर्रा कश्मीर और लेह की मौत के फंदे में झूलने वाली ज़िंदगी व उनकी जिजीविषा को प्रस्तुत करता है।

इस पुस्तक में भौगोलिक विशिष्टताओं को बताते हुए मौसम, वनस्पतियों, पशु-पक्षी, लद्दाखी घोड़े, याक, हिरण, बकरियों, बर्फ-चीते व खच्चर सभी का बहुत ही विस्तार के साथ चित्रण किया गया है। इन सब को देखने के साथ-साथ मानवीय स्वभाव के वशीभूत लेखिका बार-बार पहले की स्मृतियों को ताजा करती रहती है। दार्जलिङ्ग व अन्य स्थानों से की गई तुलना इसे और भी अधिक विशिष्ट बनाती है। लद्दाख की प्रकृति को भी तुलनात्मक रूप से विभिन्न शैलियों में अभिव्यक्त किया गया है। "लद्दाख की प्रकृति का अंकन आख्यान कुछ ऐसे कि विभिन्न रंग-रूप तुलनात्मक शैली में लिखे हुए हैं। ऊँची बर्फीली चोटियाँ हैं तो माँझोली पहाड़ियाँ भी। आकाश को छूते शिखर हैं तो आराम से पसरी चट्टानें भी। हिमशिखर जमे हैं मजबूती से मगर पानी की जलधाराएँ बूँद-बूँद रिसती हैं। ठंडक पिघलती है धूप में और उसे सोख लेती है।"[180]

अंत में यात्रा वृत्तांत को सबसे खास बनाते हैं कारगिल ट्रिप और खारदुलांग जिसे 'खारदुला' भी कहते हैं यह पथरीले नंगे पहाड़ों की शृंखलाओं के मध्य स्थित हिममंडित ग्लेशियर है। वहाँ की धूप में चमकती बर्फीले पहाड़ों की धवलता और बर्फ से ढँकी चट्टान के नीचे पथरीले देवी-देवताओं के अनेक कैलेंडर चिपके हुए हैं। यहाँ पर सभी मन की मन्नतों को पूरा करने के लिए खंभों पर पताकाएँ फहराते हैं जो हवा में लहरहा रही है। लेखिका के पास पताका नहीं थी लेकिन वह अपनी सुनहरी ओढ़नी को ही पहरा देती है। कुदरत के कठोर वैभव के अनूठे लैंडस्केप बुद्ध के कमंडल में लद्दाख में उदय होती उषाओं, घिरती साँझों और इनके बीच फैले स्तब्धकारी सौन्दर्य को देखने की गहरी उत्सुकता लेखिका में दिखाई देती है। सुनहरी भोर की गुलाबी सुनहरी किरणें पर्वतों के शिखरों से आने वाले अलौकिक दृश्य को देखने के लिए साढ़े तीन बजे ही उठकर लेखिका एकाग्र होकर

---

[179] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 121

[180] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल'(2012), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 29

पूर्व दिशा की ओर देखने लग जाती है। "तेजस्वी सूर्य की किरणें देखने को। पूर्व दिशा पर एकाग्र करती हूँ अपने को, जहाँ से उदय होते सूर्य की किरणें शिखरों को अलंकृत करेंगी। यह सोचते ही आँखें झपकीं और लद्दाख का निथरा-निर्मल आकाश उजले प्रकाश से सींच दिया गया।"[181]

इस प्रकार लद्दाख को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने वाला यह अत्यंत महत्वपूर्ण, रमणीय, पठनीय यात्रा वृत्तांत हैं।

3.6 खरामा खरामा - पंकज बिष्ट :-

लेखक परिचय - जन्म - 20 फरवरी 1946 को मुंबई में।

शिक्षा - अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.।

रचनाएँ - पहली कहानी 1967 में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित, पहला कहानी-संग्रह 1980 में 'पंद्रह जमा पच्चीस'। उपन्यास – 'लेकिन दरवाजा', उस चिड़िया का नाम', 'पंखवाली नाव'। कहानी-संग्रह - 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते ?', 'टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियाँ', 'चर्चित कहानियाँ', बाल उपन्यास - 'गोलू और भोलू'।

दुनिया को जानने, समझने और जीवनयापन के बेहतर साधनों की तलाश के लिए प्राचीनकाल से ही यात्राएँ की जाती रही है लेकिन समय के साथ-साथ यात्रा और उसके उद्देश्यों में विविधता आती रही है। भारत में सिन्धुघाटी कालीन सभ्यता से व्यापार की एक लम्बी परम्परा रही है लेकिन फिर भी जीवनयापन के दबावों की अनिवार्यता व हिन्दुओं की आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति के कारण दुनिया को अधिक जानने-समझने या उससे सामाजिक सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने की अधिक कोशिश की गई। समुद्र यात्रा करने की मनाही व तीर्थस्थानों की यात्रा अधिक किये जाने के कारण प्रारंभिक समय में विदेश यात्राओं की कमी व तीर्थस्थानों की यात्राएँ अधिक दिखाई देती है। जिसके कारण प्रारंभिक समय में यात्रावृत्तों का अत्यंत अभाव दिखाई देता है। आधुनिक काल में आकर राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, गोविन्द मिश्र जैसे घुमक्कड़ों ने इस कमी को पूरा किया। इसी कमी को पूरा करने वाला एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है पंकज बिष्ठ का 'खरामा-

---

[181] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 23

खरामा' । जिसमें तथ्यों मात्र को प्रस्तुत न करके क्षेत्र या स्थान विशेष के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस पुस्तक में अलग-अलग समय पर की गई यात्राओं के यात्रा लेखों को संकलित किया गया है जिसमें 'पश्चिमी प्रांतर', 'सुदूर पूर्व' व 'उत्तरांचल की यात्राएँ' हैं। 'पश्चिमी प्रांतर में सहस्त्राब्दी के अन्तराल' व 'अपने देश में अपनी ही तलाश में' की गई गुजरात, अहमदाबाद की यात्राओं को प्रस्तुत किया गया हैं। 'विद्रोह की पगडण्डी : मीरा के देश में एक नास्तिक' लेख में मीरा के प्रदेश राजस्थान और द्वारका यात्रा के माध्यम से मीरा को सभी रूपों में प्रस्तुत किया गया है। 'आस्था की गुफाओं की चमक' और 'कला के अँधेरे कोने' लेखों में महाराष्ट्र के औरंगाबाद में स्थित अजंता, एलोरा की गुफाओं की यात्रा करके उसके माध्यम से बौद्ध धर्म व वास्तुकला को प्रस्तुत किया गया है। इनमें यात्राओं के बहाने से वैचारिकता को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। लेखक कहते भी हैं कि "दो शताब्दियों के चार दशकों में फैले इन वृत्तांतों में अधिकांश पहाड़ और गुजरात की दो धुरियों के आसपास रचे गये हैं, जिन्हें मैं निकटता से जानने की कोशिश करता हूँ। ये कभी वृत्तांत है तो कभी सामाजिक टिप्पणियाँ और कभी साहित्यिक संवाद।"[182]

इसमें लेखक के पत्रकार होने के कारण पत्रकारिता की तरह हर पक्ष को तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। देखने के साथ-साथ स्थान विशेष के इतिहास, समाज, धर्म व संस्कृति को बहुत ही गहराई के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें लेखक की विचारधारा व धर्म के प्रति नास्तिकता का भाव तो कहीं बौद्ध धर्म व कला के प्रति लगाव दिखाई देता है। गुजरात के द्वारका में प्रवेश द्वार पर ही धर्म और जाति को आधार बनाकर प्रवेश दिया जाता है। जब लेखक मंदिर के प्रवेश द्वार की तरफ कदम बढ़ाते हैं तो छोटी-छोटी दाढ़ी व रंग-रूप को देखकर जात के बारे में पूछा जाता है। "क्या जात है पूछना ? पर वह आदमी झपटता हुआ आया और मुझे बाजू से थाम लिया। बहुत क्रोध आया। दिल हुआ साले को उठाकर वहीं पत्थर पर फेंक दूँ। पर सिर्फ एक ओर को झटका दिया। उसने आगे बढ़कर मुझे फिर पकड़ लिया और वह अपने सवाल को दोहराता रहा। कौन जात है ? जात बताओ।"[183] सबसे भयानक तो यह कि मंदिर के प्रवेश द्वार पर ही धर्म के

---

[182] पंकज बिष्ठ, 'खरामा-खरामा', पृ. 08

[183] पंकज बिष्ठ, 'खरामा-खरामा', पृ. 12

आसरे पर लोगों को परखने के लिए बोर्ड टांग दिया गया है। उस बोर्ड के आधार पर मुसलमान और ख्रीस्त को मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं है मंदिर में प्रवेश सिर्फ हिन्दू ही ले सकते हैं। मंदिर सैकड़ों साल पुराना व पौराणिक व ऐतिहासिक महत्व का था लेकिन फिर भी धर्म के आधार पर हो रहे इस भेदभाव के कारण लेखक को मंदिर में कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

'विद्रोह की पगडण्डी : मीरा के देश में एक नास्तिक' में मीरा के क्षेत्र राजस्थान के मेवाड़ के उदयपुर, चितौड़गढ़, नागौर व जोधपुर तथा गुजरात की यात्रा के बहाने से मीरा को नए तरीके से प्रस्तुत किया गया है। मीरा पर बहुत लेखकों ने लिखा है परन्तु इसमें लेखक ने यथार्थ और गल्प को मिश्रित रूप से प्रस्तुत करने हुए नए तरीके से व्याख्यायित करके मीरा के महान व्यक्तित्व को दिखाया है। लेखक का मीरा प्रेम साहित्य-प्रेम के आधारभूत तत्वों से जुड़ा हुआ है। लेखक के दो मध्यकालीन कवि पसंदीदा कवि है। उसमें से अगर भक्तिधारा की मूल चेतना को देखा जाए तो वह उदात्त, आध्यात्मिक और दार्शनिक रूप में दिखाई देती है।

मीरा को लेखक एक विद्रोही स्त्री के रूप में देखते हैं। जिसमें वह अडिग और अजेय मानव-जाति के आधे हिस्से स्त्रियों की अस्मिता, उसके संघर्ष के सबसे सशक्त प्रतीक के रूप में उभरती है और अपनी निजता की तलाश के लिए अध्यात्म का सहारा लेती है। इसी निजता की तलाश के सम्बन्ध में लेखक कहते हैं कि "सबसे बड़ी बात वह इसे सामाजिक संघर्ष के हथियार में बदल देती हैं। उनकी कविता मात्र एक स्त्री की स्वतंत्रता का संघर्ष नहीं है बल्कि सामाजिक समानता की पक्षधरता और राजशाही के खिलाफ विद्रोह की दुदुंभी है। यह लोकतंत्र की लड़ाई नहीं पर लोकतंत्र और समानता की जरूरत का रेखांकन जरूर है।"[184]

पितृसत्तात्मक समाज में वंश, सम्प्रदाय और जाति को बचाने के लिए यौनशुचिता को सर्वोपरि माना जाता है जो कि मेवाड़ के राजपूतों में भी प्रतिष्ठा के साथ जुड़ा हुआ सवाल है लेकिन मीरा इस पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ स्वर उठाती है। शादी मेवाड़ के महाराणा भोज के साथ होती है लेकिन प्रेम का खुला इजहार कृष्ण के लिए करती है। वह समाज द्वारा निर्धारित मूल्यों पर नहीं चलती है बल्कि उसमें आत्म निर्णय व आजादी की ललक है वह सामंती मूल्यों के खिलाफ

[184] पंकज बिष्ठ 'खरामा-खरामा' पृ. 22

बगावत करती है। लेखक कहते हैं कि “मीरा उसी कृष्ण प्रेम के सहारे, जिसकी आड़ में पुरुष कामुकता का तांडव होता रहा था, अपनी निजता, अकेलेपन, विरह, ऐंद्रिकता, यौनिकता, कामेच्छा और वासना का सीधा इजहार करती हैं। सबसे बड़ी बात वह इसे सत्ता के खिलाफ विद्रोह के तब तक के (और संभवतःअब तक के) हिंदी साहित्य के सबसे सशक्त स्वर में बदल देती हैं।”[185]

उस समय के सामंती समाज में मीरा के काव्य में साहस और स्पष्टवादिता प्रमुख रूप से दिखाई देती है। उसे जहर का प्याला भेजा जाता है, साथ ही पिता, भाई, पति, ससुर, देवर सब का वियोग सहन करना पड़ता है। वह एक राजघराने की औरत है, बाल्यकाल में पति भोजराज की मृत्यु हो जाती है जिसमें राजपूतों की परम्परा के अनुसार उसे आत्मत्याग करके पति के साथ सती हो जाना चाहिए था लेकिन वह स्वतंत्रचेता महिला स्त्रीत्व का वरण नहीं करना चाहती जिसके लिए वह तर्क देती है कि वह कृष्ण से ब्याही गई है इसीलिए वह अखंड सौभाग्वती है। राजपूतों के नियमों की बनी बनाई लीक पर नहीं चलने के कारण उसे कुलच्छनी करार दिया जाता है। साधु-संतों के बीच बैठने की उसकी संगति मेवाड़ियों को खलती है। जिसके कारण उसे मारने के अनेक प्रयास किये जाते हैं। वह कहती है कि -

“रानै भेज्या जहर प्याला इमरित करि पी जाणा ।।

डिबिया में भेज्या भुजंगम सालिगराम करि जाणा ।।”[186]

अनेक विकट परिस्थितियों के बावजूद वह अपने इरादों पर अडिग रहती है। वह मेवाड़ से वृन्दावन व अंत में द्वारका जाकर कृष्ण के भक्तिभाव में लीन रहने लग जाती है। अंत में कहा जाता है कि वह रणछोड़ के मंदिर में ही विलीन हो गई थी।

मीरा से सम्बंधित स्थानों व मंदिरों का सविस्तार से चित्रण इसमें किया गया है। जिसमें इतिहास व ऐतिहासिक घटनाओं को भी बताया है। लेखक जोधपुर जाता है, जहाँ पर जोधपुर के राजवंश के लोगों की छतरियों के समूह है जो कि राठौड़ वंशी और मीरा के परिवार से ही सम्बंधित है। लेखक कहते हैं कि “मीरा का परिवार इसी की एक शाखा था पर पारिवारिक प्रतिस्पर्द्धा ने दोनों

---

[185] पंकज बिष्ठ, 'खरामा-खरामा', पृ. 23

[186] पंकज बिष्ठ, 'खरामा-खरामा', पृ. 39

को दो दिशाओं में मोड़ दिया था। मेवाड़ ने अपने राज्य को बचाने के लिए सिसोदिया से सम्बन्ध बढ़ाये थे और उसी के चलते यानी राजनीतिक कारणों से मीरा का विवाह चितौड़ के उत्तराधिकारी भोजराज से हुआ था। मेवाड़ के लिए ही लड़ते हुए मीरा के पिता और चचेरा भाई मारे गए थे। इसके बावजूद मेड़ता को अंततः जोधपुर वालों ने अपने अधिकार में कर लिया था।"[187]

मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज से 1516 ई. में मीरा का विवाह होने के कारण मेवाड़ से मीरा का गहरा नाता रहा है। चितौड़ दुर्ग में अनगिनत महल, मंदिर और स्मारक स्थित है। यहाँ राणा कुंभा द्वारा 1440 ई. में मालवा के शासक महमूद खिलजी पर जीत की स्मृति में बनवाया गया कीर्ति स्तम्भ स्थित है जो कि नौ मंजिला है इसकी तीसरी व आठवीं मंजिल पर अल्लाह खुदा है दूसरी अनेक मूर्तियाँ होने के कारण इसे भारतीय मूर्तिकला का विश्वकोश भी कहा जाता है। इसी के पास मीरा मंदिर भी स्थित है माना जाता है कि यही बैठकर मीरा कृष्ण की आराधना किया करती थी लेकिन इसके मीरा मंदिर कहलाने के बारे में पारित मुक्ता की पुस्तक 'अप-होल्डिंग द कॉमन लाईफ द-कम्युनिटी ऑफ़ मीरा बाई' का संदर्भ देते हुए लेखक आदिवराह मंदिर को ही आगे चलकर मीरा मंदिर होना बताते हैं। "इसकी शुरुआत राजपूतों के अंधप्रेमी अंग्रेज इतिहासकार जेम्स टॉड ने की, जिसने गलती से पहले बड़े मंदिर को उसी तरह, जिस तरह उसने महाराणा कुम्भा को मीरा का पति बतला दिया था, 'मीरा मंदिर' घोषित कर दिया था। बाद में पता चला कि यह तो आदिवराह मंदिर है। दूसरा, बायीं ओर का छोटा मंदिर खाली था, इसीलिए अंतत: यह मीरा का मंदिर घोषित हुआ। इसके पीछे लालसिंह शक्तावत नाम के सज्जन की भूमिका रही है।"[188]

चितौड़ किला और राजपूत अपने शौर्य और साके के लिए प्रसिद्ध हैं यहाँ के वीरों ने केसरिया और महिलाओं ने अपनी इज्जत आबरू बचाने के लिए जौहर करना सहर्ष स्वीकार कर लिया लेकिन ये कभी भी दुश्मन के आगे नहीं झुके। यह दुर्ग तीन साकों के लिए प्रसिद्ध है। पहला साका सन् 1303 ई. में राणा रत्नसिंह व अलाउद्दीन खिलजी के बीच हुए युद्ध के बाद हुआ था जिसमें रानी पद्मिनी ने 1600 स्त्रियों के साथ जौहर किया था। दूसरा साका महाराणा विक्रमादित्य के समय 1534-35 में गुजरात के शासक बहादुरशाह के आक्रमण के बाद रानी कर्मावती के नेतृत्व में

[187] पंकज बिष्ठ 'खरामा-खरामा', पृ. 32

[188] पंकज बिष्ठ 'खरामा-खरामा', पृ. 33

1300 स्त्रियों ने किया था। इसी तरह तीसरा साका महाराणा उदयसिंह के समय सन् 1567 ई. में किया था। इन्हीं साकों का प्रत्यक्ष प्रमाण है किले के मध्य में स्थित जौहर कुंड। जिसमें समस्त स्त्रियों ने कुंड में कूदकर अग्नि से मृत्यु का वरण किया था। जलती औरतों की मृत्यु का तांडव यह जौहर कुंड देखकर लेखक के मन में अंतहीन चीत्कारें उठ रही है। वह अंदर उतर कर देखना चाहता है लेकिन अंदर बढ़ने के लिए पैर नहीं उठ रहे हैं वह कहता है कि "अगर उस कुंड में तो न जाने किस-किस की राख पैरों तले कुचल जाएगी। जाड़ों की सुबह की उस खिली धूप में घास और महलों, परकोटों और मंदिरों के अवशेषों के वीराने में इस कुंड को देखना सत्ता की मानवीय महत्त्वाकांक्षा की विकृतियों और उसके दुष्परिणामों से साक्षात्कार करने जैसा था। क्या कोई ऐसा रास्ता नहीं रहा होगा जिसके चलते इतनी नाहक जाती जानों को बचाया जा सकता ?"[189]

अस्तित्व की रक्षा की यह प्रथा अत्यंत भयावह और पीड़ादायक थी। जिसके कारण मीरा कही पर भी इसका समर्थन करती नजर नहीं आती है। मीरा की सास, ननद, देवरानियों, जेठानियों और न जाने मेवाड़ की कितनी स्त्रियों ने जौहर किया था लेकिन मीरा चितौड़ को छोड़कर अपने भक्तिभाव में लगी रहती है इसी तरह मेवाड़ में प्रचलित दूसरी सती प्रथा का भी समर्थन मीरा नहीं करती है। सती प्रथा में पति की मृत्यु के पश्चात पत्नी को उसी की चिता पर साथ में जिंदा जला दिया जाता है। मीरा के पति भोजराज की मृत्यु हो जाती है लेकिन वह सती नहीं होती। पंकज बिष्ठ कहते हैं कि "देखा जाए तो ये दोनों ही प्रथाएँ बर्बर आदिम हैं जिनमें औरतों का महत्व निजी संपत्ति से ज्यादा नहीं है और आदमी की उस कामना से जुड़ा हुआ है जिनमें वह मरने के बाद भी इस संसार को साथ ले जाना चाहता है। इससे जुड़ा रहना चाहता है।"[190]

मीरा की भक्ति को अगर देखा जाए तो उसमें माधुर्य भाव की भक्ति है। प्रकृति के प्रति लगाव व बादल उनका प्रिय प्रतीक है। प्रेम और विरह की विरल अभिव्यक्ति उनके काव्य में हुई है। उनकी रचनाओं में संगीत, माधुर्य, लय की अभिव्यक्तियाँ की गई है। मीरा के पद आज भी जन-जन में प्रचलित है। मीरा की लोकप्रियता को एक अलग ही तरीके से देखते हुए लेखक कहते हैं कि "मीरा राजस्थान और सौराष्ट्र के हाशिये के उन लोगों द्वारा अपनाई गई थीं, जिनका दमन और शोषण

---

[189] पंकज बिष्ठ 'खरामा-खरामा' पृ. 33
[190] पंकज बिष्ठ 'खरामा-खरामा', पृ. 34

उच्च जातियों और सामंती व्यवस्था द्वारा सदियों से होता रहा है। मीरा की जो वर्तमान लोकप्रियता है वह मूलत: राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान की परिघटना है और इसमें महात्मा गाँधी का बड़ा हाथ है।"[191]

'एकांत के पचास वर्ष और रुद्रसागर का मांझी' अध्याय में बांग्लादेश से लगे हुए भारत के पूर्वोत्तर में स्थित त्रिपुरा की यात्रा का चित्रण किया गया है। जहाँ एक तरफ प्रकृति के सौन्दर्य के बीच बढ़ती नदियों की विशालता है तो दूसरी तरफ सड़कों पर जगह-जगह फैले सेना और अर्द्धसैनिक बलों के अनगिनत परिसर सहज ही ध्यान आकर्षित करते हैं। इसके संबंध में लेखक कहते हैं कि "यह दिल्ली नहीं आतंकवाद से ग्रसित सुदूर पूर्व का एक ऐसा राज्य था जो बांग्लादेश के उत्तर-पूर्वी छोर पर मधुमक्खियों के छत्ते की तरह टँका है।"[192]

यहाँ पूर्वी बंगाल से आये हिन्दू बंगालियों और स्थानीय जनजातियों के बीच टकराव के कारण आतंकवादी हिंसा की घटनाएँ होती रहती है। लेखक 22वें अगरतला पुस्तक मेले में उपस्थित होता है पुस्तकों को लेकर यहाँ के लोगों मे विशेष प्रेम है। लेखक कहता भी है कि अगरतला पुस्तक मेला त्रिपुरावासियों के जीवन में दुर्गापूजा के बाद सबसे ज्यादा महत्व का उत्सव है। जनजातीय लोगों व प्रवासी बंगालवासियों के बीच यहाँ तनाव चलता रहता है जिससे हिंसा की घटनाएँ भी यहाँ अधिक होती रहती है लेकिन पुस्तक मेले में मंत्रिमंडल तक के सदस्य बिना किसी सुरक्षा इंतजाम के घूम रहे हैं। जिसका मूल कारण लेखक पुस्तक प्रेम को बताते हुए कहता है कि "सभवत: यहाँ के आतंकवादी भी पुस्तक प्रेम-रोग के उतने ही बड़े शिकार होंगे जितना कि बाकी जनता। इसीलिए बहुत संभव है पुस्तक मेले में हिंसा शायद वे सोच ही न पाते हों।"[193]

छठे दशक के दौरान बांग्लादेश के चकता रोशनाबाद और चटगांव क्षेत्र से प्रवास के कारण इस दशक में त्रिपुरा की जनसंख्या में लगभग 79 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जिससे बंगाली प्रवासियों की जनसंख्या के सामने अल्पसंख्यक हो जाने के दबावों ने जनजातियों में चेतना, असुरक्षा और हिंसा की भावनाओं को उत्पन्न किया। यहाँ के प्रमुख दर्शनीय स्थलों में 15वीं सदी में बना

[191] पंकज बिष्ठ 'खरामा-खरामा', पृ. 42
[192] पंकज बिष्ठ 'खरामा-खरामा', पृ. 88
[193] पंकज बिष्ठ 'खरामा-खरामा', पृ. 89

कमलसागर मंदिर, उजयंत महल जिसे महाराजा राधा किशोर माणिक्य ने 1901 में बनवाया था। उजयंत महल में वर्तमान समय में त्रिपुरा विधानसभा स्थित है। इसी तरह अगरतला से 55 किमी दूर स्थित उदयपुर कस्बे में सोलहवीं सदी का त्रिपुरा सुंदरी स्थानीय जनजातियों में विशेष लोकप्रिय है। इसके अलावा पोर्ट ब्लेयर के प्राकृतिक सौन्दर्य, वहाँ के इतिहास, नामकरण व लोगों के बसने के सम्पूर्ण इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर स्थित सेलुलर जेल को दंडद्वीप के रूप में बनाकर बंदियों को यहाँ भेजा जाता था।

इस प्रकार यह गुजरात, राजस्थान व पूर्वोत्तर की यात्राओं के माध्यम से वहाँ के समाज, संस्कृति व इतिहास को प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है।

3.7 वह भी कोई देस है महराज - अनिल यादव :-

लेखक परिचय – जन्म- पूर्वी प्रदेश के गाजीपुर जिले के दौलतपुर गाँव में, छात्र व किसान आंदोलनों में सक्रियता, पेशे से पत्रकार। सेंटर फॉर साइंस एंड इनवैरॉनमेंट, मीडिया फेलोशिप के तहत अरुणाचल प्रदेश में कार्य। संगम राइटर्स इंटरनेशनल प्रोग्राम, 2010 में भागीदारी। 2011 में पहला कहानी-संग्रह ‘नगरवधुएँ अखबार नहीं पढ़तीं’ और 2017 में वैचारिक लेखों का संग्रह ‘सोनम गुप्ता बेवफा नहीं हैं’ प्रकाशित।

अनिल यादव का 2012 में प्रकाशित ‘वह भी कोई देस है महराज’ अपने ढंग का अनूठा एवं महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जो कि मात्र देश के उपेक्षित और अर्द्धज्ञात हिस्से पूर्वोत्तर की यात्रा का वर्णन ही नहीं करता बल्कि वहाँ के नस्ल-अंतर, भाषा-अंतर और संस्कृति के अंतर द्वन्द्व की यात्रा का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत करता है। देश के खूबसूरत हिस्से पूर्वोत्तर के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं परन्तु इस पुस्तक में पूर्वोत्तर भारत के बारे में प्रचलित अनेक मिथकों व भ्रांतियों को दूर करते हुए वहाँ के सौन्दर्य और वास्तविक यथार्थ का चित्रण किया गया है। यह वृत्तांत पूर्वोत्तर भारत या सेवन सिस्टर्स का सांस्कृतिक, राजनैतिक और प्राकृतिक आख्यान है जिसमें वर्णात्मकता या क्षेत्रीय व शहरों के सामान्य वर्णन का अधिक चित्रण न करके मनुष्यता, राजनीति और संस्कृति के अबूझ पहलुओं का चित्रण किया गया है।

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक मसलों पर लिखने वाले पत्रकार अनिल यादव ने इस यात्रा वृत्तांत में पूर्वोत्तर के जनजीवन की असलियत बयान करने और व्यवस्था को उजागर करने में कोई कोताही नहीं बरती है। पूर्वोत्तर के जनजीवन के हर एक पहलू का आँखों देखा हाल इसमें प्रस्तुत किया है। लेखक ने यह पूर्वोत्तर यात्रा दस वर्ष पूर्व (2000 ई.) में छ: महीने की अवधि में की थी। यह पुस्तक इसी दस वर्ष के इस अन्तराल में भावों के ठोस और पके हुए रूप का उदाहरण है। जिसकी शुरुआत होती है पुरानी दिल्ली के भयानक गंदगी और भीड़ से भरे प्लेटफार्म नंबर नौ पर खड़ी ब्रह्मपुत्र मेल ट्रेन से और इस ब्रह्मपुत्र मेल में ही लेखक को पूर्वोत्तर की झाँकिया मिलने लग जाती है। जब मोंछू वहाँ के उग्रवाद की स्थिति को बताते हुए कहते हैं कि "जान हमेशा पत्ते पर टंगी रहती है कि न जाने किधर से उल्फा या बोडो वाला आकर टिपटिपाने लगेगा। उग्रवादी भीड़ में ऐसे घूमते हैं जैसे पानी में मछली।"[194] साहूआईन भाषा सम्बन्धी समस्या को बताती है और फिर बातों ही बातों में पता ही नहीं चलता कि कब दिल्ली से उत्तर पूर्व के दूर-दराज में पहुँच जाते हैं। अनेक कंटकाकीर्ण मार्गों से गुजरते हुए सूचना, ज्ञान व रोमांच के साथ किस्सागोई व पत्रकारिता की शैली में यात्रा वृत्तांत आगे बढ़ता है।

यात्रा-वृत्तांत के शीर्षक को अगर देखा जाए तो देखकर थोड़ा अजीब लगता है लेकिन थोड़ी ही देर में इसके नामकरण का पता चल जाता है। लेखक जब दिल्ली से ट्रेन में चलते हैं तो थोड़ी देर बाद ही उनकी मुलाकात उन्हीं के गाजीपुर के गहमर गाँव के वीरेंद्र सिंह से होती है जो असम के बोंगाई गाँव में बीएसएफ की बटालियन में तैनात थे और अभी पन्द्रह दिन की छुट्टी बिताकर वापस जा रहे थे। जानकारी होने के बाद वे लेखक को पूर्वोत्तर के बारे में पहले ही सलाह देते हैं कि "जा रहे हैं तो वहाँ जरा मच्छड़ और छोकड़ी से बचियेगा तब गाजीपुर लौट पाईएगा। मारिए वह भी कोई देस है महराज। यह उनका तकिया कलाम था।"[195] मोंछू को वह अपना देश नहीं लगता है उसके लिए तो वह परदेश है। इसी मोंछू के तकिया कलाम को लेखक ने सकारात्मक अर्थ में लेते हुए 'वह भी हमारा ही देश है महराज' के अर्थ में इसका नामकरण रखा है। प्रारंभ में लेखक की इस पूर्वोत्तर यात्रा का मुख्य उद्देश्य रिपोर्टिंग करके अपने पत्रकार कैरियर की बेरोजगारी को समाप्त करना था।

[194] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 12
[195] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 11

“तो अब हमें अपनी पत्रकारिता की शुरुआत करनी थी। एक साल के बाद मैं पूर्वोत्तर का उग्रवाद कवर करने जा रहा था।”[196] लेकिन आगे चलकर पूर्वोत्तर के यथार्थ से रू-ब-रू होना ही उनका उद्देश्य हो जाता है।

असम में उल्फा सक्रिय है और उल्फा की वास्तविक स्थिति का चित्रण लेखक ने किया है। उल्फ़ा का पूरा नाम ‘यूनाईटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ़ असम’ है। जिसका मुख्य उद्देश्य बांग्लादेशी घुसपैठियों को बाहर निकालना था जिसके लिए असम में ‘असम आन्दोलन’ भी हुआ लेकिन सरकार की घुसपैठियों को वापस भेज पाने की विफलता के कारण असमगण परिषद् से नाराज छात्रों ने उल्फा बनाया था परंतु अब इसके द्वारा अपने ही देश के लोगों को मारा जा रहा है और आज उल्फा पूरी तरह से आईएसआई के हाथों में चला गया है। अब यह आईएसआई से सिर्फ पैसे और हथियार के लिए बिहारियों को मारकर भगाता है। असम में अपनी उपस्थिति दिखाने के लिए उल्फा वाले निरीह लोगों को भी मारते रहते हैं। अब इसका विचारधारा से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है बल्कि अब तो यह विशुद्ध आतंकवादी संगठन में तब्दील हो गया है। अब उसके द्वारा मजदूरी करने वाले, खेती करने वाले व दूध बेचने वाले हिंदी भाषियों को मारा जा रहा है। इसके संबंध में लेखक कहते हैं कि “असम में हिंदी भाषियों को मारा जा रहा है। बिहारियों के घर जलाए जा रहे हैं। तिनसुकिया और अरुणाचल के बीच कहीं सदिया कुकुरमारा में दो दिन पहले उल्फा ने तीस बिहारियों को भून डाला था। उनकी लाशें अब भी वहीं सड़ रही हैं। मजदूर थे जो तेजू में लगने वाली साप्ताहिक हाट से राशन खरीद कर ट्रक से लौट रहे थे। उन्हें जंगल में ट्रक रोक कर उतारा गया, कतार में खड़ा कर नाम पूछे गये और गोली से उड़ा दिया गया।”[197]

इस पुस्तक में पूर्वोत्तर के इतिहास, संस्कृति, राजनीति, भूगोल, पर्यावरण सभी को समाहित करके प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक को पढ़ते समय पाठक भी लेखक के साथ-साथ यात्रा करता रहता है। राजनीति से इतिहास, इतिहास से लोकवार्ता और मिथकों से गुजरते हुए सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत की समाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक यात्रा लेखक के साथ कब समाप्त हो जाती है पता भी नहीं चलता। पूर्वोत्तर राज्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक,

---

[196] अनिल यादव, ‘वह भी कोई देस है महराज’, पृ.19
[197] अनिल यादव, ‘वह भी कोई देस है महराज’, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 14

भाषिक असमानता, बेरोजगारी, नशाखोरी, उग्रवाद, जातीय स्वाभिमान व अस्मिता, कबीलाई मान्यताएँ व आदर्श, संसाधनों की न्यूनता व प्राकृतिक सुन्दरता को इसमें उजागर किया गया है।

इसमें लेखक का उद्देश्य पूर्वोत्तर के जीवन को सम्पूर्ण रूप से व्याख्यायित करना है। पूर्वोत्तर में बांस और सुपारी की अधिकता है। बांस तो यहाँ के लोगों की जिंदगी में रचा-बसा हुआ है। मेघालय में सिंचाई की नालियों की तरह, मिजोरम में पानी पहुँचाने वाली पाईप लाइन की तरह तो नागालैंड में चाकू की तरह बांस का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन इसके फूलों में विध्वंस करने तक की शक्ति विद्यमान है। ऐसा माना जाता है कि इनमें फूल बिरले ही आते है लेकिन जब आते है तो प्रकृति नया असंतुलन पैदा करती है। चूहों द्वारा इन फूलों के खाने के कारण उनकी प्रजनन क्षमता असामान्य रूप से बढ़ जाती है और इनसे पैदा हुए चूहे खेतों की फ़सलें, अनाज, फल, सब्जियाँ जो सामने आता है सब खा जाते हैं जिससे अकाल पड़ जाता है। इन बाँस के फूलों से हुए नुकसान के कारण ही मिजोरम में उग्रवाद की नींव रखी गई थी। इसके संबंध में अनिल यादव कहते हैं कि “लाखों की संख्या में पैदा हुए चूहे खेतों की फसलें, घरों में रखा अनाज, फल, सब्जियाँ समेत जो सामने आता है सब चट कर जाते हैं। साल बीतते न बीतते अकाल पड़ जाता है। आदिवासी बूढ़ों का कहना था कि अगले तीन साल में इस इलाके में ज्यादातर बाँस की कोठियों में फूल आएँगे। उससे पहले अगर सारे बाँस जला नहीं दिए जाते तो तबाही तय है।”[198]

इस यात्रा वृत्तांत में पूर्वोत्तर को बहुत ही बारीकी के साथ दिखाया गया है। एक तरफ जहाँ पूर्वोत्तर के मातृसत्तात्मक समाज, अतिथि वत्सलता व राजनीतिज्ञों को दिखाया गया हैं तो वहीं दूसरी तरफ बेरोजगारी, नशाखोरी, भुखमरी व वेश्यावृत्ति करती महिलाओं की दयनीय स्थिति का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है। खासी समाज मातृसत्तात्मक है और खासी महिलाओं को सबसे अधिक व्यापार चतुर माना जाता है। जिससे सम्पति और व्यापार दोनों ही यहाँ महिलाओं के हाथ में है। यहाँ बाजार में भी सौदागर महिलाएँ ही है और खाता सबसे छोटी बेटी संभालती है क्योंकि बाद में उसे ही मालकिन बनना होता है।

[198] अनिल यादव, ‘वह भी कोई देस है महराज’, पृ. 47

पूर्वोत्तर के राज्यों का मार्मिक एवं शोचनीय चित्रण इसमें किया गया है। नागाओं की स्थिति आज भी बहुत ख़राब है। विश्व युद्ध के दंश सभी ने झेले हैं लेकिन नागाओं ने इन्हें भोगा है। नागा गाँवों में अब भी हवाई जहाजों के प्रोपेलर, टैंकों की नलियाँ, बंदूकें, लोहे के टोप, बमों के खोल मुफ्त में मिली हुई ट्राफियों की तरह सजाये हुए मिलते हैं। आजादी के बाद भी जब भारतीय फौजों का आक्रमण होता तो नागा पहले विश्वयुद्ध से बचे हुए हथियारों और फिर पाकिस्तान और चीन से मिले हुए हथियारों से लड़ते रहते थे और निर्दोष लोगों की हत्याएँ करते थे। आज भी यह रक्तपात का सिलसिला रूका नहीं है। उग्रवादियों और नागा जातियों के बीच कभी भी नरसंहार और गाँव जलाकर सफाया अभियान शुरू हो जाता है। लम्बे समय से जारी इस संघर्ष के कारण आज वहाँ की पीढ़ियाँ बीमार व भ्रमित पैदा हो रही है। भयग्रस्त बच्चों में एकाग्रता की कमी है। युवा भी भ्रम, क्षोभ और संवेदनहीनता के शिकार हैं। प्रौढ़ सदमे और तनाव में उलझे रहते हैं। नागालैंड में पोस्ट ट्रामेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर से ग्रसित लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। यहाँ के युवाओं में नशे और लूट की प्रवृत्ति है। रात के समय में बस का इन्तजार करने वाले यात्रियों को लूट लिए जाने का भय हमेशा रहता है। यहाँ पर आने वाले अनुभवी व्यापारी भी होटलों से हवाई चप्पल पहनकर बाहर निकलते हैं और टाईयाँ जेब के अन्दर रख लेते हैं। रात में यहाँ पर होटल के सामने की सड़कों पर अलग-अलग समय पर तीन गिरोह आते हैं। अनिल यादव बताते हैं कि "बड़ी उम्र के लड़के गोल घेरे में बैठ कर एक सिरिंज से डोप लेते थे और गुजरने वाली गाड़ियों को रोक कर वसूली करते थे। दूसरे सिगरेट की पन्नी से घटिया, सस्ती ब्राउन शुगर लेते थे। सबसे बड़ा गिरोह उन किशोरों का था जो आयोडेक्स चाटते थे और घरों के बाहर खड़ी गाड़ियों से पेट्रोल चुराकर सूंघते थे।"[199] पहाड़ी रास्तों के कारण पूर्वोत्तर के क्षेत्र यातायात के साधनों से आज भी पूर्णत: विकसित नहीं है जिसके कारण वहाँ महंगाई व बेरोजगारी की समस्याएँ अधिक है। इसी कारण लोग वहाँ से पलायन कर रहे हैं।

भाषा की दृष्टि से अगर देखा जाए तो यह सामान्य बातचीत की होते हुए भी साहित्यिक और सहज भाषा है। लेखक के पेशे से पत्रकार होने के कारण पत्रकारिता की शैली की झलक भी इसमें मिलती है। प्रेमपाल शर्मा इसके संबंध में कहते हैं कि "इतिहास, भूगोल और साहित्य की किताबों

[199] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 73

में अभी तक हम इन राज्यों के बारे में जानते आए हैं। लेकिन ऐसे पठनीय रिपोर्ताज से जानना कागज के पन्नों पर फिल्म देखने की तरह है। पुस्तक के अंत में उत्तर-पूर्व के राज्यों पर लिखी महत्वपूर्ण पुस्तकों के नाम, विवरण इस पुस्तक को और महत्वपूर्ण बना देते हैं। आसाम सहित उत्तर-पूर्व में सुलगती मौजूदा आग, अशान्ति को समझने के लिए यह पुस्तक और प्रासंगिक हो उठी है।"[200]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यह पुस्तक पूर्वोत्तर की राजनीति, इतिहास, वर्तमान, भूगोल, परम्परा, संस्कृति, मिथक व लोकवार्ताओं का साहित्यिक अंतर्गुम्फन है। पूर्वोत्तर की बदलती संस्कृति, नए-पुराने, भीतरी-बाहरी सब तरह के द्वन्द्वों को बहुत ही बारीकी के साथ दिखाया गया है। साथ ही मिजो विद्रोह और उल्फा के यथार्थ का भी चित्रण इसमें किया गया है।

3.8 'दर्रा-दर्रा हिमालय' एवं 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' - अजय सोडानी :-

लेखक परिचय - जन्म – 8 अप्रैल 1961 को इंदौर में। प्रारम्भिक शिक्षा – इंदौर के वैष्णव स्कूल में, एम.जी.एम. मेडिकल कॉलेज, इंदौर से एम.बी.बी.एस. और एम.डी तथा एम्स, नई दिल्ली से न्यूरोलॉजी में डी.एम. की उपाधि प्राप्त की।

रचनाएँ - कथा संग्रह – 'अवाक् आतंकवादी', यात्रा वृत्तांत - 'दर्रा-दर्रा हिमालय', 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' व 'इरिणालोक'।

आध्यात्मिक शांति प्राप्त करने के लिए अधिकांश लोग भाग कर विश्व के महान प्राकृतिक आश्चर्य हिमालय में जाकर शीतलता प्राप्त करते हैं। उनमें जाने वालों की संख्या तो बहुत होती है लेकिन ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जो हिमालय की आत्मा को खोजने का प्रयास करते हैं। कुछ ही यायावर ऐसे होते हैं जो वहाँ के नदी-नालों, पहाड़ों और हिमगिरिय और वहाँ के अदम्य जिजीविषा रखने वाले निवासियों तथा वहाँ की संस्कृति में हिमालय की आत्मा को खोजते हैं। उनमें प्रमुख है अजय सोडानी। उनके यात्रा वृत्तांत अपने आप में एक सफरनामा है, हिमालय के दुर्गम दर्रों को बेहद करीब से देखने का तथा वहाँ के इतिहास पुराण व मिथकों को खोज निकालने का। यात्रा वृत्तांत की

[200] प्रेमपाल शर्मा, 'उत्तर-पूर्व : विचित्र देश की सचित्र यात्रा या पूर्वोत्तर का पक्ष', नवंबर-दिसंबर, (2012)

सबसे खास विशेषता होती है कि वह पाठक को अपने साथ-साथ लेकर चलता है, जिसमें लेखक के साथ-साथ पाठक भी सैर करता रहता है। इस पर अजय सोडानी के यात्रा वृत्तांत खरे उतरते हैं।

अगर किसी भी रचना या रचनाकार को देखा जाये तो वह किसी न किसी तरीके से अपने समय को प्रस्तुत करता है। इस समय के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ प्रत्येक रचनाकार का इतिहास-बोध, पर्यवेक्षण क्षमता व दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न होता है। इसी दृष्टि में अगर हिमालय को देखा जाए तो हिमालय को लेकर यही विशेष दृष्टिकोण दिखाई देता है लोककथाओं को आधार बनाकर हिमालय की यात्राएँ करने वाले घुमक्कड़ अजय सोडानी का। 'दर्रा-दर्रा हिमालय' अजय सोडानी द्वारा की गई हिमालय यात्रा के दो अभियान दर्रों के सिरमौर 'कालिंदी खाल' को पार करने व 'ऑडेन कॉल अभियान' की साहसिक यात्राओं का वृत्तांत है। हिमालय अर्थात् (हिम-बर्फ, आलय अर्थात् घर) बर्फ का घर। यह बर्फ का घर बार-बार लेखक को आकर्षित करता है जिससे लेखक बार-बार हिमालय पर जाने के लिए विवश होता है। इस हिमालय यात्रा को करने के कई कारण रहे हैं परंतु इसमें सबसे मुख्य कारणों को अगर देखा जाए तो वह हिन्दू धर्म में प्रचलित कथाओं या मिथकों के पीछे के यथार्थ को जानना। दूसरा है मानसूनी मौसम में खिलने वाले फूलों व वनस्पतियों को देखना जिसमें सबसे प्रमुख है - ब्रह्मकमल के दर्शन करना। तीसरा है अपने समय या हिमालय की वर्तमान स्थिति को कैमरे में कैद करना या हिमालय की आज की स्थिति को महसूस करके सभी के सामने प्रस्तुत करना। एक ओर खास बात कि इस दर्रे को पार करने के लिए सैन्य अनुमति की जरूरत नहीं होती। सिर्फ जंगलात वालों की आज्ञा लेकर ही पार किया जा सकता है।

यह यात्रावृत्त कई मायनों में अपना खास महत्व रखता है जिसमें सबसे प्रमुख है- परिवार को साथ लेकर की जाने वाली साहसिक व दुर्गम यात्राएँ। हर कदम पर दुर्गम दर्रों, घाटियों, क्रेटर्स, पिघलते ग्लेशियर व टूटते पहाड़ों से सामना होता है लेकिन लेखक का साहस कहीं पर भी कम होता नजर नहीं आता। उसका मन एक दृढ़ विश्वास के साथ हर विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी आगे बढ़ता रहता है। हर पग पर लगता है कि मौत सामने खड़ी है लेकिन अगर मन में दृढ़ विश्वास हो तो हर मुश्किल से मुश्किल समस्या का भी समाधान निकल कर सामने आ जाता है। कालिंदी खाल 19,890 फीट की ऊँचाई पर सपरिवार जाने में कई कठिनाईयाँ लेखक के सामने आती हैं। जिसमें सबसे मुश्किल पल होता है परिवार को साथ में लेकर रखना / चलना। उसमें भी जब अपर्णा की

तबियत खराब हो जाती है। मान्यताओं के अनुसार भूत का सवार होना लेकिन हाई एल्टीच्यूड सिकनेस की वजह से अनगर्ल बातें व कुछ भी बोलना व कोट, टोपी सब खोलकर फेंक देना। उस समय अपर्णा की हालत बहुत ही नाजुक है जिसके लिए नीचे जाना ही सही है क्योंकि अत्यधिक ऊँचाई व ऑक्सीजन की कमी के कारण सन्निपात की स्थिति हो गई है और साथ ही अभियान बिना ऑक्सीजन के पूर्ण करने की जिद के कारण ऑक्सीजन की टंकी भी साथ में नहीं थी। इस विकट परिस्थिति में एक तरफ ऊपर की ओर है कालिंदी खाल तो दूसरी तरफ है अपर्णा की जान को खतरे से बाहर निकालना। लेकिन इस विपरीत परिस्थिति में भी लेखक जान की परवाह न करते हुए अपने लक्ष्य को ध्यान में रखकर साहस के साथ अपर्णा की कमर की रस्सी खोलकर सोनी और डी.एन. की सहायता से उसे उठाकर भागते हुए दर्रे की तरफ भाग चलते हैं और सवा नौ बजे, 19,890 फीट की ऊँचाई पर। इसी तरह अद्वैत मात्र पंद्रह साल का बच्चा है लेकिन उसको भी अपनी इस यात्रा में साथ रखते है, खाना खत्म होना, बार-बार ग्लेशियर का गिरना। जैसी कई समस्याएँ हर कदम पर खड़ी मिलती है। लेकिन इन सब का सामना करना लेखक को बखूबी आता है।

यह यात्रा बहुत ही सूझबूझ व सुनिश्चित योजना के साथ की गई है, जिससे लेखक की कुशाग्र बुद्धि का पता चलता है। वैसे तो हिमालय यात्रा है ही इतनी दुर्गम की बिना किसी योजना के इसमें सफल नहीं हो सकते फिर भी अगर सब कुछ सुव्यवस्थित हो तो और भी आसान हो जाती है। जैसे एक-दूसरे को रस्सियों से बांधकर चलना। पहले से ही संकेतों को समझ लेना कि कितनी देर बाद चलना है या अगर किसी को रूकना हो तो संकेत देकर ही रूके। जब बर्फ पिघलने लगती है और पाँव घुटनों तक बर्फ में घुसने लगते हैं तो हर पाँच कदम चलने के बाद एक मिनट का आराम खड़े-खड़े ही करना बैठना नहीं क्योंकि बैठकर खड़े होने में ऊर्जा अधिक खर्च होती है। इसी तरह जब कालिंदी खाल के पास पहुँचते हैं तो टेंट का मुँह कालिन्दी खाल की विपरीत दिशा में रखा जाता है क्योंकि अगर सामने रखेंगे तो दर्रे से गिरते हुए क्रेवासों को देखकर हिम्मत कमजोर होती है, इसी तरह एवालांचा चोटी से रूक-रूक कर हो रहे बर्फ-स्खलन को भी नजरअंदाज करना। जिससे की ऊपर जाने का आत्मविश्वास कमजोर होता है। ऐसे कई प्रसंग है जिनसे लेखक की सूझबूझ व पूर्वनिश्चित योजना साफ तौर पर देखी जा सकती है।

यह यात्रा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है वैसे-वैसे ही दिखाई देते हैं प्रकृति के मनोरम दृश्य, बर्फ से ढकी वादियाँ, जहाँ तक नजर जाती है बर्फ ही बर्फ व सीना ताने खड़े पहाड़। जिनसे दूर जाने का भी मन नहीं करता। लगता है बस इन मनोरम वादियों के बीच यही बस जाए और हिमालय की गोद में बैठे रहे। कालिंदी खाल जाने पर नीचे की ओर बादलों का दृश्य सहज ही आकर्षित करता है।

इस प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ पर्यावरण को लेकर भी लेखक की गहरी चिंता दिखाई देती है। जगह-जगह प्रकृति के साथ हो रहा खिलवाड़ लेखक को द्रवित करता है। जब गंगोत्री से भोजवासा की तरफ जाते हैं तो जगह-जगह बने होटलों, ढाबों व विकास के नाम पर तोड़े जा रहे पहाड़ों, सड़क निर्माण व प्रकृति की लूट, गंगा व भगीरथी नदी की वर्तमान स्थिति को देखकर लेखक गहरी चिंता व्यक्त करता है। धर्मगुरुओं के द्वारा किए जा रहे धनार्जन को लेकर भी लेखक व्यंग्य करता है। इसी तरह कालिंदी खाल पास को पार करके राजपड़ाव से बद्रीविशाल आने पर वहाँ की व्यवस्था, सैकड़ों वाहन, अकूत कोलाहल व मंदिरों की स्थिति, बढ़ रहे विकास कार्य व आधुनिकता लेखक को एक बार फिर सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं।

लेखक कही पर भी अपने इतिहास, संस्कृति व संस्कारों से दूर होते नजर नहीं आते हैं। कालिंदी खाल पर जाकर पर्वतों के शिखर व दर्रों को ईश्वर मानकर अगरबत्ती, अन्नास, किसमिस से पूजा करना व हर जगह को पौराणिक कथाओं के माध्यम से जोड़कर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखना। जो इस यात्रा वृत्तांत को ओर भी अधिक प्रगाढ़ता प्रदान करते हैं।

इस यात्रा वृत्तांत के ही दूसरे भाग 'ऑडेन कॉल अभियान' में 30 जून 2009 से 19 जुलाई 2009 तक की गई हिमालय के ओडेन कॉल अभियान का वर्णन किया गया है। इस यात्रा को करने के मुख्य कारण अगर देखे जाए तो वे हैं - 2007 में रुदुगैरा घाटी में मिली असफलता, जैव विविधता को बचाने व घाटी का पौराणिक महत्व होने के कारण घाटी के पौराणिक महत्व को जानने की इच्छा। इस कॉल को कठिनतम दर्रों में से माना जाता है। जिसे आधुनिक काल में सबसे पहले 1939 में जे.बी. ओडेन ने खोजा था। ओडेन सबसे पहले 1935 में इस दर्रे पर पहुँचे और 1939 में उन्होंने इसे पार किया था। इसके बाद 1983 में रंजीत लाहिडी व अरुण घोष द्वारा लगभग चौवालीस वर्षों के बाद इसे पार किया गया 2009 तक छह, सात टीमों द्वारा ही इस दर्रे को पार

किया गया है इसमें भी किसी महिला ने इसे अभी तक पार नहीं किया है। लिम्बा बुक ऑफ रिकॉर्ड, 2011 में ओडेन कॉल दर्रे को पार करने वाली प्रथम महिला के रूप में अपर्णा सोडानी का नाम दर्ज है।

वर्तमान समय में हिमालय में कई बदलाव आ रहे हैं, इन्हीं बदलते हुए रूपों एवं हिमालय की वर्तमान स्थिति को कैमरे में कैद करने का प्रयास इसमें किया गया है। इसमें ऐसी ही जगह की खोज जो अब तक मानव आघातों से बची हुई है, अछूते जंगलों, अनाहत नदियों, बेदाग ग्लेशियर, कमसिन फूलों एवं कौतुक कीट पतंगों के बीच ले जाए और वह जगह है ओडेन कॉल। 1 जुलाई 2009 को उत्तरकाशी से आरंभ यह यात्रा कई मायनों में संघर्षों से भरी हुई है। उत्तराखंड के किसी भी हाई एल्टीच्यूड ट्रैक के लिए अगस्त के अंत से अक्टूबर के मध्य का समय सबसे उपयुक्त माना जाता है लेकिन फिर भी यह यात्रा जुलाई माह में की जाती है जिसका उद्देश्य हिमालय की जैव विविधता का चित्रण करना विशेषकर उत्तरांचल के राज्य पुष्प ब्रह्मकमल के दर्शन करना है। जिसके लिए सबसे उपयुक्त महीना जुलाई है। इसलिए यह यात्रा जुलाई में की जाती है।

लेखक की हिमालय यात्राओं का आरंभ 2001 ई. में गढ़वाल के चार धामों की यात्रा से होता है उसके बाद तो वे हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में 35 से अधिक ट्रेक्स कर चुके हैं। अपने एक साक्षात्कार में कहते भी हैं कि मैंने अपनी यात्राओं में कभी भी भूगोल और मेप को आधार नहीं बनाया है मेरे ट्रेकों का आधार हमेशा लोक कथाएँ होती हैं। हिमालय में प्रचलित इन लोक कथाओं के सहारे ही उन्होंने ऑडेन कॉल अभियान की यात्रा पांडवों के पदचिह्नों पर व धूमधारकांडी अभियान में दुर्योधन के देश की यात्रा की है। वे अपनी यात्राओं के बारे में बताते हुए कहते हैं कि "कुश कल्याण, बूढ़ा केदार, ऋषियों की साधना-स्थली-तपोवन, बालीपास (17500 फीट), कालिंदी खाल पास (19890 फीट), दरवा टॉप (14500 फीट), गणेश की शरण स्थली-डोडी ताल, शंकर एवं काली माँ की मिलन-स्थली-रूपकुंड, दुर्योधन के छुपने के गुप्त स्थल-हर-की-दून, महादेव की नृत्य स्थली-रुदुगैरा, पांडवों द्वारा पदाक्रांत-ऑडेन कॉल (17800 फीट) एवं धूमधार कांडी (18000 फीट) तथा लद्दाख हिमालय के दर्रों में - अब तक भटक रहे हैं।"[201]

---

[201] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 10

कोई भी रचनाकार जब ऐतिहासिक पौराणिक कथाओं को अपने समय के साथ देखते हुए रचनात्मक कैनवास पर प्रस्तुत करता है तब उसे भूत, वर्तमान और भविष्य को देखते हुए उसकी प्रासंगिकता को भी प्रस्तुत करना पड़ता है। अजय सोडानी इन्हीं पौराणिक कथाओं के वर्तमान रूप को खोजने में हर तरह से तत्पर रहते हैं। वैदिक साहित्य में कहा गया है कि अनादिकाल से गंगोत्री, केदार और बद्रीविशाल में पूजा अर्चना करने के लिए एक ही पुजारी जाता था। पांडवों के पदचिह्नों की खोज करने के लिए की गई यात्रा में कई कथाओं की जानकारी मिलती है। उत्तरकाशी का पुराना नाम बड़ाहाट था और पौराणिक कथाओं के अनुसार किरातार्जुन युद्ध यहाँ पर ही हुआ था और यह नचिकेता की तपोभूमि थी। 'हर-की-दून' घाटी से महाभारत की अनेक पौराणिक कथाएँ जुड़ी हुई है। पौराणिक कथानुसार महाभारत युद्ध के पश्चात पांडव भातृहंता होने के पाप से मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे इसके लिए व्यास ने कहा कि इस महापाप से मुक्ति सिर्फ भगवान शिव को प्रसन्न करके ही संभव है। इसी पाप से मुक्ति प्राप्त करने व व्यास ऋषि के कहने से पांडव हिमालय आये और पाटंगना में उन्होंने महारुद्राभिषेक किया था।

जब पांडव पापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए शिव को ढूंढ रहे थे तब इस जघन्य पाप से मुक्ति देने के लिए शिव भी उनसे छिपते फिर रहे थे परंतु अंत में शिव पांडवों को बैल के रूप में दिखाई दिए। जब पांडव उनको पकड़ने लगे तो बैल रूपी शिव धरती में समाने लग गये तो पांडवों ने भागकर पकड़ा लेकिन उनके हिस्से में सिर्फ बैल की पीठ का हिस्सा आया जो जमीन से बाहर रह गया। इसी बाहरी हिस्से की पूजा आज भी केदारनाथ में की जाती है। इन्हीं कथाओं को एक सूत्र में पिरोकर वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत करते हुए अजय सोडानी बताते हैं कि "युद्ध से फरार दुर्योधन हर की दून क्षेत्र में आया। यहाँ उसका आना युक्तिसंगत भी था। हस्तिनापुर तो विवादित क्षेत्र था पर 'हर की दून' का तो दुर्योधन निर्विवाद राजा था। स्वयं ईश्वर ने उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसे इस क्षेत्र का पालक और कर्ता घोषित किया था...दुर्योधन का पीछा करते हुए पांडव भी 'हर-की-दून' पहुँचे थे। वहाँ जा कर उनको अपने भातृहंता होने का भय सताया, तब व्यास मुनि के कहने पर वे शिव को ढूँढने हेतु हिमालय में आगे बढ़े और पाटंगना में पहुँचे। पाटंगना में शिव को प्रसन्न करने के लिए महारुद्राभिषेक करने की बात नहीं बनी तो पांडव केदार के लिए आगे बढ़े। 'हर की दून' से पाटंगना पहुंचने का मार्ग वर्तमान की धूमधार कांडी एवं हर्षिल गाँव से होकर ही गुजर सकता है और

पाटंगना से केदार आडेन कॉल पार किए बिना जाना संभव नहीं।"[202] इस आधार को माना जाए तो ओडेन कॉल को सबसे पहले पार करने वाले पांडव माने जा सकते हैं।

एक अन्य कथा में महाभारत के युद्ध में हार के बाद दुर्योधन अपनी टूटी हुई जंघाओं के साथ हर-की-दून की घाटियों में छुप गया था जिसका प्रमाण यह है कि यहाँ आज भी दुर्योधन की राजा के रूप में पूजा की जाती है। इसके साथ ही यहाँ के अतिप्राचीन मंदिरों में जिस मूर्ति की वंदना की जाती है उसके पैर जांघ से टूटे हुए हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं कि 'दर्रा-दर्रा हिमालय' पौराणिक कथाओं की सत्यता जाँचने, हिमालय के विलुप्त हो रहे सौन्दर्य को मापने व जनजीवन को प्रस्तुत करने वाला एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत हैं।

दरकते हिमालय पर दर-ब-दर :-

'दर्रा-दर्रा हिमालय' के बाद हिमालय यात्रा सीरीज में 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' अजय सोडानी का दूसरा यात्रा वृत्तांत है। भारतीय कथाओं में मिथकों की बहुत अधिक प्रमुखता है। हर धर्म में इन कथाओं की बहुलता है और हर कथा किसी न किसी रूप में हिमालय से जुड़ी हुई है इन्हीं कथाओं या कहें मिथकों की सत्यता की तलाश करने के लिए यह हिमालय यात्रा की गई है।

इस यात्रा की शुरुआत 29 जुलाई 2010 को झाला से होती है। झाला व हर्षिल दोनों ही सेब फल के लिए विख्यात है। यहाँ के सेबों का रसीलापन और स्वाद हिमाचल व कश्मीर के सेबों को मात देता है। झाला व हर्षिल हिमालय के उन इलाकों में आते हैं जहाँ वर्ष में पाँच-छ: महीने बर्फ जमी रहती है और बाकी दिनों में भी गर्म कपड़ों के बिना नहीं रहा जा सकता। लेकिन लगता है यहाँ के लोगों को भी ग्लोबल वार्मिंग की आहट का अहसास होने लग गया है। उसका पता होटल के कमरे की छत में लगा कड़ा देखकर चलता है। पंखा लटकाने के लिए बनाया गया कड़ा। पंखा.. और वह भी यहाँ ? इस स्वाभाविक प्रश्न का उत्तर स्थानीय निवासी होटल वाला ही दे सकता है। जब वह कहता है "सब तेजी से बदल रहा है। उत्तरकाशी में बन रहे होटल में तो अब ए.सी. भी लग

---

[202] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय' पृ. 85-86

रहे हैं। उसे देखकर हमें लगा कि भविष्य में यहाँ भी शायद पंखे लगे कमरे माँगे जाएँ। सो नये कमरों में वैसा इंतजाम कर लिया।"[203] इसके अलावा भी इस गाँव में विकास की बयार बह रही है जिसमें मकानों में पारंपरिक भवन निर्माण शैली को त्याग कर ईंट, सीमेंट का प्रयोग बहुतायत से किया जा रहा है।

हिमालय क्षेत्र या उत्तराखंड के पहाड़ों पर अगर जाना हो तो सबसे उपयुक्त समय मई-जून से सितंबर-अक्टूबर तक होता है। अगर पंद्रह हजार से अधिक ऊँचाई तक जाना हो तो उसके लिए यही सबसे उपयुक्त समय है। यहाँ मानसूनी मौसम में ट्रैक करना खतरे से खाली नहीं है लेकिन फिर भी लेखक मानसून में उत्तराखंड हिमालय पर ट्रैक करते हैं जिसका मुख्य कारण है मानसूनी मौसम या जुलाई में दिखाई देने वाले ब्रह्मकमल को देखना। जुलाई-अगस्त में दिखाई देने वाले ब्रह्मकमल के दर्शन के लिए शुरू हुई यात्रा में आगे जाकर अनेक कथाएँ, जीव-जन्तु, कीट, हजारों फीट की ऊँचाई पर खिलने वाले नीलकमल व फेनकमल जैसे दुर्लभ फूलों के दर्शन होते हैं।

इस ब्रह्मकमल के दर्शन के साथ ही इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य था दुर्योधन के देश की यात्रा या पांडव चरणचिह्नों की तलाश करना। जिसके लिए इस यात्रा का चयन किया जाता है। धूमधरकांडी दर्रा पार करके कालानाग (ब्लैकपीक) शिखर व रूनसारा ताल के नजदीक से होकर 'हर-की-दून' घाटी की यात्रा की जाती है। उत्तराखंड हिमालय के चार सबसे कठिन दर्रों में गिने जाने वाले इस दर्रे के चयन के पीछे निम्न कारण रहे। जिसमें सबसे प्रमुख है इस क्षेत्र में लोगों का आना-जाना न होने के कारण प्रकृति अक्षुण्ण है जिससे ब्रह्मकमल दिखाई देने की संभावना अधिक है। दूसरा धूमधारकांडी दर्रे के पास 'हर-की दून' घाटी में जहाँ आज भी महाभारतकालीन परंपराएँ चली आ रही हैं उनका पुनरावलोकन करने का मौका मिलेगा। एक और कारण 2003 में ओसला से बाली दर्रा पार कर यामुनोत्तरी धाम की तरफ से होते हुए हनुमान चट्टी व 2006 में हनुमान चट्टी से चल दरवा टॉप दर्रे के पार डोडी ताल के करीब से होते हुए उत्तरकाशी तक की यात्रा पहले की जा चुकी थी तो अब अगर धूमधारकांडी पार करके पुन: ओसला गाँव पहुँच जाए तो बंदरपूँछ, स्वर्गारोहिणी व कालानाग शिखरों की यात्रा पूर्ण हो जाएगी।

[203] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 27

वैसे अगर देखा जाए तो प्रकृति द्वार सृजित हिमालय तो हमारे देश और भूगोल का महानायक है साथ ही भारतीय जनमानस का सांस्कृतिक और आध्यात्मिक स्त्रोत होने के कारण सहज ही अपनी तरफ आकर्षित करता है। हिमालय की स्वायत्तता को प्रस्तुत करते हुए कृष्णा सोबती लिखती हैं कि "हिमालय की स्वायत्तता अदम्य है। प्रकृति द्वारा सिरजित हिमालय एक ऐसा पाठ है, जो न किन्हीं हाथों द्वारा लिखा जा सकता है, न निर्मित किया जा सकता है।"[204] इसी हजारों मीलों में फैले हिमालय की धवल ऊँचाईयों में अनगिनत रहस्य छुपे हुए हैं। इसकी बर्फीली चोटियों, ऊँचाईयों, ढलानों, घाटियों व पर्वत श्रेणियों के रहस्यमय एकांत की एक कड़ी है। जिससे यह आज न जाने कितने भारतीयों ग्रंथों का स्त्रोत है। साथ ही यहाँ से निकलने वाली नदियों व इन धवल शिखरों पर स्थित तीर्थस्थानों के कारण हिन्दू धर्म की लगभग हर कथा किसी न किसी रूप में हिमालय से जुड़ी हुई है। भारतीय जनमानस में अगर देखा जाए तो कथा परम्पराओं का ताना-बाना अत्यंत मजबूत है और इन कथा परम्पराओं में भी खासकर मिथकों को लेकर। अजय सोडानी के यात्रा वृत्तांतों में इन्हीं हिमालय की कथाओं को खोजने के कोशिश की गई है। पुराकथाओं की महत्ता को बताते हुए लेखक कहते हैं कि "किसी काल की मानीखेज विवेचना उस काल के इतिहास और उसी कालखंड में सिरजी कथाओं, मान्यताओं, मिथकों, गीतों, दंतकथाओं को सटाकर देखने से ही की जा सकती है।"[205]

लेखक को सर्द मनोहारी, जानलेवा वादियों की कथाओं से गहरा अनुराग है। उनकी हिमालय यात्राएँ कई मायनों में विशेष महत्व रखती है मूल रूप से इन यात्राओं की शुरुआत भी पौराणिक कथाओं की सत्यता परखने व वहाँ के जनजीवन को करीब से देखने के लिए की गई है। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए कई कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। भूकम्प आते हैं, क्रेवास टूटते है, ग्लेशियर दरक उठते है, पल-पल पिघलती बर्फ और फिसलते पत्थर और प्राणवायु की कमी के कारण हाई एलटीच्यूड सिकनेस जैसी अनेक समस्याएँ मुहँ फैलाएँ खड़ी है लेकिन आत्मविश्वास और लग्न के सामने हर जोखिम और मौत का डर बर्फ की तरह पिघलते हुए दिखाई देता है और निकल कर आते हैं कई तथ्य, जिनमें प्रमुख है स्थानीय जनजीवन के चित्र,

[204] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 01

[205] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ.09

पांडवों के पद्चिह्नों को खोजती पौराणिक कथाएँ व ब्रह्मकमल, नीलकमल व फेनकमल जैसे दुर्लभ फूल। पौराणिक कथाओं के सम्बन्ध में कहते हैं कि "लेखक बार-बार पौराणिक इतिहास में जाता है और पांडवों के स्वर्गारोहण के मार्ग के चिह्न खोजता फिरता है। श्रुति इतिहास से मेल बिठाते हुए पांडवों का ही नहीं, कौरवों का भी इतिहास जोड़ता चलता है। इस बारे में लेखक का अपना अलग ही दृष्टिकोण है। वह महाभारत को इतिहास नहीं मानता, लेकिन यह भी नहीं मान पाता कि उसमें सब कुछ कपोल कल्पना है। इस अर्थ में देखें तो यह किताब इतिहास की भी एक यात्रा का वृत्तांत है।"[206]

सांस्कृतिक आदान-प्रदान में यात्रा वृत्तांतों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है अगर देखा जाए तो यात्रा करना ही एक सांस्कृतिक तीर्थाटन ही है। जो जाने-अनजाने हमारे व्यक्तित्व को रूपायित करती है। जिसमें अनेक आचार-विचारों, विश्वासों व ऐतिहासिक संदर्भों को देखने का अवसर मिलता है। संस्कारों से बंधे हुए भारतवर्ष की संस्कृति की मूल उत्पत्ति हिमालय की कोख से व पालन-पोषण इसकी गोद से हुआ है। अब इतिहास और तथ्य दोनों को ही एक बार फिर से देखने की आवश्यकता है। अजय सोडानी लिखते है कि "गणेश का जन्म, शिव का तांडव, काली के भद्र रूप का शीतलीकरण, शंकर व पांडव के मध्य की छुपा-छुपाई, भगीरथ का तप, महाभारत के प्रथम आठ हजार श्लोकों का सृजन, पांडवों का स्वर्गारोहण, नरसिंह का अवतरण जैसी अनेक घटनाओं के स्पन्दन आज भी यहाँ महसूस किये जाते हैं।"[207] हजारों वर्षो से चली आ रही दंतकथाओं को सिरे से नकार देना किसी भी सभ्यता के उद्भव और विकास को ही नकार देने के समान है। इसीलिए इनकी सत्यता को परखना एक खोज का विषय है। पौराणिक कथाओं में बताए गये मार्गों को एक बार फिर से देखना चाहिए।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिमालय को लेकर चलने वाली इन कथाओं के अंबार को पूरी तरह से विश्वसनीय नहीं माना जा सकता लेकिन फिर भी इसकी समग्रता को नकारा भी नहीं जा सकता। ऐसी कथाएँ जो पौराणिक काल से लेकर अब तक चली आ रही है और आज भी सुने जाने को बेताब है लेकिन फिर भी भारतीय संस्कृति के गर्भनाल से जुड़ी इन

---

[206] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. फ्लैप पेज
[207] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 21

कथाओं को आज की पीढ़ी द्वारा ख़ारिज किया जा रहा है इन्हीं कथाओं के पीछे की सत्यता और असत्यता क्या है उनकी तलाश इन यात्राओं में की गयी है। इन हिमालय यात्राओं में उन तथ्यों को खोजने की कोशिश की गई है जो कथाओं में छिपे हुए हैं और साथ ही भौगोलिक संकेतों की सत्यता को परखते हुए पौराणिक कथाओं के ऐतिहासिक महत्व को भी दिखाया गया है।

3.9 बादलों में बारूद - मधु कांकरिया :-

लेखिका परिचय - जन्म - 23 मार्च 1957, कोलकाता में।

रचनाएँ - उपन्यास - 'खुले गगन के लाल सितारे', 'सलाम आखिरी', 'पत्ताखोर', 'सेज पर संस्कृति', 'सूखते चिनार', कहानी संग्रह - 'बीतते हुए', '...और अंत में ईशु', 'चिड़ियाँ ऐसे मरती है', 'भरी दोपहर के अँधेरे' आदि।

'बादलों में बारूद' मधु कांकरिया का 2014 में लिखा गया एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जो कि हिन्दी यात्रा साहित्य की परंपरा को समृद्ध करता हुआ अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। सबसे पहले अगर यात्राओं को देखा जाए तो यात्राएँ हमें केवल बाहरी दुनिया से ही रू-ब-रू नहीं कराती बल्कि भीतर की तरफ भी लेकर चलती है। यह अंत: और बाह्य दोनों स्तरों पर चलने वाली यात्राएँ ही इस यात्रा वृत्तांत की सबसे बड़ी विशेषता है। लेखिका हर जगह अपने बाह्य भूगोल, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व, प्रकृति, समाज, परिवेश को प्रस्तुत करते हुए अपने अंतस से जूझती रहती है। मनमोहक प्राकृतिक दृश्य कहीं उसे सुकून देते हैं तो वही दूसरी तरफ बाहरी आदिवासी जनजातियों का संघर्ष व पहाड़ों में काम करती स्त्रियों को देखकर मन उद्विग्न हो जाता है, जो लेखिका को भीतर से कुरेदकर रख देता है। जिससे इस यात्रा वृत्तांत में रूप और विरूप दोनों ही अनुभवों को पारदर्शी बनाकर बेहद रचनात्मक भाषा में समानांतर रूप से शब्दांकित किया गया है।

'जंगलों की ओर', 'पहाड़, पलामू और आग', 'साना-साना हाथ जोड़ि', 'हिरना, देख बूझ बन चरना', 'बादलों में बारूद', 'जाल, जहाज और मछुआरे', 'देश में विदेश', 'बुद्ध, बारूद और पहाड़', 'देखती चली गई' जैसे नौ अध्यायों में विभक्त हैं जिसमें क्रमश: झारखंड के लोहरदगा और गुमला के आदिवासी अंचल, धरधरी की चढ़ाई और पलामू, सिक्किम, यूमथांग और हिमालय-

प्रांतर, शिलोंग, पश्चिमी बंगाल के सुंदरवन और सजनारवाली टापू, चैन्नई, मटमैले ऊँचे बर्फीले पहाड़ों के बीच बसा लद्दाख व आदि शंकराचार्य की जन्मभूमि केरल के कालडी में की गई यात्राओं से जिन अनुभवों को एकत्र किया था उन्हीं को इस यात्रा वृत्तांत में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के शीर्षक को देखकर ही उत्सुकता बढ़ जाती है लगता है कि ये कैसी बारूद है जो इस तरह से बादलों में घुल गई है जरूर ही कोई कश्मीर की यात्रा होगी लेकिन ये यात्राएँ तो झारखंड के जंगलों से शुरू होकर उत्तर में लद्दाख, पूर्वोत्तर से होते हुए पश्चिमी बंगाल के सुंदरवन के साथ-साथ दक्षिण के केरल और चैन्नई तक की यात्रा कराती है।

यह केवल यात्रा वृत्तांत ही न होकर समाज व प्रकृति के प्रति जुड़ाव को प्रस्तुत करने वाला एक महत्वपूर्ण वृत्तांत है; जिसमें कहीं आदिवासियों का दु:ख-दर्द दिखाई देता है तो कहीं पूर्वोत्तर के राज्य सिक्किम, नेपाल के पर्वतीय क्षेत्र की हरियाली तो कहीं पश्चिमी बंगाल के सौन्दर्य को प्रस्तुत करने वाले सुंदरवन, तो आगे चलकर आते हैं अद्भुत, अविस्मरणीय सौन्दर्य के धनी बुद्ध और पहाड़ों का प्रदेश लद्दाख। आदि शंकराचार्य की जन्मभूमि केरल तो प्रकृति का घर ही है। इस तरह से इस पुस्तक में विभिन्न क्षेत्रों की यात्रा पाठक करता है।

यह यात्रा के साथ-साथ यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत करता है जिसमें झारखंड व छत्तीसगढ़ की सीमा के पास गुमला जिले में बिशनपुर के जंगलों से यात्रा की शुरुआत होती है। प्रकृति की गोद में रहने वाले यहाँ के आदिवासियों की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण इसमें किया गया है। लेखिका उनकी मूलभूत समस्याओं को समझकर उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाना चाहती। अपनी यात्राओं के कारण को बताते हुए कहती है कि “क्या इसीलिए अपने ‘स्व’ की पहचान के लिए मैं बार-बार इन जंगलों, पर्वतों और प्रकृति के बीच आती हूँ ? या सिर्फ प्रकृति के प्रति एक नैसर्गिक लगाव के चलते या अपनी आत्मा में लगे महासागरीय कीचड़ को धोने? कारण जो भी हो, पिछले सात-आठ वर्षों से मन पत्तल-पत्तल बँट रहा है, महासागर और जंगलों के बीच, साहित्य और नौकरी के बीच, जीवन और जीविका के बीच।”[208] झारखंड का विशुनपुर प्रांत जहाँ न कोई

[208] मधु कांकरिया, ‘बादलों में बारूद’, पृ. 10

जन-चेतना है, न ही कोई आकांक्षा, यह प्रखण्ड पूरी तरह से वीरान, सुप्त, उजाड़ व जादू-टोना, टोटका, प्रेत-डायन के अंधविश्वास वाला क्षेत्र हैं।

इसी तरह आज जमींदारों व सरकार द्वारा आदिवासियों की जमीनें तेजी से हड़पी जा रही है। विकास की इस धारा में आदिवासी भी अपने परम्परागत धंधों, कृषि, ग्रामीण उद्योग, हस्त कारीगरी, ग्रामीण कला व शिल्प से दूर हटकर मजदूर में तब्दील होते जा रहे हैं। इस प्रांत के आदिवासियों के भी परंपरागत बांस, डलिया व हेमेलाईट पत्थर से लोहा बनाने के खानदानी कार्यों के छूट जाने से आधे मजदूर व आधे किसान बनकर रह गए है। इन परंपरागत कार्यों के छोड़ने के मूल कारणों को बताते हुए कहते हैं कि "जिस विधि से हम लोग लोहा बनाते थे वह थोड़ा महंगा पड़ता था, अब बाजार में सस्ता लोहा मिलने लगा है, हमारा लोहा बिकना बंद हो गया। अरे हम ही क्या बिरहोर जनजाति भी अब खांटी मजदूर बनती जा रही है। पहले ये लोग रस्सी और ओखली बनाते थे, अब लोग-बाग अपने अनाज मशीन से पिसवाते हैं तो ओखली कौन खरीदे ? मल्लार जाति के लोग पहले एलुमिनियम ढालकर नटराज, धूपदानी, शो पीस जैसी कई चीजें बनाते थे, पर अब इसकी मार्केटिंग नहीं कर पाते थे इसीलिए वे भी मजदूरी के लिए चल पड़े हैं।"[209]

विकास के नाम पर चले रहे अनेक दावों के बावजूद आज भी आदिवासियों की स्थिति बहुत दयनीय है। बाहरी दुनिया से इनका कोई संबंध नहीं है। ये मुंडुवा, मकई और गुंडली जैसे धान और हड़िया के अलावा कुछ नहीं जानते है। जब लेखिका इनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति देखने के बाद सामान्य ज्ञान के धरातल को भी जाँचती है जो कि इनकी यथार्थ स्थिति से अवगत कराता है। "लक्ष्मण जी, क्या आपने भारत का नाम सुना है?

नहीं।"

पाकिस्तान का नाम सुना है ?

नहीं।

अमेरिका का ?

[209] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 17

नहीं।

सोना-चांदी ?

हाँ, सोना-चांदी का नाम सुना है, पर देखा नहीं है। पैसा यदि भाग्य से हो भी जाए तो भी नहीं खरीद पाऊंगा, क्योंकि मैं तो पहचानता तक नहीं।"[210]

इतने अधिक अभावों, गरीबी व कठिन परिस्थितियों में रहने के बाद भी लेखिका सभ्य समाज को झकझोरती हुई आदिवासियों की जिजीविषा को अभिव्यक्त करते हुए कहती है कि "दुर्भाग्य चाहे कितना बड़ा क्यों न हो, पर आठ करोड़ का यह आदिवासी समाज कभी खत्म नहीं हो पाता कभी नहीं हो सकता। इनके भीतर जीने की जो इच्छा शक्ति, जीवन के प्रति जो स्वाभाविक उमंग, स्वीकार्य भाव, जीवन राग एवं जिंदगी में साझेदारी की जो भावना है, वह इनके सारे दुर्भाग्य पर पोंछा लगा देगी।"[211]

इन जंगलों में अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ भी पाई जाती है। घृतकुमारी, कुप्पायनी, पीपल, सर्पगंधा, शलपर्णी, आँवला, तुलसी, हरसिंगार, भृंगराज, पचौली, अश्वगंधा जैसे बहुत सारे औषधीय महत्व के गुणों के पौधे यहाँ पर है। इनका उपयोग अनेक प्रकार की बीमारियों में किया जाता है। ब्राह्मी बूटी फोड़ा होने पर व पेट में कांटा लगने पर काम आती है। चिरायता बुखार में तो ब्राह्मी बूटी स्मृति को भी बढ़ाती है वहीं काली तुलसी खाँसी होने पर दी जाती है। तुलसी के रस में शहद मिलाकर खाने से मलेरिया ठीक होता है।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि यह वनवासी समाज किस प्रकार से जड़ी-बूटियों व प्रकृति को बचाए रखे हुए हैं लेकिन यह ज्यादा दिन तक चलने वाला नहीं है; जब ललन जी कहते हैं कि "यह धरधरी भरी पड़ी है इन जड़ी-बूटियों से। अभी तक तो सुरक्षित थी यह जगह, पर अब लोगों की गिद्ध दृष्टि भी टिक गई है इन जड़ी बूटियों पर भी।"[212] यह समाज आज भी सम्पूर्ण निष्ठा और समर्पण के साथ अपनी संस्कृति और परंपराओं को बनाए हुए हैं। लेखिका को बताते हैं कि "आज

---

[210] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 19

[211] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ 21

[212] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 39

भी यह समाज तीर-धनुष चलाते वक्त एकलव्य परंपरा का पालन करते हुए दायें हाथ के अंगूठे का इस्तेमाल नहीं करता है कि एक बार जिसे दान में दिया, उसे दे दिया। प्रकृति के साथ भी इतना संवेदनात्मक रिश्ता है कि ये पेड़-पौधों की पूजा करते हैं करमा पर्व के दिन ये पेड़ नहीं काटते हैं। इनके तो नाम तक पेड़ पौधों पर रखे जाते हैं।"[213]

घाटियों, वादियों, पहाड़ों व बादलों के बीच बसा हुआ सिक्किम पूर्वोत्तर का एक बहुत ही सुंदर राज्य है। इसमें प्रमुख पर्यटक स्थलों में यूमथांग, कवी लांग स्टॉक, सेवन सिस्टर्स वॉटर फॉल व भारत का स्विट्ज़रलैंड कटाओ हैं। यूमथांग में हिमालय की गहनतम घाटियों और फूलों से लदी वादियों का सौन्दर्य सहज ही आकर्षित करता है।

पूर्वोत्तर के असीम प्राकृतिक सौन्दर्य के बावजूद लेखिका की नजरें स्वर्गीय सौन्दर्य, नदी, फूलों, वादियों, झरनों के बीच मातृत्व व साधना को निहार रही है। जिन हिम शिखरों का आनंद लेने सभी जाते हैं। सौन्दर्य को भूलकर उन रास्तों को ये महिलाएँ ही सुगम बना रही है। "मैंने देखा इस अद्वितीय सौन्दर्य से निरपेक्ष कुछ पहाड़ी औरतें पत्थरों पर बैठी पत्थर तोड़ रही थीं। गूँथे आटे-सी कोमल काया पर हाथों में कुदाल और हथौड़े। कईयों की पीठ पर बंधी डोको (बड़ी टोकरी) में उनके बच्चे भी बंधे हुए थे। कुछ कुदाल को भरपूर ताकत के साथ जमीन मार रही थीं।"[214] एक तरफ प्रकृति का सौन्दर्य तो दूसरी तरफ श्रम का सौन्दर्य दोनों ही अभिभूत करते हैं।

पश्चिमी बंगाल का सुंदरवन अर्थात् द्वीपों का गुच्छा में सौन्दर्य को परत-दर-परत उघारकर प्रस्तुत किया गया है। सुंदरी पेड़ों या मैंग्रोव ट्री रमणीय पेड़ों की अधिकता के कारण द्वीपों के इन गुच्छों का नाम सुंदरवन पड़ा। इन पेड़ों की एक खास विशेषता है कि ये पानी के पास में होते हैं और इनकी दो जड़ें होती है। बाहरी जड़ से ये ऑक्सीजन लेते हैं इसमें कुल 106 द्वीप है। जिसमें 54 द्वीप इंसानी महक से सुवासित व यह भारत और बांग्लादेश में स्थित गंगा, ब्रह्मपुत्र व बंगाल की खाड़ी के योग से बना विश्व का सबसे बड़ा नदी डेल्टा है। इसी सुंदरवन डेल्टा के प्राकृतिक सौन्दर्य व उसके पीछे छिपे मछुआरों के दु:ख-दर्द व जंगल से बेदखल किए जाने के दर्द को इसमें अभिव्यक्त किया

---

[213] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 29
[214] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 61

गया है। मछुआरों की यथार्थ स्थिति का चित्रण करते हुए लेखिका कहती है कि "जाल और मछली के बीच शटल कॉर्क की तरह उछलती-दहकती इन जिंदगियों को पूरी दोपहर देखती रही थी मैं। खुद के हाथों में जाल, पर स्वयं जिंदगी के जाल में फंसे फड़फड़ा रहे थे वे, कभी महाजनों के हाथों, कभी वन अधिकारियों के हाथों, कभी बिचौलियों के हाथों, कभी बाढ़ के हाथों, तो कभी बाघ के हाथों।"[215] इस प्रकार वर्तमान समय की प्रौद्योगिकी व कटते पेड़ों से सुंदरवन के सौन्दर्य पर गहरा खतरा मंडरा रहा है लेकिन प्राकृतिक सौन्दर्य की स्थली व जमीनी महक से महकती मछुआरों, लकड़हारों व किसानों की इस दुनिया को बचाना है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस यात्रा के दौरान लेखिका ने जरूरी विमर्शों पर ठहरकर रूप और विरूप दोनों को शब्दबद्ध किया तथा साथ ही साथ सभ्यताओं के बदलते स्वरूप पर भी रोशनी डाली है; तथा बिना किसी पूर्वाग्रह के यथार्थ को उसके बहुतेरे आयामों में देखने परखने का सफल प्रयास किया है।

3.10 सफर एक डोंगी में डगमग - राकेश तिवारी :-

लेखक परिचय - जन्म - 2 अक्टूबर 1953, बिसवाँ, सीतापुर में, प्रारम्भिक शिक्षा - इलाहाबाद में, स्नातक - लखनऊ विश्वविद्यालय से।

प्रकाशित रचनाएँ - नेपाल की साईकिल यात्रा पर आधारित 'पहियों के इर्द-गिर्द' के अलावा 'कादंबिनी, धर्मयुग, दिनमान, दैनिक जागरण आदि पत्र-पत्रिकाओं तथा संपादित संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित। बच्चों के लिए 'कल्याण सुंदरम्', 'शश जातक', 'गाइए गणपति जगबंदन' नाट्य लेख भी लिखे हैं।

यायावर मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षमता एक सीमा में बंधकर नहीं रह सकती क्योंकि इन तीनों के साथ अदम्य साहस और इच्छा मिलकर घुमक्कड़ व्यक्ति को कहीं भी जाने के लिए तैयार करते हैं। वैसे अगर देखा जाए तो घुमक्कड़ी करना कोई आसान कार्य नहीं है एक तरह का दुस्साहस ही है जिसे बहुत कम लोग कर पाते हैं। इन्हीं कम लोगों में से दुस्साहस भरी

---

[215] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 114

घुमक्कड़ी की गाथा राकेश तिवारी की ‘सफर एक डोंगी में डगमग’ भी है। इस यात्रा का बीजारोपण होता है 1969 में दिल्ली के बोट क्लब में बोटिंग करने के बाद। बोट क्लब में नाव नहीं चला पाने से उपजा नाव चलाने का संकल्प उनकी दिल्ली से कलकत्ता तक की डोंगी यात्रा का कारण बनता है। दिल्ली से लौटकर लखनऊ में गोमती के किनारे नाव की डाँड संभालने और उसे खेने का अभ्यास करके 1976 में ओखला हेड से डोंगी अपने लंबे सफर के लिए निकल पड़ती है। दिल्ली में यमुना से आरंभ होने वाली इस यात्रा को यमुना में जल की मात्रा कम होने के कारण संकीर्ण नहर मार्ग से दिल्ली से आगरा तक लाकर धौलपुर में चम्बल नदी में पहुँचाया जाता है। दिल्ली के बोट क्लब में बोटिंग करने के बाद कानपुर से डोंगी खरीदना वहाँ से ट्रक में लादकर दिल्ली लाना और दिल्ली में लाल किला घाट से यात्रा की शुरुआत करना लेकिन पानी कम होने व लॉक्स की वजह से रास्ता बंद होने के कारण डोंगी को खेवकर ओखला हेड तक लाया जाता है। वहाँ से नहर के रास्ते आकर ट्रक से लाकर धौलपुर में चम्बल में डाला जाता है और इटावा पहुँचकर जमुना में सफर जारी रखा जाता है जो कि 340 किमी दूर इलाहाबाद तक चलता है। इसके बाद गंगा की धारा में कलकत्ता तक 1350 किमी का सफर डोंगी में 62 दिन में तय होता है।

नदी और मानव के अनन्य संबंधों को उजागर करने वाला यह वृत्तांत बारह अध्यायों में विभक्त है। जो इस प्रकार से है- ‘लंगर उठने से पहले’, ‘डोंगी खुलती है’, ‘चम्बमं शरणं गच्छामि’, ‘नमामि यमुनामहे’, ‘यत्र गंगा न यमुना चैव यत्र प्राची सरस्वती’, ‘तीन लोक से न्यारी नगरी’, ‘बिना पैसे के राम-राम’, ‘घाघरा-सोन-सदानीरा संग’, ‘पाटलिपुत्र जगत विख्यात’, ‘कोसी-सँकरी गली निहारी’, ‘हर चप्पा हरियाला’, ‘बलम कलकत्ता पहुँच गए’।

बनारस विश्वविद्यालय के एक छात्र ने तय किया कि वह डोंगी में दिल्ली से कलकत्ता तक की यात्रा तय करेगा। जिसके पीछे मूल प्रेरणा एक तरफ घुमक्कड़ महारथी राहुल सांकृत्यायन की साहसिक यात्राएँ थी तो दूसरी और पिता की सीख, कि जो ज्ञान किताबों में नहीं, वह घूमने से मिलता है। इन सबसे प्रेरणा लेकर लेखक ने इस यात्रा के लिए अपने मित्र श्याम से बात की और नाव की जुगाड़ में लग गए। चंदा जुटाकर नाव खरीदी गई और लखनऊ से नाव को ओखला हेड तक ट्रक से लाया जाता है फिर दिल्ली की ओखला हेड जैसी छोटी नहर से यात्रा शुरू कर यमुना, चम्बल, गंगा से होते हुए आगरा, मथुरा, इलाहाबाद, कानपुर, पटना से गुजरती इस डोंगी की यात्रा

के बहाने इतिहास, समाज और संस्कृति का दिलचस्प वर्णन लेखक ने किया है। इसमें एक पुरातत्वविद की नजर से इतिहास के पन्नों को पलटते हुए इतिहास, कला, साहित्य के ब्यौरे एक-एक कर नमूदार होते चले जाते हैं। "सफर एक डोंगी में डगमग' यात्रा-वृत्तांत के तौर पर जितनी रोमांचक है उतना ही मजबूत इसका ऐतिहासिक और भौगोलिक पक्ष भी है। डगमग डोंगी के साथ चलते हुए लेखक घाट-घाट के ऐतिहासिक महत्व के पर्दों को हमारे सामने इस तरह खोलता जाता है, जैसे कोई पुरातत्वविद खुदाई कर इतिहास को हमारे सामने ला खड़ा कर देता है। यह पुस्तक उत्तर-पूर्वी भारत की बदलती भौगोलिक संरचना, संस्कृति और बोलियों को समझने में एक विशिष्ट दस्तावेज की तरह है।"[216]

लेखक के समक्ष रास्ते में आने वाले व्यवधानों से निपटने के लिए स्थानीय लोगों, मल्लाह और समुदाय के लोगों द्वारा सुझाई गई सफल और प्रभावी तरकीबें भारतीय लोगों की लोक बुद्धि को प्रस्तुत करती है। साथ ही लोकविश्वास और परंपरा को प्रस्तुत करने वाले लोकगीत, त्योहार और नदियों को केंद्र में रखकर मनाए जाने वाले उत्सवों को भी प्रस्तुत किया गया है। लेखक जब अकेले होते हैं तब थकान को दूर करने, समय निकालने के लिए गाने लगते हैं। वे कहते भी हैं कि "चप्पू चलाते-चलाते पसीने से भीग गए, परछाईं लंबी पड़ गई, मोड़ पर मोड़, कगार-पर-कगार पार होते गए, आदमी की तो कहाँ कहैं, पशु भी नहीं मिला। समय बिताने के लिए चप्पू खींचते-खींचते गला फाड़-फाड़कर अलापने लगा –

'नदी घाघरा -s-s-s-s बाढ़त आवै – s-s-s

तू -s- रत चलै अरा – s-s-s-s र

एक डिहरी में साँवाँ कोदौ, एक डिहरी में मेंडुआ।'

एक के बाद दूसरा बिरहा यूँ जुड़ता जैसे एक शृंखला की कड़ियाँ –

'ओ -s- गाले पर से हाथ हथवा हटावा ननगुटकी

---

[216] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. फ्लैप पेज

के आइल बा बरतिया में चो – s-s-s-s र।

आपन-आपन टिकुरी संभारा महररुआ

के आइल बा बरतिया में चो s-s-s र।"[217]

प्रमुख नदियाँ, सहायक नदियाँ, हर नदी की अपनी कहानी, यात्रा में गंगा, यमुना के अलावा भी चम्बल, ओझला, धूतपापा, किरणा, कर्मनाशा, घाघरा, सोन, गण्डकी, बौला आदि अनेक नदियाँ आती हैं। कुदरती ताकतों से जूझते हुए नदी से परिचय और तट के जनजीवन की झलक पाना, घाट पर बसे गाँवों के ऐतिहासिक एवं पौराणिक संदर्भ। परिस्थितियाँ बहुत बार साथ नहीं देती लेकिन चप्पू चलाने का चाव और अदम्य साहस सब कुछ अपने हक में कर लेता है। 62 दिन तक नाव पर ही घर, गुड, चना, ब्रेड व मक्खन का कलेवा, टीसते हाथ-पाँव, भीगती देह। थकान के कारण जब थोड़ी-थोड़ी दूरी भी बोझ लगने लगती है तो लेखक एक तरकीब निकालते हैं और संकल्प भी लेते हैं कि "एक हजार चप्पू चलाए बिना पानी नहीं पीऊँगा, और पाँच हजार चलाए बिना आराम नहीं। चप्पुओं की गिनती करते-भूलते बढ़ते गए। पहर ढलता चला। डाँडा चलाते-चलाते अंगुलियाँ अकड़कर टीसने लगीं। एक छोटा कपड़ा भिगोकर पंजों के नीचे दबा लिया।"[218] इस तरह यह यात्रा 62 दिनों तक निरंतर चलती रहती है।

1978-79 में लिखी गई पुस्तक 2014 में प्रकाशित होती है। लेकिन फिर भी मूल आलेख्य को उसी रूप में रखा जाता है ताकि उस समय की सोच की तासीर और भाषा बनी रहे। इसमें नदी और कुदरत के हू-ब-हू रोजनामचे उल्लेखित हुए हैं। यमुना नदी और आस-पास के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए लेखक कहते हैं कि "चाँद निकलते ही धरती चाँदनी में नहा उठी। बालूचरों के बीच, शांत वातावरण में निश्चिंत विचरण, सुखद और अनूठी अनुभूति, निस्तब्ध माहौल, सुरसुराती हवा, चाँदनी में चमचमाते घोंघे, सीप, अस्थियाँ, बालूकण। दर्पण का भान कराता गड्ढों में चमकीला पानी। लहरों का चमकीला छोर और निचला स्याह भाग सौन्दर्य का

[217] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 46

[218] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 56

प्यारा पहलू बनाते। यही तो अमूल्य धन है जिसे पाने की ललक में आदमी बस्ती से दूर वनों-पर्वतों और नदी-तीरों पर भटकता है।"[219]

इस यात्रा वृत्तांत के हर वाक्य में रोमांच मौजूद है। चम्बल के घड़ियालों से बचते बचाते, नदियों के संगम पर दो धाराओं के मिलन से पानी की ताकत में उलझ न जाएँ ऐसी किसी अनहोनी की आशंका से पार पाते, दियारों से नाव टकराने से बचा कर चलते हुए हर स्थान विशेष की जानकारी देती हुई डोंगी आगे बढ़ती जाती है। लेखक ने मल्लाहों के बारे में भी रोचक जानकारी प्रस्तुत की है उनके तपे हुए शरीर, कसी भुजाएँ, धवल दंतपंक्ति और गठीले शरीर। जगह-जगह पर उनकी आगे बढ़ती डोंगी मल्लाहों के लिए आश्चर्य बन जाती है। बहुत-सी जगह रास्ते में धारा के आर-पार मछुआरों के जाल खींचे हुए मिलते। बार-बार उनको खोलने के लिए भी बोलना पड़ता। तीस-पैंतीस की तादाद में कभी सपरिवार तो कभी अकेले मिलने वाले इन मछुआरों का मूल धर्म आखेट ही है। इनका सब कुछ डोंगियों में ही सवार रहता है। चम्बल के मछुआरों के बारे में लेखक कहते भी हैं कि "इनका सारा असबाब-तंबू-कनात-जाल, बाँस, रस्सा-रस्सी, और बर्तन वगैरह सब सात-आठ डोंगियों पर लदा रहता है। नदी में ऊपर-नीचे तिरते, कम गहरे प्रवाह के आर-पार जाल तानते, रेत पर खेमा जमाकर डालते, मछली मारते, बेचते, इन जन्मजात धीवरों की यायावरी भी तिरती रहती है। चम्बल के सूने तट पर खड़े इनके छोटे-छोटे तंबू, सूखते जाल तानते, रेत पर खेमा डालते, मछली मारते, बेचते, इन सबके बीच खाना खाते बच्चे, जाल सीते या उसे बालू पर फैलाते मत्स्यजीवी - बच्चे, बूढ़े, जवान उत्सुकता भरे लगे।"[220]

दिल्ली से नहर में चलती डोंगी लोगों को हैरान करती है। ग्रामीण बच्चों, औरतों, युवतियों की भोली उत्सुकता से रंगीन डोंगी और खेने वाले युवक कौन है ?, क्या है ?, फौजी है ?, नहर विभाग के है ?, जैसे प्रश्न सामने आते रहते हैं। अनेक लोगों द्वारा खूब आवभगत की गयी, स्थानीय लोगों का स्नेह मिला, इतनी लंबी यात्रा डोंगी से किये जाने की बात को सुनकर कुछ लोग चौंकते, कुछ आश्चर्य करते, कुछ चिंता करते और कुछ डर भी जाते कि लड़का अकेला ही कैसे निकला है। राकेश तिवारी कहते हैं कि "हमारे दर्शन लाभ-पाकर लोग धन्य होने लगे – अरे भइया ! जे तो बड़े

[219] राकेश तिवारी, सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 67
[220] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 57

तपस्वी हैं, महात्मा हैं, त्यागी हैं, परमहंस हैं। इनके दर्शन करनो चाहिए। यहाँ तक की कुछ लोगों ने हमें ऋषि-मुनि मानकर आशीर्वाद की भी याचना कर डाली।"[221] रास्ते में मिलने वाले मछुआरों के अपनत्व और स्नेह लेखक को हर जगह सरोबार करते रहते हैं। जब सामने मछुआरों का महाजाल आता है तो उसे जाल समेटने के लिए कहते हैं तो मछुआरा उनसे अपने साथ रूकने का आग्रह करते हुए कहता है कि "तू घर ही के निकल गइला, दू चार दिना औरौ रुकि जा। हमरे संग रहिहा।"[222]

यात्रा जब भी करते हैं तो प्रकृति के बहुत करीब होते हैं और इससे जो अनुभव प्राप्त होते हैं वो भी अद्वितीय होते हैं। इस यात्रा को अगर देखा जाए तो यह तो प्रकृति की गोद में की गई यात्रा है। नदी की धार में रातें कैसे काटी, सोये कैसे, कहाँ, क्या खाया और कैसे रहे इसका असली अहसास तो लेखक को ही होता है लेकिन जीवंत चित्रण से उसके साथ-साथ पाठक भी उनका सहभागी बनता जाता है। लेखक ने बरसात, धूप, ठंड, निर्जनता न जाने क्या क्या देखा।

रास्ते में ब्रज, कन्नौजी, भादुरी, अवधी, बनारसी, मगही, भोजपुरी, बांग्ला बोलने वाले अनेक लोगों से मुलाकात होती है। लेखक की भाषा भी एकदम लाजवाब बिना किसी दुहराव के स्थानीयता के रंग को लेकर लय में चलती हुई मुकाम तक पहुँचाती है। हिन्दी के साथ-साथ बोलियों का मिश्रण और प्रयोग, लगातार रस को बनाए रखता है। वैसे देखा जाए तो किस्सागोई हर रचनाकार की पहली शर्त होती है और इस शर्त पर यह वृत्तांत खरा उतरता है। घाट-घाट का पानी पी चुके लेखक ने तमाम जगहों की बोलियों और आदतों को खूबसूरती से पिरोया है। हर जगह की क्षेत्रीय बोलियों को अपने यथारूप में रखकर भाषिक अनूठेपन और 'चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी' लोकोक्ति को सार्थकता प्रदान की है। जगह-जगह आवश्यकतानुसार प्रयुक्त तुलसी, सूर और पद्माकर के पद और भोजपुरी गीत एक अलग ही आनंद प्रदान करते हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में देखा जा सकता हैं कि सम्पूर्ण पुस्तक अपनी जीवंतता को बनाये रखती है। हर शब्द पाठक को जोड़े रखता है। कोई भी ऐसा प्रसंग, ऐसी जगह, ऐसा वातावरण,

---

[221] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 61
[222] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 63

लोग व ऐसी परिस्थितियाँ नहीं हैं, जो स्वयं ना बोल रही है। वर्णन-शैली बहुत शानदार है। पढ़ने के साथ-साथ ही सारा वर्णन मानस-पटल पर दृश्यांकित होता चलता है। लेखक को शुरू से ही कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है लेकिन उनकी यात्रा की उत्कंठा शुरू में नाव के प्रबंध से लेकर लखनऊ और आगे बनारस तक हर जगह दिखाई देती है। दिल्ली से कलकत्ता तक के इस लंबे और चुनौतीपूर्ण सफर में भय, आशंका और खतरे अनेक रहे लेकिन इन सब का सामना करने और उनसे पार निकलने की जीवटता इस वृत्तांत में सर्वत्र दिखाई देती है।

3.11 सुनो लद्दाख – नीरज मुसाफिर :-

'सुनो लद्दाख' नीरज मुसाफिर का लद्दाख यात्रा व ट्रैकों के बारे में जानकारी प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जिसमें 'जनवरी में लद्दाख और चादर ट्रैक' व 'पदुम-दारचा' (जांस्कर ट्रैक) नामक दो भागों में विभक्त करके जनवरी 2013 व अगस्त 2014 की यात्राओं को प्रस्तुत किया गया है। चादर ट्रैक सर्दियों में अर्थात् जनवरी व फरवरी में ही होता है इसीलिए 'लद्दाख में चादर ट्रैक' अध्याय में जनवरी माह में की गई लद्दाख की पैदल यात्रा (ट्रैकिंग) व जांस्कर ट्रैक में पदुम-दारचा ट्रैक का वर्णन किया गया है। इनमें लद्दाख के जनजीवन को बहुत करीब से देखने की कोशिश की गई है। जांस्कर ट्रैक में लद्दाख के सुदूरवर्ती इलाके जांस्कर के जन-जीवन की साधारण से साधारण बातों का चित्रण किया गया है। इसके अलावा 'लद्दाख में ट्रैकिंग और सावधानियाँ' में ट्रैकिंग के दौरान रखी जाने वाली सावधानियों की चर्चा की गई है। इसके साथ ही 'लद्दाख में परमिट व्यवस्था' में परमिट लेने के संबंध में लेखक ने आवश्यक जानकारी दी है। पुस्तक की शुरुआत बिना किसी भूमिका के होती है लेकिन 'भूमिका जैसा कुछ' शीर्षक से भूमिका बांधने की सफल कोशिश लेखक ने की है। जिससे लेखक के ब्लॉग और यात्रा की ऊपरी रूप से रूपरेखा व जानकारी प्राप्त होती है।

इस पुस्तक में लेखक के व्यक्तित्व और उसकी यात्राओं की सबसे खास विशेषता जो दिखाई देती है वह है जमीन से जुड़ाव। जिससे लेखक ने कही कुछ भी छुपाने की कोशिश नहीं की और हर साधारण से साधारण घटना का रोचकता के साथ चित्रण किया है। साथ ही सादगी पसंद लेखक को कही पर भी ऐशो-आराम, बड़ी-बड़ी गाड़ियों व होटलों की जरूरत नहीं पड़ती है। कम से कम पैसे

व संसाधनों से पूरी यात्रा होती है। जिसका अंत में लेखक ने विस्तृत ब्यौरा भी दिया है। इसी तरह लेखक के सहज साधारण व्यक्तित्व के अनुरूप ही उसकी लेखनी भी है। शब्दों और भावों की लाग-लपेट कही नहीं है जो कुछ आसपास देखा महसूस किया उसको उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं सरलतम शब्दों में भी गूढ़ बातें कही गई है जिससे किताब की भाषा शैली भी रोचक एवं सरल है।

जनवरी में लद्दाख और चादर ट्रैक :-

प्रारंभ में लद्दाख यात्रा की विस्तृत तैयारी होने के बाद दिल्ली के अन्तरराष्ट्रीय इन्दिरा गाँधी हवाई अड्डे से लेह के कुशोक बकुला रिमपोंछे हवाई अड्डे के लिए इस लद्दाख यात्रा की शुरुआत होती है। लेखक ने अपनी इस पहली हवाई यात्रा का अत्यंत आकर्षक भाषा शैली में चित्रण किया है। इसके बाद राम-राम से जुले-जुले की धरती पर व सिंधु घाटी और चिलिङ्ग को प्रस्थान, चिलिङ्ग में बर्फबारी व चादर ट्रैक की शुरुआत जिसमें गुफा में एक रात बिताकर वापस लेह आना व उसके बाद लेह पैलेस, शांति स्तूप, खारदुंग-ला का परमिट व शे-गोम्पा, लेह में परेड व युद्ध संग्राहालय का विस्तृत वर्णन किया गया है।

नीरज मुसाफिर कहते हैं कि अक्सर लेह और लद्दाख को अलग-अलग मान लिया जाता है लेकिन ये अलग-अलग न होकर एक ही है। अगर देखा जाए तो जम्मू-कश्मीर और लद्दाख तीन भागों में विभाजित है। जम्मू में जवाहर सुरंग से पहले का इलाका कठुआ, साम्बा, जम्मू, ऊधमपुर, डोडा, किश्तवाद, राजौरी, रियासी, पूँछ आदि जिले आते हैं। कश्मीर क्षेत्र में जवाहर सुरंग के बाद का इलाका आता है। जिसमें अनंतनाग, श्रीनगर, बड़गांव, बारामूला, कुपवाड़ा आदि जिले आते हैं। श्रीनगर लेह मार्ग पर सोनमर्ग से कुछ आगे जोजिला दर्रा पार करते हैं तो लद्दाख क्षेत्र आता है जिसमें कारगिल व लेह जिला प्रमुख हैं। इसे ही आम बोलचाल में लेह-लद्दाख कह दिया जाता है। अब जम्मू-कश्मीर व लद्दाख को अलग-अलग करके दोनों को केंद्रशासित प्रदेश बना दिया गया है। भौगोलिक दृष्टि से अगर देखें तो लद्दाख एक मरुस्थल है जहाँ बारिश बहुत कम या न के बराबर होती है लेकिन ऊँचाई पर स्थित होने के कारण यहाँ अत्यधिक ठंड है फिर भी मरुस्थल होने के कारण यहाँ आद्रता अधिक नहीं होती लेकिन कम वायुदाब यहाँ की मुख्य समस्या है। बर्फ भी यहाँ

अधिक नहीं होती है लेखक कहते हैं कि "लद्दाख एक मरुस्थल है और यहाँ बारिश नाममात्र को होती है। बर्फबारी भी बादलों के कारण होती है, तो बर्फ भी कम ही पड़ती है। आप कभी लद्दाख जाओ तो बर्फ की उम्मीद लेकर मत जाना।"[223]

लद्दाख का मुख्य आकर्षण है 'चादर ट्रैक'। जो कि भारत में केवल लद्दाख में ही होता है और वो भी सिर्फ सर्दियों में। सर्दियों में यहाँ कम तापमान के कारण नदियाँ जम जाती है और जमी हुई नदी पर जो ट्रेकिंग की जाती है उसे चादर ट्रैक कहा जाता है। इसमें जांस्कर नदी की चादर ट्रेकिंग सभी को आकर्षित करती है। जिसमें तापमान शून्य से माइनस तीस डिग्री नीचे तक रहता है और कम तापमान इस ट्रैक को काफी चुनौतीपूर्ण बना देता है। साथ ही ट्रेकिंग के वक्त बर्फ कठोर व फिसलन भरी होने के कारण टूटने और फिसलने का डर हमेशा बना रहता है। "आपको एक-एक कदम बेहद चौकसी से रखना होता है। हर समय बर्फ के टूटने का डर बना रहता है और आप हर समय इस बात के लिए तैयार रहते हैं कि अब बर्फ टूटेगी और हम बचकर भाग निकलेंगे।"[224] जांस्कर पर ट्रेकिंग के लिए लेखक अकेले ही निकल पड़ता है। जिसका खामियाजा भी लेखक को अंत में भुगतना पड़ता है।

लेखक एक दिन बर्फीली रात गुफा में गुजार कर वापस लेह की तरफ मुड़ जाता है। चादर ट्रैक हमेशा समूह में या किसी के साथ ही करना चाहिए। लेखक कहता भी है कि "यदि आप भी किसी चादर ट्रैक पर जाना चाहो तो मेरी गलती मत करना। मैंने जो की, वो भी अकेले जाने की; कम से कम एक साथी अवश्य साथ रखना; इससे बहुत मानसिक ताकत मिलती है। आपके साथ बस एक इंसान होना चाहिए जो कह सके कि वापस मत चलो, ट्रैक जारी रखो। या फिर अगर वो कमजोर पड़ रहा हो, तो आप उसे हिम्मत बँधा सको और ट्रैक पूरा कर सको।"[225] चादर ट्रैक की शुरुआत 19 जनवरी 2013 को लेह से नेरक की ओर होती है। नेरक में चिलिङ्ग से करीब 40 किमी आगे जांस्कर नदी के किनारे बसा हुआ एक छोटा-सा गाँव है जहाँ लगभग आठ किमी तक सड़क व बाद में पगडंडी बनी हुई है लेकिन निम्न तापमान के कारण यह पगडंडी बर्फ के नीचे दब

---

[223] नीरज मुसाफिर 'सुनो लद्दाख' पृ. 75
[224] नीरज मुसाफिर 'सुनो लद्दाख' पृ. 56
[225] नीरज मुसाफिर 'सुनो लद्दाख' पृ. 64

जाती है, इसीलिए जमी हुई नदी के ऊपर से होकर जाना पड़ता है। यह जमी हुई नदी के ऊपर से होकर जाना ही चादर ट्रैक है। इसमें नदी के पानी की बर्फ बनती है और फैलती है जिससे टूट-फूट और दरारें पड़ती रहती है और साथ ही बर्फ की कई परतें होती है। जिसमें सबसे ऊपर वाली एक मोटी परत और फिर चार पाँच इंच का खाली स्थान लेकिन इसके नीचे फिर मोटी परत होती है जिसके ऊपर वाली परत टूटती जाती है तो नीचे की मोटी वाली सुरक्षित परत से बचा जा सकता है। "इतने क्रांतिक तापमान में पानी जम जाता है, बर्फ काँच की तरह कठोर व फिसलन भरी हो जाती है। हालाँकि कल बर्फबारी हुई तो इस काँच पर भुरभुरी बर्फ की तीन-चार इंच मोटी परत जम गई।"[226] इसी जमी हुई नदी पर लेखक चादर ट्रैक करते हैं।

अन्य दर्शनीय स्थलों में 'लेह पैलेस' लेह में स्थित नौ मंजिला महल है जिसका निर्माण तिब्बत में स्थित पोटाला राजमहल के अनुरूप किया गया है। इसका निर्माण कार्य 1933 ई. में नामग्याल संप्रदाय के संस्थापक सेवान्ग नामग्याल ने शुरू किया। एक अन्य शांति स्तूप भी यहाँ का प्रमुख दर्शनीय स्थल है जिसका निर्माण जापानियों ने कराया था। 4000 मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित भारत की बुद्ध की भूमि होने के कारण काफी पवित्र मानते हुए इस स्तूप पर पैदल मार्ग से जाने के लिए साढ़े पाँच सौ सीढ़ियाँ चढ़नी होती है।

लद्दाख गोम्पाओं के लिए बहुत प्रसिद्ध है यहाँ हर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर गोम्पा मिल जाते हैं और यहाँ शे गोम्पा में बुद्ध की बड़ी विशाल मूर्ति है जिसे 1650 के आसपास देलहन नामग्याल ने बनवाया था। शे गोम्पा में लेखक देखते हैं कि "शे गोम्पा में आज कोई धार्मिक आयोजन चल रहा था। काफी लोग थे और मेले का माहौल था। गोम्पा के सामने पंडाल लगा था और लोग-बाग बैठे थे। लद्दाखी भाषा में धर्मगुरु प्रवचन कर रहे थे। यह गोम्पा नया बना है। सजावट शानदार है। लोग इसकी परिक्रमा कर रहे थे। परिक्रमा लद्दाखी जनजीवन में अहम है। पवित्र चीज की परिक्रमा करके ही लद्दाखी आगे बढ़ते हैं।"[227] इसी तरह लेह-मनाली रोड पर ठिकसे गोम्पा भी प्रसिद्ध गोम्पा है।

[226] नीरज मुसाफिर 'सुनो लद्दाख' पृ. 56
[227] नीरज मुसाफिर 'सुनो लद्दाख' पृ. 78

पदुम-दारचा ट्रैक की शुरुआत विधान व प्रकाश जी के साथ होती है लेकिन अंत में लेखक अकेले ही इसको पूर्ण करता है। इसकी शुरुआत दिल्ली से श्रीनगर, श्रीनगर से कारगिल, सुरू घाटी, रांगडुम से पदुम और अनमो व अनमो से चा के लिए होती है व आगे फुकताल गोम्पा व फुकताल गोम्पा से पुरने, पुरने से तेंगजे, तेंगजे से करग्याल और गोम्बोरंजन, शिंगो-ला पार व वहाँ से दिल्ली की ओर प्रस्थान।

इस यात्रा वृत्तांत में देखा जा सकता है कि लद्दाख बहुत कठोर जलवायु वाला इलाका है जहाँ मौसम को लेकर अनेक दिक्कतें है, अत्यधिक त्वचा जला देने वाली धूप, मटमैले पहाड़, दुर्गम रास्ते, सर्दियों में हड्डियों को कंपा देने वाली ठंड, एक तरफ धूप निकलने पर दिक्कतें होती है तो दूसरी तरह अगर धूप नहीं होती है तो दिक्कत लेकिन लेखक हर विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी चलता रहता है लद्दाख और जांस्कर जैसे भू-भाग को पैदल नापना अपने आप में एक सराहनीय प्रयास है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में देख सकते हैं कि लद्दाख की इस यात्रा में तीन मुख्य आकर्षण है जमी हुई जांस्कर नदी की चादर ट्रैक, खारदूंग-ला और पैगोंग झील। इसमें जांस्कर, दारचा, पदुम, चादर जैसे कभी न सुने जाने वाले शब्दों को यात्रा वृत्तांत में पढ़कर पाठक को लगता है कि वह भी इन दुर्गम व कठिनतम मार्गों पर लेखक के साथ यात्रा कर रहा है। चादर टैक के समय गुफा में बिताई रात, पदुम-दारचा ट्रैक के दुर्गम दर्रे व चढ़ाई, अद्भुत हिमाच्छादित पर्वत अत्यधिक रोमांचित करते हैं।

3.12 इरिणालोक - अजय सोडानी :-

हिन्दी में यात्रा वृत्तांत तो बहुत लिखे गए हैं लेकिन उनमें ज्यादातर वर्णनात्मक हैं बहुत कम ऐसे सफरनामे हैं जिन्हें साहित्यिक और कलात्मक वृत्तांतों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें से अजय सोडानी का ‘इरिणालोक’ गुजरात के कच्छ के रण को जीवंतता के साथ प्रस्तुत करने वाला एक बहुत ही महत्वपूर्ण वृत्तांत है। अजय सोडानी का प्रबल विश्वास है कि देश की आत्मा दंतकथाओं और जनश्रुतियों में बसती है और इतिहास के पन्नों से गुम इन्हीं जनश्रुतियों को वे दुर्गम यात्राओं के माध्यम से दूर-दराज के इलाकों से ढूँढ़ते हैं। विकास के अनछुए लोकों में पुराकथाओं

के चिह्नों की खोज उनके वृत्तांतों में प्रमुखता से की गई है। वे कहते भी हैं कि "संस्कृति की लीक पर उल्टा चलूँ तो शायद वहाँ पहुँच सकूँ जहाँ भारतीय जनस्मृतियाँ नालबद्ध हैं। वांछित लीक के दरस हुए दंतकथाओं और पुरकथाओं में आगाज हुआ हिमालय में घुमक्कड़ी का। स्मृतियों की पुकार ऐसी ही होती है। नि:शब्द। बस एक अदृश्य-अबूझ खेंच, अनिर्वचनीय कर्षण। और चल पड़ता है यायावर वशीभूत... दीठबंद... ।"[228] इस सफरनामे की खास विशेषता यह है कि इसमें लेखक ने विभिन्न स्थानों, कस्बों के आज के जीवन का ही चित्रण नहीं किया है बल्कि वहाँ की संस्कृति और इतिहास में भी झाँकने की कोशिश की है। समाज, संस्कृति, इतिहास सभी को परत-दर-परत उघारकर प्रस्तुत किया गया है।

'इहलोक', 'मरकज लोक', 'इरिणालोक', 'सुराब्जी माँड' और 'निकलने से पहले' नामक पाँच भागों में विभक्त 'इरिणालोक' में कच्छ को समग्रता के साथ समझा जा सकता है। कच्छ से संबंधित आमजन से दूर अनेक अनछूए पहलुओं को छूने की कोशिश इस वृत्तांत में की गई है। इसके नामकरण को अगर देखा जाए तो 'इरिणा' अर्थात् रन। वर्तमान को बेहतर तरीके से बूझने और उससे जुड़ने के लिए अतीत से जुड़ना बहुत जरूरी है और इसी अतीत से जुड़ाव के कारण लेखक ने 'रन' को 'इरिना' बुलाना श्रेयस्कर समझा है। वैसे भी अगर देखा जाए तो इरिणा में अनेक रन तो हैं लेकिन केवल रन ही नहीं है। इसके अलावा भी बहुत कुछ है। रन अर्थात् रेगिस्तान। जहाँ सिर्फ रेत ही रेत दिखाई दे और प्यास से सूखे आर्त्त स्वर सुनाई दे। इस रन अर्थात् रेत ही रेत के संदर्भ में अगर कच्छ को देखा जाए तो यहाँ रेत कम नमक अधिक है। यहाँ नमक रेत के नीचे दलदलनुमा कीच है। रन की दृष्टि से इरिना वह भूमि है जो बहुत उपजाऊ तो नहीं पर जलहीन भी नहीं। जहाँ मिट्टी में रेत तो है पर रेत के टीले नहीं। इसमें नदियाँ हैं, तालाब हैं और कुएँ भी है और सबसे खास है वृहत् घास के मैदान 'बन्नी'। इतना सब कुछ होने के कारण ही इसे रन की बजाय 'इरिना' कहा गया है। इरिना नामकरण के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को भी बताते हुए लेखक कहते हैं कि "सिंधु नदी से होते हुए अरब सागर में जाने वाले सिकंदर के सेनापति नियार्खस के संस्मरण में नदी के आसपास मरुभूमि के होने का जिक्र नहीं है। होता भी कैसे, यहाँ तो तब सघन हरियाली थी, खेत थे।"[229] इसी

---

[228] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 11

[229] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 151

सिंधु के डेल्टा क्षेत्र से कई लोगों को सेनापति बंदी बनाकर अपने साथ ले गए थे। "मेरा ख्याल है कि सिंधु घाटी के इन्हीं युद्ध बंदियों के संग इरिना नाम ग्रीस पहुँचा होगा। जिसके चलते परवर्ती काल में पेरिप्लस (40-50ई.) में कच्छ के इस क्षेत्र को 'एरिणा' बुलाया गया है। पेरिप्लस में 'एरिणा' को दलदल भूमि बताया है। कह चुका हूँ कि बाद में यही 'एरिणा' 'रिणा' और फिर 'रन' हो गया।"[230] इसी तरह एक अन्य नामकरण 'कच्छ के स्मृति द्वीप' भी रखा है। कच्छ तो गुजरात का 'कच्छ का रन' और स्मृति द्वीप यानि जहाँ पीछे के वक्त की गंध ठहरी और ठिठकी हुई हो और जहाँ पहुँचने पर लगे कि व्यतीत बस वापस लौटा कि लौटा। लेखक भी कहते हैं कि "स्मृति द्वीपों' से मेरा मुतालबा उन जगहों से है जहाँ के समाज की सामूहिक स्मृतियों में पुराकाल आज भी महफूज हो। संस्कार, जीवनचर्या से नालबद्ध सजीव-पुराकाल..."[231]

इस यात्रा की शुरुआत 2 फरवरी 2018 को सड़क मार्ग से इंदौर से गुजरात की ओर होती है। वैसे यह लेखक की गुजरात की ओर चौथी यात्रा है लेकिन अपने आप में बहुत ही खास। लेखक ने इस यात्रा से पहले चम्बल के बीहड़ में जाने का मन बनाया था जानकारियाँ भी जुट गईं, तैयारियाँ भी मुक्कमल हुई लेकिन घर से निकलने के ठीक पहले अनदेखे 'रन' का धुँधला-सा अक्स जेहन में आते ही, सरस्वती नदी के मार्ग को देखने और कच्छ को करीब से देखने के लिए बीहड़ की तरफ जाने की योजना को स्थगित करके कच्छ की ओर रुख किया। कच्छ की ओर जाने से पहले लेखक के पास सिर्फ दो चार खबरों के अलावा कुछ नहीं था। यात्रा से पहले सिर्फ यहीं पता था कि यहाँ सुर्खाब (फ्लेमिंगो) आसानी से दिखाई देते हैं। दूसरा कि यहाँ के रोगन आर्ट को प्रधानमंत्री ने बराक ओबामा को भेंट किया था। तीसरा 'सफेद रन उत्सव'। लेकिन कच्छ में जाकर ऐसी-ऐसी जगहों और उनसे जुड़े तथ्यों को खोज निकाला जो कि गूगल की खोज से परे हैं जिनसे सिर्फ वहीं जाकर राबता किया जा सकता है। लेखक कहते भी हैं कि "स्मृतियों की पुकार ऐसी ही होती है- नि:शब्द। बस एक अदृश्य-अबूझ खेंच, अनिर्वचनीय कर्षण। और चल पड़ता है यायावर

---

[230] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 151

[231] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 12

वशीभूत...दीठबंध..। जगहों की पुकार गूगल गुरु की पहुँच से परे। गूगल मैप के अनुगमन से रास्ते तय होते हैं, जगहें मिलती हैं पर क्या राबता हो पाता है ?"[232]

कच्छ के नामकरण को ही अगर देखा जाए तो इसको लेकर लेखक ने अनेक तथ्य प्रस्तुत किये हैं जैसे पौराणिक ग्रंथों की दृष्टि से अगर देखा जाए तो हमारे पुराग्रंथों में 'कच' नाम के अनेक चरित्र हुए हैं जैसे घटोतकच्छ, बृहस्पति पुत्र 'कच'। शायद इन्हीं में से कोई कच्छ से जुड़ा हुआ हो सकता है। इसके अलावा भी भौगोलिक विशिष्टताओं से इसके नामकरण को देखा जा सकता है। कच्छ भूमि मध्य से उठकर किनारों पर 'कच्छप' की पीठ के समान ढलुआ है। "पुराणों में दो भाईयों का जिक्र और किया गया है - पुरुकच्छ और बुजाकच्छ। 'कच्छ' इनके नाम का हिस्सा है यह तो आपने देख ही लिया। पर क्या आप 'बुजाकच्छ' में 'भुज' की गूँज सुन पाए ? नहीं तो सुन लीजिए, क्योंकि जानकारों के मतानुसार कच्छ तथा भुज का नामकरण दो भाईयों के नाम पर आधारित है।"[233]

बीहड़पन में अपना एक खिंचाव होता है तर कर देने वाला खास आकर्षण। और बीहड़ का यही आकर्षण लेखक को बार-बार अपनी तरफ खींचता है और सबसे खास कि लेखक अपने साथ-साथ पाठक को भी लेकर चलते हैं। हर जगह नई-नई गहन शोध से मिलने वाली जानकारियाँ प्राप्त होती हैं कहीं पर भी ऊब महसूस नहीं होती, बाहरी जगत और आंतरिक भावनाएँ दोनों ही का उचित अनुपात में सामंजस्य इसमें प्रस्तुत किया गया है। रन में व्याप्त अनेक कथाओं के संबंध में लेखक कहते भी हैं कि "रन का नशा हौले-हौले तारी होता है - भाँग की तरह। हालात ऐसे हैं कि मुझे रन की माटी में समुद्री नमक होने के बात ही गप्प लगने लगी है। मेरे जाने तो यह नौन उन कथा-पात्रों के स्वेद कणों से बना है जिनकी बस्तियाँ इरिणा के जर्रे-जर्रे तक फैली हुई हैं। हजारों बरस से रन में तपते असंख्य कथा पात्र। आक्षेप लगाया जाता है रन पर ऊसर होने का। मैं इससे सहमत नहीं। जिसकी कोख रोज नई कथा जने वह भूमि बाँझ कैसे कही जाए ?"[234]

[232] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 11
[233] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 60
[234] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 128

पद्धरगढ़ का महल, दोरबनाथ मंदिर को लेकर मान्यताएँ, नाथों की पूजा पद्धति, बन्नी, जत लोगों की मान्यताएँ, तरा व जल संरक्षण की पद्धति सभी का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। 'बिजूकाओं के स्मृति द्वीप' में बिजूकाओं के अनेक रूपों का विस्तार से वर्णन किया गया है। खेतों में दिन-रात खटता, पाखियों को भगाता बिजूका आदमी की वैज्ञानिक सोच के प्रथम परवाज की 'स्मृति' को अपने भीतर समेटे हुए हैं। फसल की जीव-जंतुओं से रक्षा करना खेतिहर की पहली प्राथमिकता होती है और इसी खेती की रक्षा के लिए पुराकालीन हमसफ़र बिजूका हर खेत में विभिन्न रूपों में मिल जायेंगे। जिसमें अशरीरी बिजूका, तांत्रिक बिजूका, सर्वहारा बिजूका, पारंपरिक बिजूका, टशन वाला बिजूका प्रमुख हैं। गुजरात के बिजूकाओं के संदर्भ में लेखक कहते हैं कि "गुजरात के इस इलाके में ये जोड़े में मिले। अब खेत में खड़े ये धणी-लुगाई थे या खड़े खेत में लुके प्रेमी युगल- कहना मुश्किल। मैंने तो इन्हें पेंगे लड़ाते प्रेमी मन से देखा, ऐसा करने में ज्यादा रस आता है लक्ष्य किया कि बिजूकाओं ने अब तक पारंपरिक परिधान नहीं छोड़े, घूँघट भी नहीं। सुना तो था कि गुजराती औरत आजाद ख्याल, आजाद हवा में जीने वाली, घर-व्यवस्था में एक तरफा दखल रखने वाली है। पर शायद बिजूका-जगत में हवा नहीं बदली अभी। देखा जाए तो यहाँ सारे बिजूका सजे-धजे भी नहीं। कुछ एक हैं भदेस... डरावना होने की हद तक काले-ढुस्स भी। इनके चलते ही शायद बिजूके काग-दरौआ या 'स्केअर क्रो' आदि नामों से भी जाने जाते हैं।"[235]

पद्धरगढ़ के किले के ध्वस्त होने के पीछे की कथा को लेखक ने बताया है। जो कि हर कच्छी को कंठस्थ है। ये कथा मात्र होने के बावजूद आज के यहाँ के अवशेष इसे इतिहास से जोड़ते हैं। पुन्व्रो का गढ़ बनाने का शौक, जिसमें से एक भुज के पास पद्धरगढ़ नामक पत्थरों की सुंदर गढ़ी बनाना किन्तु काम पूरा होते ही उसके वास्तु शिल्पी के हाथ काट दिये। जिससे उसकी क्रूरता के चर्चे चल पड़े। इन्हीं पुन्व्रो के राज्य में सात धर्मानुरागी रहते थे। जिनकी पूजा पद्धति यहाँ की नहीं थी। उनके देवता भी कुछ अलग ही थे। "कहते हैं कि वे रोमन शहर बाईझेनिटयम से आए थे और अपने देवता को जख बुलाते थे। जो हो, पर इन सातों की कच्छ में बड़ी धूम थी।"[236] इन जख देवता द्वारा ही पुन्व्रो का वध करके, जखों के नजदीक की काकबिध नामक पहाड़ी से पत्थरों

[235] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 35

[236] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 66

की बौछार कर पद्धरगढ़ का किला तहस-नहस कर डाला और पद्धरगढ़ को हमेशा के लिए जीवनहीन और उजाड़ रहने का श्राप देकर चले गए। उसके बाद जनता को क्रूर शासन से मुक्ति मिली। उस समय से लेकर ही आज तक कच्छ में जखों की पूजा रक्षक के रूप में की जाने लगी और आज भी भादो मास में सभी यक्ष मंदिरों में मेला लगता है। इस कथा के पीछे के तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए लेखक कहते हैं कि "हर एक कच्छी के कंठ में बसी यह 'जख' नितांत खोखली नहीं है। सच जानिए, कई तथ्य बावस्ता हैं इसमें। जैसे कथा में जखों के ताप से पहाड़ों का धँस कर समतल हो जाने का जिक्र, उस काल में हुई किसी प्राकृतिक आपदा को इंगित करता है। कुछ लोग मानते हैं कि जख उत्तरी ईरान से आए झोराष्ट्रीयन थे, जो अग्नि पूजक थे, इसीलिए कच्छ में एकाधिक स्थानों पर बने जख मंदिरों में अखंड दीप जलाए जाते हैं।"[237] ककाबिध पहाड़ी पर जख मंदिर भी बना हुआ है जहाँ कच्छ आए बहत्तर घुड़सवार जिन्होंने पद्धरगढ़ को मिट्टी में मिला दिया था। यहाँ मन्नत पूरी होने पर लोग घोड़े चढ़ाते हैं। कुछ सक्षम लोग जहाँ संगमरमर के घोड़े चढ़ाते हैं वही अन्य सभी माटी के चढ़ाने के लिए लाते हैं।

भुज से पचपन किमी दूर रन के कगार में बसा निरोणा गाँव रोगन आर्ट के लिए प्रसिद्ध है। मध्यकाल में यह एक बंदरगाह था जिसमें जलपोतों और व्यापारियों की बड़ी चहल-पहल रहती थी। किन्तु आज के निगोणा में पुराने बंदरगाहों की न तो बू है और न ही बुनावट। अब यहाँ इक्का-दुक्का झोपड़ियाँ, छोटी-छोटी गलियाँ, एक पुराना मंदिर, शहरी लिबास विद्यमान है लेकिन व्यवहार में सादापन। "निगोणा अभी गाँव और शहर के बीच लटका हुआ है। एक पैर पाजामे में, दूसरा पतलून में, एक आँख पर ऐनक दूजी में कॉन्टेक्ट लैंस। फिर भी यह गाँव निराला है, वह देखने की नहीं समझने की चीज है।"[238] यहाँ के तीन परिवारों के पुश्तैनी काम से जुड़े होने के कारण यह गाँव दुनियाभर में जाना पहचाना जाता है। इन तीनों परिवारों ने चमड़े का काम, कॉपर बेल निर्माण और रोगन आर्ट की हस्तकलाओं में अपने आप को पूरी तरह खपा दिया है जिससे आकर्षित होकर अनेक सैलानी आते हैं। इनमें से चमड़े का काम करने वाले का टोला गाँव के दूसरे छोर पर रहता है। वही दूसरी ओर ताँबे की घंटी बनाने का भी काफी बड़ा काम है। यहाँ के हुसैन सिद्धिक परिवार के

[237] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 68
[238] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 83

बारे में लेखक कहते हैं कि "यह ताँबे की घंटी बनाने वाला गुजरात में ही नहीं संसार का बिरला, एकमेव परिवार है।"[239] यहाँ की तांबे की घंटी में तांबा नाममात्र का होता है। इसे मुख्यत: तीन टुकड़ों को जोड़कर बनाया जाता है। एक से घंटी का मुख्य हिस्सा, दूसरे से टोप व तीसरे से आँकड़ा बनाया जाता है। इसी तरह रोगन आर्ट वाले खत्री परिवार के संबंध में लेखक कहते हैं कि "करीब तीन सौ बरस पहले इन्हीं बंजारों के संग सिंध से तीन रंगरेज परिवार भी इधर आए। इनमें से एक खावड़ा और दूसरा चोबार में बसा। तीसरा परिवार तीन शताब्दियों से निरोणा में निवासरत खत्री परिवार है। निरोणा के सुमार खत्री परिवार अपने को विश्व को इकलौता 'रोगन कला' साधने वाला परिवार कहते हैं। किन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं। हाँ, इसमें दो राय नहीं कि निरोणा के इस मुस्लिम खत्री परिवार ने रोगन-माँड़नों को परिमार्जित किया, कला का दर्जा दिलवाया।"[240] सूती या सिल्क के कपड़े के टुकड़े पर रोगन द्वारा बनाए जाने वाले इन माँड़नों में अनेक आकृतियों से निर्मित वृत्त या आयताकार मण्डल होता है। जिसमें सबसे प्रसिद्ध है 'ट्री ऑफ लाईफ' जो कि कई मंडलों से बना होता है।

सुराब्जी वॉड के सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है वर्षा जल संरक्षण की दो पद्धतियाँ - तरा और वाव। वाव अर्थात् कुआँ और तरा 'ताल' का अपभ्रंश है। जब वर्षा ऋतु में ताल भरता है तो जत लोग उस जल की बूँद-बूँद वाव के जरिए धरती की कोख में उतार देते हैं। तीन या चार फुट के ये वाव पाँच से दस फुट तक गहरे होते हैं जिन्हें अकेला आदमी भी खोद सकता है। मिट्टी के पानी सोखने से बचाने व मिटिया वाव की दीवार को धसने से बचाने के लिए दीवार पर नीम या बबूल के ठूँस फँसाये जाते हैं और इन ठुँसों के मध्य बन्नी के घास के मैदानों से लाई घास लगाई जाती है। जल में उगी इस घास और लक्कड़ों पर जमी काई ही वाव के फेफड़े माने जाते हैं क्योंकि इसके जल से लगातार उठने वाले बुलबुले उसकी जीवंतता को प्रस्तुत करते हैं। इस वाव से पानी बाहर निकालने के लिए एक खास किस्म की डोलची काम में ली जाती है। जो कि भेड़ की खाल या फिर गाड़ी के ट्यूब से बनाई जाती है। इससे वाव के पास दो लोग खड़े होकर पानी नाली में डालते हैं तो नाली से होकर पानी नाँद में जाता है जहाँ से भैंसे पानी पीती है। बहुत बार वर्षा जल के साथ आने वाली गाद

---

239 अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 92

240 अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 98

से वाव बंद होकर सूख जाते हैं उनके संबंध में लेखक कहते हैं कि “हर साल कुछ कूप वर्षा जल के संग आई गाद से बुर जाते हैं। तो कुछ में जल सूख जाता है जब किसी वाव के जल में बुलबुले उठना बंद हो जाते हैं तब उसे बंद कर नजदीक ही एक नया कूप खोदा जाता है। अतः वर्षाकाल के अलावा भी तरा की देखरेख लगातार चलती है। नतीजतन, तरा के किसी न किसी वाव से जल साल भर मिलता रहता है। जल बाहुल्य क्षेत्र होने से तरा के दायरे में हरियाली बनी रहती है, भैंसों के लिए उच्च कोटि की घास भी मिलती रहती है। जाँत-पांत में बँटी दुनिया के नागरिक सुन लें कि तरा पर किसी की बपौती नहीं। यह वॉड के हर घर, हर भैंस के लिए खुला है। ”[241]

इस प्रकार देखा जा सकता है कि ‘इरिणालोक’ गुजरात के कच्छ के रन का सजीव वर्णन करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें कच्छ के लोकजीवन, भौतिक उपलब्धियों, लोगों के रहन-सहन, कला और संस्कृति पर विस्तृत रूप में प्रकाश डाला गया है।

3.13 दूर दुर्गम दुरस्त - उमेश पंत :-

लेखक परिचय - उत्तराखंड के पिथौरागढ़ जिले में गंगोलीहाट के छोटे से कस्बे में पले-बढ़े। दिल्ली के जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के एमसीआरसी से मास कम्युनिकेशन में मास्टर्स। मुंबई में बालाजी टेलीफिल्मस में बतौर एसोशियट राईटर कैरियर की शुरुआत। मुंबई में ही निलेश मिश्रा के साथ उनके मशहूर किस्सागोई के लिए कहानियों का लेखन। ग्रामीण अखबार ‘गाँव कलेक्शन’ में पत्रकार भी रहें।

यात्रा वृत्तांत - ‘इनरलाइन पास’, ‘दूर दुर्गम दुरुस्त’।

फरवरी 2018 और दिसंबर 2018 में की गई पूर्वोत्तर की यात्राओं पर आधारित ‘दूर दुर्गम दुरस्त’ उमेश पंत का एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। इन यात्राओं की ऊपरी रूपरेखा को देखा जाए तो पहली यात्रा के दौरान फरवरी में ट्रेन से गुवाहाटी पहुँचे फिर कुछ समय गुवाहाटी में रूककर सबसे पहले मेघालय की ओर निकल गए। मेघालय में डबल डेकर लिविंग रूट ब्रिज और फिर वहाँ से डावकी। डावकी में ज्यादा दिन न रूककर मेघालय से वापस असम और वहाँ से सीधा तेजपुर।

---

[241] अजय सोडानी, ‘इरिणालोक’, पृ. 175

तेजपुर में अरुणाचल के लिए इनरलाइन पास न बनने के कारण एक दिन अतिरिक्त रूकते हैं। फिर पास लेकर अरुणाचल की ओर प्रस्थान और वहाँ से बोमडिला, तवांग होते हुए अप्रत्याशित रूप से तीसरे दिन वापस गुवाहाटी लौट आए। वहाँ से माजुली द्वीप और एक दिन माजुली में रूकने के बाद वापस गुवाहाटी आ गए। इसके बाद गुवाहाटी से अगरतला जाने का बस से टिकट भी बुक कर लिया लेकिन अचानक ही इरादा बदलकर अगरतला न जाकर दिल्ली लौट आए। इस तरह से यह 21 दिन की यात्रा रही जिसमें कुछ जगहों पर नहीं जा पायें। जिसमें सबसे ज्यादा काजीरंगा नेशनल पार्क नहीं जा पाने का मलाल लेखक को अंत तक रहा।

दूसरी यात्रा असम, मेघालय और अरुणाचल प्रदेश की है। जिसे 'खिलौने वाला बैग', 'रात की ट्रेन', 'नागाओं के देश में', 'संस्कृति का उत्सव', 'भटकता-सा दिन', 'ठिठुरती-सी रात', 'जन्नत से वापसी', 'एक रात पुलिस चौकी में', 'माओं का बाजार', 'तैरती हुई जमीन और डूबती हुई शाम' अध्यायों में प्रस्तुत किया गया हैं। लेखक और उसकी भाषा एक खास अंदाज में पाठक को बाँधे रखती है। तभी तो वे कहते हैं कि पूर्वोत्तर दूर है, दुर्गम भी है लेकिन दुरस्त है। अपने पूर्वाग्रहों को घर छोड़कर जाओ नहीं तो परेशान हो जाओगे और लेखक ने इन्हीं पूर्वाग्रहों से दूर होकर अपनी यात्रा की है जिसके परिणामस्वरूप ही पूरी यात्रा में शानदार अनुभव प्राप्त हुए हैं। यात्रा से पहले लेखक को भी कई लोगों ने डराया जिससे उसके मन में भी एक सवाल कौंधता है कि क्या पूर्वोत्तर के हालात अब भी वैसे ही होंगे ? इसी सवाल का जवाब यह पुस्तक है जो कि पूर्वोत्तर को विस्तृत रूप में दिखाने का प्रयास करती है।

नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से डिब्रूगढ़ राजधानी एक्सप्रेस से 9 फरवरी 2018 को यात्रा की शुरुआत होती है। ट्रेन में ही सरदार जी से बातें करते हुए पूर्वोत्तर के बारे में बहुत-सी धारणाएँ पेश कर दी जाती हैं। वैसे लेखक कहते भी हैं कि पूर्वोत्तर मुझे अनसुनी आहटों की तरह लग रहा था जिनमें से केवल चीखें ही हम तक पहुँच पाती हैं क्योंकि आहटें सुनने के लिए संवेदनाओं की जरूरत होती है और यह यात्रा इन आहटों को ही प्रस्तुत करती है। ट्रेन में सब लोग बहुत घुलमिल जाते हैं लेकिन पूर्वोत्तर के रहने वाले एक लड़के के हिन्दी जानने के बावजूद अपने में अलग रहकर वॉइस चैटिंग करने पर उसकी तुलना पूर्वोत्तर से करते हुए उमेश पंत कहते हैं कि "वो उस कोच में ऐसे उपस्थित रहा जैसे अनुपस्थित हो। शायद यही एक अनकही-सी अनुपस्थिति है, जो पूर्वोत्तर के

अलगाव की रही हो। अलग होने के इसी भाव ने पूर्वोत्तर के पहाड़ों को इन्सर्जेंसी, मिलिटेंसी के रूप में परिभाषित कर दिया। ये परिभाषा इन फौजी भाईयों के संदेह में भी साफ झलक रही थी और पूर्वोत्तर के इस लड़के के इस मौन अलगाव में भी।"[242]

'मैं आवारा हूँ' में गुवाहाटी में पहुँचने के बाद वहाँ के समाज और संस्कृति के बारे में चित्रण किया गया है। असम में महिलाओं की स्वतंत्रता, ब्रह्मपुत्र नदी, माजुली द्वीप व पीकॉक आईलैंड के बारे में बताया गया है। 'एक योनि जो पूजी जाती है' में कामाख्या मंदिर, अंबुवाची मेला व अंबुवाची प्रसाद के बारे में बताया गया है जो कि हमारे पितृसत्तात्मक समाज में एक अपवाद की तरह है क्योंकि सामान्यत: रजस्वला स्त्रियों को हमारे यहाँ अपवित्र माना जाता है जिसके कारण मासिक धर्म के दौरान मंदिर प्रवेश को लेकर उन्हें वर्जित किया जाता है; लेकिन इस कामाख्या मंदिर में रजस्वला देवी की पूजा की जाती है। इसके पीछे की मान्यता के बारे में उमेश पंत बताते हैं कि "माना जाता है कि जून के महीने में तीन दिन कामाख्या माता रजस्वला होती हैं और मंदिर के पास बने कुंड में पानी की जगह रक्त बहने लगता है। इस समय यहाँ अंबुवाची मेला होता है। जो लोग इन बातों पर भरोसा नहीं करते वो मानते हैं कि इस समय यहाँ इतना सिंदूर चढ़ाया जाता है जिस वजह से पानी लाल हो जाता है। मंदिर के कपाट बंद होने से पहले यहाँ सफेद कपड़ा बिछाया जाता है और यहाँ आए श्रद्धालुओं को प्रसाद के रूप में लाल कपड़ा दिया जाता है। इसे अंबुवाची प्रसाद कहा जाता है।"[243]

इसी तरह 'राइटर यू आर सो अफ्रेड ऑफ डेथ' में शिलोंग, चेरापूँजी और नोंग्रियाट की यात्रा के बारे में बताया गया है जिसमें उमियम लेक, मैकडोह ब्रिज, शिलोंग की प्रसिद्धि के तीन कारण- म्यूजिक, फिशिंग कॉन्सर्ट व ऑरेंज के बारे में बताया गया है। नौग्रियांट गाँव में पेड़ों की जड़ों से बना उमशियांग डबल डेकर ब्रिज बहुत प्रसिद्ध है जो कि रबर के पेड़ की जड़ों से बना हुआ है मानव निर्मित इन प्राकृतिक ब्रिजों में रबर के पेड़ की जड़ों को आपस में गूँथकर एक खास दिशा में फैलने दिया जाता है जिससे काफी वर्षों के बाद इनका निर्माण होता है इन पुलों को लिविंग ब्रिज भी कहा जाता है इस ब्रिज के बारे में बताते हुए उमेश पंत कहते हैं कि "कहा जाता है कि इस पुल की उम्र

---

[242] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 24
[243] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 48

500 साल से भी ज्यादा है। अक्सर जमीन के नीचे मजबूती से जुड़ी रहने वाली जड़े यहाँ जमीन के ऊपर पनपी थीं। और उनकी मजबूती की मिसाल ये थी कि आपस में गूँथी इन जड़ों से बना पुल पचास लोगों का भार उठा सकता था।"[244] यहाँ से आगे बढ़ने पर तिंगम मासी व्यूपॉइंट, मेकडोह ब्रिज, काबा फॉल्स व सोहरा के नजारे बेहद खूबसूरत हैं।

'भाग्य का तीर' में शिलोंग के मातृसत्तात्मक समाज के बारे में बताया है, जहाँ जमीन के सारे अधिकार औरतों के पास ही रहते हैं जिसके कारण यहाँ पुरुषों से ज्यादा महत्व औरतों का होता है। साथ ही इसमें खासी जनजाति की परंपराओं, मान्यताओं के बारे में भी बताया गया है। शिलोंग के बारे में उमेश पंत कहते हैं कि "एक शहर जिसके पास पहाड़ हो, पेड़ हो, सारी मूलभूत सुविधाएँ हो, झीलें हो, झरने हो, भाषाएँ हो, अपनी कला-संस्कृति को बचाए रखने की ताब हो और सबको अपना लेने का सब्र हो। शिलोंग एक ऐसा ही शहर है। यहाँ होना वहाँ होना है जहाँ आप खुशी-खुशी अक्सर होना चाहते हैं।"[245]

'ब्रह्मपुत्र के दूसरे छोर पर', 'एक और इनरलाइन पास' और 'नए शहर में नया दोस्त' में तेजपुर शहर की यात्रा के बारे में बताया गया है। ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी किनारे पर बसे तेजपुर शहर को असम की सांस्कृतिक राजधानी कहा जाता है। इसे शोणितपुर और सिटी ऑफ रोमांस अर्थात् मुहब्बत का शहर भी कहा जाता है। इस नामकरण के पीछे जुड़ी कथाओं और मिथकों के बारे में भी विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

'ये लड़की बड़ी बदमास है' में तेजुपर से बोमडिला की यात्रा के बारे में बताया गया है। समुद्रतल से लगभग दो हजार मीटर ऊँचाई पर स्थित बोमडिला कस्बा अपने कुदरती सौन्दर्य के लिए पर्यटकों का ध्यान आकर्षित तो करता ही है साथ ही साथ ये चीन की सीमा से सटा होने के कारण पूर्वोत्तर में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ऐसा भी माना जाता है कि मध्यकाल में बोमडिला तिब्बत साम्राज्य का भाग था 1962 के भारत-चीन सीमा विवाद में चीन की सेना ने इस कस्बे को अपने अधिकार में ले लिया था परंतु बाद में उन्हें वापस लौटाना पड़ा। बोमडिला से आगे

[244] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त' पृ. 62
[245] उमेश पंत, दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 82

तवांग में सेला लेक की यात्रा के लिए जाता है। जिसके लिए तवांग को शेष भारत से जोड़ने वाली एकमात्र कड़ी सेला पास से होकर जाना पड़ता है। ये दर्रा वर्षभर बर्फ से घिरा रहता है जिसके कारण चारों ओर चौंधियाती बर्फ के बीच सेला लेक बेहद खूबसूरत लगती है इसके संबंध में उमेश पंत कहते हैं कि "समुद्र तल से करीब 4170 मीटर की ऊँचाई पर मौजूद सेला पास चीन की सीमा से लगे तवांग को बोमडिला और देश के बाकी हिस्सों से जोड़ता है। यह झील तिब्बत के पवित्र बौद्ध धर्म में पवित्र मानी जाने वाली 101 झीलों में से एक है। उजली बर्फ से घिरी ये गहरी नीली झील इतनी खूबसूरत लगती है कि सैलानियों ने इसे 'पैराडाईस लेक' नाम दे दिया है।"[246]

इस प्रकार देखा जाए तो 'दूर दुर्गम दुरुस्त' पूर्वोत्तर से जुड़ी यात्राओं का एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें पूर्वोत्तर के यथार्थ को प्रस्तुत करने के साथ-साथ वहाँ की भौगोलिक स्थिति को इतिहास व लोककथाओं के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए अनुभवों को ओर ज्यादा प्रगाढ़ता प्रदान की गई है। सामान्यतः पूर्वोत्तर के बारे में जितनी भी चर्चाएँ होती हैं उन चीख-पुकारों से हटकर इसमें वहाँ की अनसुनी आहटों को सुनाने की कोशिश की गई है। साथ ही प्रकृति का विराट और शक्तिशाली रूप हर जगह दिखाया गया है।

निष्कर्ष :-

सम्पूर्ण अध्याय को देखा जाए तो निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इन यात्रा वृत्तांतों में यात्राओं के विविध रूप दिखाई देते हैं। यात्राओं के इन्हीं विविध रूपों को संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है :-

'सम पर सूर्यास्त' प्रयाग शुक्ल का महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें कविता के गुण, कथा की सरसता और रोचकता, चित्रात्मकता के साथ ही प्रकृति और जीवन के बहुतेरे मर्म को प्रस्तुत किया गया है। उदयपुर, कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई, चैन्नई, महाराष्ट्र, गुजरात, कानपुर, लखनऊ, सागर, जोधपुर, वाराणसी, सारनाथ, उज्जैन आदि नगरों की यात्राओं के संस्मरणों का समन्वय इसमें किया गया है। जिससे इसमें देश के विभिन्न अंचलों की यात्राओं में कहीं राजस्थान की मरुभूमि दिखाई देती है तो कहीं केरल, ब्रह्मपुत्र व दीव की लहरें स्वागत करती है। छोटी-छोटी टिप्पणियों में

[246] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 112

स्थान विशेष के साथ लेखक की गहरी संवेदना हर जगह से जुड़ी हुई है। दैनिक जीवन में साधारण-सी लगने वाली चीजें हमेशा मामूली ही नहीं होती, उनको अनदेखा करके हम उसके सौन्दर्य और बहुतेरे पक्षों से वंचित रह जाते हैं। इसमें से अधिकतर टिप्पणियाँ इसी वंचित सौन्दर्य की ओर संकेत करती है। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से सभी पक्षों को प्रस्तुत करने वाला यह वृत्तांत अपने छोटे कलेवर में ही विविधवर्णी छवियों को प्रस्तुत करने में सक्षम है।

गगन गिल का 'अवाक्' कठिनतम यात्राओं में मानी जाने वाली कैलाश मानसरोवर की यात्रा का वृत्तांत है। इस पुस्तक में कैलास मानसरोवर का अनुपम सौन्दर्य, पहाड़, सपाट मैदान, ऊँची-नीची पगडंडियाँ, झीलें, बौद्ध धर्म के प्रति आस्था, दलाईलामा के प्रति निष्ठा जैसी संपूर्णता को एकाकार करके प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति, मनुष्य, हिमालय, झीलें, नदियाँ, जल, वायु सब एक निरंतर प्रवाह में आकस्मिक, अप्रत्याशित व रहस्यमय रूप से चलते रहते हैं। इन सभी के चित्रण व अंतर्यात्रा के साथ-साथ लेखिका अपने बाह्य परिवेश के प्रति भी काफी जागरूक है। जिससे यह बाह्य व अंतर्यात्रा को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है।

आदिवासी समाज की समस्याओं पर लिखने वाले हरिराम मीणा का 'जंगल जंगल जलियांवाला' महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें राष्ट्र की आजादी में योगदान देने वाले इतिहास के पन्नों से गायब आदिवासियों के बलिदान की तीन बड़ी घटनाओं के स्थानों की यात्रा करके उन्हें प्रस्तुत किया गया है। जलियांवाला बाग हत्याकांड से भी वीभत्स राजस्थान के दक्षिणी प्रांत बांसवाड़ा के मानगढ़ पर्वत पर हुए मानगढ़ हत्याकांड व नरसंहार को इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित किया गया है। इन्हीं उपेक्षित स्थानों की यात्रा करके अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आदिवासियों के विद्रोह की गाथा को इस यात्रा वृत्तांत में अभिव्यक्त किया गया है। मानगढ़ हत्याकांड की तरह ही भूला बिलौरिया और पालचित्तरिया की शहादत का चित्रण भी इस पुस्तक में किया गया है।

'अनाम यात्राएँ' यात्रा वृत्तांत अशोक जेरथ की पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में की गई साहसिक यात्राओं का वृत्तांत है जिसमें पश्चिमी हिमालयी सांस्कृतिक क्षेत्र व अनेक हिमानियों के साथ-साथ दूसरे दुर्गम इलाकों की साहसिक यात्राएँ है। अल्मोड़ा में प्रवास के दौरान शुरू हुए इन यात्राओं के सिलसिले में कुमाऊँ-गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर के पर्वतीय व सांस्कृतिक क्षेत्रों के

साहस की यात्राओं से हिमालायी संस्कृति को करीब से देखकर प्रस्तुत किया गया है। इसमें भारतीय संस्कृति की झलक विभिन्न रूपों में दिखाई देती है इसमें लेखक का उद्देश्य मात्र यात्रा करना ही नहीं है बल्कि लोकजीवन की झाँकियों को भी प्रस्तुत करना है लोक मान्यताएँ, लोक विश्वास, लोक संस्कृति, किसी भी क्षेत्र या समुदाय की विशिष्ट पहचान होते हैं। उन्हीं क्षेत्र विशेष के लोकजीवन की रोचक झलक इसमें प्रस्तुत की गई है। लेखक ने ग्रामीण जीवन के अभावों, रीति-रिवाजों परंपराओं और संस्कृति को भी रोचक अंदाज में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है

कृष्णा सोबती के 'बुद्ध का कमंडल' में लद्दाख के हर पक्ष को बहुत गहराई के साथ महसूस करके अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। वहाँ का समाज, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, धर्म सब कुछ इसमें समाहित है। लेखिका की वैयक्तिक स्मृतियों, जातीय अवधारणाओं, ऐतिहासिक, भौगोलिक वृत्तांतों का सम्मिलित समुच्चय इसमें दिखाई देता है। यात्रा के साथ-साथ किसी प्रदेश विशेष के इतिहास व भूगोल की जानकारी प्राप्त करके उसे प्रस्तुत करना अपने आप में बहुत महत्व रखता है। इसमें जानकारी के साथ-साथ लद्दाख के प्राकृतिक सौन्दर्य, राजपरिवार व उनके पदानुक्रम, महल, राजकाज व अन्य राजाओं के साथ संबंध सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ पर्यटक स्थल भी है जैसे- लेहमहल, लेह का किला, थिकसे, शे, हैमिस, फियांग, गोम्पा का बौद्ध मंदिर, लामयुरु का प्राकृतिक सौन्दर्य, आलची गोम्पा, थिकसे विहार, लद्दाख के बौद्ध मंदिर, चुंघीघर आदि का वर्णन करते हुए लद्दाख को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने वाला यह अत्यंत महत्वपूर्ण, रमणीय, पठनीय यात्रा वृत्तांत है।

पंकज बिष्ट के 'खरामा-खरामा' में अलग-अलग समय पर की गई यात्राओं के यात्रा लेखों को संकलित किया गया है जिसमें पश्चिमी प्रांतर, सुदूर पूर्व व उतरांचल की यात्राएँ है। पश्चिमी प्रांतर में सहस्त्राब्दी के अन्तराल व अपने देश में अपनी ही तलाश में की गई गुजरात व अहमदाबाद की यात्राओं को प्रस्तुत किया गया है। 'विद्रोह की पगडण्डी : मीरा के देश में एक नास्तिक' लेख में मीरा के प्रदेश राजस्थान और द्वारका यात्रा के माध्यम से मीरा को सभी रूपों में प्रस्तुत किया गया है। 'आस्था की गुफाओं की चमक' और 'कला के अँधेरे कोने' लेखों में महाराष्ट्र के औरंगाबाद में स्थित अजंता, एलोरा की गुफाओं की यात्रा करके उसके माध्यम से बौद्ध धर्म व वास्तुकला को प्रस्तुत किया गया है। लेखक के पत्रकार होने के कारण पत्रकारिता की तरह हर पक्ष को तार्किक ढंग

से प्रस्तुत करने के साथ-साथ स्थान विशेष के इतिहास, समाज, धर्म व संस्कृति को बहुत ही गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यह गुजरात, राजस्थान व पूर्वोत्तर की यात्राओं के माध्यम से वहाँ के समाज, संस्कृति व इतिहास को प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है।

अनिल यादव का 'वह भी कोई देस है महराज' अपने ढंग का अनूठा एवं महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जो कि मात्र देश के अपेक्षित और अर्द्धज्ञात हिस्से पूर्वोत्तर की यात्रा का वर्णन ही नहीं करता बल्कि वहाँ के नस्ल-अंतर, भाषा-अंतर और संस्कृति के अंतर की द्वन्द्व यात्रा का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत करता है। देश के खूबसूरत हिस्से पूर्वोत्तर के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं परन्तु इस पुस्तक में पूर्वोत्तर भारत के बारे में प्रचलित अनेक मिथकों व भ्रांतियों को दूर करते हुए वहाँ के सौन्दर्य और वास्तविक यथार्थ का चित्रण किया गया है। यह वृत्तांत पूर्वोत्तर भारत या सेवन सिस्टर्स का सांस्कृतिक, राजनैतिक और प्राकृतिक आख्यान है जिसमें वर्णात्मकता या क्षेत्रीय व शहरों के सामान्य वर्णन का अधिक चित्रण न करके मनुष्यता, राजनीति और संस्कृति के अबूझ पहलुओं का चित्रण किया गया है। पूर्वोत्तर राज्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, भाषिक असमानता, बेरोजगारी, नशाखोरी, उग्रवाद, जातीय स्वाभिमान व अस्मिता, कबीलाई मान्यताएँ व आदर्श, संसाधनों की न्यूनता व प्राकृतिक सुन्दरता को इसमें उजागर किया गया है। यह पुस्तक पूर्वोत्तर की राजनीति, इतिहास, वर्तमान, भूगोल, परम्परा, संस्कृति, मिथक व लोक वार्ताओं का साहित्यिक अंतर्गुम्फन है। इसमें पूर्वोत्तर की बदलती संस्कृति, नए-पुराने, भीतरी-बाहरी सब तरह के द्वन्द्वों को बहुत ही बारीकी के साथ दिखाया गया है। साथ ही मिजो विद्रोह और उल्फा के यथार्थ का भी चित्रण किया गया है।

'दर्रा-दर्रा हिमालय' अजय सोडानी द्वारा की गई हिमालय यात्रा के दो अभियान दर्रों के सिरमौर 'कालिंदी खाल' को पार करने व 'ऑडेन कॉल अभियान' की साहसिक यात्राओं का वृत्तांत है। जिसके प्रमुख कारणों को अगर देखा जाए तो पहला पौराणिक ग्रंथों की सत्यता को परखना। हिन्दू धर्म की हर कथा किसी न किसी रूप में हिमालय से जुड़ी हुई है इन्हीं कथाओं या कहें मिथकों की सत्यता की तलाश करने के लिए यह हिमालय यात्रा की गई है। दूसरा विलुप्त होते सौन्दर्य को खोजने और तीसरा कारण है वहाँ के जन-जीवन को गहराई से देखना व महसूस करना है लेखक भीड़भाड़ की ज़िंदगी से बाहर निकलकर स्वयं की आत्मिक शांति व अपने आप को महसूस

करने के लिए बार-बार हिमालय की तरफ भागता है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गई यह यात्रा जीवन-मृत्यु के सवालों से जूझते हुए वाचिक और पौराणिक इतिहास की भी यात्रा है। हर जगह को पौराणिक कथाओं के माध्यम से जोड़कर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखना इसे ओर भी अधिक प्रगाढ़ता प्रदान करते हैं। 'दर्रा-दर्रा हिमालय' के बाद हिमालय यात्रा सीरीज में 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' अजय सोडानी का दूसरा यात्रा वृत्तांत है।

'बादलों में बारूद' मधु कांकरिया का एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जो कि हिन्दी यात्रा साहित्य की परंपरा को समृद्ध करता हुआ अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। यह केवल यात्रा वृत्तांत ही न होकर समाज व प्रकृति के प्रति जुड़ाव को प्रस्तुत करने वाला एक महत्वपूर्ण वृत्तांत है जिसमें कहीं लोहदरा और गुमला, बिशनपुर के आदिवासियों का दुख-दर्द दिखाई देता है तो कही पूर्वोत्तर के पर्वतीय क्षेत्र सिक्किम, शिलोंग की हरियाली तो कहीं पश्चिमी बंगाल के सौन्दर्य को प्रस्तुत करने वाले सुंदरवन, तो आगे चलकर आते है अद्भुत, अविस्मरणीय सौन्दर्य के धनी बुद्ध और पहाड़ों का प्रदेश लद्दाख। आदि शंकराचार्य की जन्मभूमि केरल तो प्रकृति का घर ही है। इसमें लेखिका ने अपने को खोजते हुए भूगोल, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व, आदिजीवन, पुरातन प्रकृति व अलक्षित लोकमन के कोने-कोने को झाँका है।

राकेश तिवारी का 'सफर एक डोंगी में डगमग' नदी और मनुष्य के अनन्य संबंधों को अभिव्यक्त करने वाला एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जिसमें डोंगी के माध्यम से की गई 62 दिन की यात्रा का चित्रण किया गया है। दिल्ली की ओखला हेड जैसी छोटी नहर से यात्रा शुरू कर यमुना, चम्बल, गंगा से होते हुए आगरा, मथुरा, इलाहाबाद, कानपुर, पटना से गुजरती इस डोंगी की यात्रा के बहाने इतिहास, समाज और संस्कृति का दिलचस्प वर्णन लेखक ने किया है। इस वृत्तांत के हर वाक्य में रोमांच मौजूद है। कुदरती ताकतों से जूझते हुए नदी से परिचय और तट के जनजीवन की झलक पाना, घाट पर बसे गाँवों के ऐतिहासिक एवं पौराणिक संदर्भ। परिस्थितियाँ बहुत बार साथ नहीं देती लेकिन चप्पू चलाने का चाव और अदम्य साहस सब कुछ अपने हक में कर लेता है। 62 दिन तक नाव पर ही घर, गुड, चना, ब्रेड व मक्खन का कलेवा, टीसते हाथ-पाँव, भीगती देह। सम्पूर्ण पुस्तक अपनी जीवंतता को बनाये रखती है। हर शब्द पाठक को जोड़े रखता है। कोई भी ऐसा प्रसंग, ऐसी जगह, ऐसा वातावरण, लोग व ऐसी परिस्थतियाँ नहीं हैं, जो स्वयं ना बोल रही है।

वर्णन-शैली शानदार है। पढ़ने के साथ-साथ सारा वर्णन मानस-पटल पर दृश्यांकित होता चलता है। लेखक को शुरू से ही कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है लेकिन उनकी यात्रा की उत्कंठा शुरू में नाव के प्रबंध से लेकर लखनऊ और आगे बनारस तक हर जगह दिखाई देती है। दिल्ली से कलकत्ता तक के इस लंबे और चुनौतीपूर्ण सफर में भय, आशंका और खतरे अनेक रहे लेकिन इन सब का सामना करने और उनसे पार निकलने की जीवटता इस वृत्तांत में सर्वत्र दिखाई देती है।

'सुनो लद्दाख' नीरज मुसाफिर का लद्दाख यात्रा व ट्रैकों के बारे में जानकारी प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जिसको 'जनवरी में लद्दाख और चादर ट्रैक' व 'पदुम-दारचा' (जांस्कर ट्रैक) नाम से दो भागों में विभक्त करके जनवरी 2013 व अगस्त 2014 की यात्राओं को प्रस्तुत किया गया है। लद्दाख बहुत कठोर जलवायु वाला इलाका है जहाँ मौसम को लेकर अनेक दिक्कतें हैं, अत्यधिक त्वचा जला देने वाली धूप, मटमैले पहाड़, दुर्गम रास्ते, सर्दियों में हड्डियों को कंपा देने वाली ठंड, लेकिन लेखक हर विपरीत परिस्थिति में भी चलता रहता है लद्दाख और जांस्कर जैसे भू-भाग को पैदल नापना अपने आप में एक सराहनीय प्रयास है। इसमें जांस्कर, दारचा, पदुम, चादर जैसे कभी न सुने जाने वाले शब्दों को यात्रा वृत्तांत में पढ़कर पाठक को लगता है कि वह भी इन दुर्गम व कठिनतम मार्गों पर लेखक के साथ यात्रा कर रहा है। चादर ट्रैक के समय गुफा में बिताई रात, पदुम-दारचा ट्रैक के दुर्गम दर्रे व चढ़ाई, अद्भुत हिमाच्छादित पर्वत हर कदम पर पाठक को रोमांचित करते हैं।

अजय सोडानी का 'इरिणालोक' गुजरात के कच्छ के रण को जीवंतता के साथ प्रस्तुत करने वाला वृत्तांत है। अजय सोडानी का प्रबल विश्वास है कि देश की आत्मा दंतकथाओं और जनश्रुतियों में बसती है और इतिहास के पन्नों से गुम इन्हीं जनश्रुतियों को वे दुर्गम यात्राओं के माध्यम से दूर-दराज के इलाकों से ढूँढ़ते हैं। विकास के अनछुए लोकों में पुराकथाओं के चिह्नों की खोज इस वृत्तांत में प्रमुखता से की गई है। पद्धरगढ़ का महल, दोरबनाथ मंदिर को लेकर मान्यताएँ, नाथों की पूजा पद्धति, बन्नी, जत लोगों की मान्यताएँ, तरा व जल संरक्षण की पद्धति सभी का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया हैं। इस प्रकार यह गुजरात के कच्छ के रन का सजीव वर्णन करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें कच्छ के लोकजीवन, भौतिक उपलब्धियों, लोगों के रहन-सहन, कला और संस्कृति पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

उमेश पंत का 'दूर दुर्गम दुरुस्त' पूर्वोत्तर भारत की यात्राओं को प्रस्तुत करने वाला वृत्तांत है। जिसमें असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड व मणिपुर की उन आहटों को प्रस्तुत किया गया है जो कहीं न कहीं दबकर रह जाती है। इसमें फरवरी 2018 व दिसंबर 2018 में की गई दो यात्राओं को प्रस्तुत किया गया है। सम्पूर्ण यात्रावृत्त पूर्वोत्तर की वास्तविक स्थिति को बयां करने वाला रससिक्त और रोचक वृत्तांत है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची :-

1. प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 38
2. वही, पृ. 41
3. वही, पृ. 47
4. वही, पृ. 49
5. वही, पृ. 63
6. वही, पृ. फ्लैप पेज से
7. गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 14
8. वही, पृ. 19
9. वही, पृ. 21
10. वही, पृ. 217
11. वही, पृ. 211
12. डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा, 'अवाक्, कैलाश मानसरोवर एक अंतर्यात्रा', प्रेरणा पत्रिका, जुलाई-दिसंबर (2010), पृ. 175
13. गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 43
14. वही, पृ. 200
15. वही, पृ. फ्लैप पेज
16. वही, पृ. 115
17. वही, पृ. 116
18. वही, पृ. 212
19. वही, पृ. फ्लैप पेज
20. हरिराम मीणा 'जंगल जंगल जलियांवाला', पृ. फ्लैप पेज
21. वही, पृ. 28
22. वही, पृ. 31
23. वही, पृ. 18
24. वही, पृ. 58
25. वही, पृ.84
26. कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल'(2012), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 20
27. वही, पृ. 01
28. वही, पृ. 08
29. वही, पृ. 46
30. वही, पृ. 48
31. वही, पृ. 120
32. वही, पृ. 119
33. वही, पृ. 121
34. वही, पृ. 29
35. वही, पृ. 23
36. पंकज बिष्ठ, 'खरामा-खरामा', पृ. 08
37. वही, पृ. 12
38. वही, पृ. 22
39. वही, पृ. 23
40. वही, पृ. 39
41. वही, पृ. 32

42. वही, पृ. 33
43. वही, पृ. 33
44. वही, पृ. 34
45. वही, पृ. 42
46. वही, पृ. 88
47. वही, पृ. 89
48. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 12
49. वही, पृ. 11
50. वही, पृ. 19
51. वही, पृ. 14
52. वही, पृ. 47
53. वही, पृ. 73
54. प्रेमपाल शर्मा, 'उत्तर-पूर्व : विचित्र देश की सचित्र यात्रा या पूर्वोत्तर का पक्ष', नवंबर-दिसंबर, (2012), पृ. 58
55. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 10
56. वही, पृ. 85-86
57. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 27
58. कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 01
59. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' पृ.09
60. वही, पृ. आवरण पृष्ठ
61. वही, पृ. 21
62. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 10
63. वही, पृ. 17
64. वही, पृ. 19
65. वही, पृ. 21
66. वही, पृ. 39
67. वही, पृ. 29
68. वही, पृ. 61
69. वही, पृ. 114
70. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. फ्लैप पेज
71. वही, पृ. 46
72. वही, पृ. 56
73. वही, पृ. 67
74. वही, पृ. 57
75. वही, पृ. 61
76. वही, पृ. 63
77. नीरज मुसाफिर 'सुनो लद्दाख', पृ. 75
78. वही, पृ. 56
79. वही, पृ. 64
80. वही, पृ. 56
81. वही, पृ. 78
82. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 11
83. वही, पृ. 151

84. वही, पृ. 151
85. वही, पृ. 12
86. वही, पृ. 11
87. वही, पृ. 60
88. वही, पृ. 128
89. वही, पृ. 35
90. वही, पृ. 66
91. वही, पृ. 68
92. वही, पृ. 83
93. वही, पृ. 92
94. वही, पृ. 98
95. वही, पृ. 175
96. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 24
97. वही, पृ. 48
98. वही, पृ. 62
99. वही, पृ. 82
100. वही, पृ. 112

चतुर्थ अध्याय – हिंदी यात्रा साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन : विविध रूप

4.1 भौगोलिक परिवेश

4.2 प्रकृति चित्रण

4.3 समाज

4.4 इतिहास

4.5 धर्म

4.6 दर्शन

4.7 नैतिक मूल्य

4.8 खानपान

4.9 रहन-सहन

4.10 वस्त्राभूषण

4.11 पर्व-त्योहार

4.12 कलाएँ

4.13 संस्कृति का बदलता हुआ स्वरूप

संस्कृति को अगर देखा जाए तो यह एक अपरिभाषेय अमूर्त रूप है जिसे एक निश्चित परिभाषा में बाँधकर नहीं देखा जा सकता। इसीलिए इसे अलग-अलग क्षेत्रों के लोग अलग-अलग तरह से परिभाषित करते हैं। इसका संबंध विभिन्न समूहों द्वारा अलग-अलग लगाया जाता रहा है। लेकिन सभी को समाहित करके कहा जाए तो कह सकते हैं कि संस्कृति समाज की ऐसी उपलब्धि है जिसमें मनुष्य की बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक उपलब्धियाँ समाहित हैं। इसका क्षेत्र अत्यंत ही व्यापक है जिससे इसका संबंध मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक, कला जैसे जीवन के सभी पहलुओं से रहा है इसमें धर्म, दर्शन, कलाएँ, साहित्य, मानव व्यवहार, नैतिक मूल्य, खान-पान, रहन-सहन और वे सभी तत्व मौजूद हैं जो जीवन को संपूर्णता प्रदान करते हैं और संस्कृति संबंधी इन्हीं सभी पहलुओं का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है; क्योंकि इसमें निहित विविध घटकों के अनुशीलन के बिना इसे अपनी संपूर्णता में पहचानना असंभव है।

यात्रा साहित्य और संस्कृति का भी घनिष्ठ संबंध है। संस्कृति जहाँ अपने में समाज, धर्म, दर्शन, राजनीति आदि को समाविष्ट करके रखती है वही यात्रा साहित्य इन सभी सांस्कृतिक रूपों की कलात्मक अभिव्यक्ति करता है। लेखक जब किसी भी क्षेत्र विशेष की यात्रा के लिए जाता है तो वहाँ की समाज व्यवस्था, रीति-रिवाज, खान-पान, धर्म, दर्शन, कला, लोक विश्वास, लोकाचार, भाषा सभी सांस्कृतिक अवयव लेखक की मन:स्थिति को अत्यधिक प्रभावित करते हैं और इन सभी अवयवों को वह अपने यात्रा वृत्तांत में स्थान देता है। हिन्दी में प्रकाशित कुछ प्रमुख यात्रा-वृत्तांतों को अगर देखा जाए तो यह बात पता चलती है कि साहित्य की अन्य किसी भी विधा की अपेक्षा यात्रा साहित्य में संस्कृति चित्रण की संभावना अधिक होती है। चयनित यात्रा-वृत्तांत किसी सैलानी की डायरी न होकर एक संस्कृति चिंतक की यायावरी के परिणाम हैं और संस्कृति के इन्हीं विविध रूपों का चित्रण इस अध्याय में किया गया है।

4.1 भौगोलिक परिवेश :-

किसी भी देश का भौगोलिक परिवेश उस देश की संस्कृति के विकास को दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय संस्कृति के विकास में इसके भौगोलिक परिवेश के महत्व

की बात करते हुए सेठ गोविंददास लिखते हैं कि - "जहाँ कोई भी प्राणी उत्पन्न होता है और रहता है उस स्थान का उस पर प्रभाव पड़ता ही है। यह बात समूह या समुदाय के लिए भी होती है। संस्कृति पर भारत की भौगोलिक स्थिति का सबसे पहले प्रभाव पड़ा।"[247] वस्तुतः मनुष्य अपने जीवन को अधिकाधिक आरामदायक और विकसित बनाने के लिए अपने आस-पास के प्राकृतिक उपकरणों की सहायता लेता है। वह उनका परिष्कार करके अपने योग्य बनाता है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा का यह कथन द्रष्टव्य है:- "अणु परमाणुओं ने किस अज्ञात ऋत से आकर्षित विकर्षित होकर जीव-सृष्टि में अपने आपको आविष्कृत होने दिया, यह तो अनुमान का विषय है, परंतु प्रत्यक्ष यही है कि प्रकृति की किसी ऊर्जा से उत्पन्न फिर उसी से संघर्षरत रहता हुआ, स्वयं परिष्कृत होता हुआ चला आ रहा है।"[248]

संघर्ष में चिंतन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। संस्कृति मनुष्य की चिंतन शक्ति का ही परिणाम है। आदिम स्थिति में जैसे ही मनुष्य में चिंतन की क्षमता का विकास हुआ जंगली परिवेश में मनुष्य ने लकड़ियों के घर बनाए और पर्वतीय प्रदेशों में गुफाओं का निर्माण किया। ये घर और गुफाएँ जीवन की अन्य सुविधाओं की सुलभता को ध्यान में रखकर बनाए जाते थे। खाने के लिए फल व मांस के लिए जंगल और पीने के पानी के लिए नदियों की सुलभता का ध्यान रखा जाता था। इसीलिए प्राचीन सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे होता था और चिंतन-मनन पास के जंगलों में। आज भी घरों का निर्माण भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। पर्वतीय इलाकों में अक्सर भू-स्खलन और भूकंप की समस्या तथा समुद्री इलाकों में बाढ़, भूकंप और आँधी-तूफ़ान की समस्या बनी रहती है। अतः इसे ध्यान में रखकर ही वहाँ भवनों का निर्माण करवाया जाता है। दक्षिण भारत में छतों को इसीलिए ढलवां या शंक्वाकार बनाते हैं कि आँधी-तूफ़ान में हवा छतों या दीवारों को धक्का कम से कम मारे।

किसी स्थान की भूमि की प्रकृति, जल की उपलब्धता और मौसम के आधार पर ही वहाँ ऊपजाए जाने वाले अनाजों का चयन किया जाता है। उदाहरणार्थ धान की खेती के लिए अत्यधिक वर्षा और पानी वाले क्षेत्र चाहिए तो गेहूँ के लिए सामान्य पानी वाले। धान के लिए बरसाती गर्म

[247] सेठ गोविंददास, 'भारतीय संस्कृति(1976)', वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 03
[248] महादेवी वर्मा, 'संस्कृति के स्वर', राजपाल एंड संस, पृ. 44

मौसम तो गेहूँ के लिए ठंडे मौसम की ज़रूरत होती है । बंगाल या केरल आदि में मुख्य भोजन चावल और मछली इसीलिए होता है क्योंकि वहाँ का परिवेश गेहूँ उत्पादन के अनुकूल नहीं है । अत्यधिक मोटे अनाज जैसे अरहर, बाजरा, चना बहुत कम पानी लेते हैं, अतः सूखे प्रदेशों में भी उगाए जा सकते हैं । केरल में नारियल, कश्मीर में सेब, असम में चाय का उत्पादन भौगोलिक परिवेश का ही परिणाम है । इस तरह खान-पान की संस्कृति को भौगोलिक परिवेश एक दिशा देता है । 'वह भी कोई देस है महराज' में पूर्वोत्तर के बारे में बताया कि वहाँ बाँस और सुपारी की अधिकता है । बाँस तो यहाँ के लोगों की जिंदगी में शरीर में खून ले जाने वाली धमनियों की तरह शामिल है । 'सम पर सूर्यास्त' में प्रयाग शुक्ल बताते हैं कि केरल में नारियल की अधिकता है । 'सुनो लद्दाख' और 'बादलों में बारूद' में देखा जा सकता है कि लद्दाख में मरुस्थलीय भूमि होने के कारण अनाज का उत्पादन न के बराबर होता है ।

पशुपालन में भी भौगोलिक परिवेश का ध्यान रखा जाता है । मरुस्थलीय और पर्वतीय प्रदेशों में खासकर इसे देखा जा सकता है । राजस्थान जैसे मरुस्थलीय प्रदेश में ऊँट और जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश जैसे उतार-चढ़ाव वाले पर्वतीय प्रदेशों में भेड़ और बकरियाँ बहुतायत से पाली जाती हैं । ऊँट रेत में दौड़ सकता है और भेड़-बकरियाँ हल्की होने से पहाड़ों पर चढ़-उतर सकती हैं । मैदानी और समतल इलाकों में सभी पशु पाले जाते हैं । भारत में आर्यों के यहाँ घोड़े और गाय मुख्य पशुओं में थे । वे गाय को अवध्य मानते थे । हिंदू-धर्म की संस्कृति में गाय का महत्व इसीलिए आज तक है । कृष्णा सोबती ने 'बुद्ध का कमंडल' में लद्दाख के बारे में बताया है कि यहाँ पानी की कमी और रेतीली जमीन के कारण कुदरती जंगल कम है । यहाँ पशुपालन ही प्रमुखता से किया जाता है । यहाँ लद्दाखी घोड़े, याक, हिरण, बकरियाँ, हुनिया बकरियाँ, मारकोर बकरियाँ, शईन बकरियाँ, पक्षी, बर्फ चीते और खच्चर अधिक पाए जाते हैं । लद्दाखी खच्चर के बारे में कृष्णा सोबती कहती है कि ''लद्दाखी खच्चर देखने में ठिगनी मगर मजबूत और चुस्त मानी जाती हैं । खच्चरों में मशहूर हैं यारकंदी और जंसकारी । कठिन रास्तों से सारा काम, व्यापार घोड़ों-

खच्चरों पर ही किया जाता था। हिमालय के दुर्गम सीमांत से जानवरों पर माल लाद कर एक देश से दूसरे देश तक पहुँचाया जाता था।"[249]

इसी तरह पहनावे को भी प्रभावित करने में भौगोलिक परिवेश का मुख्य योगदान है। सांस्कृतिक विकास के शुरुआती दौर में मनुष्य पेड़ और पशुओं की खाल से अपना तन ढकता था। चिंतन-शक्ति का विकास होने से वह कताई-बुनाई से मोटे कपड़ों और धीरे-धीरे महीन और आधुनिक कपड़ों तक आया है। आज के भूमंडलीकरण, बहुसंस्कृतिवाद और बाजारीकरण के दौर में यद्यपि विभिन्न देशों के पहनावों में बहुत अंतर नहीं है फिर भी पुरुषों में, धोती-कुर्ता और महिलाओं में साड़ी का पहनावा अभी भी भारतीय संस्कृति का अंग है। भौगोलिक परिवेश के हिसाब से ठंडे प्रदेशों के निवासी ऊनी और मोटे वस्त्र तथा गर्म प्रदेशों के हल्के वस्त्र धारण करते हैं। इन्हीं पहनावे के विविध रूपों को विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में देखा जा सकता है। 'बुद्ध का कमंडल' में लद्दाखी लोगों के ऊनी कपड़े, 'इरिणालोक' में जत लोग और बन्नी की स्त्रियों के आभूषण, 'दर्रा-दर्रा हिमालय' में बक्करवाल लोगों के सर्दी से बचने वाले परिधान, 'दूर दुर्गम दुरुस्त' और 'वह भी कोई देस है महराज' में पूर्वोत्तर के परिधान के बारे में बताया गया है।

भाषा के विकास और उच्चारण में भी भौगोलिक परिवेश भूमिका निभाता है। स्थानीय वस्तुओं, जीव-जंतुओं, घटनाओं और दृश्यों के अनुसार शब्द गढ़े जाते हैं। इसीलिए कभी-कभी देखा जाता है कि किसी भाषा में कोई ऐसा शब्द होता है जिसका अनुवाद दूसरी भाषा में उपलब्ध नहीं होता। या एक ही वस्तु के लिए एक भाषा में तमाम पर्याय होते हैं तो दूसरी में उसी के लिए एक ही शब्द होता है। इसी तरह भारतीय व्यक्तियों और यूरोपीय व्यक्तियों के उच्चारण में भो 'टोन' का फ़र्क आ जाता है। भारतीय व्यक्ति अंग्रेजी भाषा बोलता है तो उसका उच्चारण वैसा नहीं कर पाता जैसा एक अंग्रेज करता है। उसी तरह यदि अंग्रेज हिंदी भाषा का प्रयोग करे तो वैसा उच्चारण नहीं कर पाता जैसा कि एक भारतीय व्यक्ति करता है।

भौगोलिक परिवेश दो या अधिक भाषाओं के बीच संपर्क और आदान-प्रदान का हेतु भी बनता है और बाधक भी। दुर्गम प्रदेश के लोगों की भाषा के साथ दूसरी भाषा के लोगों का संपर्क

---

[249] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 54

नहीं हो पाता इसके विपरीत सुगम इलाके भाषायी आदान-प्रदान से समृद्ध होते रहते हैं। 'बुद्ध का कमंडल' में कृष्णा सोबती ने लद्दाखी भाषा के संबंध में बताया है। लद्दाखी तिब्बती परिवार की भाषा है जिसकी लिपि देवनागरी से मिलती है। दूसरी यहाँ बाल्टी तिब्बती परिवार के अधिक नजदीक है। इसके अलावा यहाँ दरदी, दाखी, डोगरी, नेपाली, यारकंदी, उर्दू और इंग्लिश भी बोली और सुनी जाती है। सेना की उपस्थिति होने के कारण यहाँ पूरे भारत भर का संवाद सुना जा सकता है। लद्दाखी और देवनागरी की समानता बताते हुए कृष्णा सोबती बताती है कि "लद्दाखी अक्षर देवनागरी से मिलते जुलते हैं। विद्वानों के अनुसार सातवीं शताब्दी की देवनागरी और लद्दाखी के अक्षरों में समानता देखी जा सकती है। लद्दाखी खूब अच्छी हिन्दी बोलते हैं। दोनों भाषाओं में कई शब्दों की ध्वनियाँ एक-दूसरे से मिलती हैं। हिन्दी में जो 'घर' है वह लद्दाखी में 'खर' है जिसका लद्दाखी उच्चारण उसे हिन्दी से अलग करता है।"[250]

'इरिणालोक' में अजय सोडानी कच्छ के लोगों की भाषा के बारे में बताते हैं कि कच्छ में हिन्दी और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान लोगों को कम ही है। यहाँ के लोग कच्छी या सिन्धी में ही बात करना पसंद करते हैं। कच्छी भाषा के संबंध में अजय सोडानी बताते हैं कि "कच्छी भाषा मूलत: सिन्धी के संग गुजराती, मालवी, मारवाड़ी, राजस्थानी, उर्दू आदि का मेल है। जैसे जीमण (खाना), दूल्हा (जवाई), ठेठ (दूर), जान (बारात), वाड (गाँव), गल्ल (बात), होड़ (नाव) और नाव (नाम)।"[251] इसमें गुजरात की भौगोलिक सीमाएँ राजस्थान से सटी हुई होने के कारण कच्छी भाषा पर राजस्थानी, मालवी और मारवाड़ी का प्रभाव दिखाई दे रहा है।

भौगोलिक परिवेश के आधार पर धार्मिक रूपों में भी भिन्नता पाई जाती है। जंगली और पर्वतीय प्रदेश के भौगोलिक परिवेश में रहने के कारण वहाँ विविध पेड़ों में विविध देवताओं का वास मानकर उनकी पूजा शुरू हुई। पानी की आपूर्ति व पालन-पोषण करने के कारण नदियों को माता मानकर उनकी पूजा करने की संस्कृति विकसित हुई। यह सब अभी भी भारतीय संस्कृति का अंग है। आज भी पर्वतों पर अधिकांश देवी-देवताओं के मंदिर हैं और लोग बड़ी श्रद्धा से इनके दर्शन के लिए जाते हैं। 'वह भी कोई देस है महराज' में अनिल यादव चेरापूँजी में होने वाली पेड़ों

---

[250] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 149

[251] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 55

की कटाई के संबंध में बताते हैं कि झूमिंग कृषि, चूना और कोयले के खनन के कारण यहाँ जंगलों की अंधाधुंध कटाई हुई है, जिससे कारण अधिकांश पहाड़ियाँ नंगी हो चुकी है लेकिन कुछ इलाकों में जो ओक के जंगल साबूत बचे हुए हैं। इसका मूल कारण ओक में रहने वाले 'ऊ रेंगक्यु' और 'ऊ बासा' देवताओं की मान्यताएँ है। इसके संबंध में लेखक कहते हैं कि "इसके पीछे पर्यावरण सजगता नहीं वही भय है जो ढीठ लोगों को भी मंदिर की दीवार पर लघुशंका करने से रोक देता है। ओक में बसने वाले 'ऊ रेंगक्यु' और 'ऊ बासा' नाम के देवताओं की खासी पूजा करते हैं। मृतकों के क्रिया कर्म के अलावा और किसी काम के लिए इन्हें काटना अपराध माना जाता है।"[252]

इस प्रकार कोई भी यात्राकार जिस भी भू-भाग की यात्रा करता है तो सबसे पहले वहाँ का भौगोलिक स्वरूप, सरंचना और सौन्दर्य ही उस यात्रा वृत्तांत का मूल आधार बनता है। विविध भौगोलिक सरंचनाओं के कारण एक स्थल से दूसरे स्थल का भौगोलिक परिवेश भिन्न मिलता है। इस भौगोलिक परिवेश से वहाँ के स्थानीय लोगों का समाज व जीवन-स्तर भी प्रभावित होता है। यात्रा वृत्तांतों में कहीं ऊँची हिमाच्छादित पर्वत-शृंखलाएँ हैं तो कहीं घने बीहड़ जंगल तो कहीं हरे-भरे मैदान, कहीं रेत का विस्तार लिए विशाल रेगिस्तान तो कहीं नदियाँ, झरने, झीलें दिखाई देती हैं। हर यात्रा साहित्य किसी न किसी रूप में देश या प्रांत के भौगोलिक परिवेश से सम्बद्ध रहता है।

'सुनो लद्दाख', और 'बुद्ध का कमंडल' में लद्दाख का परिवेश, 'वह भी कोई देस है महराज' व 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में पूर्वोत्तर व 'सफर एक डोंगी में डगमग' में दिल्ली से लेकर कलकत्ता तक की विविध नदियों और नदी के किनारे स्थित नगरों के बारे में चित्रण किया गया है। 'सम पर सूर्यास्त' में मुंबई, कलकत्ता, गुवाहाटी, भोपाल, जोधपुर आदि नगरों का व 'बादलों में बारूद' में लोहरदगा और गुमला के आदिवासी अंचल, सुंदरवन और सजनारवाली टापू, चेन्नई, लद्दाख और पूर्वोत्तर के असम, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश की भौगोलिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। 'दर्रा-दर्रा हिमालय' व 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' में हिमालय प्रांत व 'अनाम यात्राएं' में उत्तराखंड व हिमालयी क्षेत्र और 'इरिणालोक' में गुजरात के भौगोलिक परिवेश का चित्रण किया

---

[252] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 96

गया है। इन्हीं विविध भौगोलिक बाह्य दशाओं को इन यात्रा वृत्तांतों में निम्न रूप में देखा जा सकता है।

'इरिणालोक' में गुजरात के कच्छ के रन के भौगोलिक परिवेश के बारे में बताया गया है। वहाँ की विपरीत भौगोलिक परिस्थितियों और रन में होने वाले दरिया के विभ्रम का चित्रण करते हुए अजय सोडानी कहते हैं कि "अरे रन में जाना कोई हलुआ है क्या कि जब जिसका मन किया मुँह उठाया और धँस गया रन में। वहाँ बने-बनाए रास्ते थोड़े ही न हैं, बस दिशाएँ हैं। पर दिन के समय तो दिशाएँ हाथ नहीं आतीं, जिधर देखो हिलोरे मारते दरिया का विभ्रम। दरिया में बादलों की छाप, झाड़ियों के अक्स। न कोई कोना, ना कनौठा। हर दिशा एक-सी, सब दिशाएँ उलट-पुलट। सूझ नहीं पड़ती कि किधर असल है, कहाँ उसका अक्स। आसरा है तो सिर्फ वाहनों में दबी रेत का, जो ढाढ़स देती है कि कोई आदमजात गुजरा था इसी राह से। रन दिन में भी भटकाता है तो रात में भी।"[253] यहाँ लोग कठोर भौगोलिक परिवेश में जीवनयापन करते हैं।

इसी तरह 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख' में कृष्णा सोबती ने लद्दाख की भौगोलिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया। लेह समुद्रतल से 11,500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। जहाँ धूप में एक तरह गर्मी लगती है तो वही दूसरी तरफ छाँह में ठंड लगती है। अगर आधी छाँह और आधी धूप में खड़े हो जाए तो शरीर का एक हिस्सा सर्द होगा तो दूसरा गर्म रहेगा। इसी विरोधाभास वाली स्थिति का चित्रण करते हुए कृष्णा सोबती लिखती है कि "यहाँ का दिन इतना गर्म कि प्यास से गला सूखने लगे। रात इतनी ठंडी कि किसी भी गरमाहट को चीर दे। रात का तापमान शून्य से नीचे और दोपहर ऐसी जैसी मैदानों में हो। पूरे वर्ष में तीन-चार बार बूँदाबाँदी और दो-तीन इंच बर्फ। आसमान यहाँ का धुला-धुला मगर गर्मी की कमी नहीं।"[254] इन विपरीत परिस्थितियों वाले भौगोलिक परिवेश के कारण यहाँ के लोगों का जनजीवन भी प्रभावित होता है। सर्दियों में सब जगह बर्फ ही बर्फ रहती है और नालियों में पानी जम जाता है। सड़कों पर भी बर्फ होने के कारण फिसलने की समस्या अधिक रहती है। नीरज मुसाफिर ने 'सुनो लद्दाख' में यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों और आम जनजीवन के बारे में विस्तार से चित्रण किया गया है।

---

[253] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 188
[254] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 48

हरिराम मीणा के ‘जंगल जंगल जलियांवाला’ में दक्षिणी राजस्थान व सीमावर्ती गुजरात के भौगोलिक परिवेश का चित्रण किया गया है। आदिवासी बलिदान की तीन बड़ी घटनाओं मानगढ़, भूला-बिलोरिया व पालचित्तरिया को इस यात्रा वृत्तांत में प्रस्तुत किया गया है। राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है और इसे चार भौगोलिक प्रदेशों में बाँटा गया है। जिसमें उत्तर पश्चिम में थार का मरुस्थल, मध्यवर्ती अरावली पर्वतमाला, पूर्व का मैदानी प्रदेश और दक्षिण पूर्व में हाड़ौती का पठार स्थित है। यहाँ दक्षिणी पश्चिमी भाग में स्थित बांसवाड़ा के मानगढ़ के ऐतिहासिक आदिवासी बलिदान स्थल की भौगोलिक स्थिति के बारे में बताते हुए हरिराम मीणा कहते हैं कि “मानगढ़ के पहाड़ के इस पठारी हिस्से में घास व झाड़ियों के अलावा अन्य पेड़-पौधे बहुत कम हैं। दोनों ओर गहरी घाटियाँ। खूब हरी-भरी हैं। बघेरे, सियार, लोमड़ी, वन-बिलाव, नेवले, साँप, गोहरे आदि जीव-जन्तु खूब बताये। यदा-कदा रीछ व हिरण भी आते बताये।”[255] राजस्थान रेगिस्तानी प्रदेश होने के बावजूद यह अच्छी बारिश के लिए जाना जाता है। इसीलिए बांसवाडा को तो राजस्थान का चेरापूंजी भी कहा जाता है। यहाँ मक्का और सोयाबीन की खिलखिलाहट हर जगह दिखाई देती है। वही दूसरी तरफ प्रयाग शुक्ल के ‘सम पर सूर्यास्त’ में राजस्थान के पश्चिमी भाग में स्थित जैसलमेर के रेत के टीलों व रेगिस्तान के बारे में चित्रण किया गया है।

इस तरह हम देखते हैं कि भौगोलिक परिवेश किसी स्थान की संस्कृति के विकसित होने और उसे विस्तार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मकान, खान-पान, वेशभूषा, संस्कार, भाषा, साहित्य और कला आदि के विकास में भौगोलिक परिवेश का मुख्य योगदान होता हैं।

4.2 प्रकृति चित्रण :-

किसी भी क्षेत्र विशेष की प्रकृति व वातावरण का उस क्षेत्र की संस्कृति पर सीधा प्रभाव पड़ता है। क्षेत्र विशेष का प्राकृतिक सौन्दर्य, वहाँ के रहन-सहन, जीवन स्तर व सांस्कृतिक चेतना को अवश्य प्रभावित करता है। इसलिए प्रकृति को संस्कृति का महत्वपूर्ण अवयव माना जा सकता है। मनुष्य को प्रकृति सबसे अधिक आकर्षित करती है और प्रकृति का सान्निध्य प्राप्त करने में यात्रा

[255] हरिराम मीणा, ‘जंगल-जंगल जलियांवाला’, पृ. 22

सबसे महत्वपूर्ण साधन है। वैसे प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने की इच्छा हर यात्री के मन में सहज रूप से होती है इसीलिए वह हर स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखता रहता है। जिससे उसकी रचना में भी प्रकृति की जीवंत प्रतिछवि चित्रित होती है। यात्रा के द्वारा लेखकों का संसर्ग प्रकृति के कई रूपों से हुआ है। जंगल, आकाश, जल व पर्वतीय दृश्यों के सम्मोहन के कारण कहीं पर्वतीय संस्कृति का अद्भुत व विराट सौन्दर्य आत्मविभोर करता है तो कहीं नदियों और झरनों के विभिन्न नयनाभिराम दृश्य मुग्ध करते हैं। प्रकृति के इन्हीं विविध रूपों को यात्राकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से सज्जित किया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी यात्रा साहित्य में भूगोल और प्रकृति चित्रण के संबंध में कहते हैं कि "यात्रा-संस्मरण अपने मूल यात्रा-वृत्त रूप में अपेक्षया प्रचलित माध्यम रहा है। जीवनी-आत्मकथा जैसे एक बिन्दु पर इतिहास का स्पर्श करते हैं, उसी तरह यात्रा-संस्मरण का एक पक्ष भूगोल के आकर्षण से जुड़ा हुआ है। देश-दर्शन यात्रा-संस्मरण की मूलवृत्ति है, जिसमें एक ओर प्रकृति की पुकार है, दूसरी ओर साहसिक जिज्ञासा।"[256]

हिमाच्छादित पर्वत शिखर की नैसर्गिक छटा और सौन्दर्य ने हिन्दी यात्रा-साहित्यकारों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। हिमालय के इस दिव्य और अद्भुत सौन्दर्य को विविध दृष्टियों से यात्राकारों ने रूपायित करने का सफल प्रयास किया है। अजय सोडानी के 'दर्रा-दर्रा हिमालय' और 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' में हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। हिमालय क्षेत्र के रास्ते और चट्टानों के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए अजय सोडानी कहते हैं कि "हम सँकरे रास्तों से मुक्त हो, पत्थरों से अटे हुए भूखंड से गुजर रहे थे। घाटी के खुलने से भू-दृश्य बदल गया था। दोनों ओर से पथरीले पहाड़ों की अटूट शृंखला आगे बढ़ते हुए उत्तर-पूर्व में एक-दूसरे से मिल रही थी। इनके बीच में फैला यह तुलनात्मक रूप से समतल मैदानी हद-ए-निगाह तक धानी रंग से पुता था। शीतल प्रवाह, चट्टानों के मध्य उगी जुनिफर की खुशबू लिए इठला रही थी।"[257]

पर्वतीय प्रकृति के प्राकृतिक सौन्दर्य के अलावा शुष्क, नीरस और भयावह रूपों को भी अनेक यात्रा लेखकों ने प्रस्तुत किया है। इसमें दुर्गम एवं बीहड़ पर्वतीय क्षेत्र के वर्णनों में प्रायः प्रकृति का यही रूप मुखरित हुआ है। लद्दाख के पर्वतों का चित्रण करते हुए कृष्णा सोबती लिखती

---

[256] रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', पृ. 166
[257] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 102

हैं कि “वह रहा हिम-शिखर खारदुलांग। बर्फ का पहाड़। पहाड़ पर ताजी बर्फ नहीं-कड़ी बर्फ का पहाड़ है। बर्फ..बर्फ..बर्फ – इसे कहते हैं ग्लेशियर। धूप चमका रही है इसकी धवलता को। ऊपर हैलिकॉप्टर मँडरा रहे हैं। और वायरलेस के खंबों पर लहरा रही हैं बौद्ध पताकाएँ। गाड़ी से उतर मैं बर्फ पर चल रही हूँ। बर्फ पर चलते हुए तिलकत-फिसलन।”[258]

इसी तरह सौम्य पर्वतों और हरियाली से सरोबार पूर्वोत्तर भारत अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण सहज ही आकर्षित करता है। यहाँ भ्रमण के लिए मनोहर पहाड़ियाँ, पेड़-पौधों और वनस्पतियों से समृद्ध हरा-भरा क्षेत्र अपने आप में स्वर्ग है। यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण उमेश पंत के ‘दूर दुर्गम दुरुस्त’ और अनिल यादव के ‘वह भी कोई देस है महराज’ व मधु कांकरिया के ‘बादलों में बारूद’ में देखा जा सकता है। अनिल यादव यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कहते हैं कि “असम में प्रवेश करते ही हरियाली का जैसे विस्फोट होता है। सूरज की रोशनी में कौंधती, काले रंग की हरियाली। खिड़कियों, मकानों की दरारों, पेड़ों के खोखलों से कचनार लताएँ झूलती मिलती हैं जो हर खाली जगह को नाप चुकी होती हैं। बाँस, नारियल, तामुल, केले के बीच काई ढके ललछौंहे पानी के डबरों और पोखरों से घिरे गाँव। घरों और खेतों के चारों ओर बाँस की खपच्चियों का घेरा। सीवान में हर तरफ नीली धुंध।”[259]

हरिराम मीणा के ‘जंगल जंगल जलियांवाला’ में दक्षिणी राजस्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। बांसवाड़ा राजस्थान के दक्षिणी भाग में कर्क रेखा के पास स्थित यह क्षेत्र अरावली की सुरम्य पहाड़ियों के मध्य स्थित प्राकृतिक संपदा से सम्पन्न है। यह क्षेत्र मेवाड़, मालवा व गुजरात की संस्कृति का संगम स्थल है। जंगल और पानी की प्रचुरता के कारण यहाँ बाँस और सागवान बहुतायत से पाये जाते हैं। यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य के बारे में बताते हुए हरिराम मीणा कहते हैं कि “इस अंचल में मानवेतर प्राणी जगत व प्रकृति खूब हृष्ट-पुष्ट और समृद्ध है। वन्य जीव-जन्तु यद्यपि हमें अधिक नजर नहीं आये मगर इनकी बहुतायत का अहसास कराते हैं, चौड़े पत्ते वाले बोरले सागॉन, बरगदनुमा महुआ के घने दरख्त, लाल कोंपलों से सजे नीम, झूमते आम और उनके बीच में बाँस के कुंज, थूर व नागफणियों के पुंज और अन्य नाना प्रकार की वनस्पतियाँ, बाँस और

[258] कृष्णा सोबती, ‘बुद्ध का कमंडल’, पृ. 161
[259] अनिल यादव, ‘वह भी कोई देस है महराज’, पृ. 15

झाड़ियाँ...। सघन हरियाली से धरती ढँकी हुई थी। कई जगह सरोवरों तथा ठहरे हुए नालों में छोटे आकार खिले हुए, नजर आये।"[260]

जलीय प्रकृति के विविध दृश्यों और जलीय सौन्दर्य का चित्रण भी यात्रा-साहित्य में हुआ है। जलीय प्रकृति सौन्दर्य के समुद्र, नदियों, झीलों, झरनों के प्राकृतिक दृश्यों का अत्यंत मनोहारी चित्रण यात्रा-लेखकों ने प्रस्तुत किया है। कल-कल की मधुर ध्वनि से आपूरित विभिन्न नदियों ने यात्रा-साहित्य को सौन्दर्य युक्त प्राकृतिक संदर्भ प्रदान किये है। 'सफर एक डोंगी में डगमग' में राकेश तिवारी चम्बल के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करते हैं वे कहते हैं कि "थमी हुई सिहरन भरी चम्बल का निर्मल जल-तल। एक ओर पसरा गुलाबी रेत-पट, दूसरी ओर भायँ भायँ करता ऊँचा भूरा बीहड़। उस पर लालिमा बिखेरती अस्ताचलगामी सूर्य-रश्मियाँ। चिड़ियों की चहचहाहट, झिल्ली की झनकार, दादुर-रट, फाख्तों की गूँ-गूँ और मयूरों की संगत।"[261]

इस प्रकार प्रकृति हमारी सहचरी ही नहीं बल्कि हमारी संचालिका और हमारे अंत:करण का साक्ष्य है। संस्कृति की सक्रिय लीला भूमि और कर्मस्थली है और प्रकृति का सौन्दर्य यात्रा साहित्य की भव्य चित्रशाला है जिसमें विविध रंगों के आकर्षक चित्र अनेकानेक भाव भंगिमाओं के साथ यात्राकारों ने प्रस्तुत किये हैं।

4.3 समाज :-

समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से निर्मित वृहद् समूह को कहा जाता है जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं। यहाँ लोग निश्चित संबंध और व्यवहारों के द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। यह व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की ही एक व्यवस्था है जिसका कोई मूर्त रूप नहीं होता।

मनुष्य का जीवन अकेले नहीं जिया जा सकता। जीवन मार्ग में आने वाली विभिन्न बाधाओं और निराशाओं से निपटने के लिए उसे दूसरे व्यक्तियों की ज़रूरत पड़ती ही है क्योंकि साथ में रहने से जीवन का रास्ता सरल और उत्साहवर्धक हो जाता है। आपसी हित और आवश्यकताओं

[260] हरिराम मीणा, 'जंगल जंगल जलियांवाला', पृ. 10
[261] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 54

को ध्यान में रखकर ही आदि मानव भी संगठित हुआ। जंगली जानवरों से अपनी रक्षा तथा भोजन के लिए उनका शिकार करने में सहूलियत के तकाजे से आदि मानवों ने झुंड में रहना शुरू किया। यह व्यक्तियों का आदिम समाज था। इससे थोड़ा विकसित रूप ही उनका कबीलाई समाज बना था। एक कबीले के हित आपस में जुड़े होते थे। दूसरे कबीलों से उनकी आवश्यकताओं का कोई संबंध नहीं था अतः एक कबीले से दूसरे कबीले के बीच युद्ध भी होते रहते थे। अतः कहा जा सकता है कि समाज उन व्यक्तियों का समूह है जिनके हित आपस में बंधे होते हैं।

आपसी हितों और आवश्यकताओं को देखते हुए समाज के मुखिया वर्ग ने कुछ सामाजिक नियम क़ानून निर्धारित किए। विवाह पद्धति के आधार पर परिवार जैसी संस्था समाज की सबसे छोटी और प्राथमिक संस्था मानी जा सकती है। धीरे-धीरे वर्णवादी व्यवस्था और फिर उसका परिवर्तित रूप जाति-संरचना अस्तित्व में आई। वेदों में भारतीय समाज को वर्णों में विभाजित करते हुए सभी वर्णों के हित आपस में विभाजित कर दिए गए हैं। परिवार के साथ-साथ वर्ण-व्यवस्था पर आधारित जाति-व्यवस्था आज भी भारतीय समाज का अंग है।

भारत पर समय-समय पर विदेशी आक्रमण हुए जिनमें से कुछ देशों के लोग यहीं बस गए। धीरे-धीरे वे सब भारतीय समाज का अंग बनते गए। वैसे भारतीय समाज में एक धर्म, जिसे बाद में हिंदू धर्म कहा गया, के अंतर्गत लोग विभिन्न जातियों में विभाजित थे। उनके हित आपस में जुड़े हुए थे। बाद में विदेश से आए अन्य धर्मों के लोग भी यहाँ बसे। इनमें इस्लाम और ईसाई धर्म के लोग मुख्य हैं। इसके अलावा भी भारत देश के ही कुछ लोगों ने हिंदू धर्म से विद्रोह या अलगाव रखते हुए बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिक्ख धर्म की नींव डाली। अब भारत में हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, बौद्ध, जैन और ईसाई धर्म के लोग रहते हैं। इस तरह से समाज का अर्थ अब विस्तृत होकर देश के अर्थ में विलीन हो गया है। छोटे स्तर पर विभिन्न धर्मों के लोग अपने समाज के हित से जुड़े हुए हैं और बड़े स्तर पर देश के हित से। हिंदू समाज, मुस्लिम समाज जैसी शब्दावली छोटे स्तर को ध्वनित करती है जबकि 'भारतीय समाज' जैसा शब्द इसके बड़े स्तर को। इस तरह से विभिन्न जाति और धर्म के लोगों का संगठन और उनकी आर्थिक संरचना भारतीय समाज का अंग है। जाति और धर्म के अलावा आर्थिक आधार पर समाज के लोगों को उच्च्च वर्ग, मध्यम वर्ग, और निम्न वर्ग में बाँटा जाता है।

समाज व्यक्तियों का समूह होता है और संस्कृति के विकास में भी व्यक्ति का नहीं, समूह का योगदान ही प्रमुख होता है। कोई व्यक्तिगत गतिविधि या क्रिया-कलाप संस्कृति का अंग तभी बनते हैं जब वह समाज द्वारा स्वीकृत होकर परंपरा का अंग बन जाते हैं। इस दृष्टिकोण से किसी भी समाज के विभिन्न नियम-क़ानून और रीति-रिवाज उसकी संस्कृति के अंग होते हैं। समाज भी संस्कृति का एक अंग ही है।

मानव का जीवन समाज सापेक्ष है जिससे मनुष्य की प्रकृति और संस्कृति के निर्माण में समाज का अविस्मरणीय योगदान है। मानव के उद्गारों की निर्मिति और निस्कृति समाज में ही संभव है। यात्राकार जब किसी भी स्थान विशेष की यात्रा करता है तो वहाँ के समाज को उसे निकट से देखने का अवसर मिलता है। जिसका चित्रण वह अपने यात्रा वृत्तांत में करता है। जिससे समाज के विविध स्वरूपों का परिचय यात्रा साहित्य में प्राप्त होता है।

'इरिणालोक' में अजय सोडानी बन्नी और होड़का गाँव के परिवारों के बारे में बताते हैं कि बन्नी में उन्नीस पंचायतें और अड़तालीस गाँव है। जिसमें हर गाँव की अपनी कुछ खासियत होती है। इसमें गाँव की बुनावट ढीली-ढाली है जिसमें घर दूर-दूर और टोलों में बँटे हुए होते हैं। यहाँ एक टोले में दो सौ से अधिक लोग नहीं रहते। इससे ज्यादा संख्या होते ही मूल टोले से हटकर नया टोला बनाया जाता है। इस तरह की ग्राम संरचना की शुरुआत सदियों पहले ही हो चुकी थी लेकिन फिर भी यह पुरानी रवायत बन्नी के वाड़ों में आज भी मौजूद है। हर गाँव में घर, रहन-सहन, पहनावा सब एक जैसा है। यहाँ के समाज में घरों के दूर-दूर बसे होने के संबंध में परंपरा है। जिसके संबंध में अजय सोडानी बताते हैं कि "परंपरा जिसके तहत प्रत्येक युगल को एक झोंपड़ा मिलता है। अपने नाबालिग बच्चों के संग रहने के लिए। सिलसिला यह है कि विवाहोपरांत नवयुगल के लिए समीप में कहीं नया घर बनाकर दिया जाता है। जिसके चलते, कालांतर में, मुखिया के झोंपड़े के अगल-बगल उसकी बालिग संतानों की कई झोंपड़िया स्थापित हो जाती है। सब की रसोई अलग पर मन एकम-एक। इस मुखिया के अन्य भाई भी, इसी इलाके में तनिक दूर, अपना कुनबा बसाते हैं।

मुखिया, उसके भाई, उसके शादीशुदा लड़के, सबकी नाबालिग औलादें – हो गया कुटुम (कुटुंब) तैयार।"[262]

'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया ने झारखंड के जंगलों में निवास करने वाले आदिवासी समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया है। आदिवासियों में व्याप्त अंधविश्वास, जादू-टोना, टोटका, भूमि से बेदखली, शोषण सभी का चित्रण इसमें किया गया है। इनमें व्याप्त अज्ञान और उसके कारण होने वाले शोषण के बारे में डॉ. वाजपेयी जी बताते हैं कि "सबकी जड़ में एक ही जवाब है, शोषण। अंतिम बूँद तक शोषण किया जाता है इस आदिवासी समाज का। आप देखिए ये दिन-भर बॉक्साइट खनन करते हैं, पर इनके घर में आपको एलुमिनियम के बर्तन नहीं मिलेंगे, अधिकतर घरों में अभी भी मिट्टी की हंडिया हैं। ये दिन भर जंगल में लकड़ी काटते, लकड़ियों के ढेर को ढोते मिलेंगे पर इनके घर में लकड़ी की छोटी टूल तक नहीं मिलेगी। जमीन पर ही सोते हैं ये, जिससे शीघ्रता से मलेरिया की चपेट में आ जाते हैं.. कौन समझेगा इस विडंबना को।"[263] इसमें आदिवासी समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया गया है।

'वह भी कोई देस है महराज' में अनिल यादव पूर्वोत्तर की वास्तविक स्थिति का चित्रण करते हुए वहाँ की खासी जनजाति के मातृसत्तात्मक समाज के बारे में बताते हैं कि यहाँ संपत्ति और व्यापार महिलाओं के हाथ में है और पूर्वोत्तर में खासी महिलाओं को सबसे अधिक व्यापार चतुर माना जाता है। यहाँ के सबसे बड़े धार्मिक बाजार यूडो के संबंध में कहते हैं कि "इस पर मातृसत्तात्मक समाज की गहरी छाप है। सौदागर महिलाएँ हैं, खाता सबसे छोटी बेटी संभालती है क्योंकि कल उसे मालकिन होना है। प्रसिद्ध नांगक्रेम त्योहार की रस्मों के लिए यूडो की एक चुटकी मिट्टी जरूरी होती है। संतरा, सुपारी, अनानास, सब्जियों, सूखी मछलियों की टोकरियों की अंतहीन कतारों के पीछे बैठी महिलाएँ क्वाय चबाते हुए गृहस्थी और ग्राहक दोनों को बखूबी संभालती हैं।"[264] 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में भी उमेश पंत असम के गुवाहटी के समाज और वहाँ स्त्रियों की स्वतंत्रता और आत्मविश्वास के बारे में बताते हैं कि "यहाँ सड़के महिलाओं को एक अदृश्य डर का आवरण

[262] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 156
[263] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 28
[264] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 81

अपने चेहरे पर ओढ़ने को मजबूर नहीं करतीं। उनके होंठों पर कितनी गहरी लिपस्टिक है इससे सामने वाले की नजरों पर कोई असर नहीं होता। इसका श्रेय गुवाहाटी के इस मिश्रित समाज को ही दिया जाना चाहिए। बांग्ला, असमी, हिन्दी जैसी जबानों का घोल और उनकी संस्कृति का सुंदर मिश्रण है गुवाहाटी।"[265]

'इरिणालोक' में अजय सोडानी ने सुराब्जी वॉड के मालधारी जत लोगों की संस्कृति के बारे में बताया है। यहाँ की महिलाएं निडर और बिंदास हैं। इस निर्भयता का मुख्य कारण यहाँ का पारिवारिक, सामाजिक ताना-बाना और सामूहिकता के साथ-साथ व्यक्तिनिष्ठ स्वतंत्रता है। यहाँ की स्त्रियों की स्वतंत्रता के संबंध में अजय सोडानी कहते हैं कि "बहु सास की मुहताज नहीं, सास अपने पति पर आर्थिक रूप से अनिर्भर। ऐसा भी लगा कि घर की सत्ता पर स्त्री का सम्पूर्ण अख्तियार होता है। और यह पुरुषों को सहज स्वीकार्य भी है। सामाजिक रवायतों के चलते यहाँ स्त्रियाँ हुनरमंद हैं। वे घर में रहकर, सिलाई-कढ़ाई या अन्य कलाकर्म कर अपनी पूर्ति के लिए धनोपार्जन कर लेती हैं।"[266] देखा जा सकता है कि यहाँ की महिलाएँ पुरुषों की तरह आत्मनिर्भर रहकर घर पर ही सिलाई-कढाई व दूसरे काम करके जीविकोपार्जन का कार्य करती हैं।

'बुद्ध का कमंडल लद्दाख' में कृष्णा सोबती ने लद्दाखी समाज और उनके संस्कारों के बारे में बताया है कि लद्दाखी समाज संस्कारी समाज है और यहाँ बचपन से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार किये जाते हैं और इन्हें अलग-अलग नामों से जाना जाता है। लेखिका कहती हैं कि "बच्चे के जन्म के उपलक्ष्य में दी जाने वाली दावत को 'टसामटोन कहते हैं। नामकरण पर भोज निमंत्रण 'मिंग टोन' कहलाता है। विवाह के भोज निमंत्रण को 'बैंगटोन' कहते हैं। मृत्यु के बाद दिया जाने वाला भोज 'शिडटोन', और अस्थियाँ चुनने के बाद का भोज 'छोरटोन' कहलाता है।"[267] ये मूलतः सभी समाजों में विद्यमान संस्कार ही है जिन्हें लद्दाख में भाषाई भिन्नता के कारण अलग नामों से जाना जाता है।

[265] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 30
[266] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 173
[267] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 106

'जंगल जंगल जलियांवाला' में हरिराम मीणा राजस्थान के सीमावर्ती पालचितरिया गाँव के बारे में बताते हैं कि वहाँ आदिवासियों की अधिकता है। आदिवासियों को संस्कृति के स्तर पर अगर देखा जाए तो अधिकांश संस्कृति के प्राथमिक स्तर पर जीवनयापन करते हैं और अधिकतर क्षेत्रीय समूहों में ही निवास करते हैं। सीमित परिधि और कम जनसंख्या के कारण इनकी संस्कृति में स्थिरता अधिक रहती है जिससे इनमें सांस्कृतिक परिवर्तन अपेक्षाकृत कम होते हैं। इनका अनादिकाल से ही प्रकृति से भी घनिष्ठ संबंध रहा है और प्राकृतिक रूप से पर्वत पहाड़ियों व जंगलों में निवास करने के कारण इनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, देवी-देवताओं, लोकगीत, वेशभूषा, टोना-टोटका सभी में प्रकृति का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। यह संस्कृति आज भी अपनी मूल सांस्कृतिक चेतना को अपने अंदर समाहित किये हुए है। ये मानव संस्कृति की आदिम अवस्था में निवास करते हैं। जिससे आदिकालीन परंपराओं और प्रथाओं में विश्वास करते हैं और अंधविश्वास व जादू-टोनों में अधिक विश्वास करते हैं। आधुनिकता और बाहरी दुनिया की चकाचौंध से दूर इनकी अपनी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था भी सभ्य समाजों से अलग है।

मधु कांकरिया ने 'बादलों में बारूद' में आदिवासी समाज और संस्कृति का चित्रण किया है। उन्होंने आदिवासियों की मूलभूत समस्याओं को सभी के सामने लाने का प्रयास किया है। उनके समाज में व्याप्त जादू-टोना, टोटका, प्रेत व डायन की जो मान्यताएं हैं उनका चित्रण उन्होंने किया है। आदिवासी अभावों की जिंदगी जीते हैं और वहाँ सुविधाओं का बहुत ज्यादा अभाव है। झारखंड के रांची के बिशुनपुर के इलाके में रात के समय लाईट की कोई व्यवस्था नहीं है रात के समय ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं उस समय मशाल जलाकर या जटंगी का पेड़ जिससे तेल निकलता है उसका प्रयोग किया जाता है। लेखिका को सत्येन खिरवार बताता है कि "रात को हम मशाल जलाकर निकलते हैं। लकड़ी को तेल में भिगोकर उसको जलाकर...और यदि तेल घर में नहीं हो तो रबड़ की ट्यूब को ही जलाकर निकल पड़ते हैं – देहाती टॉर्च।"[268] इसके अलावा इनमें अब भी बहुत अधिक अंधविश्वास व्याप्त है। समाज में धार्मिक विश्वासों तथा जादू टोनों की क्रियाओं का एक समिश्रण पाया जाता है जिससे अक्सर डायन-बिसाही, टोना-टोटका और तंत्र-मंत्र के नाम पर

[268] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 34

हत्या की घटनाएँ सामने आती हैं। बीमारी होने पर वे इलाज नहीं कराते और तांत्रिक क्रियाओं के माध्यम से ही खुद को ठीक करने की कोशिश करते हैं।

शकुन-अपशकुन को लेकर भी विभिन्न समाजों में कई मान्यताएँ व लोक विश्वास प्रचलित हैं। इसमें इनमें शकुन को शुभ मानकर व अपशकुन को अशुभ या बुरे भविष्य के रूप में पूर्व संकेत माना जाता है। अपशकुन अर्थात् बुरा शकुन जिसमें बिल्ली का रास्ता काटना, सूखा सरोवर, कुत्तों का रोना आदि को विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग रूपों में अपशकुन माना जाता है। 'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया झारखंड और पूर्वोत्तर के आदिवासियों में प्रचलित शुभ-अशुभ की मान्यताओं के बारे में बताती हैं। लेखिका जब आदिवासी अंचलों में जाकर उनकी वास्तविक स्थिति को जानने का प्रयास करती हैं तब वह सुक्का दा से सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करती हैं। विशनपुर के आदिवासी सुक्का दा बताते हैं कि वहाँ पर निरबंसियों को अशुभ माना जाता है। वे कहते हैं कि "हमारे यहाँ निरबंसियों को बहुत अशुभ माना जाता है। सुबह के समय वह दिख जाए तो मुँह फेर लेते हैं।"[269]

इसी तरह सुबह के समय तेली का मुँह देखना अशुभ और धोबी का शुभ मानते हैं अगर सुबह के समय तेली का मुँह दिख जाए तो उसे झिड़क देते हैं जिससे मान्यता है कि ऐसा करने से उसकी मनहूसियत का प्रभाव कम हो जाता है। इस मान्यता के संबंध में सुक्का दा कहते हैं कि "महाभारत में जब सियार तक ने तेली का मांस खाने से इनकार कर दिया तभी से तेली को अशुभ माना जाने लगा... पर हमारे समाज में सुबह यदि धोबी दिख जाए तो उसका मुख दिखना बहुत शुभ माना जाता है।"[270]

लोकजीवन में विभिन्न प्रकार के अंधविश्वास प्रचलित रहते हैं जिनको लेकर लोगों में कई तरह की मान्यताएं होती हैं। किसी बीमारी, विवाह या अन्य अवसरों पर इसे दैवीय विश्वास या उसके समाधान को प्रस्तुत करने के लिए टोने-टोटके किए जाते हैं। मूल रूप से ये अंधविश्वास होते हैं लेकिन इसके बावजूद भी इनके प्रति समाज में गहरी आस्था होती है। 'बादलों में बारूद' में

---

[269] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 16

[270] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 16

लेखिका बताती हैं कि इन आदिवासी समाजों में स्त्रियों को डायन बताकर उसे मार भी डालते हैं। लोगों में इस तरह ही अंधविश्वास व्याप्त है कि वो जान लेने से भी पीछे नहीं हटते। चंद्रिका जी लेखिका को बताती है कि “क्या बताएँ यहाँ लोगों के मन में जड़ जमाकर बैठा है यह अंधविश्वास की डायन यदि किसी को आँख भर देख ले तो उसकी मृत्यु सुनिश्चित है।”[271]

‘जंगल-जंगल जलियांवाला’ में हरिराम मीणा जब पालचित्तरिया गाँव में जाते हैं और उस हत्याकांड के बारे में खोजबीन करते हैं तो उन्हें वहाँ पर कुएँ भी मिलते हैं जिसमें आंदोलन के समय लाशों को डालकर मिट्टी से भर दिया गया था। लेखक उन कुओं की खुदाई करके तथ्यों को और भी अधिक प्रामाणिकता से साथ जानना चाहता है लेकिन वहाँ के स्थानीय लोग उन कुओं की खुदाई नहीं करने देते। इस खुदाई नहीं करने देने के भिन्न-भिन्न कारण हैं लेकिन सुरेश भाई एक मूल कारण वहाँ के लोगों की मान्यता को भी बताता है इसके संबंध में वह कहता है कि “कुछ लोगों ने पक्के मकान बनाने के लिए नींव खोदी तो जमीन में मानव-अस्थियाँ मिली, जिन्हें उन्होंने चुपचाप रफा-दफा करना उचित समझा ताकि वहाँ बनने वाले मकानों के बारे में उल्टी-सीधी चर्चाएँ न फैलें।”[272] यह मान्यता सामान्यत: देखने को मिलती ही है जिसमें में किसी भी शुभ कार्य में हड्डी आदि का निकलना अशुभ माना जाता है।

‘दूर दुर्गम दुरुस्त’ में खासी जनजाति के पारंपरिक खेल ‘तीर का खेल’ से जुड़ी मान्यताओं के बारे में बताया गया है। खासी जनजाति के लोग इसके लिए मानते हैं कि तीरंदाजी का यह विशेष उपहार ‘का शिनम’ नाम की देवी को सीधे भगवान ने दिया था। भगवान के दिये हुए इस धनुष और तीर को उन्होंने अपने बेटों को दे दिया जिससे उसके यू सिन्ना और यू बतितों नाम के दोनों बेटे इन्हीं धनुष बाण से खेलते-खेलते अच्छे तीरंदाज बन गए थे। वर्तमान समय में भी अगर किसी के घर में लड़का पैदा होता है तो उसके लिए ‘का जर का थोह’ नाम का कार्यक्रम किया जाता है और बच्चे के पास एक धनुष और तीन तीर रखे जाते हैं। जिसमें ये तीनों तीर जमीन, कुल और बच्चे का द्योतक माने जाते हैं। “ये तीनों तीर और धनुष उसकी मृत्यु तक संभाल कर रखे जाते हैं। मरते वक्त आखिरी तीर को उसके साथ ही दफना दिया जाता है, जबकि दो तीरों को धनुष की प्रत्यंचा पर

[271] मधु कांकरिया, ‘बादलों में बारूद’, पृ. 24
[272] हरिराम मीणा, ‘जंगल-जंगल जलियांवाला’, पृ. 90

चढ़ाकर आकाश में छोड़ दिया जाता है। माना जाता है कि ये तीर उसकी आत्मा के साथ स्वर्ग तक जाएँगे।"[273]

लोकप्रथाएं भी समाज विशेष का ही अंग होती हैं जिनसे समाज की जानकारी प्राप्त होती है। पंकज बिष्ट का 'खरामा-खरामा' एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें गुजरात की द्वारका नगरी, मीरां के प्रदेश राजस्थान और उत्तरांचल की मन मोहक प्रकृति का चित्रण किया है। इसमें मेवाड़ राजा महाराजाओं की नगरी में मीराबाई की भक्ति व उनके कष्टपूर्ण जीवन का भी चित्रण किया गया है। जिसमें राजस्थानी समाज और संस्कृति की झलक दिखाई देती है। इसमें 'विद्रोह की पगडंडी, मीरा के देश में एक नास्तिक' लेख में मीरा व उससे संबंधित स्थानों की यात्रा करके उसे समग्रता से प्रस्तुत किया गया है। इसमें मेवाड़ में प्रचलित दो प्रथाओं जौहर व सती प्रथा के बारे में बताया गया है। ये दोनों ही आदिम बर्बर प्रथाएँ हैं जिसमें युद्ध में जीत की आशा खत्म हो जाने पर शत्रु से अपने शील सतीत्व की रक्षा करने हेतु वीरांगनाएँ दुर्ग में प्रज्ज्वलित अग्निकुंड में कूदकर सामूहिक आत्मदाह कर लेती हैं जिसे जौहर कहा जाता है। मेवाड़ में 1303, 1534 और 1567 में तीन साके हुए हैं इसी तरह ही पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी द्वारा मृत्यु का वरण करना सती प्रथा कहलाती है। मध्यकाल में सतीत्व की प्रतिष्ठा को सुरक्षित करने हेतु यह प्रथा प्रचलित हुई थी लेकिन धीरे-धीरे इसने भयावह रूप धारण कर लिया और अनेक स्त्रियों की इच्छा के विपरीत परिवार की प्रतिष्ठा को बचाए रखने के लिए मृत्यु का वरण करना पड़ा। इन्हीं दोनों प्रथाओं के संदर्भ में लेखक कहता है कि "देखा जाए तो ये दोनों ही प्रथाएँ बर्बर आदिम प्रथाएँ हैं जिनमें औरत का महत्व निजी सपंत्ति से ज्यादा नहीं है और आदमी की उस कामना से जुड़ा है जिसमें वह मरने के बाद भी इस संसार को साथ लेकर जाना चाहता है। इससे जुड़ा रहना चाहता है।"[274]

विवाह समाज का एक महत्वपूर्ण संस्कार है। जो कि दो लोगों के बीच सामाजिक एवं धार्मिक मान्यता प्राप्त मिलन है जिसके द्वारा पति-पत्नी के स्थायी संबंधों का निर्माण होता है। इस वैवाहिक संस्था को लेकर विभिन्न समाजों में विविध प्रकार के रूप प्रचलित हैं। जिसमें बहुपति और बहुपत्नी वैवाहिक संबंध के बारे में यात्रा वृत्तांतों में जानकारी मिलती है। अशोक जेरथ ने

---

[273] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 67

[274] पंकज बिष्ट, 'खरामा-खरामा', पृ. 34

‘अनाम यात्राएं’ में हिमाचल प्रदेश के किन्नौर क्षेत्र की बहुपति विवाह व संयुक्त परिवार का चित्रण किया है। इस किन्नौर क्षेत्र में एक से अधिक विवाह करने की प्राचीन परंपरा है जिससे सामूहिक परिवारों में एक स्त्री के दो-तीन पति होते हैं। घर और बाहर का सारा काम पुरुष ही करते हैं। महिलाएँ केवल बच्चों का पालन-पोषण करती हैं। साथ ही यहाँ चिंडी क्षेत्र की बहुपत्नी प्रथा का चित्रण करते हुए अशोक जेरथ बताते हैं कि “लेखक जब शर्मा साहब के घर जाते हैं तो वे परिचय करवाते हुए कहते हैं कि “आप मेरी एक पत्नी से मिल चुके हैं- यह मेरी दूसरी पत्नी है – मैं और मेरी दूसरी धर्मपत्नी जो मेरे साथ इस प्रवास में थी, आश्चर्यचकित हो देखते रहे। शर्मा के दो बेटे और चार बेटियाँ हैं - बेटे एक पत्नी से हैं तो बेटियाँ दूसरी पत्नी से। दोनों बेटे शादीशुदा हैं और उनके परिवार के साथ ही रहते हैं। यह संयुक्त परिवार है।”[275]

‘बादलों में बारूद’ में देखा जा सकता है कि झारखंड के आदिवासियों में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित है और उनमें भी लड़के-लड़की का भेदभाव किया जाता है। सुक्का दा के भी दो पत्नियाँ हैं जिसमें से एक अपने माँ-बाप के पास रहती है तो दूसरी उनके पास में रहती है। सुक्का दा इन दो विवाहों के कारण के बारे में बताते हैं कि “मेरी शादी के बाद जब पहली पत्नी से लगातार दो पुत्रियाँ ही हुई तो परिवार के सभी लोगों ने मिलकर मेरी दूसरी शादी करवा दी... और संयोग देखिए कि दूसरी शादी होते ही दोनों पत्नियों ने एक साथ पुत्र को जन्म दिया।”[276] पुत्र मोह की यह लालसा हर समाज में देखी जा सकती है और आदिवासी समाज भी इससे अछूता नहीं है।

इस प्रकार यात्रा साहित्य में चित्रित किसी भी समाज की पारिवारिक स्थितियाँ, परिवारों के प्रकार, स्त्री-पुरुष संबंध, जाति-व्यवस्था, धर्म, विभिन्न जातियों और धर्मों के लोगों के आपसी संबंध, आर्थिक संरचना, सामाजिक मान्यताएँ, रीति-रिवाज, विवाह आदि विभिन्न संस्कार उस समाज की संस्कृति के अंग होते हैं। इनका अध्ययन चित्रित समाज के सांस्कृतिक अध्ययन का अंग है और यात्रा वृत्तांतों में समाज के विभिन्न धार्मिक लोक विश्वास, अंधविश्वास, घर-परिवार सभी का चित्रण किया गया है।

[275] अशोक जेरथ, ‘अनाम यात्राएं’, पृ. 42
[276] मधु कांकरिया, ‘बादलों में बारूद’, पृ. 16

4.4 इतिहास :-

जब भी कोई यात्राकार भ्रमण करता है तो वह वर्तमान का निरीक्षण करते हुए स्थान विशेष के इतिहास की भी जाँच-पड़ताल करता है । यात्रा के साथ-साथ वह स्थान विशेष से जुड़ी परंपराओं, किंवदंतियों, गाथाओं, वस्तुओं, प्राचीन धरोहरों से जुड़े स्थलों, पुरातत्व संबंधी अन्वेषणों का भी अध्ययन करके उन्हें अपने यात्रा वृत्तांत में प्रस्तुत करता है। जिससे अनेक वृत्तांतों में स्थान विशेष को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखते हुए उसके ऐतिहासिक पक्षों को भी प्रस्तुत किया गया है। उमेश पंत ने 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में अनेक कथाओं के ऐतिहासिक संदर्भों को प्रस्तुत किया है। पूर्वोत्तर की कार्बी जनजाति की लोककथाओं में रामायण के बारे में वे कहते हैं कि "कार्बी जनजाति की अपनी एक अलग रामायण है जिसे 'साबिन आलुन' (जिसका मतलब साबिन का गाना) कहा जाता है। रामायण के स्थानीय संस्करण में साबिन शूर्पणखा हैं। रामायण की ये कहानी शूर्पणखा के गीत के तौर पर गाई जाती है। सीता इस कहानी में सिन्ता है। लक्ष्मण लोकोन हैं। इस कहानी में जनक झूम करते हैं सीता उन्हें चावल की बनी बीयर देने आती हैं।"[277] इस साबिन आलुन को अलग-अलग किरदारों द्वारा लयबद्ध तरीके से गाया जाता है। जिसमें साबिन और सिन्ता गाकर अपना-अपना पक्ष रखते हैं और हर किरदार का अपना पक्ष है। जिसमें किरदारों के लयबद्ध संवाद होते हैं।

इसी तरह अजय सोडानी की 'दर्रा-दर्रा हिमालय' और 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' की हिमालय यात्राएँ विशेष रूप से पौराणिक कथाओं की सत्यता को जाँचने के लिए की गई हैं। वे कहते भी हैं कि किसी भी काल की विवेचना उस समय के इतिहास और उस कालखंड में सिरजी कथाओं, मान्यताओं, मिथकों, गीतों और दंतकथाओं को सटाकर देखने से ही की जा सकती है। वैसे देखा जाए तो हिन्दू धर्म की हर कथा किसी न किसी रूप में हिमालय से जुड़ी हुई है और इन कथाओं की सत्यता और असत्यता को वे खोजने की कोशिश करते हैं। गणेश का जन्म, शिव का तांडव, शंकर और पांडवों के मध्य की छुपाई जैसी अनेक कथाओं के पीछे छुपे तथ्यों को खोज निकालने की कोशिश उन्होंने की है। जिसके लिए उन्होंने भौगोलिक संकेतों की सत्यता को देखते हुए ऐतिहासिक ग्रंथों का आकलन किया है। माना जाता है कि अनादिकाल में गंगोत्री, केदार और बद्रीविशाल में पूजा-अर्चना करने के लिए एक ही पुजारी हर रोज जाता था। इसके आने जाने के

---

[277] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 126

रास्ते के बारे में सटीक जानकारी नहीं मिलती है परंतु अजय सोडानी इस मार्ग और पांडव मार्ग को खोज निकालने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं कि "सरस्वती नदी के तट पर कुरुक्षेत्र.. करुक्षेत्र में युद्ध.. युद्ध के उपरांत पांडवों के सर पर कुल हत्या का पाप.. पाप-मुक्ति हेतु शिव को खुश करने की दरकार..श्रीकृष्ण के कहने से पांडवों का शिव की खोज में हिमालय की तरफ जाना.. सरस्वती नदी का उद्गम हर-की-दून से.. हर-की-दून वासियों का स्वयं को पांडवों का वंशज मानना.. ब्लैक पीक भमक के निचले हिस्से का नाम अर्जुन होना..गंगोत्तरी की समीप पतंगना में पांडव गुफ़ाएँ.. पतंगना में ही पांडवों द्वारा शिव को प्रसन्न करने के लिए रुद्राभिषेक यज्ञ का वृत्तांत.. खतलिंग भमक की तरफ के एक शिखर का नाम द्रौपदी पर होना.. तथा अंतत: केदार में शिव के दर्शन – इन सबको यदि नक्शे पर रखा जाए तो कुरुक्षेत्र से पतंगना होते हुए केदार तक पहुँचने योग्य एक राह नजर आएगी।"[278]

अजय सोडानी बताते हैं कि धूमधारकांडी दर्रे के पास दुर्योधन का देस हैं जहाँ अतीत की अनेक पुराकथाएँ बिखरी पड़ी है। जिसमें दर्रे के उत्तर-पश्चिम में स्थित स्वर्गारोहिणी पर्वत शृंखला से पांडवों के मार्ग की कथाएँ जुड़ी हुई है। वही दूसरी तरफ दर्रे के पश्चिम में विशाल कालानाग ग्लेशियर के पास की पर्वत शृंखला अंग्रेजी वर्णमाला के 'सी' आकार में घूमती हुई धूमधारकांडी दर्रे के दक्षिण में जुड़ी हुई है। यह बंदरपूँछ शृंखला है जहाँ से यमुना नदी का उद्गम होता है और यमुना नदी को पुरासाहित्य में कालिंदी कन्या व कालिंदी नदी कहा गया है। इसीलिए बंदरपूँछ को कालिंदीगिरी कहा गया है। इस बंदरपूँछ को लेकर भी अनेक कथाएँ प्रचलित है। कहा जाता है कि बंदरपूँछ शिखरों के मध्य में स्थित गड्ढे में हनुमान जी ने लंका दहन के बाद अपनी पूँछ की आग को बुझाया था। समुद्र में जीव-जंतुओं का निवास होने के कारण जब हनुमान हिमालय के इस ताल के पास आते हैं जहाँ एक भी जीव नहीं था इसी घटना के बारे में अजय सोडानी बताते हैं कि "परेशान पवन पुत्र को तब सागर ने हिमालय के उस ताल का पता बताया जिसमें जल तो अथाह था पर कोई जीव नहीं। हनुमान की भभकती पूँछ को आखिरकार उसी ताल के जल ने शांत किया जो हमारे सामने के उन शिखरों के मध्य स्थित है। संभवत: इसी घटना के उपरांत 'कालिंदीगिरि' को बंदरपूँछ कहा जाने लगा और कालिंदी नदी सिर्फ यमुना के नाम से प्रचलित हो गई। पर नाम बदलने

[278] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 86

से गुण थोड़े ही बदलते हैं, यमुना का जल रहा तो काला का काला।"[279] इस प्रकार ये कथा चाहे किसी भी रूप में बंदरपूँछ से जुड़ी हुई हो लेकिन इसमें भूगोल के जानकारी प्राप्त होती है क्योंकि आज भी यह पर्वत शृंखला पूँछनुमा आकृति में ही बनी हुई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्कृति इतिहास की जन्मदात्री है और इतिहास संस्कृति का पोषक। यात्राकार जब यात्रा करता है तो वह समाज व संस्कृति के ऐतिहासिक पक्ष से अपने आप को अलग नहीं रख सकता। किसी भी स्थान विशेष पर जब लेखक जाता है तो वहाँ के ऐतिहासिक स्थलों, नगरों, पुरातात्विक संदर्भों से भी जुड़ता है और उस प्रदेश विशेष के इतिहास को जानने की चेष्टा करता है। कुछ लेखकों की तो यात्राएँ ही ऐतिहासिक और पुरातात्विक अन्वेषण हेतु की गई है। जिससे उन वृत्तांतों से ऐतिहासिक शोधपरक दृष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार इन यात्रा वृत्तांतों में विभिन्न स्थलों के ऐतिहासिक महत्व के साथ-साथ वहाँ के सांस्कृतिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है।

4.5 धर्म :-

धर्म भारतीय संस्कृति एवं दर्शन की मुख्य संकल्पना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है धारण करने योग्य। मनुष्य मात्र को अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय, सदाचार, सद्गुण, दया, करुणा, प्रेम, त्याग, क्षमा आदि मूल्यों को धारण करना चाहिए। मानव जीवन में धर्म का अत्यधिक महत्व है। सामान्यत: धर्म से विहीन मनुष्य को पशुतुल्य माना जाता है। यह मनुष्य के अंत:करण में समाहित एक कर्त्तव्यबोध है, जिसमें मनुष्य का सर्वांगीण विकास करने वाले उदात्त मानवीय गुणों का समावेश होता है। धर्म के अनुकूल आचरण करने से मनुष्य ममता, करुणा व सात्विकता जैसे भावों से युक्त होकर आनंद प्राप्त करता है। यह भारतीय समाज एवं संस्कृति का प्राणतत्व है जिससे मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त धर्म-कर्म से बंधा हुआ रहता है।

भारतीय संस्कृति में अगर देखा जाए तो चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में धर्म का प्रमुख स्थान है। इसे भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्व भी माना जा सकता है जिससे मनुष्य जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत धार्मिक बंधनों से बँधा रहता है। यह समाज के लोगों के लिए एक लिखित एवं

[279] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ 146

अलिखित आचार संहिता है जिसके अनुसार चलने पर समाज में बिना किसी को शारीरिक एवं मानसिक हानि किये मिलजुल कर शांतिपूर्वक रह सकते हैं। इसी तरह एक दूसरे अर्थ में देखा जाए तो धर्म का तात्पर्य विशेष संप्रदाय या एक पंथ से भी है। जिसके सभी अनुयायी एक विशेष प्रकार की पारलौकिक सत्ता में विश्वास करते हैं और कुछ विशेष सिद्धांतों को उचित मानकर उन्हें धारण करते हैं। जैसे – हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, पारसी इन सबका अपनी-अपनी ईश्वरीय सत्ता में विश्वास है और उन्हीं के बनाए नियमों का पालन ये करते हैं।

नैतिक कर्म ही धर्म हैं। इसीलिए धर्म की व्याख्या हमारे यहाँ धारण करने के अर्थ में की गयी है। धर्म एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अधीन रहने पर मनुष्य का जीवन सुचारु रूप से चलता रहता है, उससे विमुख होने पर उसके लिए संकट पैदा हो जाते हैं। अतः धारण करने के अर्थ में कहा जा सकता है कि जो मनुष्य के जीवन को धारण करे वह धर्म है। "धर्म शब्द 'धृ' (धारण करना) धातु में 'मय' प्रत्यय लगाने से बनता है। अर्थ हुआ जो धारण करे अर्थात् 'धारणाति नाम धर्म'। अतः धर्म उन सिद्धांतों का एकीकरण है, जिनसे मानव और मानव समाज अपना अस्तित्व धारण करता है। यह अस्तित्व तभी टिक सकता है, जब मनुष्य और उसका समाज सन्मार्ग पर चले।"[280] मनुष्य के जीवन या उसके अस्तित्व के आधार नैतिक कर्म हैं। अतः नैतिक कर्म ही धर्म हैं। नैतिक कर्म का मतलब अपनी उन्नति के लिए किए जाने वाले ऐसे कर्मों से है जिनसे दूसरों को कोई हानि न हो, लाभ भले हो जाय। मान्यता है कि दूसरों को दुःख न पहुँचाने वाला व्यक्ति इस लोक में तो सुखी रहता ही है, परलोक में भी उसे सुख की प्राप्ति होती है। भारतीय संदर्भ में इस अर्थ में भी धर्म की परिभाषा बतलायी गयी है। 'वैशेषिक दर्शन' के प्रणेता कणाद के अनुसार "यतोSभ्युदयनि: श्रेयससिद्धिः स धर्मः" अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध हो, वह धर्म है। अभ्युदय से लौकिक और निःश्रेयस से पारलौकिक सिद्धि की उपलब्धि होती है।"[281]

वह कर्म जिससे मनुष्य की लौकिक के साथ-साथ पारलौकिक उन्नति हो, धर्म कहलाता है। धर्म के संदर्भ में परलोक की कल्पना अनैतिक कर्मों के लिए डर और दंड-विधान तय करने वाली है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' जैसा तुक-विधान इसी तरह के धार्मिक डर और दंड-विधान की ओर

[280] सेठ गोविंददास, 'भारतीय संस्कृति' वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, (1976), पृ. 10
[281] सेठ गोविंददास, 'भारतीय संस्कृति', पृ. 10

इशारा करने वाला है। पारलौकिक दंड को धर्म-शास्त्रों द्वारा लौकिक संदर्भ भी दिया गया। इस अर्थ में धर्म आधुनिक संविधान का पूर्व रूप माना जाना चाहिए। लोकतंत्र में देश आधुनिक संविधान से चलता है और राजतंत्र में यह धार्मिक सिद्धांतों द्वारा परिचालित होता था। पारलौकिक दंड-विधान के अलावा धार्मिक ग्रंथों में लौकिक दंड-विधान भी होता था। अनैतिक कार्यों को अंजाम देने वाला व्यक्ति धार्मिक कानूनों के अनुसार राजा द्वारा दंडित होता था। पारलौकिक दंड-विधान में ईश्वरीय शक्तियों का हाथ होता है, जो समस्त संसार की नियंता मानी जाती हैं। धर्म संसार को सुचारु रूप से चलाने के लिए होता है, अतः इसे एक ईश्वरीय व्यवस्था के रूप में देखा जाता है। अक्सर धार्मिक-व्यवस्थाओं को धर्म-शास्त्रों में ईश्वर का आदेश कहकर व्याख्यायित किया जाता है। ईश्वर के आदेशों की अवहेलना करने वाला ईश्वरीय दंड का भागीदार होता है। ईश्वरीय दंड-विधान के तहत् ही परलोक की कल्पना भी की गई है। परलोक में स्वर्ग और नरक लोक हैं। सद्कर्म करने वाला स्वर्ग में जाकर आनंद का उपभोग करता है और बुरे कर्म करने वाला नरक में जाकर यातनाएँ भोगता है।

इस तरह नैतिक कर्मों का सिद्धांत धर्म का प्रमुख अंग है, जिसे प्रायः सभी धर्मों के धर्म-ग्रंथों में लिपिबद्ध किया गया है। हिंदू-धर्म का कोई एक मान्य ग्रंथ नहीं है। इसके सिद्धांत इसके विभिन्न धार्मिक ग्रंथों की एक संहिता हैं। इस्लाम धर्म का ग्रंथ कुरान, ईसाई धर्म का बाइबिल है। सिक्खों का आदिग्रंथ और बौद्धों तथा जैनों के एकाधिक ग्रंथ हैं। सभी धर्मों में मनुष्यों के नैतिक सिद्धांत प्रायः एक से ही हैं। उनमें मनुष्य के लिए ऐसे कर्तव्यों को धारण करने की व्यवस्था की गई होती है जिससे किसी अन्य मनुष्य, यहाँ तक कि किसी भी प्राणी को, दुःख न पहुँचे। इन्हें ही सद्कर्म कहा जाता है। ईश्वर संसार का नियंता है। वही सद्कर्म करने वालों को पुरस्कृत और सन्मार्ग पर न चलने वालों को दंडित करता है। अतः ईश्वर को प्रसन्न या संतुष्ट रखने के लिए मनुष्य ईश्वर से सीधे भी जुड़ना चाहता है। इसके लिए ही वह कर्मकांडों का सहारा लेता है। अतः पूजा-पाठ और इससे जुड़े हुए विधि-विधान भी धर्म के अंग हैं। देवालयों की स्थापना, मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्राएँ सब ईश्वर व स्वयं को संतुष्ट रखने के साधन हैं। सभी धर्मों में ईश्वर अलग-अलग हैं, अतः उनसे जुड़े हुए साधनों में भी भेद है।

प्रायः ही सभी धर्म ईश्वरवाद पर आधारित हैं लेकिन कुछ एक निरीश्वरवादी भी हैं। यद्यपि इनमें ईश्वर या परलोक की परिकल्पना नहीं की गई है, लेकिन लौकिक दु:खों से निजात पाने का मार्ग इनका भी मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए इनके यहाँ भी जीवन के नैतिक सिद्धांतों की स्थापना धार्मिक अंग के रूप में की गई है। भौतिक संसार को असार या दु:खमय मानकर इससे उबरने का मार्ग खोजना अध्यात्म की तरफ उठना है। यह काम अपने-अपने तरीके से आस्तिकतावादी और नास्तिकतावादी दोनों ही धर्म करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि पारलौकिक सुख प्राप्त करने या लौकिक दु:ख से निजात पाने के लिए खोजा गया आध्यात्मिक मार्ग धर्म है।

धर्म का संस्कृति के विकास में मुख्य योगदान है। धर्म और संस्कृति का भेद इतना सूक्ष्म है कि कभी-कभी दोनों को पर्याय के रूप में पेश कर दिया जाता है। दरअसल संस्कृति धर्म का निचोड़ है। धार्मिक सिद्धांत जब अनायास समाज की परंपरा में शामिल हो जाते हैं तो वे संस्कृति के अंग बन जाते हैं। इसके अलावा संस्कृति मात्र धार्मिक-सिद्धांतों का समूह नहीं है, उसमें इसके अलावा भी बहुत सारे तत्व होते हैं। इन दोनों में अंतर बताते हुए सेठ गोविंददास कहते हैं- "धर्म और संस्कृति दोनों का संस्कारों से संबंध है, पर दोनों में एक अंतर है। धर्म का मूल आधार वेद, वेदांग, उपनिषद, स्मृति, शास्त्र, रामायण, महाभारत और पुराण आदि है। संस्कृति का आधार परंपरा भी है। धर्म देश विशेष अथवा जाति विशेष अथवा समाज विशेष से निरपेक्ष भी रह सकता है, किंतु संस्कृति नहीं।"[282] इन सबके बावजूद संस्कृति के विकास में धर्म का योगदान महत्वपूर्ण है क्योंकि उसकी बहुत सी सामग्री धर्म से गृहीत होती है। इस तरह किसी भी समाज की संस्कृति के अध्ययन के लिए उसकी धार्मिक मान्यताओं का अध्ययन आवश्यक है।

विभिन्न धर्म का व्यक्ति अपने-अपने धर्म के सिद्धांतों या मान्यताओं के आधार पर जीवन के विविध क्रिया-कलापों में संलग्न रहता है। अतः यात्रा-साहित्य में वर्णित किसी भी व्यक्ति या समाज का वह कर्म या विचार जो उसकी धार्मिक स्थिति की तरफ इशारा करने वाला हो, धर्म का ही अंग है।

[282] सेठ गोविंददास, 'भारतीय संस्कृति'(1976), वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 10

संस्कृति के धार्मिक संदर्भ को अगर देखा जाए तो लेखक किसी भी स्थान विशेष पर जाता है तो वहाँ के धार्मिक रीति-रिवाज, परंपरा, आस्था, संस्कार, मान्यताओं को प्रस्तुत करता है। यात्राकार जिस भी स्थान विशेष पर जाता है तो वह जानने की कोशिश करता है कि स्थान विशेष के लोग किस धर्म विशेष के है ? लोगों की किस धर्म में अधिक आस्था है ? और इन्हें देखकर वह अपने यात्रा वृत्तांत में स्थान देता है। यात्रा वृत्तांतों में अनेक स्थलों पर ईश्वर को केंद्र में रखकर लौकिक और पारलौकिक सुख के लिए किए जा रहे कर्मों या कर्मकांडों का विवरण है, तीर्थ-व्रत का वर्णन है, मूर्तियों और देवालयों का वर्णन है; जहाँ लौकिक दु:खों से निजात पाने के लिए विभिन्न मार्गों या कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है; जिससे उस प्रदेश के लोगों की धार्मिक स्थिति का पता चलता है।

'बुद्ध का कमंडल' में फियांग गोम्पा व हैमिस गोम्पा के बौद्ध विहार, 'दर्रा-दर्रा हिमालय' में महासू और पोखू देवता के मंदिर, 'बादलों में बारूद' में लेह के हेमिस मोनेस्ट्री, चैन्नई के मलियाटू चर्च, तिरुपति व मदुरै के मंदिर, 'सफर एक डोंगी में डगमग' में चामल माता मंदिर, मरका घाट, कुम्भ मेला, विंध्याचल देवी, इरिणालोक में कच्छ के यक्ष मंदिर, जखदेवता, दोरबनाथ मंदिर, रन का सूर्य मंदिर, 'दूर दुर्गम दुरस्त' में कामाख्या मंदिर के बारे में बताया गया हैं।

मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा इन सब के साथ-साथ लेखकों के धार्मिक दृष्टिकोण को भी इसमें देखा गया है। धर्म को अगर व्यक्ति विशेष के रूप में देखा जाए तो इसमें लेखकों के अलग-अलग धर्म और धार्मिक दृष्टिकोण रहे हैं। गगन गिल को अगर देखा जाए तो उनका बौद्ध धर्म की तरफ अधिक झुकाव दिखाई देता है 'अवाक्' यात्रा वृत्तांत में कैलाश मानसरोवर की यात्रा के दौरान जब एक लड़का गले में पैंडेल को देखकर उसके संबंध में उनसे जब पूछता है तो वह कहती भी है "वह मेरे गले में प्रार्थना-चक्र वाला पैंडेल ताक रहा है।

आप भी बौद्ध हैं ?

आधी बौद्ध।"[283]

[283] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 97

इसी तरह पंकज बिष्ट में नास्तिकता का रूप अधिक दिखाई देता है। पंकज बिष्ट 'सहस्राब्दी के अंतराल में' लेख में अपनी गुजरात यात्रा व वहाँ के मंदिरों के बारे में बताते हैं कि पूरा गुजरात ही मंदिरों से भरा पड़ा है। यहाँ के जैसा भक्तिभाव, श्रद्धा और रूढ़िवादिता शायद ही कही देखने को मिले। मूल रूप से अगर देखा जाए तो गुजरात हिंदुस्तान का दरवाजा रहा है जहाँ समुद्र होने के कारण बाहरी रूप से आने वाले लोग सबसे पहले यही आते थे और यही से व्यापार के लिए जाते थे। यहाँ का सोमनाथ मंदिर बाह्य आक्रमणों से बार-बार लूटा गया है। महमूद गजनवी ने 1026 ई. में इस मंदिर को लूटा था इसी के संदर्भ में लेखक मोहम्मद गजनवी के आने से पहले के एक हजार दो सौ पचास साल पहले के पाटलीपुत्र के राजा अशोक के बारे में बताते हैं कि पटलीपुत्र में अशोक का विश्वप्रसिद्ध शिलालेख है जिसमें उसने जनता से अहिंसा का मार्ग अपनाने का आग्रह किया है। पत्थर की इस चट्टान पर खुदी ब्राह्मी लिपि की इन टेढ़ी-मेढ़ी इबारतों से दुनिया ने जितनी प्रेरणा ली है उतना तो हजारों-हजार मंदिर और मस्जिद भी नहीं सीखा पाए है। इसी संदर्भ को उठाते हुए लेखक हिंदुओं की मान्यता जिसमें खंडित मूर्ति व मंदिर की पूजा नहीं की जाती के बारे में लिखते हैं कि "हिन्दू परंपरा के मुताबिक खंडित मूर्तियों को मंदिरों में नहीं रखा जाता और टूटे मंदिरों में पूजा नहीं होती। संभवत: इसका निहितार्थ यह है कि मूर्तियाँ और मंदिर फिर-फिर बनाने के लिए है। इसमें गलत क्या है कि लालची, लुटेरे और धर्मांध आतताईयों के विध्वंस मानवीय सृजनात्मकता को कुंठित नहीं, बल्कि और भी बड़ी चुनौती देते हैं।"[284]

'वह भी कोई देस है महराज' में अनिल यादव पूर्वोत्तर के असमिया हिंदुओं के बारे में बताते हैं कि यहाँ ज्यादातर असमिया हिन्दू गाँव किसी न किसी मठ से संबंधित है और यहाँ के सामाजिक जीवन में नामघर की मुख्य भूमिका होती है। नामघर कर्मकांड के विधानों से दूर सीमेंट, लकड़ी या बाँस के खंभों पर बना तीन तरफ से खुला बरामदेनुमा ढाँचा होता है। जहाँ लोग सामूहिक रूप से कीर्तन करते हैं। इन्हीं नामघरों को देखकर अनिल यादव धर्म के बारे में कहते हैं कि "मैंने खुद को सोचते पाया कि अगर कभी मेरा कोई धर्म हुआ तो वह ऐसा ही सादा, इकहरा और पवित्र होगा। पवित्र ! वह क्या होता है ?... लेकिन तुम्हारा कोई धर्म क्यों नहीं है ? इसलिए कि धर्म पाखंड, छुआछूत, कट्टरपन, घृणा, अंधविश्वास और शोषण के महीन तरीके लाता है। वह धर्म की नहीं

[284] पंकज बिष्ट, 'खरामा-खरामा', पृ. 61

उसके धूर्त व्याख्याकारों की कारीगरी है। तुम्हारा एक बिल्कुल निजी, एकांतिक धर्म भी हो सकता है जिसे किसी और की स्वीकृति की जरूरत न हो।"[285]

विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में चित्रित स्थानीय लोगों के धर्म संबंधी मतों को देखा जाए तो 'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया झारखंड के आदिवासी लोगों के बारे में बताती है कि इन आदिवासियों में मंदिर नहीं होते वे सरना देवी को मानते हैं। जिसकी घर के ही किसी कोने में मिट्टी डालकर मंदिर की तरह पूजा करते हैं। "हम लोग सरना देवी को मन से मानते हैं। अपने स्थान को ही मंदिर समझते हैं हम। घर में ही किसी कोने में थोड़ी-सी मिट्टी डालकर उस पर अरवा चावल डालकर उसी को सरना देवी मान लेते हैं और जो चढावा होता है, उसी पर चढ़ा देते हैं। हमें मंदिर की वैसी जरूरत महसूस नहीं होती है।"[286]

'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' में पहाड़ी लोगों के देवताओं के बारे में अजय सोडानी बताते हैं कि यहाँ के देवता राक्षस, दानव, जिन्न, रुद्र, नाग आदि का ही परिवर्तित रूप है जिनके अपने खास इलाके हैं, प्रजा है और इन देवताओं के गुरु और चेले होते हैं। हर गाँव का अपना देवता होता है जो गाँव से कुछ दूर रहकर गाँव की रक्षा करता है। भूख लगने पर बलि माँगता है। यहाँ प्रमुख देवता के शासित क्षेत्र में उसके कई मंदिर होते हैं। पहाड़ी लोगों के देवता के बारे में अजय सोडानी कहते हैं कि "यहाँ आज भी ऋग्वेद काल चल रहा है। इनका देवता बुलाने पर आता है, इनके साथ मांस खाता है, शराब पीता है, बलि लेता है, नाचता है। कभी वह इनसे रूठता है तो कभी वादा पूरा न करने पर गाँव वाले इन्हें त्रास भी देते हैं। न तो इनके देवता का कोई आकार मिलता है और न ही सभी देवताओं को घर या मंदिर में रहने का सौभाग्य ही प्राप्त है। कुछ देवता देवालय के बाहर प्रांगण में रहते हैं तो कुछ जंगलों में। कोई ऊँचे पेड़ पर है, कोई पर्वत शिखर पर तो कुछ पहाड़ों के दर्रों पर। वस्तुत: देवता राक्षस, दानव, जिन्न, रुद्र, नाग आदि का ही बदला रूप हैं।"[287]

---

[285] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 42

[286] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 26

[287] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 128

इसी तरह 'अनाम यात्राएँ' में अशोक जेरथ पहाड़ी क्षेत्र मंडी के कमरुनाग देवता व उससे संबंधित स्थानों के बारे में बताते हैं। कमरुनाग मंडी जनपद का बड़ा देवता है जिसका मुख्य मंदिर कमरुनाग झील के किनारे पर्वतीय क्षेत्र में स्थित है लेकिन मंडी जनपद में इसे समर्पित अनेक देवस्थान है। इन देवस्थानों में कमरुनाग के बेटों को पूजा जाता है। जिन्हें टिक्का के नाम से जाना जाता है। माना जाता है कि कमरुनाग स्वयं राजा थे जिससे उनका बेटा टिक्का कहलाया और सभी टिक्के कहलाये इसीलिए इन्होंने प्रदेश विशेष में अपने राज्य स्थापित किए। शिवरात्रि के मेले में कमरुनाग के मंदिर से मंडी ले जाया जाता है और उसके आने के बाद ही मेले की शुरुआत होती है। लेकिन वह मेले में शामिल न होकर मंडी से लगभग एक किमी दूर एक पहाड़ी पर महाकाली मंदिर की परिक्रमा में विराजमान रहता है। इस पहाड़ी को टारना पहाड़ी और इस मंदिर को टारना मंदिर कहा जाता है। टारना देवी के मंदिर में कमरुनाग का मोहरा मेले से एक दिन पहले और शिवरात्रि के दो दिन पहले वहाँ पहुँचता है। इसके संबंध में मान्यता यह है कि जो लोग कमरुनाग की 8500 फीट की ऊँचाई पर जाकर दर्शन नहीं कर पाते वे यहाँ पर श्रद्धा सुमन चढ़ाते है। कमरुनाग मंदिर की पाषाण काल की प्रतिमा पांडव काल की है इसके संबंध में मान्यता है कि कमरुनाग पांडवों के भी आराध्य थे और उन्होंने ही सबसे पहले मंदिर बनाकर इसकी प्रतिमा को स्थापित किया था। यहाँ के पवित्र जलस्त्रोतों और चढ़ावे की परंपरा के संबंध में अशोक जेरथ कहते हैं कि "यह जलस्त्रोत अति पवित्र माना जाता है और कमरुनाग का जितना भी चढ़ावा आता है वह इस सरोवर में डाल दिया जाता है, यहाँ तक कि श्रद्धालु भी चढ़ावा यही चढ़ाते हैं। इस प्रकार जल की सतह पर हजारों की संख्या में नोट तैरते मिलेंगे। सोने-चाँदी के गहने, कंगन, बाले, चूड़ियाँ, अंगूठियाँ आदि सरोवर के तल पर देखे जा सकते हैं। नोटों को तो दूसरे रोज निकालकर, सुखाकर रख लिया जाता है जबकि गहने-गोटे और रेजगारी सरोवर में ही पड़ी रहती हैं।"[288]

बौद्ध धर्म –

'बुद्ध के कमंडल' में कृष्णा सोबती ने लद्दाख के लोगों के धर्म के बारे में बताया है। लद्दाख की यह पुण्य भूमि अहिंसा के प्रचार प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील रही है। यहाँ लद्दाखी बौद्ध दैवी

[288] अशोक जेरथ, अनाम यात्राएँ', पृ. 16

शक्तियों में विश्वास करते हैं। जिसके कारण यहाँ अनेक बौद्ध विहार है जहाँ असंख्य लामा रहते हैं। इन विहारों में अनेक भित्ति चित्र, दुर्लभ मूर्तियाँ और अनेक ग्रंथ बौद्ध धर्म की धरोहर के रूप में संरक्षित है। बौद्ध धर्म के संबंध में लेखिका कहती है कि “बुद्ध इच्छाओं की सीमा से बाहर स्थित हैं। उनसे हम इतना ही माँग सकते हैं कि हम इस जन्म में और अगले में भी अनेक जीवों का भला कर सकें।”[289] ‘सम पर सूर्यास्त’ में सारनाथ में व्याप्त शांति और उससे मिलने वाली आत्मिक शांति के बारे में प्रयाग शुक्ल कहते हैं कि “सारनाथ में ‘कुछ’ है, जो सचमुच मन को शांत और ‘चुप’ कर देता है। यह प्रशांति संग्राहलय के भीतर बुद्ध प्रतिमाओं को देखकर और गहरी होती है। धर्मचक्र परिवर्तन की मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति तो सचमुच अपने में बाँध लेती है। पर, केवल मूर्तियों में ही नहीं, इस स्थल विशेष में ‘कुछ’ है, जिसकी व्याख्या आसानी से नहीं होती। उसे केवल आप अपने भीतर अनुभव करते हैं।”[290]

‘सुनो लद्दाख’ में भी नीरज मुसाफिर ने बौद्ध धर्म के बारे में बताया है। वहाँ अधिकतर बौद्ध लोग ही निवास करते हैं। इसी तरह लद्दाख के लामा पर्यावरण के प्रति बहुत सचेत और सतर्क है। प्रकृति की रक्षा करना वे अपना पहला कर्तव्य मानते हैं उनकी इस पर्यावरण चेतना के कारण ही लद्दाख बहुत ही स्वच्छ और प्रदूषण मुक्त है इसके संबंध में मधु कांकरिया ‘बादलों में बारूद’ में कहती है कि “इनके पाँच रंगों के प्रार्थना ध्वज में सारे रंग प्रकृति के सारे तत्वों की रक्षा के लिए हैं। कई जगह इन्होंने लिखवाया है - ‘लामा के इस देश में गामा (बदमाश) मत बनो।’ लामाओं के प्रभाव से यहाँ कोई मछली नहीं मारता है। लामाओं के आग्रह पर फौजियों ने मछली मारना और हिरणों का शिकार करना भी बंद कर दिया है। पेड़, पर्वत, पर्यावरण, जल, धरती, बादल और हवा के प्रति इनके समर्पण के चलते ही लद्दाख स्वच्छ और प्रदूषण मुक्त है।”[291]

ईसाई धर्म –

मेघालय में ईसाईयों की संख्या बहुत अधिक है और यह निरंतर बढ़ती ही जा रही है जिसे ‘बादलों में बारूद’ यात्रा वृत्तांत में देखा जा सकता है। ईसाईकरण के इस अनुपात को जानने के

---

[289] कृष्णा सोबती, ‘बुद्ध का कमंडल’, पृ. 96
[290] प्रयाग शुक्ल, ‘सम पर सूर्यास्त’, पृ. 31
[291] मधु कांकरिया, ‘बादलों में बारूद’, पृ. 149

लिए यह उदाहरण द्रष्टव्य है- लक्ष्मण कहता है कि "जानती हैं आंटी पिछले पचास वर्षों में मेघालय में ईसाईकरण काफी तेजी से हुआ है । एक सहज उन्मुक्त कबीलाई संस्कृति पर अब चर्च का आधिपत्य बढ़ता जा रहा है ।"[292] इसी तरह केरल के कालड़ी शहर के चर्च और मठों के बारे में लेखिका बताती है कि "ब्राह्मणों की सहायता के लिए मठ तो गरीबी के निचले पायदान पर खड़ी जनता को यहाँ के चर्च खूब मदद करते हैं, शिक्षा में, नौकरी में, बशर्ते कि वे यीशु की शरण में आ जाएं। चर्च यहाँ की संस्कृति के मूल स्तम्भ है। कोचीन में चर्चों की भरमार है। एक किलोमीटर के अंदर तीन चर्च। जगह का नाम ही है इडपल्ली, पल्ली का मतलब है चर्च। तरह-तरह के चर्च। नए-पुराने, अध-पुराने, एक जगह देखा वयस्क यीशु और माँ मरियम। सफेद पत्रों में उकेरी गई मूर्ति जिसे शायद फ्रांसिसी लोगों ने बनवाया था।"[293]

धार्मिक लोक मान्यताएं :-

लोक मान्यता लोक और मान्यता दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है लोक की मान्यताएं । ऐसी मान्यताएं जो लोक द्वारा स्वीकृत और लोक में प्रचलित होती है । वैसे मान्यता व्यक्ति विशेष की भी हो सकती है परंतु जब उसे समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है तब वह लोक मान्यता बन जाती है। इन मान्यताओं की मुख्य कसौटी लोक ही है जिससे इसे लोक की स्वीकृति मिलना जरूरी है । इन लोक मान्यताओं से लोक जीवन की वास्तविक तस्वीर उभरकर सामने आती है । जिससे समय विशेष की लोक चेतना की सही स्थिति का पता चलता है। अगर किसी स्थान विशेष की लोक संस्कृति के हृदय को जानना हो तो लोक मान्यताओं को जानना बहुत जरूरी हो जाता है क्योंकि लोक संस्कृति में लोक मान्यताओं की सुदीर्घ परंपरा रही है जिसमें पुराने और नए दोनों ही प्रकार के तत्व दिखाई देते हैं । इनमें एक तरफ जहाँ परंपरा का अनुसरण दिखाई देता है तो वही दूसरी तरफ इनमें कुछ ना कुछ परिवर्तन भी होते रहते हैं । इन मान्यताओं के विविध रूपों को विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में निम्न रूप में देखा जा सकता है :-

[292] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 93
[293] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 164

भारत में प्राचीनकाल से धर्म को लेकर लोगों में अत्यधिक मान्यताएं रही है। ईश्वर में आस्था और विश्वास के कारण लोग मन्नतें माँगने के लिए बार-बार ईश्वर की शरण में जाते हैं। आज तमाम वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद लोगों की आस्थाएं, विश्वास, अंध-विश्वास, पाप-पुण्य की अवधारणा हर जगह देखने को मिल जाती है। 'सफर एक डोंगी में डगमग' में राकेश तिवारी जब दिल्ली के ओखला हेड से डोंगी लेकर निकलते हैं तो रोली, अक्षत, हल्दी, दूब, नारियल आदि से पूजा अर्चना करने के बाद यात्रा की शुरुआत की जाती है। जब डोंगी चलने वाली होती है तब वे कहते हैं कि "रोली, अक्षत, दूब और नारियल से सुसज्जित थाल आया। मंत्रोच्चारण के साथ डोंगी के सिरे पर नारियल फोड़ा गया। रोली-हल्दी लगी, चावल और फूल चढ़े। हमारे माथों पर तिलक लगा, मालाएँ पहनाकर अक्षत छिड़का गया। शुभकामनाओं, आशीर्वादों के साथ डोंगी खुलते ही तेज धारा में तीर-सी निकल चली।"[294]

'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया बताती है कि सिक्किम के कवी-लोंग स्टॉक व अन्य स्थानों के बारे में मान्यता है कि अगर यहाँ स्थित धर्म चक्र को घुमाया जाए तो उससे सारे पाप धुल जाते हैं। लेखिका जब यूमथांग के लिए जाती है तब इसके संबंध में लिखती है कि "उन्हीं रास्तों पर देखा- एक कुटिया के भीतर घूमता चक्र। यह क्या ? नार्गे कहने लगा – यह धर्म चक्र है। प्रेयर व्हील। इसको घुमाने से सारे पाप धुल जाते हैं।"[295] इसी तरह कटाओं से लौटते समय रास्ते में चावल की खेती के बारे में बताते हुए जीतेन कहता है कि "मैडम, यहाँ एक पत्थर है जिस पर गुरुनानक के फुट प्रिंट हैं। कहते हैं यहाँ गुरुनानक की थाली से थोड़े चावल छिटककर गिर गए थे। जिस जगह चावल गिरे थे, वहाँ चावल की खेती होती है।"[296] वही आगे भी खेदुम क्षेत्र के बारे में बताता है कि "मैडम इसे खेदुम कहते हैं। यह पूरा लगभग एक किलोमीटर का एरिया है। यहाँ देवी-देवताओं का निवास है, यहाँ जो गंदगी फैलाएगा, वह मर जाएगा।"[297]

आज भी मन्नतें पूरी करने के लिए पशुबली दी जाती है। इस प्रथा को शिलोंग में देखा जा सकता है इस भयावह प्रथा के बारे में 'बादलों में बारूद' यात्रा वृत्तांत का उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें

---

[294] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 26
[295] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 58
[296] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 68
[297] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 69

कार का ड्राईवर लेखिका को बताता है कि "पशुबलि तो बहुत आम चीज है। एक समय तो हम लोग नरबलि तक चढ़ाते थे। हम लोगों का भी अपना राजा होता था और अपना राज्य भी। मजाल कोई बाहरी हमारे कबीले में घुस जाए।"[298] 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में उमेश पंत पूर्वोत्तर की कई मान्यताओं के बारे में बताते हैं। गुवाहाटी के कामाख्या मंदिर को लेकर माना जाता है कि जून के महीने में तीन दिन कामाख्या माता रजस्वला होती है जिसके कारण वहाँ के कुंड में पानी की जगह रक्त बहने लगता है और पानी का रंग लाल हो जाता है। साथ ही यहाँ मंदिर के कपाट बंद होने से पहले यहाँ सफेद कपड़ा बिछाया जाता है जिसे यहाँ आए श्रद्धालुओं को प्रसाद के रूप में लाल कपड़ा दिया जाता है और इसे अंबुवाची प्रसाद कहा जाता है। उमेश पंत कहते हैं कि "मान्यता है कि यह कपड़ा माता के रक्त से लाल हुआ है। यह भी रोचक है कि मंदिर में कोई मूर्ति नहीं है। यह एक चट्टान है जिसमें जिसमें योनि का आकार बना हुआ है। 17वीं सदी में बिहार के राजा नारा नारायणा ने यह मंदिर बनाया और अब देशभर से यहाँ लोगों का जमावड़ा लगा रहता है।"[299]

गगन गिल ने 'अवाक्' यात्रा वृत्तांत में कैलाश मानसरोवर की यात्रा से जुड़ी अनेक कथाओं का उल्लेख किया है। हिन्दू और बौद्धों में कैलाश-मानसरोवर के दर्शन ही पुण्यकारी माने जाते हैं। कैलाश पर्वत के साथ भारतीय पुरातन ग्रंथों में अनेक कथाएँ जुड़ी हुई है जैसे- रामायण और महाभारत में जिक्र आता है कि रावण ने यहाँ पर ही तपस्या करके वरदान प्राप्त किया था लेकिन बाद में आसुरी शक्तियों का पता चलने के बाद पार्वती-गणेश ने उसे वापस लेने का उपक्रम किया था। इसी तरह अर्जुन ने यहाँ तपस्या करके भगवान शिव से पाशुपत अस्त्र का वरदान प्राप्त किया था व युधिष्ठिर भी यहाँ से ही सशरीर स्वर्ग में गए थे। इसी तरह यहाँ की राक्षस ताल झील से जुड़ी हुई भस्मासुर की कथा के संबंध में लेखिका लिखती है कि "भस्मासुर का कांड यही हुआ था। छू कर भस्म कर देने का वरदान लेकर असुर शिव पर ही उसका प्रयोग करना चाहता था। इन्हीं पर्वत-शृंखलाओं में भोले शंकर जान बचाने को भागे-भागे फिरे थे। मानसरोवर की जुड़वाँ झील को आज भी राक्षस ताल कहते हैं।"[300] राक्षस ताल के संबंध में यह मान्यता भी है कि यहाँ बुरी आत्माएं निवास करती है। लेखिका भी इन आत्माओं में विश्वास करती है तभी वह कहती है कि "दूसरी तरफ

[298] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 93
[299] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 48
[300] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 24

राक्षस ताल है। लोग वहाँ नहीं जाते। कहते हैं कि बुरी आत्माएं रहती हैं वहाँ, हमें क्यों जाना ? अच्छी के साथ रह लें, वही बहुत है।"[301] इसी तरह मानसरोवर के संबंध में मान्यता है कि "मानसरोवर में रात के दो बजे, ब्रह्म मुहूर्त में देवता स्नान करने आते हैं... देवता और तारे... ऐसा विश्वास है।"[302]

पांगणा करसोग उपमंडल में अति उपजाऊ सांस्कृतिक स्थल माना जाता है जहाँ पर जगह-जगह श्रद्धा स्थल और स्थापत्य के अद्भुत स्वरूप देखने को मिलते हैं। इसके संबंध में मान्यता है कि पांडव अपने अज्ञातवास के समय काफी दिनों तक यहाँ रहे थे जिससे यहाँ का नामकरण पांडवों के नाम से आंगन पांगण कहा जाता है। इसी धारणा के कारण ही पास के प्राचीन शिव मंदिर को पांडव मंदिर कहा जाता है। इस मंदिर के पास ही महिषासुरमर्दिनी का मंदिर भी है जिसके संबंध में अनेक मान्यताएं लोगों में व्याप्त है। इस मंदिर के संबंध में लोगों की मान्यताओं को बताते हुए अशोक जेरथ कहते हैं कि "अक्सर लोग कील-मुहासों से छुटकारा पाने यहाँ आते हैं और लोहे की कील अथवा कांटे से कील का रक्त निकालकर उस लोहे की कील को किसी सिक्के के साथ मंदिर की प्रदक्षिणा में पड़े शहतीर पर गाड़ दिया जाता है। लोक आस्था है कि इससे कील-मुहाँसों से छुटकारा मिल जाता है।"[303]

'दर्रा-दर्रा हिमालय' में अजय सोडानी दर्रों की मान्यताओं के बारे में बताते हैं कि दर्रों व पर्वतों के शिखर पर ईश्वर का वास होता है। इसी के कारण वे दर्रों पर हल्की फुलकी पूजा करके ही आगे बढ़ते है। कालिंदी खाल दर्रे पर भी पहुँचने के बाद नवीन और रनी अनान्नास, काजू और किसमिस के टुकड़े वहाँ बनाए गए पूजा स्थल पर रखते हैं और सब हाथ जोड़कर नमन करते हैं। उस समय के कौवे के रूप में ईश्वरीय स्वरूप के प्रकट होने के संबंध में अजय सोडनी बताते हैं कि "धरा के उस स्थल पर जहाँ दूर-दूर तक हमारे सिवा कोई नहीं था – खड़ा पत्थर के पश्चात पिछले कई दिनों में हमें न तो कोई चौपाया दिखा था न ही कोई परिंदा – वहाँ, एक कौआ – पीली चोंच वाला कौआ – अचानक ही प्रकट हुआ, उसने किसमिस खाई, अनान्नास पर मुँह मारा, काजू के

---

[301] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 114

[302] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 122

[303] अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएँ', पृ. 34

टुकड़े को चोंच में दबाया और ओझल हो गया, पुन: उसी शून्य में जहाँ से वह आया था। यह क्या था ? यह कैसे हुआ ? मालूम नहीं, लेकिन सब को लगा कि यह जरूर कोई ईश्वरीय संकेत है – आशीर्वाद है।"[304] इसी तरह पहाड़ी लोगों की मान्यता है कि जब देवता उनसे नाराज होते हैं या उनका अपमान किया जाता है तब ही संकट आता है 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' में अजय सोडानी बताते हैं कि "यहाँ तो यह मान्यता है कि देवता नाराज हों तब ही पहाड़ कहर ढाता है। सब का मत है कि आपसे देवता का कहीं तो अपमान हुआ होगा, अतः आपको उससे क्षमा माँगनी चाहिए। हम बाल-बच्चों की जान अब आपके हाथों में है।"[305]

धार्मिक पाखंडों पर प्रहार :-

धर्म प्राचीनकाल से ही भारतीय जन-जीवन का नियंत्रक और नियामक रहा है जिसने हमेशा मनुष्य को सद्मार्ग दिखाते हुए परंपरा एवं जीवनादर्शों को गहराई से प्रभावित करते हुए पथ-प्रदर्शन किया लेकिन धीरे-धीरे बाह्य विधि-विधान, मिथ्या आडंबर, रीति-रिवाज, अंधविश्वासों के कारण इसमें अनेक बुराईयों का प्रवेश हो गया। समाज में व्याप्त इन धार्मिक अंधविश्वास और पाखंडों के बारे में भी विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में चित्रण किया गया है। 'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया ने बताया है कि दक्षिण भारत के अधिकांश मंदिरों की तरह ही शंकराचार्य के मंदिर में कमर के ऊपर वस्त्र धारण करना वर्जित है। यहाँ के गर्भगृह में कमर के ऊपर के वस्त्र पहनकर नहीं जा सकते और मूरत की तरफ पीठ नहीं कर सकते। वापस आने के लिए उल्टा चलना होता है। इसी तरह मंगोलियन आदिवासियों के बारे में लेखिका बताती है कि वे जादू-टोना, बाह्य आडंबर में बहुत ज्यादा विश्वास करते हैं। सुंदरवन के मछुआरों में भी अंधविश्वास है कि जब तक उनकी पत्नी पतिव्रत धर्म का पालन करती है तब तक ही वे सुरक्षित है। ये मछुआरे जब जाल लेकर नौका तक आते हैं तो यदि नौका के आगे कुछ रखा हुआ है तो ये उसे लांघते नहीं है बल्कि दूसरी और चले जाते हैं। इसी तरह बाघ की पूजा ये इसीलिए करते हैं कि बाघ की पूजा करने से वे नुकसान नहीं पहुँचाते। 'खरामा-खरामा' में बलि प्रथा के बारे में बताया गया है कि इस आधुनिकता के युग में भी लोग देवी-देवताओं को खुश करने के लिए जानवरों की बलि देते हैं। पहाड़ों की अधिष्ठात्री नंदा

[304] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 60
[305] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 174

देवी के मंदिर में मुर्गे, बकरी को छोड़कर भैसें की बलि दी जाती है। गुजरात के हिन्दू मंदिरों के बारे में भी लेखक को बताया जाता है कि यहाँ केवल हिन्दू ही प्रवेश ले सकते हैं। यहाँ धर्म के आधार पर भेदभाव किया जाता है।

इस प्रकार देख सकते हैं कि धर्म संस्कृति का एक प्रमुख अवयव है जिसने समाज के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। धर्म के सर्वप्रमुख रूप अहिंसा, सदाचार, सत्य, दान देना, दया, संतोष आदि हैं जो व्यक्ति की उन्नति और कल्याण में सहायक होते हैं। धर्म के दूसरे रूप संप्रदाय, पंथ, मत व मजहब के बारे में बताया गया हैं जिसमें पंथ व संप्रदायों की आचार-संहिता होती है। लोक धर्म में समाज में प्रचलित विश्वासों, आचारों, मान्यताओं आदि के बारे में बताया गया है। धर्म के इन सभी रूपों को विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में दिखाने का प्रयास किया गया है।

4.6 दर्शन :-

दर्शन एवं संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है। यह जीवन का आधार है और जीवन के प्रत्येक पहलू का इस पर प्रभाव पड़ता है। संसार क्या है ? मानव कौन है ? संसार किस तरह चलता है ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर दर्शन देता है। यह जीव, ब्रह्मा और जीवन के गूढ़ रहस्यों से संबंधित है। दर्शन शब्द देखने से जुड़ा हुआ है। "'दर्शन' शब्द 'दृश' (देखना) धातु के करण अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय लगा कर बना है। जिसका अर्थ है 'जिस के द्वारा देखा जाय'।"[306] इसका एक अर्थ है देखने की क्रिया और दूसरा अर्थ है दृष्टिकोण। दोनों अर्थ एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। देखने की क्रिया से ही देखी जा रही वस्तु के प्रति कोई दृष्टिकोण बनता है। दृष्टिकोण एक पारिभाषिक शब्द है और यह एक तरह से विचार के अर्थ का बोधक है। दर्शन शब्द भी विचार का लगभग समानार्थी है और इस तरह से दर्शन और दृष्टिकोण दोनों समान अर्थ की ओर इशारा करते नज़र आते हैं।

'देखने की क्रिया' दर्शन का सामान्य अर्थ है और 'दृष्टिकोण' विशिष्ट। दर्शनशास्त्र नामक विषय के सिद्धांत इसके विशिष्ट अर्थ, यानी दृष्टिकोण से जुड़े होते हैं। लक्षित वस्तु के अस्तित्व से जुड़े हुए तथ्यों पर विचार विमर्श करते हुए उसके विषय में कोई दृष्टिकोण निर्धारित कर लेना दर्शन को जन्म देता है। और वह दृष्टिकोण ही दर्शनशास्त्र का सिद्धांत कहा जाता है।

---

[306] उमेश मिश्र, 'भारतीय दर्शन', पृ. 05

दर्शन के अंतर्गत प्रथमतया सृष्टि और उसके नियामक के अस्तित्व पर विचार विमर्श हुआ। आत्मा, परमात्मा और जगत की उत्पत्ति, इनके अस्तित्व और आपसी संबंधों की खोज करने वाले विचारों को दर्शन की संज्ञा दी गयी। इन पर विचार के क्रम में दो तरह की विचारधाराएँ सामने आयीं- आदर्शवाद और यथार्थवाद। आदर्शवाद आस्तिकतावादी विचारधारा है और यह मानकर चलती है कि सृष्टि के मूल में ईश्वर है। यथार्थवादी विचारधारा सृष्टि की उत्पत्ति में किसी ईश्वर का हाथ नहीं स्वीकार करती, वह ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करती। इस तरह से दर्शन की दो विचारधाराएँ सामने आयीं और बाद में सारे दार्शनिक सिद्धांत इन्हीं दोनों विचारधाराओं से निकले।

जीवन को देखने का दृष्टिकोण प्रथमतय आदर्शवादी या आध्यात्मवादी ही रहा। यथार्थवादी दृष्टिकोणों का विकास बाद में विज्ञान के प्रभावस्वरूप होने लगा। यथार्थवादी दृष्टिकोणों में सृष्टि के नियामकों में से ईश्वर को निकाल दिया गया। उसके बाद सृष्टि के विकास की वैज्ञानिक व्याख्या करने की कोशिशे की जाने लगीं। पर सृष्टि के विकास के कोई शुरूआती साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं, अतः अतीत के संदर्भ में ये व्याख्याएं भी अनुमानाश्रित ही होती रहीं, हाँ, जहाँ से साक्ष्य मिलने लगते हैं, वहाँ ये ज़रूर तथ्यात्मकता को लेकर चलती है। उदाहरण के तौर पर मार्क्सवाद, लैमार्कवाद और डार्विनवाद को देखा जा सकता है। फिलहाल यहाँ यह बात महत्वपूर्ण है कि दर्शन ने ईश्वरीय सत्ता से आगे बढ़कर प्राकृतिक या मानवीय सत्ता को भी अपने विषय-क्षेत्र में समेटा। "'दर्शन' एक तथ्यपरक सत्य की खोज है। उपलब्धि के बाद इससे मिलने वाले एक आत्मतोष के अतिरिक्त एक विशुद्ध विज्ञान और एक संस्कार के रूप में मानव मन के लिए सर्वोत्कृष्ट और स्वस्थतम परिष्कार है। उस असीम को अन्वेषण, उस असीम को पाने का प्रयास ही तो दर्शन का मुख्य विषय है।"[307]

सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास के नियमों से आगे निकलकर दर्शन ने धीरे-धीरे संसार की सभी प्रक्रियाओं को अपने क्षेत्र में समेटा। अब किसी भी वस्तु, घटना, दृश्य, कार्य, स्थिति या परिस्थिति पर एक दर्शन निर्मित किया जा सकता है अगर इन सबकी एक प्रक्रिया हो तो जीवन एक

[307] डॉ. जगदीशचंद्र मिश्रा, 'भारतीय दर्शन', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 04

प्रक्रिया है, अतः इसका दर्शन जीवन-दर्शन कहलाता है। हर व्यक्ति का जीवन-दर्शन अलग-अलग हो सकता है।

'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया का दार्शनिक भाव हर जगह दिखाई देता है। सिक्किम के प्राकृतिक सौन्दर्य और गायों को चराकर लौट रही पहाड़ी औरतों के सिर पर रखे भारी-भरकम गट्ठर को देखकर प्रकृति और मानव श्रम के सौन्दर्य पर लेखिका अभिभूत हो जाती है। वह वही तिस्ता नदी के किनारे बिखरे पत्थरों पर बैठ जाती है। वहाँ बहते झरने और कल-कल बहती तिस्ता नदी, वातावरण की अद्भुत शांति में लेखिका का दार्शनिक भाव जागृत हो उठता है वह कहती हैं कि "आँखें अनायास भर आईं। ज्ञान का नन्हा-सा बोधिसत्व जैसे शरीर के भीतर उगने लगा..वही सुख-शांति और सुकून है जहाँ अखंडित संपूर्णता है - पेड़-पौधे, पशु और आदमी - सब अपनी-अपनी लय, ताल और गति में हैं। हमारी पीढ़ी ने प्रकृति की इस लय, ताल और गति से खिलवाड़ कर अक्षम्य अपराध किया है। हिमालय अब मेरे लिए कविता ही नहीं, दर्शन बन गया था।"[308] सिक्किम के प्राकृतिक सौन्दर्य और हिन्दुस्तान के स्विट्ज़रलैंड कटाओ के पहाड़ों, वादियों और घाटियों को देखकर लेखिका का दार्शनिक भाव जागृत होने लगता है वह कहती है कि "संपूर्णता के इन क्षणों में यह हिम-शिखर मुझे मेरे आध्यात्मिक अतीत से जोड़ रहे थे। शायद ऐसी ही विभोर कर देने वली दिव्यता के बीच हमारे ऋषि-मुनियों ने वेदों की रचना की होगी। जीवन सत्यों को खोजा होगा। 'सर्वे भवन्तु सुखिन: का महामंत्र पाया होगा। अंतिम संपूर्णता का प्रतीक वह सौन्दर्य ऐसा कि बड़ा से बड़ा अपराधी भी इसे देख ले तो क्षणों के लिए ही सही 'करुणा का अवतार' बुद्ध बन जाए।"[309]

शिलोंग के सौन्दर्य को देखकर भी लेखिका का यही भाव दिखाई देता है वह लिखती है कि "शायद यह सौन्दर्य का मन और चेतना पर पड़ने वाला प्रभाव था जिसने मेरे जीव को देश और काल की सभी सरहदों से दूर, आगत और अनागत के उस बिन्दु पर पहुँचा दिया था जहाँ मैं 'मैं' नहीं उजालों का कोई गुच्छा भर थी।"[310] दार्शनिक बोध का संबंध अनुभूति, विचार और अनुभव तथा

---

[308] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 63

[309] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 66

[310] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ 99

संकल्प के क्षेत्र से होता है। यह देश विशेष के सांस्कृतिक क्रियाकलापों और अनुभूतियों, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक चिंतन, कला और सौन्दर्योपासना, नैतिक व्यवहार के मानदंडों का विश्लेषण और व्याख्या करने वाला माध्यम है। दर्शन का लक्ष्य मानव व्यक्तित्व को अधिकाधिक परिष्कार करके मानव जीवन से संबंधित चरम मूल्यों की प्रकृति का विश्लेषण और प्रतिष्ठापन है।

'अवाक्' में गगन गिल का दार्शनिक भाव जगह-जगह दिखाई देता है। जब वह कैलाश मानसरोवर की यात्रा पर जाती है तो यात्रा शुरू करते समय ही कहती है कि "कौन मुझे बुला रहा है?

हर बार रूक जाती हूँ। हर पेड़ के पास जाती हूँ। वे सब झुरमुट में खड़े हैं। या नहीं, यह भी नहीं।

आखिर वह दिख जाता है। पहचान में आ जाता है।"[311]

आगे भी वह इसी भाव में उससे पूछते हुए कहती है कि "सुनो, क्या मैं तुम्हें जानती हूँ ? किसी दूसरे समय से ? कौन हो तुम ?

अगर कोई वृक्ष-भाषा है, तो उसने मुझे कुछ बताया है, यह वनस्पति नहीं, कोई व्यक्ति है, वनस्पति में छिपा कोई देवता नहीं, कोई मनुष्य, जो वनस्पति-योनि भोगने यहाँ आ गया है।

पता नहीं, मैं इसे कब जानती थी।"[312]

'दर्रा-दर्रा हिमालय' में अजय सोडानी जब श्वेता ग्लेशियर से आगे निकलकर चंद्रपर्वत के शिखर पर बैठ जाते हैं और वहाँ फुदकती चिड़ियों को पहचानने की कोशिश करते हैं। उन्हीं सब दृश्यों को देखते हुए वे दार्शनिक भाव से कहते हैं कि "गुजरते क्षण और आते क्षण के मध्य में जो एक छुपा हुआ स्पंदनहीन अंतराल है, आती और जाती साँस के मध्य जो एक निष्कंप ठहराव है, उसको महसूस करने की चेष्टा करें। गति से अभिभूत हम लोग उस ठहराव की आदतन उपेक्षा करते

[311] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 36
[312] गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 36

हैं, जबकि मुझे लगता है कि जिस आनंद की खोज में हम सब भाग रहे हैं वह तो उसी ठहराव में छुपा हमारा इंतजार कर रहा होता है।"[313]

इस प्रकार स्पष्ट है कि दर्शन का अर्थ दृष्टिकोण या विचार से है। किसी भी वस्तु, घटना या दृश्य के प्रति किसी व्यक्ति के दृष्टिकोण या व्यवस्थित विचार को उस वस्तु, घटना या दृश्य का दर्शन कहा जाता है और यही दार्शनिक दृष्टिकोण विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में जगह-जगह दिखाई देता है।

4.7 नैतिक मूल्य :-

नैतिक मूल्य वे हैं जो समाज को उचित मार्ग की ओर उन्मुख करते हैं। समाज में अनेक आचार-विचार और नैतिक मान्यताएं व्याप्त रहती है जिसका प्रभाव हर समाज में दिखाई देता है। "मूल्य संश्लिष्ट होकर ही संस्कृति बनाते हैं। भारतीय संस्कृति के मूल्यों में सत्य, अहिंसा, धर्म, सहिष्णुता, प्रेम, उदारता, निर्भयता, संयम, करुणा, आध्यात्मिकता, सदाचार, समत्व-बोध, जीवन का नियमन करने वाले आचार या शील, कला, साहित्य, प्रकृति आदि आते हैं।"[314] भारतीय संस्कृति में आतिथ्य सत्कार की परंपरा रही है। 'अनाम यात्राएं' में अशोक जेरथ जब जगदीश शर्मा के घर जाते हैं तो उनके आतिथ्य सत्कार व स्नेह से अभिभूत हो जाते हैं वे उनके संबंध में कहते हैं कि "डॉ. जगदीश शर्मा बहुत चेतनशील प्राणी लगे- अपनी संस्कृति और विरासत के आग्रही। आगे बढ़कर अनेक सूचनाएँ एक के बाद एक कर दे डालीं मानो सारी संपदा आज ही लूटा देना चाहते हों। इतने में जल से भरे गिलास लेकर उनकी श्रीमती जी आई - बहुत स्नेह से मिलना हुआ। स्मित मुस्कान के साथ स्वागत और आत्मीय अभिनंदन उनकी खिलती आँखों में पढ़ा जा सकता था। हम मंदिर जाने को तैयार हुए पर उन्होंने रोक लिया - खाना तैयार है, खाकर जायें।"[315]

इसी तरह 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख' में भी कृष्णा सोबती ने लद्दाख के लोगों के आतिथ्य सत्कार के बारे में बताया है। ये लोग मिलते ही जुले-जुले या गुड मॉर्निंग कहकर अभिवादन करते हैं। लद्दाख की इस पुण्य भूमि पर गुरु शिष्य का घनिष्ठ संबंध है। गुरु अपने शिष्य के प्रति आत्मीयता का भाव रखते हैं और शिष्य भी उन्हें माता-पिता की तरह मानते हैं। बौद्ध धर्म शांति, प्रेम और

---

[313] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 49-50

[314] प्रभाकर क्षोत्रिय, 'कालिदास में भारतीय संस्कृति', समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2010, पृ.149

[315] अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएँ', पृ. 32

साधना का धर्म है और यहाँ बौद्ध धर्म की प्रधानता होने के कारण लद्दाखी अनेक नैतिक मूल्यों का पालन करते हैं। कृष्णा सोबती बताती है कि "बौद्ध धर्म के अनुयायी याद रखते हैं - अच्छे काम करो, बुरे विचारों से दूर रहो, आत्मा के लिए ध्यान करो।"[316] 'सुनो लद्दाख' में नीरज मुसाफिर बताते हैं कि लद्दाखी जुले-जुले कहकर अभिवादन करते हैं और अतिथि की सेवा के लिए हमेशा तैयार रहते हैं।

इसी तरह 'इरिणालोक' में कच्छी और गुजराती लोगों के व्यवहार और आचरण के बारे में अजय सोडानी को स्थानीय नागरिक बताते हैं। जब वे पूछते हैं कि जिस समय गुजरात में दंगे हुए और लोगों को मारा-काटा गया उस समय लोगों के क्या हाल रहे होंगे। तब कच्छ निवासी कहता है कि "साहब, यह कच्छ है, गुजरात नहीं। यहाँ सब अपने हैं, पराया कोई नहीं। सच्चा कच्छी घर आए अनजान को भी बिना चाय पिए जाने नहीं देता। जो जरूरत हो तो खाने, सोने का इंतजाम भी कर देता है।"[317] इसमें कच्छी लोगों के प्रति विशेष लगाव दिखाई दे रहा है।

इस प्रकार देख सकते हैं कि नैतिक दृष्टि से संस्कृति का संबंध नैतिकता, सच्चाई, ईमानदारी, आदर्श, नियमों एवं सद्गुणों से है। इसमें संस्कृति का संबंध उन वस्तुओं से है जो मानव जीवन को आनंद प्रदान करती है, जो सुंदर है, ज्ञान से संबंधित है, सत्य है और मानव के लिए कल्याणकारी तथा मूल्यवान है।

4.8 खानपान :-

खानपान या आहार-पद्धति सामाजिक जीवन व किसी भी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जो कि देशकाल के अनुसार परिवर्तित और परिवर्द्धित होती रहती है। भारत में अगर देखा जाए तो यहाँ सामिष और निरामिष दोनों ही तरह का खानपान प्रचलन में है। यहाँ पर विद्यमान विविध क्षेत्रों का विभिन्न प्रकार का खानपान सांस्कृतिक विविधता को दिखाता है। विभिन्न क्षेत्रों के खानपान का चित्रण विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में हुआ है।

[316] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 56
[317] अजय सोडानी, 'इरिणालोक' पृ. 75

ग्रामीण क्षेत्रों में नाश्ता खेतों से प्राप्त या साधारण चीजों का ही किया जाता है। हरिराम मीणा जब राजस्थान के दक्षिणी इलाकों में जाते हैं तो वे भी खेतों से ही भुट्टे और काचरे लाकर उसी का नाश्ता करते हैं वे कहते हैं कि "काचरे की बेलों में चार-पाँच काचरे मिल गये। मैं फूँट की तलाश में था। फूँट दरअसल पके हुए काचरे को कहते हैं, जिसका गूदा नरम व हल्का पीला पड़ जाता है। यह गूदा रंवादार होता है। खाने में मजेदार। ऐसी फूँट नहीं मिली। हमने वही नाश्ता किया। मौसम के फल, अन्न व तरकारी स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। शहरी जीवन में अब यह शौक मात्र है, जबकि ग्रामीण जीवन में उपलब्धता आधारित आवश्यकता।"[318]

इसी तरह आदिवासी पहले भोजन घास के दानों का करते थे। लेकिन आगे चलकर मक्का की रोटी बनाकर खायी जाने लगी। पालचितरिया गाँव में डी.एस. बटी, कुरी और कोदरा की घास को देखकर उसके बारे में बताते हैं कि "मीणा जी, यह बटी है और कुरी और यह देखो, कोदरा है। इन घासों के दाने ही आदिवासियों का मूल-भोजन हुआ करता था। मक्की तो बहुत बाद में आयी।"[319]

इसी तरह 'बादलों में बारूद' में भी लेखिका जब आदिवासियों से मिलती है तो पता चलता है कि वहाँ के लोगों का मुख्य भोजन मकई, गुंडली और हड़िया ही है। लक्ष्मण जी की पत्नी बताती है "हम लोग सिर्फ धान, मुंडुआ, मकई और गुंडली जैसे धान के अलावा कुछ नहीं जानते।"[320]

आदिवासी शिकार करके भी काम निकाल लेते हैं। वो आज भी पारंपरिक रूपों को अपनाए हुए है। सुक्का दा बताते हैं कि "हाँ, हिरण, मृग और जंगली सूअर का शिकार करते हैं। जब भी जानवरों का पता चल जाता है, तीर-धनुष लेकर निकल पड़ते हैं।"[321] उमेश पंत 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में गुवाहाटी के एक रेस्टोरेंट में शीला के साथ असम की खास थाली का ऑर्डर देते हैं तो वहाँ के खाने के संबंध में वे बताते हैं कि "तांबे के बर्तन में करीने से सजी कटोरियों में परोसी गई कई तरह की सब्जियाँ थीं, चावल था। शीला ने बताया कि इनके नाम चोखा, फिश टेंगा, माशोल झोल, बैगुन

318 हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 53
319 हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 79
320 मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 18
321 मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 18

भाजा, भात और डाइल हैं।"[322] प्रयाग शुक्ल जब जामनगर से दमन दीव जाते हैं तो रास्ते में कणंजा में गुजराती भोजन करते हैं वहाँ के खाने के बारे में वे कहते हैं कि "कणंजा का वह भोजनालय, मानो रात के सफर वालों के लिए ही बना था। एक और खड़े थे ट्रक, दो-तीन गाड़ियाँ भी थीं, खुले में लगी थीं कोई सौ-पचास टेबलें, रोशनी भी खूब थी...हमने एक टेबल पर कब्जा जमाया..बाजरे की रोटी, कढ़ी, करेला, दही, खिचड़ी..यह हमने मँगाया, मैंने प्रेम से खाया, पर रफीक को लगा कि भोजन मुझे रुचा नहीं है क्योंकि रोटी मैंने आधी ही ली थी।"[323]

केरल में पेड़ की छाल से एक विशेष प्रकार का पानी बनाया जाता है जिसे करिन्गाली कहते हैं। बाल साहित्य पर आयोजित कार्यशाला में भाग लेने के लिए प्रयाग शुक्ल जब केरल जाते हैं तो वहाँ उन्हें ये पानी पीने के लिए दिया जाता है। आजकल इसकी जगह बाजार में बना बनाया पाउडर भी मिलने लगा है इसके प्रयोग को लेकर लेखक कहते हैं कि "उन्होंने यह भी बताया कि पेड़ की इस छाल की अपनी 'मेडिसिनल वैल्यू' है, और इसलिए भी इसे पानी में मिलाया जाता है। यह जानकारी भी दी कि पहले तो लोग स्वयं इसे पीसते थे और पानी में डालने लायक बनाते थे, पर, अब इसका पाउडर बना-बनाया मिलने लगा है, और अब घरों में तो जीरा, अदरख(चुकू) या करिंगली डालकर लोग कम ही उबालते हैं फिर भी यह सामाजिक जीवन से चला नहीं गया है, यह तो आप देख ही रहे हैं।"[324] 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में उमेश पंत हॉर्नबिल उत्सव में बाँस के बर्तनों में पियी जाने वाली राइस बियर के बारे में बताते हैं। चावल के किंणवन से बनने वाली यह शराब इस इलाके में हर उत्सव या शुभ कार्य में परोसा जाने वाला जरूरी पेय है।

अशोक जेरथ जब मंडी में जगदीश शर्मा के घर पर खाना खाते हैं तो वहाँ के इस स्थानीय भोजन के संबंध में बताते हैं कि "मंडियाली बड़ी, कढ़ी, दाल, चावल और चपाती के साथ सलाद बहुत स्वादिष्ट था। इनमें से अनेक खाद्य वस्तुएँ घर की उपज थीं। सलाद में गठ गोभी, मूली और खीरा, चावल, आलू सभी घर का ही था, मात्र दाल बाजार की थी। यहाँ तक की बड़ियाँ भी घर में

[322] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 49
[323] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 37
[324] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 43

ही बनाई गई थी ।"[325] इसी तरह किन्नोरी शादी को देखने के लिए लेखक जब सूरज सिंह जी के साथ संगला के पास गाँव में जाते हैं तो वहाँ उन्हें विशेष पेय घंटी पीने के लिए दिया जाता है। जो कि अनाज और चूली से बनती है और इसका यहाँ के अनुष्ठानों में विशेष योगदान रहता है। यहाँ घंटी हर घर में बनाई जाती है और इसे बनाने के लिए एक्साईज विभाग परमिट भी प्रदान करता है। इसके संबंध में सूरज सिंह बताते हैं कि "शायद आपको हैरानी हो रही हो – यह पेय हमारे अनुष्ठानों का अभिन्न अंग है। देवी-देवताओं को तो इसे चढ़ाया ही जाता है, अथच हर खुशी-गम के अवसर पर इसका भरपूर उपयोग किया जाता है। शादी में तो ड्रमों के ड्रम इसके लगते हैं और किसी को यह कहना कि घंटी खत्म हो गई – उस व्यक्ति का निरादर करना है और अपनी दरिद्रता का आह्वान। अतः खूब खुलकर इसका उपयोग होता है।"[326]

इस प्रकार से विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में क्षेत्र विशेष के खानपान के बारे में बताया गया है जिससे एक तरफ जहाँ स्थानीय भोजन का पता चलता है वही दूसरी तरफ इससे लोगों के जीवन-स्तर के बारे में भी जानकारी मिलती है।

4.9 रहन-सहन :-

रहन-सहन भी संस्कृति व समाज से हमें जोड़े रखता है। विभिन्न क्षेत्रों को अगर देखा जाए तो प्रत्येक प्रदेश के व्यक्तियों की अपनी अलग-अलग आवासीय अभिरुचियाँ हैं। हरिराम मीणा 'जंगल-जंगल जलियांवाला' यात्रा वृत्तांत में राजस्थान के आदिवासी और गैर आदिवासी लोगों के मकानों के बारे में लिखते हैं कि "गैर आदिवासी लोगों के मकान बंद किस्म के मिलेंगे। उनमें सदर दरवाजा होगा । दोनों तरफ बाउंड्री होगी । यह सब सुरक्षा की दृष्टि से किया जाता है और गैर आदिवासियों के घर देखें तो अलग-अलग दूर-दूर टेकरियों पर झोंपडीनुमा बने होते हैं। खुले-खुले होते हैं।"[327]

---

[325] अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएँ', पृ. 32

[326] अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएँ', पृ. 77

[327] हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 80

अनिल यादव 'वह भी कोई देस है महराज' में माजुली द्वीप पर रहने वाले मिशिंग आदिवासियों के बारे में बताते हैं। ये झोपड़ियों में रहकर कपड़ों की बुनाई का कार्य करते हैं। वे कहते हैं कि "मिशिंग आदिवासियों के गाँव में झुंड के झुंड नंगे-अधनंगे बच्चे थे जिनकी उजली हँसी ही सामाजिक कहा जाने लायक इकलौता परिधान थी। झोपड़ियों में घर के वयस्क दुनिया के सबसे महीन, बेशकीमती कपड़े बुन रहे थे। एक मरियल-सी औरत छातियों तक एक लुंगीनुमा चीथड़ा (मेखला) बाँधे अपनी झोपड़ी के नीचे करघे पर मूंगा बुन रही थी। सामने ईसा का कैलेंडर फड़फड़ा रहा था। बाहर उसके पति और बच्चे एक-दूसरे के सिरों में जूएँ ढूँढ़ रहे थे।"[328]

इसी तरह मधु कांकरिया भी झारखंड के विशुनपुर के आदिवासियों के घरों के बारे में बताती है कि "शहरों की तरह यहाँ पास-पास मकान नहीं। दो घरों के बीच; नहीं तो एक-डेढ़ किलोमीटर की दूरी। छितरे-छितरे काली-सफेद माटी से पुते हुए घर। यदि गहराती शाम तो दूर से ही टिमटिमाती ढिबरी, अहसास देती ज़िंदगियों की।"[329]

इरिणालोक में अजय सोडानी होड़का गाँव के लोगों के विशेष घर बुंगाओं के संबंध में कहते हैं कि "होड़का की खुसूसियत है उसके घर। गोल घर। यानी बुंगा। होड़का के बुंगाओं का बड़ा बोलबाला है इन दिनों। संस्कृति की तिजारत करने वालों ने इसे कच्छ के पारंपरिक घर के रूप में खूब चरितार्थ किया है।"[330] इसी तरह बन्नी के भगाड़िया वॉड में फकीरणी जतों के पारंपरिक घरों को अगर देखा जाए तो यहाँ का हर टोला कँटीली बाड़ से घिरा हुआ था और उस एक निश्चित दायरे में ही घास-फूस व मिट्टी से बनी पोत रही झोंपड़ियों में निवास करते हैं इन मिट्टी के घरों का आँगन कच्चा था और दीवारों पर कोई रंग-रोगन नहीं। इसी तरह के टोले के खास घरों के संबंध में अजय सोडानी बताते हैं कि "हर टोले में कम से कम लकड़ी के डंडों पर चढ़ा एक सीखचा घर अवश्य था। कुछ-कुछ किसी मचान सरीखा, जिसकी छत तथा दीवारें जालीदार पर नींव नदारद। एक समय फकीराणी जत इन मचान-घरों में ही रहा करते थे, पर अब इसका इस्तेमाल उपगृह की तरह किया जाता है किन्तु मुफीद मौसमों में आज भी जत इन घरों में सोते हैं। गरज यह कि परवर्ती पीढ़ी में इन

[328] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 43
[329] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 13
[330] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 157

घरों का आकर्षण बना रहे। ठीक ही सुना था मैंने कि जत अपने संस्कार व संस्कृति आसानी से नहीं छोड़ते।"[331]

'दूर दुर्गम दुरुस्त' में उमेश पंत सिक्किम के गंगटोक के पास्टेंगा के लोगों की परंपरागत संस्कृति और रीति रिवाजों के बारे में बताते हैं। उसमें पास्टेंगा के लोगों के परंपरागत घर 'खिरिम' के बारे में बताते हुए कहते हैं कि "जहाँ सौ साल से भी पुराने घर थे, जिन्हें खिरिम कहा जाता था घरों की रसोईयों में जलने वाले चूल्हे के पत्थरों तक के नाम थे। पाखलुम वो पत्थर था जिसके सामने घर का सबसे बड़ा पुरुष सदस्य बैठता था। माखलुम के सामने घर की महिला सदस्य बैठती थी। मेहमान जिसके सामने बैठते थे उसका नाम साम्बेलुम था।"[332] इसी तरह लोकटक झील में पानी में तैरती हुई वनस्पतियाँ जब छोटे-छोटे द्वीपों का निर्माण करती है तो उसे फुमडिस कहा जाता है और इन्हीं फुमडिसों से मितेई जनजाति के हजारों लोगों की जीविका चलती है। मछुआरे इन द्वीपों पर अपनी झोपड़ियाँ बना लेते हैं ओर वही से मछलियाँ पकड़ते हैं। "मछुवारे इन तैरते द्वीपों को गोल आकार दे देते हैं। इनके बीच वो अपने लिए झोपड़ियाँ बनाते हैं। तैरते द्वीपों पर रहते हुए वो अपनी नावों में बैठे देर तक मछलियों का इंतजार करते हैं। उत्तर के लोग जिस तरह गंगा को पूजते हैं, ठीक उसी तरह पूर्वोत्तर की ये जनजाति इस झील की पूजा करती है।"[333]

अशोक जेरथ 'अनाम यात्राएँ' में पांगणा के घरों के बारे में बताते हैं कि यहाँ नवीनीकरण की शुरुआत हो चुकी है फिर भी स्थापत्य कला के विशिष्ट घर भी यहाँ मिलते हैं। यहाँ के दुमंजिले अनेक भागों में बटें घरों के बारे में वे कहते हैं कि "दुमंजिला ये घर बड़े तरतीब और करीने से बनाए बीसियों प्रकोष्ठ अपने में समोए हैं। इनके अलग-अलग नाम भी हैं, मसलन-अवान, ओंवरा, कौहरा, बाहौड़, रसवाड़, पौड़ा बगलू आदि। आयताकार में, खुला आँगन लिए और चारों और करीने से सजे कमरे, जिन तक जाता बरामदे से होकर रास्ता, सब कुछ अद्भुत लगा। इस शैली के घरों को चौकीनुमा घरों की संज्ञा से जाना जाता है।"[334] हरिराम मीणा 'जंगल-जंगल जलियांवाला' यात्रा वृत्तांत में मेवाड़ भील कोर के मुख्यालय परिसर में बने भवनों को बड़े ध्यान से देखते हैं और वहाँ

---

[331] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 189
[332] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 27
[333] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 216
[334] अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएँ', पृ. 34

लिखते हैं कि वहाँ के सभी भवन ब्रिटिश कालीन निर्माण शैली में बने हुए है। यहाँ भवन निर्माण में लकड़ी का भी अधिक प्रयोग हुआ है इन भवनों की विशेषताओं को बताते हुए वे लिखते हैं कि "पत्थर की पक्की दीवारें, उन पर लकड़ी का जाल और जाल पर कोल्हू की छत। सभी भवनों की छतें तीखी ढलान वाली। आवासीय भवनों के आगे जो बरामदे, या पोर्च थे, उनके खंभे भी सागोन की लकड़ी के थे।"[335]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रहन-सहन के बारे में विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में चित्रण किया गया है। इसमें देखा जा सकता है कि विभिन्न क्षेत्रों के लोगों का अलग-अलग रहन-सहन रहा है और इससे स्थानीय निवासियों की पारिवारिक स्थिति व आर्थिक स्तर के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है।

4.10 वस्त्राभूषण :-

भारतीय संस्कृति में वस्त्राभूषणों की विविधता और विचित्रता सांस्कृतिक व्यापकता को व्यक्त करती है। यहाँ भिन्न-भिन्न प्रांतों की अपनी-अपनी पोशाकें एवं साज-सज्जाएँ है। जब भी सौन्दर्य की बात होती है तो सबसे पहले सोलह शृंगारों को देखा जाता है। ये सोलह शृंगार - उबटन, मंजन, मिस्सी, स्नान, केश विन्यास, अंजन, सिन्दूर, महावर, बिन्दी, तिलनिर्माण, मेंहदी, सुगन्धि, ताम्बूल, पुष्पमाला, सुवस्त्र और आभूषण हैं। इन सोलह शृंगारों में वस्त्राभूषणों का प्रयोग भारतीय संस्कृति का वह पक्ष है जहाँ समाज में जातिगत, धर्मगत व क्षेत्रगत भेद दृष्टिगोचर होता है। इसमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यहाँ आभूषण रूपी अलंकरण का प्रयोग सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु मुख्य रूप से होता है। वही वस्त्रों के प्रयोग का मूल प्रयोजन विभिन्न ऋतुओं के विपरीत प्रभाव से शरीर की रक्षा करना होता है। प्रत्येक युग की सभ्यता और संस्कृति के आभूषणों की कुछ नैसर्गिक विशेषताएँ होती हैं, जिससे उसके धारण करने के प्रकार और उसके नामों में विभिन्नता पाई जाती है। वस्त्राभूषण की विविधता इस देश की सांस्कृतिक व्यापकता को व्यक्त करती हैं। भिन्न-भिन्न प्रांतों की भिन्न-भिन्न पोशाकें और साज-सज्जा हैं। इसी वस्त्राभूषणों की विविधता को विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में निम्न रूपों में देखा जा सकता है -

---

[335] हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 70

राकेश तिवारी 'सफर एक डोंगी में डगमग' में गंगा किनारे पूजा अर्चना के लिए आई महिलाओं के वस्त्राभूषणों के बारे में बताते हुए कहते हैं "अमोली आँखों और चूड़ियों भरी कलाईयों वाली, ताँबिया माथे पर भारी गोल काली टिकुली लगाए, चाँदी की भारी करधन, पायल, बिछुआ और चमचमाती हँसुली से सज्जित स्वस्थ ऊँची युवती ने लंबी काली चोटियाँ पीछे फेंक, आँचल संभालकर गंगा को संबोधित करते हुए अत्यंत मधुर गीत गाना प्रारंभ किया।"[336] उमेश पंत असम में महिलाओं के विशेष परिधान मेखला के बारे में बताते हैं कि "महिलाओं ने लुंगी जैसा वस्त्र पहना हुआ था और ऊपरी हिस्से में सीने के इर्द-गिर्द एक खास कपड़ा लपेटा हुआ था, जिसे मेखला कहा जाता है।"[337] इसी तरह मणिपुर की महिलाओं के परिधान के संबंध में उमेश पंत बताते हैं कि "उन्होंने पारंपरिक फेनेक (एक तरह की लुंगी जिसे शरीर के निचले हिस्से में पहना जाता है) और ऊपरी इनेफिस (एक तरह का शॉल) पहना हुआ था। उनके चेहरों पर गजब का आत्मविश्वास था।"[338]

'इरिणालोक' में बन्नी की स्त्रियों के परिधान विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। इनके परिधानों में विविध प्रकार का वैविध्य है। कोई घाघरा-चोली पहनती है तो कोई गागो। जिसमें किसी की ओढ़नी पर कसीदाकारी है तो किसी की सादा तो किसी की बहुरंगी। यहाँ परिधान और गहने देखकर ही इनकी बिरादरी पहचानी जाती है। जैसे बड़ी नथ वाली फकीराणी सर-ता-पा काला लिबास, रबारी काला घाघरे के ऊपर रंगीण स्तनावरण, ग्रासिया जत लाल परिधान से पहचानी जाती है। इनके गहनों के संबंध में अजय सोडानी बताते हैं कि "अँगुलियों में छल्ले, हथेली पर धातु-पुष्प, कलाई से कोहनी तक पाटले, बाजुओं में कड़े या पाटले, कानों में कर्ण-फूल। पठानों के अलावा हर वर्ग की विवाहिता स्त्री बाजुओं के पाटले और कलाईयों में कंगन पहनती है। दो समुदायों की जनानियों के बीच अगर पुख्ता फर्क करना हो तो वह दिखाई देगा आभूषणों की बनावट में।"[339] सुहागिन की बिरादरी उसकी नथ से पहचानी जाती है। बन्नी की लड़कियाँ विवाह के उपरांत ही नथ पहनती है। जैसे – हिन्दू मारवाड़ में मोती जड़ी, गोलाकार, पतली हल्की नथ,

[336] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 123
[337] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 136
[338] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 207
[339] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 200

अहीरों में बिना नाग-नगीनों की अपेक्षाकृत छोटी नथ, फकीरणी जतों में एक धड़ा नाक में नथ की तरह स्वर्ण फूल धारण करता है। लेकिन रबारियों और पठानों में लेखक को नथ पहने कोई जनानी नहीं मिली। फकीराणी जतों में दनिया जतों की पहचान तो 'नथ वाले जत' के नाम से ही होती है। इनकी नथ की बनावट रोमन लिपि के 'डी' की तरह होती है। ये नथ इतनी बड़ी होती है कि इससे स्त्री का आधा चेहरा ढक जाता है। वजन संभालने के लिए नथ से काली डोरी बाँधते हैं जिसके दूसरे सिरे से सोने का लॉकेट बँधा होता है जिससे इस लॉकेट को चोटी में दबा दिया जाता है।

इसी तरह इरिणा में रहने वाले 'जत' लोगों के बारे में अजय सोडानी बताते हैं कि पश्तो भाषा में ऐसे पशुपालक जो घुमंतू जीवन छोड़कर एक जगह रहने लग जाते हैं तो इन्हें 'जा' कहा जाता है। इसी से 'जत' बना है जो कि इरिणा में रहने वाला मालधारियों का बड़ा धड़ा है। वैसे ये सुन्नी मुसलमान हैं जिनका पीरों में बहुत विश्वास है। इनकी वेशभूषा के संबंध में कहते हैं कि "पठानी बाना बन्नी में पुरुषों का पारंपरिक परिधान है। वैसे जींस की आमद हो चुकी है पर बगैर दुपट्टे कोई मर्द घर के बाहर नहीं निकलता। किसी घर में घुसने के पूर्व सर ढाँपना इन पर भी लाजमी है।"[340] समय के साथ इनके परिधान में परिवर्तन जरूर आया है लेकिन फिर भी ये अपनी परंपराओं का भी निर्वहन करते हैं। घर में सिर को ढँककर ही प्रवेश करते हैं।

आदिवासियों में अभावों की ज़िंदगी व गरीबी के कारण आभूषणों का प्रचलन बहुत कम होता है। फिर भी आदिवासी स्त्रियों में अभावों के बीच भी उनका नैसर्गिक सौन्दर्य झलकता रहता है साँवली-नाटे कद की दुबली-पतली अपर्याप्त भरण-पोषण युक्त काया लेकिन फिर भी उनका प्राकृतिक सौन्दर्य सहज ही आकर्षित करता है। 'जंगल-जंगल जलियांवाला' में हरिराम मीणा आदिवासी स्त्रियों के वास्तविक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि "स्त्रियों के बदन पर कहीं सोने-चांदी के गहने नजर नहीं आये। इसके नाम पर गिलट व लाख के कड़े-कौंधनी-चूड़ियाँ ही थीं। चाँदी का अनुपात अत्यल्प मात्रा में इधर-उधर अवश्य नजर आया।"[341]

---

[340] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 164

[341] हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 10

इसी तरह ‘बादलों में बारूद’ में लेखिका आदिम बिरसिया जनजाति के सुक्का दा के वस्त्रों के संबंध में कहती है कि “आधी उठंग धोती और बुशर्ट। द्रविड सभ्यता का गहरा सांवला रंग।”[342] वही लेखिका जब लक्ष्मण जी से मिलती है तो उनकी पत्नी को देखती है कि “हाथ में काला नंगा बच्चा। उठंग साड़ी, आधा ढका ब्लाउज, हाथों में काली पड़ी चूड़ियां। कान के बड़े-बड़े छेदों में लकड़ी ठुँसी हुई।”[343]

‘दरकते हिमालय पर दर-ब-दर’ में हिमालय क्षेत्र में अजय सोडानी बक्करवालों के बारे में बताते हैं। जन्म से हिन्दू ये लोग गर्मियों में अपनी और अन्य लोगों की भेड़-बकरियों को भुग्याल पर ले जाते हैं और मानसून खत्म होने के बाद वापस अपने गाँवों में लौटते हैं। ये परिवार के साथ न रहकर दो-तीन पुरुषों के साथ रहकर डेरा डालकर रहते हैं और घर न बनाकर तारपोलिन की छाया में ही दिन व्यतीत करते हैं और अधिक वर्षा व बर्फबारी में कन्दराओं में रहते हैं इनके पारंपरिक परिधान के बारे में अजय सोडानी बताते हैं कि “बात-बेबात में गरियाने के आदी इन गड़रियों का स्वनिर्मित ऊन से बनी फ्रॉकनुमा शेरवानी, ढीला पाजामा तथा कमर में कस के बँधा कपड़ा पारंपरिक परिधान है।”[344]

अनिल यादव का ‘वह भी कोई देस है महराज’ पूर्वोत्तर की यथार्थ स्थिति को बताने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। इसमें मणिपुर के सेनापति जिले की स्त्रियों के बारे में बताते हैं कि यहाँ की स्त्रियाँ हर क्षेत्र में अग्रणी हैं। घर बाहर सभी कार्य के स्वयं ही करती है। यहाँ की लड़कियों के बारे में बताते हुए वे कहते हैं कि “सेनापति के हर हिस्से में उस सुबह लड़कियाँ ही लड़कियाँ थी जो जींस पहने खेतों में फावड़े चला रही थीं, जानवर चरा रही थीं, उनके लिए कलेवा लेकर साईकिल से जाती लुंगी पहने बुढ़िया थीं जिनके गालों की झुर्रियाँ पहाड़ी पगडंडियों पर एक लय में हिलती थीं।”[345] ‘बादलों में बारूद’ में सिक्किमी परिधान बोकु के बारे में बताया गया है। वहाँ युवतियाँ चाय के बागानों में बोकु पहने हुए चाय की पत्तियाँ तोड़ रही हैं। इसी तरह राजस्थानी स्त्रियों के परिधानों के चटकीले रंग और तमिलनाडु की स्त्रियों के बारे में भी बताया गया है।

---

[342] मधु कांकरिया, ‘बादलों में बारूद’, पृ. 13
[343] मधु कांकरिया, ‘बादलों में बारूद’, पृ. 18
[344] अजय सोडानी, ‘दरकते हिमालय पर दर-ब-दर’, पृ. 181
[345] अनिल यादव, ‘वह भी कोई देस है महाराज’, पृ. 132

इस प्रकार देख सकते हैं कि विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में स्त्रियों के आभूषण और परिधानों के बारे में विविध प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है। जिससे एक तरह स्त्री व पुरुषों की रुचि व जीवन-स्तर का पता चलता है वही दूसरी तरह स्थान विशेष के परिधानों के बारे में भी पता चलता है। वर्तमान समय में परिवर्तन की बयार हर जगह दिखाई दे रही है। जिससे परिधान भी अछूते नहीं रहे हैं।

4.11 पर्व-त्योहार :-

भारतीय संस्कृति में पर्व-उत्सव तथा त्योहारों का विशेष स्थान है। वस्तुत: यह संस्कृति पर्व और त्योहारों की संस्कृति है। जिससे यहाँ जीवन में नीरसता को दूर करने और ताजगी के लिए अनेक पर्व मनाए जाते हैं। ये पर्वोत्सव और त्योहार जहाँ एक ओर जातीय मनोवृतियों, धार्मिक और लोक जीवन की आस्थाओं को व्यक्त करते हैं। वहीं दूसरी तरफ लोगों का आमोद-प्रमोद भी करते हैं। हिन्दू धर्म में अनेक त्योहार हैं। जैसे- धनतेरस, दीपावली, होली, नवरात्र, दशहरा, महाशिवरात्री, गणेश चतुर्थी, रक्षाबंधन, कृष्ण जन्माष्टमी, रामनवमी, छठ, वसंत पंचमी, मकर संक्रांति, दुर्गा पूजा, भाईदूज, ओणम, पोंगल, लोहड़ी, हनुमान जयंती, गोवर्धन पूजा, कार्तिक पूर्णिमा, रथ यात्रा, हरतालिका तीज, श्राद्ध, कुंभ आदि। मुस्लिम समाज में मोहर्रम, इद-उल-फ़ितर, इदुलजुहा, शबेरात, शबे कद्र, चेहल्लुम, इद-उल-मिलादुलनबी प्रमुख हैं। जैन पर्वों में दसलक्षण पर्व, पर्युषण पर्व, ऋषभ जयंती, महावीर जयंती, रोट तीज व पड़वा ढोक, सिक्ख समाज में लोहड़ी, वैसाखी, गुरुनानक जयंती, ईसाई समाज में क्रिसमस, ईस्टर, गुड फ्राइडे, असेंसन डे प्रमुख हैं। त्योहार धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं से सम्बद्ध लोक कल्याण और सांप्रदायिक सौहार्द के सेतु होते हैं। इनसे जुड़े कथा प्रसंगों, प्रवचनों और उपदेशों के द्वारा मनुष्य को हमेशा परोपकारी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ बने रहने और सत्कर्म करने की प्रेरणा मिलती है। मानवीय मूल्यों पर आधारित अलग-अलग अवसरों पर अनेक त्योहार मनाए जाते हैं। जो हमारे जीवन में उत्साह, उल्लास एवं उमंग की पूर्ति करते हैं। यात्रा साहित्य में भारत के विभिन्न पर्व-उत्सव और त्योहारों का अत्यंत सरस तथा रोचक शैली में वर्णन किया गया है।

‘बादलों में बारूद’ में मधु कांकरिया ने झारखंड, छोटा नागपुर के आदिवासियों में प्रचलित सरहुल और कर्मा पर्व के बारे में बताया है। जिससे दूर से ढोल की थाप और गीत की लहरियाँ मन को आकर्षित करती हैं। गीत कुछ इस प्रकार है :-

“करम करम कर लैगे समारोह

करम का दिना कैसे आबी

सावन भादों दिनो भली मेल –

कुवारे करम गड़ाए।”[346]

यह पर्व मूल रूप से कृषि संस्कृति से आया हुआ है। इसके पीछे एक लोककथा जुड़ी हुई है। उस कथा के अनुसार यह पर्व धान की खेती की हरियाली व रखरखाव के लिए मनाया जाता है। जिससे कर्मा की डाली की पूजा करके फिर कथा सुनाई जाती है।

आदिवासियों के देवी-देवता अलग होने के कारण इनके कई त्योहारों में भिन्नता पाई जाती है। ये हर मेले त्योहार पर सुरापान करते हैं। सामान्यत: महुए और चावल से बनी शराब पीते हैं। ‘बादलों में बारूद’ में मधु कांकरिया बताती है कि बिशुनपुर के आदिवासियों में हड़िया प्रथा प्रचलित है। हड़िया शराब की तरह ही होती है जिससे ये लोग नशा करते हैं। लेखिका लिखती है कि “हाड़िया का दौर शुरू हो गया था। शादी-ब्याव हो, जन्म हो, पर्व हो और यहाँ तक की मृत्यु ही क्यों न हो हड़िया अरण्य संस्कृति का अनिवार्य अंग। जो हड़िया नहीं पीता आदिवासी उन्हें अपना नहीं मानते।”[347] इसी तरह ‘जंगल-जंगल जलियांवाला’ में राजस्थान के आदिवासियों में प्रचलित सूरा बावड़ी के बारे में बताया गया है। इधर के आदिवासी जब भी किसी संघर्ष के लिए एकत्रित होते हैं तो लड़ाई से पहले सूरा बावड़ी का पानी पीकर ही चलते हैं और खसम खाते हैं कि चाहे शहीद होना पड़ जाए लेकिन लड़ाई में हारकर नहीं लौटेंगे।

---

[346] मधु कांकरिया, ‘बादलों में बारूद’, पृ. 13

[347] मधु कांकरिया, ‘बादलों में बारूद’, पृ. 14

शिलोंग के गारो लोगों में वांग्ल नृत्य प्रसिद्ध है जो कि अक्टूबर महीने में फसल कटने के बाद किया जाता है। यह गारो जनजाति का सबसे बड़ा त्योहार माना जाता है जो लगभग दो-तीन सप्ताह तक चलता है। लेखिका इसकी तुलना करभा त्योहार से करती हुई इसके संबंध में लिखती है कि "झारखंड, बिहार के आदिवासियों के 'करभा' त्योहार की तरह। ईश्वर और प्रकृति को कृतज्ञता ज्ञापन करते समय इस नृत्य में गारो लोग भीमकाय मृदंग को गले में लटकाकर थिरकते हैं।"[348] 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में उमेश पंत नागालैंड के कोहिमा के पास चलने वाले हॉर्नबिल फेस्टिवल के बारे में बताते हैं। दस दिन तक चलने वाले इस उत्सव में रंग-बिरंगी पोशाकों में अलग-अलग नागा जनजातियों का प्रतिनिधित्व करने वाली महिलाएँ एवं पुरुष नृत्य करते हैं। इस उत्सव का नाम 'द ग्रेट हॉर्नबिल' पक्षी के नाम पर रखा गया है जोकि नागा संस्कृति में अपनी अलग अहमियत रखता है। इस पक्षी को लेकर नागा लोक संस्कृति और लोकगीतों में कई कहानियाँ मिलती है। उमेश पंत कहते हैं कि "हॉर्नबिल के पंख नागा संस्कृति में साहस और प्रेम के प्रतीक माने जाते हैं। अपनी टोपियों में इन्हें सजाना नागा संस्कृति में बहुत सम्मान की बात मानी जाती है। हॉर्नबिल की चोंच को सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है।"[349]

'बुद्ध का कमंडल लद्दाख', 'सुनो लद्दाख' और 'अवाक्' में बौद्ध धर्म वहाँ के समाज, उत्सव व त्योहारों का चित्रण किया गया हैं। इसमें तिब्बत के एक प्रसिद्ध त्योहार सागा दावा है जो कि भारत में मनाई जाने वाली बुद्ध पूर्णिमा के एक माह पूर्व मनाया जाता है। इनमें बौद्ध लोगों व उनके धर्म, समाज, संस्कृति, मान्यताओं का चित्रण विशेष रूप से किया गया है। कैलाश के संबंध में मान्यता है कि वहाँ की स्थानीय देवी डोल्मा-ला, तारा देवी के स्थान पर अगर प्रिय जनों की वस्तु जैसे बाल, वस्त्र, आदि को छोड़कर आ जाओ तो देवी हमेशा उनकी रक्षा करती है। 'सुनो लद्दाख' में नीरज मुसाफिर जब शे और ठिक्से गोम्पा देखने के लिए जाते हैं तो शे गोम्पा में धार्मिक आयोजन चल रहा था। यहाँ के गोम्पा में परिक्रमा का विशेष महत्व है। जिसके संबंध में लेखक कहते हैं कि "गोम्पा के आगे पंडाल लगा था और लोगबाग बैठे थे। लद्दाखी भाषा में धर्मगुरु प्रवचन कर रहे थे।

---

[348] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 92

[349] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 170

यह गोम्पा नया बना है। सजावट शानदार है। लोग इसकी परिक्रमा कर रहे थे। परिक्रमा लद्दाखी जीवन में अहम है। पवित्र चीज की परिक्रमा करके ही लद्दाखी आगे बढ़ते हैं।"[350]

हरिराम मीणा के 'जंगल-जंगल जलियांवाला' में राजस्थानी संस्कृति का चित्रण देखने को मिलता है। इसमें राजस्थानी मेले और त्योहारों, स्थानीय लोक कथाओं, वहाँ के आदिवासी जीवन का चित्रण प्रमुखता से किया गया है। राजस्थान के दक्षिणी भाग की संस्कृति इसमें विशेष रूप से दिखाई देती है। जिसमें हाडौती प्रदेश, माउंट आबू व बाँसवाड़ा प्रमुख हैं। आदिवासियों के कुम्भ बेणेश्वर धाम के बारे में भी इसमें बताया गया हैं। सोम, माही और जाखम नदियों के त्रिवेणी संगम पर एक टापूई शक्ल में उभरे पठार पर बेणेश्वर धाम है। जहाँ हर वर्ष माघ सुदी एकादशी से पाँच दिवसीय मेला आयोजित होता है। बेणेश्वर महादेव के मंदिर में दर्शन करने और संगम में स्नान करने के लिए इस मेले में अनेक श्रद्धालु आते हैं।

बेणेश्वर धाम पर माघ सुदी एकादशी से शुरू होने वाला यह मेला पाँच दिन तक चलता है। इसमें महादेव के दर्शन और त्रिवेणी संगम में स्नान का विशिष्ट महत्व है। इसी तरह घोटिया अम्बा मेला भी बांसवाडा का प्रसिद्ध मेला है। यह प्रतिवर्ष चैत्र माह की अमावस्या को भरता है। इस मेले में राजस्थान, गुजरात तथा मध्यप्रदेश से लाखों लोग आते हैं जिसके कारण इस मेले को लक्खी मेला भी कहा जाता है। इस मेले के सम्बन्ध में स्थानीय लोगों में मान्यता है कि पांडव अपने अज्ञातवास के समय कुछ दिन यहाँ रहे थे और यहाँ पर ही पांडवों ने श्री कृष्ण की सहायता से 88 हजार ऋषियों को केले के पत्तों पर चावल और आम रस का भोजन करवाया था। इंद्र द्वारा प्रदत आम की गुठली को यहीं रोपा था। यहाँ आज भी पुष्प से रहित केले के वृक्ष और चावल के पौधे पाये जाते हैं। इस मेले में पांडव कुंडों में स्नान कर घोटिया महादेव व आम के पेड़ के दर्शन करते हैं।

पूर्वोत्तर के मणिपुर में मोइरांग के मितेई जनजाति के 'लाइ हराओबा' त्योहार के बारे में उमेश पंत कहते हैं कि "लाई हराओबा मतलब भगवानों का उत्सव। मणिपुर को यूँ भी भगवानों की धरती कहा जाता है। मितेई लोग मानते हैं कि मणिपुर में ही सृष्टि का निर्माण हुआ। अतिया सिदाबा नाम की देवी की इच्छा से कोउब्र चिंग नाम की पहाड़ी पर पहली बार यह उत्सव किया गया जिसमें सभी

---

[350] नीरज मुसाफिर, 'सुनो लद्दाख', पृ. 78

वनस्पतियों और जीव-जंतुओं की रचना-प्रक्रिया को अलग-अलग शारीरिक मुद्राओं के जरिए दिखाया। इस उत्सव का मकसद धरती के लोगों को यह याद दिलाना है कि सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ।"[351] सृष्टि निर्माण की याद में यह उत्सव हर वर्ष गर्मियों की शुरुआत में मनाया जाता है। यह उत्सव महीने भर चलता है जिसमें लाई हराओबा नृत्य के माध्यम से पूरी प्रकृति के निर्माण की प्रक्रिया को दर्शाने वाली मुद्राएँ होती हैं।

'इरिणालोक' में अजय सोडानी इरिणा के मेलों के बारे में बताते हैं कि पीर-फकीर, मेले-ठेले तो यहाँ के लोकजीवन का ताना-बाना है। धार्मिक मान्यताओं से जुड़े ये मेले हर वर्ष किन्हीं खास दिनों में लगते हैं। इसमें सभी स्त्री-पुरुष पारंपरिक वेशभूषाओं में पहुँचते हैं। इनमें लोकगीत गाये जाते हैं, मेल मिलाप होता है और रिश्ते बनते हैं। इन मेलों में बाहरी लोगों को इरिणा की शानदार परंपराओं को जानने का अवसर मिलता है। यहाँ का 'सफेद रन उत्सव' प्रसिद्ध है। इसके अलावा भी यहाँ अनेक मेले उत्सव मनाए जाते हैं जिसके बारे में अजय सोडानी कहते हैं कि "वर्षा ऋतु की विदाई और ग्रीष्मकाल की अगुवाई के पहले, जुदा दिनों में, दीगर जगहों पर, भरने वाले हर मेले की अपनी खुसूसियत होती है। कोई ग्रासिया जतों की आमद के लिए जाना जाता है तो कोई फकीरणियों की उपस्थिति के लिए। कोई घुड़दौड़ के लिए प्रसिद्ध है तो कोई कुश्ती प्रतियोगिता के लिए।"[352] इसी तरह 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' में बदलियों की चंचलता और उद्दंडता को देखकर इंदौर के समीप गौमतपुरा गाँव में होने वाले 'हिंगोट युद्ध' को याद करते हैं। जो की दिवाली के बाद मनाया जाता है और इसमे दो गुटों में बँटे लोग एक-दूसरे पर हिंगोटों (आग्नेय शस्त्र) से वार करते हुए घायल हो जाते हैं लेकिन चोट सहन करते हुए हार-जीत का फैसला हो जाने तक लड़ते रहते हैं। ये परंपरागत खेल है जो कि क्षेत्र विशेष की परंपराओं को बचाए हुए हैं लेकिन आजकल के आधुनिक समाज वाले लोग इनको समाप्त करना चाहते हैं इसी के संदर्भ में अजय सोडानी कहते हैं कि "आधुनिक लोग इस पर 'आदिम खेल' होने का आरोप मढ़ समाप्त कराना चाहते हैं, सामान्य जन इसे संस्कार व परम्परा मान जीवित रखने को कटिबद्ध हैं।"[353]

[351] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 212
[352] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 246
[353] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 125

‘सफर एक डोंगी में डगमग’ में राकेश तिवारी ने कुम्भ मेले के बारे में बताया है। कुम्भ मेला प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में भरता है। कुम्भ सुख और समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। इसमें गंगा यमुना के संगम पर भरने वाले कुम्भ और प्रयाग का धार्मिकता की दृष्टि से विशेष महत्व है। कुम्भ मेलों की प्राचीनता और इनके प्रारंभ होने के संबंध में राकेश तिवारी कहते हैं कि “कुम्भ मेलों की प्राचीनता का अधिक ज्ञान तो नहीं, लेकिन तेरह सौ वर्ष पहले कन्नौज नरेश हर्ष द्वारा इस अवसर पर वस्त्र, गौ, स्वर्णादि दान करने का उल्लेख मिलता है। उसके बाद आदिगुरु शंकराचार्य ने कुम्भ की महत्ता सदा सुव्यवस्थापित कर दी। इस तरह मेल या संगम के पावन प्रतीक गंगा-यमुना संगम पर आदमी-आदमी, ज्ञानियों, विभिन्न वर्ण, धर्म और भिन्न-भिन्न भाषाभाषियों के प्रति वर्ष होने वाले मेल की अनोखी परंपरा चली।”[354]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीवन में हर्षोल्लास लाने में पर्व और त्योहार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4.12 कलाएँ :-

कला शब्द इतना व्यापक है कि इसे एक निश्चित परिभाषा में बाँधना कठिन है। अगर साधारण शब्दों में कहा जाए तो कहा जा सकता है कि मनुष्य की ऐसी क्रियाएँ जिनसे कौशल अपेक्षित हो। कला का मानव मन की संवेदनाओं को उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने और अभिवृत्तियों को जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान है। इसे संगीतकला, नृत्यकला, चित्रकला, स्थापत्य कला जैसे विविध रूपों में देखा जा सकता है। कला के संबंध में देवराज कहते हैं कि “कला वह प्रयत्न है जिसके द्वारा मनुष्य एक विशेष कोटि की आत्मावगति प्राप्त करता है। कोई कलाकृति कितनी भी रहस्यमय, प्रतीकात्मक अथवा गूढ़ क्यों न हो, फिर भी उसका लक्ष्य यही होता है कि अनुभव के कतिपय क्षणों तथा क्षेत्रों को प्रकाशित या व्यक्त करे।”[355] कला को अभिव्यक्ति प्रदान करने में चित्रकला, स्थापत्य कला, संगीत कला, नृत्य कला जैसे विविध माध्यम है जिन्हें विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में निम्न प्रकार से देखा जा सकता है :-

---

[354] राकेश तिवारी, ‘सफर एक डोंगी में डगमग’, पृ. 90

[355] डॉ. देवराज, ‘संस्कृति का दार्शनिक विवेचन’, पृ. 244

चित्रकला-

कला के विभिन्न रूपों में 'चित्रकारी' कला का सूक्ष्मतम प्रकार है जिसमें रेखाओं और रंगों के माध्यम से मानव चिंतन और भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य गुफाओं में रहता था तो उसने गुफाओं की दीवारों पर चित्रकारी की लेकिन धीरे-धीरे नगरीय सभ्यता का विकास होने पर यह चित्रकारी गुफाओं से निकलकर वस्त्रों, भवनों, बर्तनों, सिक्कों, कागज़ों आदि पर आ गई। चित्रकला का इतिहास काफी पुराना है और प्राचीन चित्रों से भारतीय संस्कृति को जानने का मौका मिलता है। 'बुद्ध का कमंडल' में कृष्णा सोबती ने भित्ति चित्रों के बारे में बताया है। 'सुनो लद्दाख' में नीरज मुसाफिर जब फुकताल गोम्पा में जाते हैं तो वहाँ बुद्ध प्रतिमा, अन्य प्रतिमाएं व चित्र थे जिसमें से लेखक को विशेष रूप से गोम्बोरंजन चोटी के चित्र ने आकर्षित किया। 'इरिणालोक' में कच्छ की कला 'रोगन आर्ट' के बारे में बताया गया है। इसमें जीवन वृक्ष 'ट्री ऑफ लाइफ' विशेष प्रसिद्ध है। सूती या सिल्क के कपड़े के टुकड़े पर रोगन द्वारा बने माँडनों में अनेक आकृतियों से बना एक वृत्त या आयताकार मंडल होता है। इसके हर नमूने के मध्य में मोटी एवं गहरी जड़ों पर अवलंबित तना और शाखा-प्रशाखाओं के रूप में अनेक प्रकार के फूल-पत्ते होते हैं। तने के शीर्ष पर बेल-बूटेदार गुंबद और ऊपर-नीचे नक्काशीदार मेहराबों में बनी चौखट जीवन-वृक्ष को पूर्ण बनाती है। निरोणा का खत्री परिवार इस कला के लिए प्रसिद्ध है।

स्थापत्य :-

स्थापत्य का संस्कृति के साथ गहरा संबंध है। स्थापत्य के प्रतिरूप जैसे मंदिर, महल, गुफ़ाएँ आदि संस्कृति के संवाहक होते हैं। 'वास्तु' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वस' धातु से हुई है जिसका अर्थ 'बसना' होता है। चूंकि बसने के लिये भवन की आवश्यकता होती है अतः वास्तु का अर्थ 'रहने हेतु भवन' से है। 'स्थापत्य' शब्द वास्तु का ही पर्यायवाची है और दोनों ही शब्द पर्याप्त प्रचलित हैं। स्थापत्य शब्द का मूल भी संस्कृत में देखा जा सकता है। स्थापत्य 'स्थपति' से बना है। इसी से स्थिति, स्थावर, स्थान आदि शब्द विकसित हुये हैं।

यात्रा वृत्तांतों में भवनों, मंदिरों, स्तूपों तथा राज-प्रसादों के वर्णन में भारतीय वास्तुकला की उत्कृष्टता और भव्यता के बारे में काफी जानकारी मिलती है। भारतीय कला को देखकर तो भारतीय

ही नहीं विदेशी भी अभिभूत हो जाते हैं। महाराष्ट्र के औरंगाबाद के पास में स्थित अजंता और एलोरा की गुफ़ाएँ भारतीय शिल्पकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हिन्दू, बौद्ध, जैन सभी धर्मों से जुड़े लोगों की आस्था के स्थल इस गुफ़ाओं की मूर्तियाँ यात्रियों और पर्यटकों को घेर कर सभी के मानस पर छा जाती हैं। यहाँ के शिल्प और चित्रकारी के संबंध में 'सम पर सूर्यास्त' में प्रयाग शुक्ल कहते हैं कि "चकित विदेशियों की आँखों की याद करता हूँ, जो बुद्ध की करुणामयी मूर्तियों से अभिभूत हो उठते हैं- एक फ्रांसीसी स्त्री अजंता में मुझसे कह रही थी- "नहीं, मैंने कुछ भी ऐसा, और कहीं नहीं देखा है। ऐसा शिल्प, ऐसी कारीगरी, ऐसी चित्रकारी और वह भी प्रकृति की सुरम्य गोद में। अद्भुत।"[356]

हरिराम मीणा गोविंद गिरी की प्रतिमा के बारे में बताते हैं कि बांसवाड़ा में गोविंद गिरी की धूणी का स्थल बना हुआ है। जहाँ उनकी पत्थर से निर्मित करीब तीन फीट ऊँची प्रतिमा बनी हुई है। गोविंद गिरी की प्रतिमा के बारे में बताते हैं कि "गले में रुद्राक्ष की माला। बाँया हाथ सीधा नीचे। दाहिना आशीर्वाद की मुद्रा में उठा हुआ जैसे शांत लेकिन अत्यंत गंभीर मुद्रा में स्वयं बुद्ध खड़े हो। प्रतिमा के चरणों में चढ़ाये मक्का के आठ-दस ताजा भुट्टे। पास ही एक छोटे दीवार से सपाट पत्थर पर राम-सीता, हनुमान, शिव तथा दुर्गा की आठ-दस इंची अन्य मूर्तियाँ। एक कोने पर घोड़े पर सवार रामदेवरा (बाबा रामदेव) की इसी आकार की अन्य प्रतिमा भी।"[357] इसमें देख सकते हैं कि गोविंद गुरु स्वयं मूर्ति पूजा के विरोधी थे लेकिन उनके इस स्मारक स्थल को एक धार्मिक स्थल की तरह पूजा जा रहा है।

स्थापत्य के क्षेत्र में भी बांसवाडा काफी समृद्ध है। जिसमें यहाँ अनेक मंदिर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जिसमें यहाँ का तलवाडा का त्रिपुर सुंदरी मंदिर भी प्रसिद्ध है। जिसमें सिंह पर सवार भगवती की 18 भुजा की मूर्ति है। इस मंदिर की गिनती प्राचीन शक्ति पीठों में की जाती है। इसे श्रद्धालु त्रिपुर सुन्दरी, तुरतायी माता, एवं त्रिपुरा महालक्ष्मी के नाम से भी संबोधित करते हैं। पाराहेड़ा का मंडलेश्वर शिव मंदिर, बागीदोरा का घोटिया अम्बा का मंदिर, छींछ का ब्रह्मा मंदिर, कालिंजरा के जैन मंदिर, अर्थुना के मंदिर, लकुलीश मंदिर एवं तलवाडा के मंदिर प्रसिद्ध हैं।

---

[356] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 14

[357] हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 14

'सुनो लद्दाख' में लद्दाख के गोम्पाओं के बारे में बताया गया है। लद्दाख में बारिश नहीं होने के कारण मिट्टी, लकड़ी और पत्थरों से बने गोम्पा के बारे में नीरज मुसाफिर कहते हैं कि "आज इसकी संरचना पहाड़ पर मधुमक्खी के बहुत बड़े छत्ते जैसी है। पूरा गोम्पा मिट्टी, लकड़ी व पत्थरों का बना है। जांस्कर में बारिश नहीं होती, इसीलिए मिट्टी का बना होने के बावजूद यह अभी तक टिका है।"[358]

'सम पर सूर्यास्त' में प्रयाग शुक्ल ने राजस्थान के उदयपुर के निकट राजसमंद के मोलेला गाँव की मूर्तिकला के बारे में बताया है। इसकी विशेष पहचान देवी-देवताओं की हिंगाण (देवी देवताओं की मूर्तियाँ) बनाने के लिए है। यहाँ के मृण शिल्पकार विविध प्रकार के लोक देवी-देवताओं का माटी से रूपांकन करते हैं। इसी तरह खजुराहो की मूर्तिकला विशेष रूप से प्रसिद्ध है इसके संबंध में प्रयाग शुक्ल कहते हैं कि "कंडारिया महादेव की मूर्तियों को देखकर तो लगता है जैसे वे अभी-अभी पल्लवित हुई हों : उनका लास्य, उनकी भंगी-त्रिभंगिमा, उनका लावण्य मन को मोह ले रहे हैं। रचना-सामग्री भी अधिक क्षरित न हो और अपने में कला-मर्म को सदेह धीरे सहस्त्र वर्षों तक बनी-बची रहे तो यह भी एक उपलब्धि है।"[359]

प्राचीनकाल से लेकर आज तक स्थापत्य कला का अनेक रूपों में विकास हुआ और इनमें से विभिन्न रूपों का चित्रण यात्रा वृत्तांतों में किया गया है।

संगीत कला :-

संगीत वह ललित कला है, जिसमें स्वर और लय के द्वारा हम अपने भावों को प्रकट करते हैं। सुव्यवस्थित ध्वनि, जो रस की सृष्टि करे, संगीत कहलाती है। जिसमें गायन, वादन व नृत्य तीनों का समावेश होता है। वस्तुतः 'गीत' शब्द में 'सम्' जोड़कर 'संगीत' शब्द बना, जिसका अर्थ है 'गान सहित'। सम्यक् रूप से स्वर, ताल, हावभाव, शुद्ध उच्चारण के साथ जो गाया जाता है उसे ही संगीत कहा जाता है। 'इरिणालोक' में बन्नी के होड़का गाँव के गीत-संगीत के बारे में बताया गया है। यहाँ के मालधारियों का गाना बजाना और किस्सागोई अभिन्न अंग है। किस्सों और गीत-

---

[358] नीरज मुसाफिर, 'सुनो लद्दाख', पृ. 144
[359] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 17

संगीत के आश्रय में ही यहाँ के चरवाहे विपरीत मौसम में भी खुले आसमान के नीचे जीवित रह पाते हैं। यहाँ के पारंपरिक वाद्य में बाजा, कान्हापावा, केसा दाना, जुड़ियापावा और मोरचंग प्रमुख है। यहाँ के वाद्य यंत्रों के बारे में बताते हुए अजय सोडानी लिखते हैं कि "जुड़ियापावा एक फूँक वाद्य है जिसमें शहनाई के जोड़े को कोई एक फूँक दे इस तरह बजाया जाता है कि एक से तो बस लहरा निकलता है, दूजे से बंदिश के बोल। वैसे जुड़ियापावा वीरानों को बिसराने वाला वाद्य न होकर मूलत: मालधारियों के उत्सवों में बजने वाला यंत्र है। अत: यह चरवाहों के साथ रन में नहीं जाता। चरवाहों के कमरबंद में तो खोंसा होता है कान्हापावा।"[360] इसी तरह मोरचंग भी पठान मालधारियों का प्रमुख वाद्य है। इसमें लोहे की चिमटी में धातु का एक छोटा तार कसा होता है जिससे चिमटी को दाँतों में फँसाकर तार को अँगुलियों से टंकारा देते हुए बजाया जाता है। "एक समय था जब तीन-चार इंच के इस नन्हे से यंत्र को मालधारी युवक जेब में लिए फिरते थे। जैसे कृष्ण के लिए बाँसुरी वैसे ही पठान मालधारी के लिए मोरचंग।"[361] संगीत का मुख्य स्वर लहरी होता है जिसके द्वारा गायक अपने भावों को श्रोता के अन्तस्तल तक पहुँचाता है।

लोकगीत :-

संगीत में भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति करने में लोकगीत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। लोक संस्कृति में लोकगीतों की एक समृद्ध वाचिक परंपरा है। विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति विशेष रूप से सुख-दु:ख में उद्गारों को अभिव्यक्त करने के लिए गीतों की एक लंबी परंपरा रही है और ये उद्गार ही समाज में लंबे समय तक प्रचलित रहकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते हुए लोकगीत का स्वरूप ले लेते हैं। जिससे इनमें स्वाभाविक लोक मेधा संगुफ़ित होती रहती है। लोकजीवन का सबसे सरलतम, नैसर्गिक, अनुभूतिमय चित्रण लोकगीतों में ही प्राप्त होता है।

किसी भी प्रदेश के वासियों की जीवन पद्धति, नैतिक और सामाजिक मान्यताएँ व सुदीर्घ सांस्कृतिक परम्पराएँ अंचल विशेष की लोक संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि किसी भी

[360] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 181
[361] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 182

अंचल विशेष का विशिष्ट प्रकार का जीवन होता है जिसका निर्माण वहाँ के निवासियों के रीति-रिवाजों, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विश्वासों व परंपराओं से ही होता है।

लोकगीत संगीत की श्रेणी में आता है जिसका सृजन सामूहिक चेतना के द्वारा स्वाभाविक रूप से होता है। यह किसी निश्चित या नियमों से बंधी हुई संगीतात्मक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है बल्कि इसमें तो जीवन की सहज क्रियाओं व जनजीवन के वास्तविक रूप को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। लोकगीतों में भी विविधता देखने को मिलती है जिसमें स्त्रियों के गीत, विवाह-गीत, मृत्यु गीत, कृषि गीत, दैनिक जीवन व श्रम परिहार के गीत, अनुष्ठानिक गीत आदि प्रमुख है जिनमें समाज और जनजीवन की भावनाओं का मनोहर चित्रण व जीवन की यथार्थता दिखाई देती है।

जब कोई लेखक किसी क्षेत्र विशेष की यात्रा के लिए जाता है तो वहाँ के लोकगीतों से क्षेत्र विशेष को जानने और समझने का मौका मिलता है। विभिन्न क्षेत्रों में तरह-तरह के लोकगीत प्रचलित है। जिनका चित्रण 'अनाम यात्राएं', बुद्ध का कमंडल', 'जंगल-जंगल जलियांवाला', 'खरामा-खरामा' यात्रा वृत्तांतों में देखा जा सकता है।

पंकज बिष्ठ के यात्रा वृत्तांत 'खरामा-खरामा' में लेखक जब अगरतला जाता है तो वहाँ के रुद्रसागर झील के बीच में स्थित जल-महल को देखने के लिए डोंगी में बैठकर जाता है उसी डोंगी के मांझी को लेखक गाने के लिए कहते हैं तो वह नाव को ठेलते-ठेलते ही सुनाने लगता है। वह गाता है कि

"मांझी बया जाओरे

अकूल दरिया मांझी,

आमार भांगा नाव रे

जारा छिलो चतुर नैया

तारा गेलो बया रे

अमी अधम रोइलाम बोसे

भांगी तोरी लोइया।

जिसका अर्थ कुछ इस प्रकार है :- ओ मांझी बढ़े चला जा। यह दरिया अपार है पर मेरी नैया जीर्णशीर्ण है। चतुर लोग आगे निकल गए हैं मैं हतभागा अपनी जीर्ण नाव के साथ पीछे रह गया हूँ।"[362]

'सफर एक डोंगी में डगमग' में राकेश तिवारी जब गंगा नदी को पार करते हैं तो वहाँ गंगा किनारे स्त्रियाँ मनौती माँगने के लिए गीत गाती है। स्थानीय लोगों में मान्यता है कि जब उनका मनचाहा, मुँहमाँगा काम पूर्ण हो जाता है तो वे अपना वादा पूरा करने के लिए गंगा किनारे आते हैं। इसी मनौती के पूर्ण होने पर गंगा को संबोधित करके मधुर गीत गाती है –

"अब ना अईबै ए गंगा। अब न अईबै हो।

दूसरी ललना ने चहककर मुस्कराते हुए जवाब दिया –

फी- s – र अइबू ए-s- तिरिया। फी-s-र अइबू-ना-s -।

पहली वाली के साथ और भी कइयों ने मिलकर गाया –

अब ना अइबै ए गंगा। अब न अइबै हो।

गंगा की पक्षधर दूसरी के साथ मिलकर औरों ने उत्तर दिया –

गोदिया लै के बलकवा फी-s-र अइबू ना-s। ऐसे ही क्रम में गीत चलता रहा। पूरा समूह दो हिस्सों में बँट गया। एक पार्टी एक पंक्ति गाती, दूसरी गोल की समवेत स्वरों में उत्तर देतीं। मधुर बोलों से मोहित हम काव्य-रस में गहरे डूब गए।"[363]

हरिराम मीणा के 'जंगल-जंगल जलियांवाला' में आदिवासी लोगों की जीवन-रीति और रहन-सहन के सम्बन्ध में बताया गया है। गुरु गोविन्द सिंह यहाँ के आदिवासियों के स्थानीय नेता थे। उनकी स्मृति में उनके गीत भी गाये जाते हैं। जैसे-

---

[362] पंकज बिष्ट, 'खरामा-खरामा' , पृ. 99

[363] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 123-124

“मानगढ़ री माटी नो मोल भूलो नखे,

देश नी आजादी

हारू शहीद थईगया-हजारों आपणा भाई

ई मगतर पूनम नो दिवस भूलो नखे,

मानगढ़ नी माटी ना मोल भूलो नखे।

गुरु नी बताडीली बातें याद करता रेजो,

नीति नियम तोड़ों नखे,

भक्ति भाव छोडो नखे,

सब हली मली ने सम्प सभा में गामें गामें (गाँव)

एक थई ने रेजो,

मानगढ़ नि माटी नो मोल भूलो नखें।”[364]

हरिराम मीणा बताते हैं कि मोतीलाल तेजवात के नेतृत्त्व में जो ‘एकी आंदोलन’ हुआ उसमें जो भील शामिल हुए थे उनमें मोतीरा भील और लाडूरा भील प्रमुख थे उनकी याद में कुकवास के आसपास उनके संघर्षों को केंद्र में रखकर आज भी यह गीत गाया जाता है।

“ऐला टोपियो आयो रे

ऐला बेदूक लायो रे

मरद लुगायां टाबर घेरया रे

दरज्यो मती, मोतीरो आयो रे

[364] हरिराम मीणा, ‘जंगल-जंगल जलियांवाला ’, पृ. 53

लाडूरो आयो रे...”[365]

नृत्य कला-

हाव-भाव आदि के साथ की गयी गति को नृत्य कहा जाता है। चौंसठ कलाओं में से यह एक कला है जिसमें शरीर की गति या संचालन, या तालबद्ध गति का प्रमुख स्थान है। आदिवासी गायन और वादन बहुत पसंद करते हैं। उनके जीवन में मनोरंजन का मुख्य आधार ही यही है। 'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया जब विशुनपुर जाती है तो वहाँ देखती है कि सब एक-दूसरे के साथ मिलकर गा-गा कर नृत्य कर रहे हैं। वह देखती है कि "एक छोटे से खपरैल वाले घर में एक पुरुष बीच गले में लटके माँदल पर थाप देता हुआ और उसको घेरे चार-पाँच स्त्रियाँ एक-दूजे को कमर से पकड़े गोल-गोल घेरे में नृत्य करती हुई। न कोई शृंगार, न साज-सज्जा- जैसे खाना पकाते या खेतों में पत्ते बीनते सीधे नृत्य करने आ गई हों। एक स्त्री पीठ पर बच्चे को कपड़े में बांधकर नृत्य करती हुई। नृत्य और संगीत के प्रति इनके प्रेम को देखकर लगा कि नृत्य और संगीत इनके जीवन के अलंकरण नहीं वरन् जीवन ही हैं।"[366] उमेश पंत के 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में हॉर्नबिल उत्सव में किए जाने नृत्य के बारे में बताया गया है।

इस प्रकार से देखा जा सकता है कि कला मनुष्य के स्वत्व को सुसंस्कृत करने का साधन है और संवेदन शक्ति, भावनाओं, संवेगों, विचारों तथ्यों आदि को अभिव्यक करने में कला एक सशक्त माध्यम है। संस्कृति में कलाओं की भूमिका अलग-अलग रूपों में मौजूद रही हो। जिसे विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में अलग-अलग रूपों में दिखाया गया है।

4.13 संस्कृति का बदलता हुआ स्वरूप :-

भारतीय संस्कृति को अगर देखा जाए तो यह कभी निश्चल नहीं रही है बल्कि लगातार विकास, परिवर्तन व प्रयोग करती रही है लेकिन कुछ वर्षों से इसमें नाटकीय परिवर्तन हो रहे हैं। जिसमें सबसे प्रमुख वैश्विक स्तर पर हो रही सांस्कृतिक मुठभेड़ में पश्चिम की आधुनिकता एक

---

[365] हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 57

[366] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 14

सर्वाधिक प्रभावशाली स्वर में उभर रही है और वह पारंपरिकता से हटकर व्यक्ति के सामाजिक संबंधों, परिवार, विवाह, यौन संबंध सभी को अपने अनुरूप बनाने में लगी हुई है।

आज विकास की अंधी दौड़ ने भविष्य को संकटग्रस्त बना दिया है और मानवता संक्रमण के भयावह दौर से गुजर रही है। मानव ने विज्ञान से आज विकराल विनाशकारी शक्तियों को प्राप्त कर लिया है। जिससे उसकी उपलब्धियों को एक सैकंड में नष्ट किया जा सकता है। पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थितिकी संतुलन बुरी तरफ से ख़राब हो गया है। सांस्कृतिक अस्मिता के ह्रास के इस दौर में सांस्कृतिक मूल्यों के विशृंखलित होने से भोग और लिप्सावादी संस्कृति का विकास हो रहा है। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास व सामाजिक विकास की असमान गति और विसंगति से सामाजिक मान्यताएँ क्षीण हो रही हैं।

अजय सोडानी 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' में बताते हैं कि गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, केदार व बद्रीविशाल की यात्राओं के दौरान पता चला कि मानवीय हस्तक्षेप के कारण हिमालय क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन आ गया है। पर्यटन के नाम पर प्रकृति का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। हमारे देश में घूमने के स्थानों की कमी नहीं है लेकिन फिर भी पर्यटन विकास का नाम लेकर और सैन्य आवश्यकताओं की आड़ में सड़कों का जाल फैलाकर प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। सड़क बनाने के नाम पर पेड़ काटे जा रहे हैं, पहाड़ों को तोड़ा जा रहा है। धरा के ऐसे कोने जहाँ प्राकृतिक स्थितियों के कारण मानव बस्तियाँ न तो अब तक बनी है और न ही अभी बनने की संभावना है। यहाँ सिर्फ प्रकृति प्रेमी प्राकृतिक सौन्दर्य का आत्मिक आनंद लेने जाते हैं। इन्हीं स्थानों पर सड़क बनते देखकर लेखक का मन आहत हो जाता है वे कहते हैं कि "...यहाँ सड़कें बनेंगी...अरे निगोड़ों। तुम जानते हो कि ऐसे स्थानों से हमारा गुजरना भी यहाँ के पर्यावरण में बदलाव लाता है...सड़कों के सहारे यदि हम यहाँ समा गए तब तो सब नेस्तनाबूत हो जाएगा...स्वार्थान्धों। व्यापार बढ़ाने एवं नवीन संभावनाओं को तलाशने हेतु तुम्हें अकूत धरा हासिल है...अरे कुकुर भी कुत्ते का चाम नहीं उधेड़ता...प्रकृति के इन मर्मस्थलों पर झपट तुम अपनों का ही गोश्त नोंचने पर क्यों आमादा हो...।"[367] इन रास्तों में पगडंडियों से ही काम चलाया जा

[367] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 61

सकता है अगर यहाँ सड़क बनेगी तो इन शिखरों, झरनों, विविध प्रकार के फूलों, वन्यजीव और जैव विविधता का क्या होगा ? लाखों वर्षों से क्रियाशील इस जैव विविधता को कितना नुकसान होगा।

अजय सोडानी जब रीह गाँव जाते हैं तो वहाँ से कुछ दूर चलने के बाद ही देखते हैं कि पेड़ों की संख्या कम होती जा रही है और पगडंडी कच्ची लेकिन चौड़ी सड़क में बदल गई है। पहाड़ों को जे.सी.बी. से काटा जा रहा था और शिलाओं को डायनामाइट से ध्वस्त किया जा रहा है। पहाड़, फूल, पक्षी, कीट-पतंगें, पर्यावरण सभी को सजा-ए-मौत सुनाई जा चुकी थी। लेखक कहते हैं कि "तब तक विस्फोटकों से उड़ाया जाए, जब तक कि सब समतल न हो जाएँ। टु बी बंबारडेड टिल डेथ।" नीचे पहुँचकर एक क्षण के वास्ते भी रूकने का मन नहीं हुआ। इसके पहले कि कोई विस्फोट हमारी आँखों के सामने होता हम भाग जाना चाहते थे – सुंदर हिमालय के हवा में उड़ते लोथड़े देखने की ताकत हममें नहीं थी।"[368] भूमंडलीकरण की नई शक्तियाँ विस्तारवादी उपभोक्तावाद में अहम भूमिका निभा रही है। यह उपभोक्तावाद तमाम सांस्कृतिक स्मृतियों को एक तरफ करके जीवन की समृद्धता को उपभोग की छवियों में बदल रहा है।

आज ग्लोबल वार्मिंग बहुत बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। जिसके कारण इस ग्लोबल वार्मिंग की आड़ में कार्बन खरीदने और बेचने, तापमान व कार्बन उत्सर्जन को काबू में करने के लिए पूरी दुनिया अंधी दौड़ में व्यस्त हो गई है। धरा की उर्वरता बढ़ाने, हवा की गुणवत्ता, जल निर्मलता व हमारी कार्यक्षमता मुख्य रूप से जैव विविधता पर ही निर्भर करती है। लेकिन वर्तमान समय में जैव विविधता को बहुत नुकसान पहुँचाया जा रहा है जिसके परिणाम हिमालय तक दिखाई दे रहे हैं। आज हिमालय के ग्लेशियर पिघलते जा रहे हैं। गंगी और रीह गाँव में एक बुजुर्ग लेखक को बताते हैं कि "आज से कोई दस-बीस साल पहले तक खतलिंग भमक चौकी के पास तक हुआ करता था और उनके देखते-देखते वह भमक कई किलोमीटर पीछे सरक चुका है। यही बात हमें कुछ और लोगों ने भी बताई। लेकिन हमारी सरकार तो मानती नहीं कि भारतीय ग्लेशियर पिघल रहे हैं।"[369] लेखक ने इन सभी पर्यावरणीय समस्याओं को उठाने का प्रयास किया है।

---

[368] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 154

[369] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 152

बद्रीविशाल के बारे में भी लेखक बताते हैं कि यहाँ सैंकड़ों लोग थे, कोलाहल ही कोलाहल और चारों तरफ अतिक्रमण ही अतिक्रमण था। जैसे तैसे करके जब मंदिर पहुँचते है तो वहाँ सरकार ने जगह-जगह नहाने के स्थल बना दिये हैं। जिनमें पाइप द्वारा तप्त कुंड में पानी प्रदान किया जाता है उस कुंड तक जाने की अनुमति नहीं है। देवस्थान के आस-पास का भी पूरा का पूरा इलाका विकास की चपेट में आकर अपना ऐतिहासिक रूप खो चुका है। इसी तरह जब दर्शन करने के लिए जाते हैं तो वहाँ भी पैसे देकर दर्शन करवाये जा रहे हैं। देखक दूर से ही बद्रीविशाल मंदिर के दर्शन करके वापस आ जाते हैं। लेखक कहते भी है कि "ठीक भी है, बढ़ती महँगाई के साथ भगवान का 'मेंटेनेंस' खर्च भी ज्यादा हो गया होगा। ऐसे में हम सरीखे खाली हाथ आए, बेढब, काले-कलूटे दर्शनार्थियों की तुलना में हजारों रुपये दे विशेष दर्शन करने वालों को अधिक तवज्जोह मिलना गैरवाजिब नहीं मानना चाहिए।"[370] धर्म की राजनीति और पैसों से हुई साँठगाँठ के कारण सहिष्णुता का सांस्कृतिक आदर्श गायब हो रहा है। इससे उत्पन्न असहनशीलता के कारण धर्म, समुदाय और परंपराओं के बीच तीव्र संघर्ष हुआ है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि संस्कृति के बदलते स्वरूप को विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में लेखकों ने दिखाया है।

निष्कर्ष :-

सम्पूर्ण अध्याय को अगर निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो कह सकते हैं कि यात्राएँ हमें संस्कृति के विविध रूपों से जोड़ती हैं। जिससे यात्रा साहित्य में संस्कृति के विविध रूप दिखाई देते हैं। मनुष्य अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण विभिन्न संस्कृतियों को जानने के लिए उत्सुक रहता है। इसमें यात्रा साहित्य संस्कृतियों का खुला चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। विभिन्न यात्राकारों को अगर देखा जाए तो कुछ लेखकों ने विशुद्ध यायावरी भाव से विभिन्न स्थानों और क्षेत्रों का भ्रमण किया जिससे उनकी कृत्तियों में एक तरफ जहाँ पर्वतों, नदियों का प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रित किया है तो वही दूसरी तरफ वहाँ बसे नगरों का सामाजिक, सांस्कृतिक व ऐतिहासिक विवेचन विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। अजय सोडानी के यात्रा वृत्तांतों को अगर देखें तो उनमें हिमालय के विभिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों के साथ-साथ इतिहास व भूगोल का भी व्यापक सर्वेक्षण किया गया है। इनकी

[370] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 67

यात्राओं का मुख्य उद्देश्य ही प्रकृति के साथ-साथ संस्कृति से मुलाकात का है। जिस संस्कृति की वजह से हम भारतीय कहलाते हैं और जिन संस्कारों से भारतवर्ष बँधा हुआ उनकी उत्पत्ति हिमालय की कोख से और उनका पालन-पोषण हिमालय की गोद में हुआ है। गणेश का जन्म, शिव का तांडव, काली के रुद्र रूप का शीतलीकरण, पांडवों का स्वर्गारोहण जैसी अनेक घटनाओं के स्पंदन आज भी यहाँ महसूस किए जाते हैं। इनकी यात्राओं का मुख्य उद्देश्य ही ब्रह्मकमल एवं पांडव चरणचिह्नों को खोजते हुए अलिखित दंतकथाओं और पौराणिक कथाओं की सत्यता को परखना है। वही मधु कांकरिया के 'बादलों में बारूद' में झारखंड, पश्चिमी बंगाल और पूर्वोत्तर, लद्दाख के समाज और संस्कृति के बारे में तो हरिराम मीणा के 'जंगल-जंगल जलियांवाला' में आदिवासी समाज व संस्कृति के बारे में बताया गया है। राकेश तिवारी के 'सफर एक डोंगी में डगमग' में नदियों के भूगोल का रेखांकन करते हुए उसके तट पर बसे नगरों के इतिहास, समाज और संस्कृति को प्रस्तुत किया गया है।

संस्कृति को अगर देखा जाए तो यह मनुष्य को प्राकृतिक रूप से नहीं मिलती बल्कि इसे सीखना, सम्प्रेषित करना, और प्रसारित या संचारित करना पड़ता है। संस्कृति समाज की ऐसी उपलब्धि है जिसमें मनुष्य की बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक उपलब्धियां समाहित हैं और इसी सांस्कृतिक दृष्टि से अगर भारत को देखा जाए तो भारत विविधता में एकता रखने वाला एक बहु सांस्कृतिक देश है जहाँ हर एक क्षेत्र, प्रदेश व राज्य की अपनी-अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है। इसका स्वरूप निर्धारित करने में भूगोल, समाज, धर्म, दर्शन, नीति, जीवन-मूल्य, परंपरा सभी का महत्वपूर्ण योगदान है और इन्हीं सभी बिंदुओं के माध्यम से संस्कृति को विस्तृत रूप में दिखाने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्टभूमि अत्यधिक महत्वपूर्ण है जिससे समाज की विविध सामाजिक स्थितियों और समाज के विविध स्वरूपों का यात्रा साहित्यकारों ने अपने वृत्तांतों में दिया है। जिसमें एक तरफ जहाँ परिवार और उसमें रहने वाले सदस्यों के पारस्परिक संबंधों, आदर्शों और पारिवारिक उन्नयन को उभारा गया है वही दूसरी तरफ पारिवारिक रिश्तों में आये परिवर्तन को भी यात्राकारों ने चित्रित किया है। भारतीय समाज के खानपान, वेशभूषा, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद के विविध रूपों के चित्रण द्वारा भारतीय समाज का समग्र चित्र उतारने में विवेच्य

साहित्य सफल रहा है। कुछ लेखकों की रुचि लोक और आदिवासी क्षेत्रों के विकास में बाधक कारणों की ओर ध्यान दिलाने की रही है जिससे उन्होंने क्षेत्र विशेष में प्रचलित विविध लोकगीत, लोकगाथाओं व लोगों की मान्यताओं के साथ-साथ वहाँ के अभावों व राजनीतिक चेतना की कमी की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। इसमें मधु कांकरिया का 'बादलों में बारूद', अशोक जेरथ की 'अनाम यात्राएं' व हरिराम मीणा का 'जंगल-जंगल जलियांवाला' महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

धर्म और दर्शन संस्कृति की अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण आयाम है और हिन्दी यात्रा साहित्य में भारतीय जनता की धार्मिक चेतना का महत्वपूर्ण योगदान हैं क्योंकि अधिकांश यात्राएँ धार्मिक उद्देश्यों को ही लेकर की जाती हैं। विभिन्न यात्राकारों ने विभिन्न धार्मिक स्थलों व वहाँ के प्रतिष्ठापक मंदिर, देवी-देवताओं, तीर्थ-स्थान, प्रार्थना, व्रत उपासना, आस्थामय सुरम्य वातावरण सभी को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। हिमालय क्षेत्र और उसके पार बौद्धों की धार्मिक स्थिति, लामाओं के आचार-विचार, धार्मिक व्यवहार, प्रमुख चर्च, वहाँ की प्रार्थना आदि की सुरम्य झाँकी इन यात्रा वृत्तांतों का विषय रही हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब कोई भी लेखक किसी क्षेत्र या प्रदेश विशेष की यात्रा करता है तो वहाँ के खान-पान, रीति-रिवाज, त्योहार, सामाजिक व्यवस्था, भाषा, बोली, वेशभूषा सभी का चित्रण वह अपनी आत्मानुभूति के आधार पर अपने यात्रा वृत्तांत में भी करता है। इन्हीं सभी पक्षों का विस्तृत रूप में विश्लेषण इस अध्याय में किया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. सेठ गोविंददास, 'भारतीय संस्कृति(1976)', वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 03
2. महादेवी वर्मा, 'संस्कृति के स्वर', राजपाल एंड संस, पृ. 44
3. कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 54
4. वही, पृ. 149
5. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 55
6. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 96
7. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 188
8. कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 48
9. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 22
10. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', पृ. 166
11. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 102
12. कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 161
13. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 15
14. हरिराम मीणा, 'जंगल जंगल जलियांवाला', पृ. 10
15. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 54
16. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 156
17. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 28
18. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 81
19. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 30
20. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 173
21. कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 106
22. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 34
23. वही, पृ. 16
24. वही, पृ. 16
25. वही, पृ. 24
26. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 90
27. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 67
28. पंकज बिष्ट, 'खरामा-खरामा', पृ. 34
29. अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएं', पृ. 42
30. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 16
31. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 126
32. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 86
33. वही, पृ 146
34. सेठ गोविंददास, 'भारतीय संस्कृति', पृ. 10
35. वही, पृ. 10
36. वही, पृ. 10
37. गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 97
38. पंकज बिष्ट, 'खरामा-खरामा', पृ. 61
39. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 42
40. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 26

41. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 128
42. अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएं', पृ. 16
43. कृष्णा सोबती, 'बुद्‌ध का कमंडल', पृ. 96
44. प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 31
45. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 149
46. वही, पृ. 93
47. वही, पृ. 164
48. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 26
49. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 58
50. वही, पृ. 68
51. वही, पृ. 69
52. वही, पृ. 93
53. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 48
54. गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 24
55. वही, पृ. 114
56. वही, पृ. 122
57. अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएं', पृ. 34
58. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 60
59. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 174
60. उमेश मिश्र, 'भारतीय दर्शन', पृ. 05
61. डॉ. जगदीशचंद्र मिश्रा, 'भारतीय दर्शन', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 04
62. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 63
63. वही, पृ. 66
64. वही, पृ 99
65. गगन गिल, 'अवाक्', पृ. 36
66. वही, पृ. 36
67. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 49-50
68. प्रभाकर क्षोत्रिय, 'कालिदास में भारतीय संस्कृति', समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2010, पृ.149
69. अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएं', पृ. 32
70. कृष्णा सोबती, 'बुद्‌ध का कमंडल', पृ. 56
71. अजय सोडानी, 'इरिणालोक' पृ. 75
72. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 53
73. वही, पृ. 79
74. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 18
75. वही, पृ. 18
76. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 49
77. प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 37
78. वही, पृ. 43
79. अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएं', पृ. 32
80. वही, पृ. 77
81. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 80
82. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 43

83. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 13
84. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 157
85. वही, पृ. 189
86. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 27
87. वही, पृ. 216
88. अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएं', पृ. 34
89. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 70
90. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 123
91. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 136
92. वही, पृ. 207
93. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 200
94. वही, पृ. 164
95. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 10
96. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 13
97. वही, पृ. 18
98. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 181
99. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 132
100. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 13
101. वही, पृ. 14
102. वही, पृ. 92
103. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 170
104. नीरज मुसाफिर, 'सुनो लद्दाख', पृ. 78
105. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 212
106. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 246
107. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 125
108. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 90
109. डॉ. देवराज, 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन', पृ. 244
110. प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 14
111. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 14
112. नीरज मुसाफिर, 'सुनो लद्दाख', पृ. 144
113. प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 17
114. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 181
115. वही, पृ. 182
116. पंकज बिष्ट, 'खरामा-खरामा' , पृ. 99
117. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 123-124
118.हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला ', पृ. 53
119.हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 57
120. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 14
121. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 61
122. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 154
123. वही, पृ. 152
124. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 67

अध्याय पंचम : हिन्दी यात्रा साहित्य की भाषा और शैली

5.1 **भाषिक वैशिष्टय**

5.2 **शैलीगत विविधता**

5.3 **बिम्ब विधान**

5.4 **प्रतीक**

रचना कैसे प्रस्तुत की जानी है, इस दृष्टिकोण से इसके निर्माण के लिए जिन उपादानों की सहायता ली जाती है, वे सभी कला पक्ष के अंतर्गत आते हैं। रचना को मूर्त रूप भाषा द्वारा प्रदान किया जाता है, अतः भाषा के सभी उपकरण और इनके प्रयोग की विभिन्न शैलियाँ रचना के कला पक्ष के अंतर्गत आयेंगी। किसी भी रचना की निर्माण प्रक्रिया को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। रचना के निर्माण के समय एक तो रचनाकार के मन में इस प्रश्न का उत्तर होता है कि रचना में क्या प्रस्तुत करना है और दूसरा इसको कैसे प्रस्तुत करना है? क्या प्रस्तुत करना है?, इसके उत्तर में जो सामग्री मन में आती है उसे रचना के क्षेत्र में 'वस्तु' कहा जाता है और कैसे प्रस्तुत करना है, इसके उत्तर में जो कलात्मक सामग्री प्राप्त होती है उसे 'कला' का नाम दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से कथानक, शब्द-विधान, भाषा-शैली, बिंब-विधान, कहावत, प्रतीक-विधान और विभिन्न शैलियों का विश्लेषण इसके अंतर्गत आएगा। किसी भी रचना के लिए भाषा और शैली निहायत ही जरूरी है। वैसे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ लेखक कथा को प्रस्तुत करने के लिए भाषा को अपनाता है वही शैली अपने आप चली आती है। इसी भाषा और शैली का विवेचन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

किसी भी विधा की रचनात्मकता कथ्य के साथ-साथ उसके कला पक्ष पर भी निर्भर करती है। इसीलिए हिन्दी की विभिन्न विधाओं का अपना-अपना कला पक्ष है। यात्रा साहित्य का उद्देश्य रहता है कि लेखक अपनी यात्रा से प्राप्त आनंद और ज्ञान को पाठकों तक पहुँचा सकें। यह विधा आत्मपरक, अनौपचारिक, संस्मरणात्मक और मनोरंजक होती है। इसकी सफलता वर्णन-शैली के सौष्ठव और सौन्दर्य पर अधिक निर्भर करती है। जिसमें लेखक अपनी यात्रा के वृत्तांतों का रोचक वर्णन पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। इसके कला पक्ष को अगर देखा जाए तो उसमें काफी विभिन्नताएँ दिखाई देती हैं क्योंकि प्रत्येक यात्राकार अपने व्यक्तित्व एवं लेखन शैली के अनुसार इसमें परिवर्तन करता रहता है। इसीलिए इस अध्याय में चयनित यात्रा वृत्तातों के कला पक्ष को प्रस्तुत किया गया है।

5.1 भाषिक वैशिष्टय :-

किसी भी साहित्य के निर्माण में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। साहित्य सृजनशील एवं रचनात्मक प्रक्रिया है जबकि भाषा सृजनशील एवं रचनात्मक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति का साधन है। 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना हुआ है जिसका अर्थ है 'व्यक्त वाणी'। भाषा के बिना सहित्य का निर्माण नहीं किया जा सकता। रचनाकार के पास अपनी कृति को प्रस्तुत करने का माध्यम होता है- शब्द, और शब्दों के माध्यम से ही भाषा का निर्माण किया जाता है। भाषा के माध्यम से ही रचनाकार अपने अभिप्रेत को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार लेखक के अंतर्मन के भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने का सबसे प्रभावशाली सशक्त माध्यम भाषा ही है। कामताप्रसाद गुरु भाषा के सम्बन्ध में कहते हैं कि "भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकते हैं।"[371] भाषा ही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा कथाकार अपने विचारों और उद्देश्यों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। भाषा की सामाजिक महत्ता और संस्कृति के साथ संबंध के बारे में डॉ. निरंजन कुमार कहते हैं कि "संस्कृति का मुख्य आधार भाषा है। भाषा का मानव समाज और संस्कृति से गहरा संबंध है, क्योंकि भाषा मानवीय परंपराओं का वाहन है, अर्थात् भाषा न केवल संस्कृति का हिस्सा माना जाता है बल्कि संस्कृति को समझने के लिए उसकी भाषा को भी समझना जरूरी है।"[372] भाषा के माध्यम से ही समाज और परिवेश की जीवंतता झलकती है।

यात्रा साहित्य की भाषा को अगर देखा जाए तो यात्रावृत्त के विवरण, अनुभूति, घटना, विचार, क्रिया-प्रतिक्रियाओं के समुचित प्रभावी सम्प्रेषण के लिए उत्कृष्ट भाषा अत्यंत आवश्यक है। इसमें यात्रा की रोचकता को बनाए रखने के लिए भाषा और संरचना पर ध्यान रखना बहुत जरूरी होता है; फिर भी सामान्यत: यात्रा साहित्य में कहानी की तरह सरल भाषा का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है इसीलिए अधिकतर यात्रा वृत्तांतों में सरल, सहज और धारा प्रवाह भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। वैसे इनमें भाषा का प्रवाह परिस्थिति और मन:स्थिति के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है जिससे भाषा कहीं काव्यात्मक होती है तो कहीं सरल सम्प्रेषणीय। यदि यात्रा रोमांचकारी और जोखिम वाले साहसिक उद्यम की है तो बिना किसी साहित्यिक आलंकारिकता के सरल भाषा

---

[371] गोविन्द पांडेय, सरस्वती पांडेय, 'हिंदी भाषा का वस्तुनिष्ठ इतिहास', 'अभिव्यक्ति प्रकाशन', इलाहाबाद, पृ. 01

[372] निरंजन कुमार, 'मनुष्यता के आईने में दलित समाज का समाजशास्त्र', पृ. 132

से ही पाठक को बाँधकर रखा जा सकता है किन्तु सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए लाक्षणिक व व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है। इसी संदर्भ में यात्रा साहित्य की भाषा को काव्यात्मक भाषा के अधिक निकट बताते हुए विश्वमोहन तिवारी कहते हैं कि "उत्कृष्ठ यात्रा साहित्य ललित निबंध की तरह गद्य की अपेक्षा काव्य के अधिक निकट है। आज यात्रावृत कथा-साहित्य की तरह ही लोकप्रिय हो रहा है, बस शर्त उसकी विश्वसनीयता, पठनीयता अनोखे या चमत्कारिक अनुभवों, विशिष्ट ज्ञान तथा सूक्ष्म अनुभूतियों के सम्प्रेषण की है।"[373]

सामान्यत: यात्रा साहित्य में लेखक क्लिष्ट शब्दों का कम प्रयोग करते हुए अपने व्यक्तित्व और रुचि के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है। प्रायः संक्षिप्त वाक्यों में कथोपकथन की सरल भाषा का प्रयोग किया जाता है। इस संदर्भ में 'दर्रा-दर्रा हिमालय' में लेखक द्वारा 'सोनी' और 'अद्वैत' से बातें करते समय की भाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है-

"सर्त लग गई है सर्त।"

"ओ तो यह बात है, कितने की लगी ?" अपर्णा ने मुस्कराते हुए पूछा।

"पाँच सौ रुपये की।" सोनी बोला।

"बस पाँच सौ।"

"नहीं एक और बात है यदि आप लोग बद्रीविशाल पहुँच गए तो नेता जी मूँछ मुड़वाकर उत्तरकाशी में घूमेंगे।"

"नहीं तो ?" अद्वैत ने कौतुक से पूछा।

"नहीं तो मुझे गंजा होना होगा।"

"ओ तेरी।" हम तीनों के मुँह से एक साथ निकला।"[374] यहाँ भाषा में त्वरित प्रत्युत्तर क्षमता है जो कि सभी की मन:स्थिति को ज्यों की त्यों खोलकर सामने रख रही है।

शब्द-योजना:

अंग्रेजी शब्द :-

---

[373] विश्वमोहन तिवारी, 'हिन्दी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि' पृ. 29

[374] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 27

चयनित यात्रा वृतांत्तों को अगर देखा जाए तो इनकी भाषा मुख्य रूप से हिन्दी है लेकिन फिर भी अंग्रेजी, उर्दू और क्षेत्रीय प्रभाव से युक्त शब्दों व वाक्यों का बहुतायत से प्रयोग किया गया है। हम पहले अंग्रेजी शब्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। एक तो प्रायः यह देखा जाता है कि अंग्रेजी के तमाम शब्द कुछ परिवर्तित होकर या अपने मूल रूप में ही हिंदी भाषा का अंग बन चुके हैं। हिंदी भाषी जनता उनका प्रयोग अनायास ही करती रहती है। दूसरे प्रकार के अंग्रेजी शब्द जो हिंदी भाषा में व्यवहृत होते हैं वह हिंदी के उस तरह से अंग तो नहीं बने हैं पर उनके स्थान पर हिंदी शब्दों को रखने से वह व्यंजना नहीं निकलती जो अंग्रेजी शब्दों से निकलती है, जैसे आइडिया, सरेंडर, अडजस्ट आदि। अतः इस तरह के शब्द भी भावों की व्यंजना के तहत हिंदी भाषा में आते रहते हैं। तीसरे लेखक कभी-कभी पात्रों के अनुसार या खुद की मनःस्थिति के अनुसार अंग्रेजी शब्दों को सायास हिंदी भाषा में ले आता है। इन सभी का प्रयोग चयनित यात्रा वृत्तांतों में देखा जा सकता है। अजय सोडानी ने 'दर्रा-दर्रा हिमालय' और 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' में हिमालय यात्रा के कारण पर्वतीय क्षेत्र से संबंधित अनेक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे - ट्रेकेबल पास, परमिट, ट्राय, रेयर, बोल्डर, बेक-पेक, टूरिस्ट, जियॉलॉजिस्ट मोरेन, पावडर एवालांच, स्लीपिंग बैग, स्नो-लेपर्ड, हाई एल्टीच्यूड सिकनेस, कॉल, पास, सेडल, वॉल क्लाइम्बिंग, जुमारिंग, रेपलिंग, आइस-एक्स, पीटॉनस, कोफ्लॉज, आइस वॉल, क्रेवास, वैली, क्रेम्पान, रेबिट ईयर आदि इसी तरह अन्य शब्द गुड ईवनिंग, मैडम, फ्रेडशिप, नॉट गुड, बॉस, ग्लोबल वार्मिंग, पोर्टफोलियों जैसे सामान्य शब्दों का प्रयोग भी किया गया है।

इसी तरह 'सम पर सूर्यास्त' में राजस्थान के रेगिस्तान व अन्य शहरों की यात्रा होने के कारण इससे संबंधित ही अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है जैसे- डेजर्ट फेस्टिवल, सैंड ड्यून्स, लैंडमार्क, बॉटनिकल गार्डन, लॉन, इंटरवल, कोल्ड ड्रिंक्स, ग्रीन-रूम, इंस्टिट्यूट व 'वह भी कोई देश है महराज' में पूर्वोत्तर भारत की यात्रा होने के कारण उससे संबंधित शब्दों की अधिकता है। जैसे - इंडियाज, नॉर्थ ईस्ट, चिकेन्स नेक कॉरिडोर, स्लीपिंग बैग, सॉफ्ट टारगेट, सरेंडर, हेडक्वार्टर, सुपरकॉप, हिल्स, इनर लाइन परमिट, फेस्टिवल, बैरियर, नेशनल काउंसिल, लेमिंग कॉम्पलेक्स, यूनाईटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट, इंटरव्यू, एडवाइस, चांस, येलो केक, अंडरग्राउंड मार्केट, प्रापर्टी, ईगो, हस्बैंड, स्ट्रीट स्मार्ट आदि. इसी तरह 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में किडनैप, एनिवर्सरी, नोटपैड, टिकिट बुक,

सिलिगुडी कॉरीडोर, स्टेशन, एक्सप्रेस, एक्सचेंज, साइड लोअर, कंपार्टमेंट, कन्फर्म, अंसर्टेनिटी आदि। इस तरह से सभी यात्रा वृत्तांतों में स्थान व परिस्थिति के अनुसार अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है।

अंग्रेजी वाक्य :-

अक्सर हिंदी भाषा का प्रयोग करने वाला और अंग्रेजी की समझ रखने वाला व्यक्ति अंग्रेजी भाषा का प्रयोग प्रायः तब करता है जब वह भावावेश या उत्तेजना में होता है। यह कभी-कभी अंग्रेजी बोलने का मनोवैज्ञानिक पक्ष है। इसीलिए व्यक्ति शराब के नशे में भी अंग्रेजी बोलना शुरू कर देता है। इसके अलावा भी लेखक अपनी विशेष मनःस्थिति और पात्रों के आधार पर भी अंग्रेजी वाक्यों का प्रयोग करते हैं। 'दर्रा-दर्रा हिमालय' में अधिक ऊँचाई पर प्राणवायु की कमी के कारण 'हाई एल्टीच्यूड सिकनेस' व स्थानीय मान्यताओं के अनुसार भूत सवार होने के कारण जब डी. एन. नेपाली में कुछ मंत्र पढ़कर फूँक मारने लगता है तो अपर्णा जोर-जोर से चिल्लाने लगती है और अंग्रेजी में ही कहती है –"यू फूल, यू रन अवे, आई एम नॉट डाकन, यू आर डाकन, आई विल सिट हियर, आई एम लविंग इट।"[375] 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में उमेश पंत नीना के पति के बारे में बातें करते हैं तब बताते हैं कि वो मेघालय से है और लोगों के बारे में उनकी राय कुछ खास अच्छी नहीं है "दीज पीपल आर पॉलिटिकली नॉट अवेयर ऐट ऑल। दे आर सो कंटेन्ट। दे डोंट प्रोटेस्ट फॉर देयर राइट्स। दिस रोड इस गोइंग टु एजेज टू फिक्स।"[376]

उर्दू (अरबी-फारसी) की शब्दावली :-

अरबी-फारसी और हिंदी के शब्दों के मेल से उर्दू भाषा का विकास हुआ है। अरबी-फारसी विदेशी भाषा है और उर्दू का विकास हुआ भारत में। यद्यपि उर्दू में अरबी-फारसी के हिंदी भाषा के भी शब्द होते हैं पर क्योंकि हिंदी भारत में पहले से ही बोली जाती थी और उर्दू में बहुलता अरबी-फ़ारसी के शब्दों की थी अतः अरबी-फारसी शब्दवाली से युक्त भाषा को उर्दू मानने की परंपरा चल पड़ी। हिंदी के साथ अरबी-फारसी का व्यवहार उर्दू भाषा के अंतर्गत होते रहने से बहुत से अरबी-

---

[375] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 58

[376] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 192

फारसी के शब्द हिंदी में इतने घुल-मिल गए हैं कि उन्हें पहचानना भी मुश्किल होता है। 'पानी' ऐसा ही शब्द है। इसके अलावा भी तमाम अरबी-फ़ारसी के शब्द नित्य व्यवहार के अंग हैं। अफसर, इत्मीनान, आगाज़, तवज्जोह, मुकम्मल, गुमान-ए-जुस्तजू, ताउम्र, खरामा-खरामा, राबता, नावाकिफ, फेहरिस्त, सामयाना, अलहदा, मुताल्लिक, मुलाकात, गुस्ताखी, काबिज़, खुशनुमा, किस्साख्वानी, शोहबत, सरगोसी, सामियाने, खानसामा, सुर्ख, नामोनिशा, तकरीबन, दस्तखत, दवाखाने, हाकिम, नेस्तनाबूत, सरेफेहरिस्त, लिहाज, ताल्लुक, मयखोरी, आशियाने, रुखसत, शिरकत, कातिलमिजाज, गनीमत, जोखिम, दफा, काबिज, मरदूद, मर्तबा रूह आदि।

उर्दू वाक्य :-

परिस्थिति, अर्थ-व्यंजना और पात्रों के अनुसार यात्रा-साहित्य में उर्दू भाषा का प्रयोग भी दिखाई देता है। अजय सोडानी 'इरिणालोक' में कहते हैं कि "जैसे इस नाम में जलजलों के संकेत है वैसे ही इरिणा में भी न जाने क्या कुछ पेशीदा हो। अब इल्म नहीं आगे इल्हाम होगा।"[377] इसी तरह अजय सोडानी के 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर' और 'दर्रा-दर्रा हिमालय' के उदाहरण भी द्रष्टव्य है - "बाजी दफा पवन शामियाने को हौले से झकझोर देता, टेंट भी कसमसाकर भीतर सिमटता, जैसे औचक आगोश में भरने पर प्रेयसी सिमटती है अपने में।"[378]

"पल-पल खींचती रही पोशीदा डोर हमको गुमान-ए-जुस्तजू मगर ताउम्र रहा।"[379]

स्थानीय या क्षेत्रीय प्रभाव से युक्त शब्द :-

लेखक जब स्थान विशेष की यात्रा पर जाता है तो वहाँ की स्थानीय भाषा से भी रू-ब-रू होता है। स्थानीय शब्द जिस वस्तु या घटना से जुड़े होते हैं, उसकी व्यंजना उन्हीं शब्दों से हो सकती है, अतः लेखक इस आग्रह से स्थानीय शब्दों का प्रयोग अपनी रचना में ले आने के लिए कभी-कभी विवश हो जाता है। स्थानीय पात्रों के संवादों की भाषा भी प्रायः स्थानीय भाषा में रखी जाती है। इसके अलावा यात्रा साहित्य में स्थानीय शब्द उस स्थान विशेष की संस्कृति को

[377] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 151

[378] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 117

[379] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 08

प्रतिबिंबित करने के भाव से भी लाए जाते हैं । यात्रा साहित्य में लाए गए इस प्रकार के स्थानीय शब्दों और उनके अर्थों को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है -

फूँट – पका हुआ काचरा ।[380] ‘जंगल-जंगल जलियांवाला’ में हरिराम मीणा बताते हैं कि राजस्थान में पका हुआ जो काचरा होता है उसे स्थानीय भाषा में फूँट कहा जाता है ।

जिंग-किंग-वा – डबल डेकर रिवर । उमेश पंत जब डबल डेकर ब्रिज पर जाते हैं तो जॉन स्थानीय खासी भाषा के संबंध में बताता हुआ कहता है कि “जानता है, जहाँ आप जा रहा है उसे खासी में क्या बोलता है ? बोलता है ‘जिंग-किंग-वा’ । जिंग-किंग बोलेगा डबल डेकर । और वा को बोलेगा रिवर ।”[381]

चेंचू – यह झारखंड के आदिवासियों में पानी को फ़िल्टर करने की देशी पद्धति है जिसमें नदी के किनारे की गीली मिट्टी को खोदकर गड्डा बनाकर उसमें जल भर देते हैं, जिससे थोड़ी देर के बाद गंदगी नीचे बैठ जाती है और साफ जल ऊपर आ जाता है. फिर उस साफ जल को पीने के काम में लिया जाता है।

जर्रसां – शिलोंग में स्त्री पुरुष अपने पूरे परिधान के बाद ऊपर से चादर को लंबे कोट की तरह अपने ऊपर डालकर संपूर्णता के प्रतीक के रूप में इसे गले से बांध लेते हैं ।

हड़िया - झारखंड के आदिवासियों की एक किस्म की देशी शराब जिसमें से तीखी दुर्गंध आती है।

भुल्लर-बथुर – कल-कल की आवाज, ब्रह्मपुत्र नदी असम के डिब्रूगढ़ में दो भागों में बँट जाती है और यही पर माजुली नाम का द्वीप बनाती हैं जोकि किसी भी नदी पर बना दुनिया का सबसे बड़ा द्वीप है । यहाँ पर ही ब्रह्मपुत्र को स्थानीय भाषा में लोग भुल्लम-बथुर के नाम से पुकारते हैं ।

गून्गू - पत्तों से बनी (बरसाती)

---

[380] हरिराम मीणा, ‘जंगल-जंगल जलियांवाला ’, पृ. 53

[381] उमेश पंत, ‘दूर-दुर्गम-दुरुस्त’, पृ. 57

कोंग और बा - शिलोंग में लड़की को कोंग और लड़के को बा कहते हैं. इसी के बारे में बताते हुए उमेश पंत 'दूर दुर्गम दुरस्त' में कहते हैं कि "जॉन ने बताया कि यहाँ लड़की को कोंग बोलते हैं और लड़के को बा। रास्ते में कोई राहगीर मिला तो उसने उससे कुछ पूछा और फिर मुझे बताया, "मैं उसको बोला 'शे नो'। इसका मतलब है – कहाँ जाएगा।"[382]

इमा कईथल – माँ का बाजार, यानी वो बाजार जिसे माँए चलाती हैं। मणिपुर में यह एक ऐसा बाजार है जिसे सिर्फ महिलाएँ चलाती हैं।

लूलुप-काबा – मणिपुर में बंधुआ मजदूरी की प्रथा, प्राचीन समय में यह प्रथा थी जिसमें पुरुषों को खेती करने और युद्ध करने के लिए दूर भेज दिया जाता था जिससे महिलाएँ ही घर चलाती थीं।

नुपी लेन – औरतों की जंग। "नुपी लेन के तहत महिलाओं ने अंग्रेजों की जनविरोधी नीतियों के खिलाफ भी विरोध प्रदर्शन, चक्काजाम और जुलूस आयोजित किए।"[383]

निरमउल्ला वेल्ला, वेल्लम और वल्लम – मलयालम में रंगीन पानी को निरमउल्ला वेल्ला, जल को वेल्लम और वल्लम नाव को कहा जाता है। प्रयाग शुक्ल जब केरल जाते हैं तो वहाँ के अनंतर इंस्टीट्यूड के कन्नन जी बताते हैं कि "रंगीन पानी को आप मलयालम में 'निरमउल्ला वेल्ला' कह सकते हैं। निरे जल के लिए तो 'वेल्लम' का प्रयोग ही होता है। और ललिता जी की ही तरह, मिलते-जुलते, लेकिन भिन्न अर्थों वाले दो शब्दों का भेद बताते हुए उन्होंने कहा, 'वेल्लम' जल है, मगर 'वल्लम' का अर्थ नाव।"[384]

यू थलेन – आदमी का खून पीने वाला साँप। खासी समुदाय में मान्यता है कि जब शरीर सूखने लग जाए, त्वचा निस्तेज पड़ जाए और पेट में अक्सर तेज दर्द होने लगे तो खासी उसके लिए कहते हैं कि 'यू थलेन' ने पकड़ लिया है।

स्लाउप – मूसलाधार बारिश, **डाइन्यु मियात, खड़सा मियात**। इसके संबंध में अनिल यादव कहते हैं कि "री सोरा के आदिवासी अपनी जुबान में मूसलाधार बारिश को 'स्लाउप' कहते हैं। नौ

---

[382] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 55

[383] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 207

[384] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 43

दिन, नौ रात लगातार पानी बरसे तो 'डाइन्यू मियात' कहा जाता है। चौदह दिनों तक धरती से आकाश तक पानी की मोटी-मोटी रस्सियाँ तनी रहें तो 'खड़सा मियात' कहा जाता है।"[385] इस प्रकार देखा जा सकता है कि विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में स्थानीय शब्दों का बखूबी प्रयोग किया गया है। जो कि स्थान विशेष की अपनी विशिष्ट पहचान को प्रकट करते हैं।

क्षेत्रीय प्रभाव से युक्त वाक्य :-

इन यात्रा वृत्तांतों में प्रायः पात्रों के संवादों को प्रकट करने के लिए स्थानीय भाषा के वाक्यों का प्रयोग किया गया है। हरिराम मीणा ने 'जंगल-जंगल जलियांवाला' यात्रा वृत्तांत में स्थानीय लोगों से बातचीत करते समय वहाँ की स्थानीय भाषा और शब्दों का ही प्रयोग किया है। मानगढ़ हत्याकांड के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए जब वे बांसवाड़ा के स्थानीय लोगों से मिलते हैं तो पता चलता है कि इतिहास के पन्नों से गायब इस घटना को यहाँ के सभी लोग जानते हैं लेकिन उसको कभी भी बाहर लाने की कोशिश इतिहासकारों द्वारा नहीं की गई। इसी के संबंध में नाथूराम जी कहते हैं कि "साब, क्या बताऊँ, इन राजे-रजवाड़ों की वजह से ही भूरेटियों (अंग्रेजों) ने मानगढ़ पर अचानक धावा बोला था। ओ हो... कितने मिनख मरे और इतिहास में कोई जिकर नहीं।"[386]

'इरिणालोक' में बन्नी के लोगों की स्थानीय भाषा का उल्लेख किया है। बन्नी के लोगों से बात करते हुए वे मालवा को याद करके स्थानीय भाषा में कहते हैं कि "भाया, काका बाबा ओन से जो सुन्यो वा हम भी बोलाँ हाँ। बाप नी मारी मेंडकी नी छोरो तीरंदाज। बेंड़ी रांड को घणो जासूस बन्यो फिरी रियो है जो बोलाँ सो मान, अन थारे जख नी पड़ी री तो सरग मा जाके पूछिले उना से... इस जवाब की इब्तिदा जो गाली से नहीं हुई तो इंतहा किसी वजनदार गाली से होना सुनिश्चित जानिए।"[387] इसी तरह अजय सोडानी जब होड़का के गोल घर बुंगा में रूकते हैं तो वहाँ एक बंगाली दंपति से मिलते हैं। बंगाली श्रीमती जी जब बुंगा से बाहर निकलकर आती है तो चिल्लाते हुए बांग्ला में कहती है "शुन चो की, ए भद्र लोग जा बोलचेन। जे बाड़ी, आर फारनिचार शब निजेर हाथे तौयरी। शुधू कपाट-जाँगला गुलो किना होए चे। बायरे जे रंगों चिर्तो आछे, ता जानो

---

[385] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 95

[386] हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 19

[387] अजय सोडानी, 'इरिणालोक' पृ. 153

कि...बाड़ीर मेछेले आर बऊ गुलोर हाथे...' 'तुमि चुप करो तो एकटु, आमि किछु जिज्ञेष कोरते चाई' श्रीमानजी का भय गलत नहीं था फिर वे चुप।"[388] महुआ बीनते समय भी स्थानीय भील से लेखक की बातचीत होती है तो वह स्थानीय भाषा में पूछता है "वो – कित्रे आइलस र भाई ?

बताया – 'इंदौर।'

वो – 'बोत पेला इंदौर गयो थो।'

मैं – 'एक बार, बस।'

वो – 'हव्व'

मैं – 'वहाँ से यहाँ आकर मन लग गया ? फिर वहीं जा बसने का दिल नहीं करा ?

वो – 'वाँ कइँ धर्यो र शेर मा। एक देग त नी मिल्अ ह, थारा इंदौर मा।"[389]

'दूर दुर्गम दुरुस्त' में उमेश पंत जब पूर्वोत्तर की तरफ जाने वाली ट्रेन में सरदार जी के पास वाली सीट पर बैठे रहते हैं तब सरदार जी अपने बेटे से पंजाबी में बात करता हुआ कहते हैं "किद्दा मेरा बेटा। बाप दी गल दा बुरा नई मनदे। ऐसा गुस्सा ना दिलाया कर मेरा बच्चा।"[390] राकेश तिवारी का 'सफर एक डोंगी में डगमग' अपनी भाषाई विशेषता के कारण अलग पहचान रखता है। इसमें डोंगी जहाँ से गुजरती है वहाँ की क्षेत्रीय बोलियों को यथारूप में रखा गया है। वे गंगा के घाट किनारे पर जाते हैं तो कहते हैं "तौ भईया ! तुम चहौ तो आँखिन पर पट्टी बाँधि कै घूमौ मुला हमका राम जी आँखी दिहिन हैं तो, बित्ता-बित्ता भर दीदा काढ़ी के सलोनी सुरतैं द्याखब जरूर खाए तो जाइत नहीं है औ बिंधयाचल के म्हतमन ते बड़े म्हतमा तौ हमअन नहीं।"[391] इसमें विषय व पात्रों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया गया है। जहाँ से जिस रूप में कथ्य लिया है उसे उसी रूप में भाषायी रूपता प्रदान की गई है। इसमें स्थान, देशकाल व परिवेश का पूरा ध्यान रखा गया है।

शब्द निर्माण :-

---

[388] अजय सोडानी, 'इरिणालोक' पृ. 160

[389] अजय सोडानी, 'इरिणालोक' पृ. 143

[390] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 23

[391] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 78

विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में स्थानीय शब्दों के साथ-साथ उनके निर्माण की पूरी प्रक्रिया को समझाने के लिए उनके सामाजिक, ऐतिहासिक संदर्भ को भी प्रस्तुत किया गया है। राकेश तिवारी 'गोनारी' के बारे में बताते हैं कि "रस्सी को संस्कृत में 'गुण' और खींचने को 'कर्षण' कहते हैं। इसी वजह से इसके लिए 'गुणकर्षण' शब्द गढ़ा गया जो कालांतर में 'गन', गोन' या 'गोनारी' हो गया।"[392]

इसी तरह अजय सोडानी भी शब्द के मूल को खोज निकालने में विशेष प्रवृत्त हुए हैं। इरिणा, कच्छ, धोलावीरा इन शब्दों को अगर देखा जाए तो 'धोलावीरा' शब्द के संदर्भ में कहते हैं कि "कच्छी में सफेद रंग को 'धोला' बुलाते हैं और भाई को वीरा। वास्तव में जो आधुनिक गाँव है, वह तो इधर के काल की बसावट है, जूना गाँव तो यहाँ से कुछ किलोमीटर दूर था। उस रबारी जनानियों को धोलावीरा के क्षेत्र में मीठे पानी का एक कूप मिला। जल को लेकर इतनी ढेर सारी मशक्कत खत्म हुई। लोग यहाँ आकर बस गए, पुराना गाँव उजड़ गया। इस कूप ने महिलाओं का कष्ट यूँ दूर किया जैसे कोई सगा भाई करे। यहाँ से नाम का पुछल्ला तय हुआ -वीरा। उस कूप का जल हलका पीला पर उसे पनिहारिनों ने 'धोलो पाणी' बुलाया। सो कुएँ का नाम पड़ा – 'धोलावीरा', जो कालांतर में इस नई बस्ती का नाम ही बन गया।"[393] हुड़को झील नामकरण को लेकर कहते हैं कि "कच्छी का एक शब्द है 'हुड़ा ' यानी लकड़ी की नौका। पहले यहाँ जो झील थी, उसमें नावें चला करती थीं इसीलिए उसका नाम पड़ा 'हुड़को झील'। झील तो कब की सूख गई, बाद में वहाँ बस गया एक गाँव। नाम मिला होड़का।"[394]

उमेश पंत 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में नागा जनजाति के 'जुको' शब्द के पीछे की कहानी को बताते हैं। जुको का वैसे अर्थ होता है उदासीन और निष्प्राण जो कि पूर्वोत्तर के प्राकृतिक सौन्दर्य के बिल्कुल विपरीत जान पड़ता है इसी के बारे में बताते हुए उमेश कहते हैं कि "पूर्वोत्तर में आकर जैसे लग रहा था कि यहाँ की बोलियों का हर दूसरा शब्द जैसे कहानियों का खजाना लेकर बैठा हो। जुको के पीछे की कहानी ये है कि विश्वेमा के कोई पूर्वज एक गाँव बसाने के लिए जुको आए।

---

[392] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 47

[393] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 229

[394] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 156

लेकिन उन्होंने पाया कि यहाँ की जमीन में खेती नहीं की जा सकती। उन्होंने वापस जाकर बताया कि घाटी खूबसूरत बहुत है लेकिन उदासीन और निष्प्राण है। तभी से इसका नाम जुको पड़ गया।"[395] इसी तरह अगर 'तवांग' शब्द को देखा जाए तो इसे एक दूर पहाड़ पर स्थित मशहूर मठ से जोड़कर बताते हुए कहते हैं कि "इसी मठ में तवांग के नामकरण की कहानी भी छिपी है। 'ता' का मतलब होता है घोड़ा और 'वांग' का मतलब चुनना। कहते हैं कि बौद्ध धर्म के लामा गोम्पा के लिए जगह का चुनाव नहीं कर पा रहे थे। वे घोड़े पर सवार होकर यहाँ आए। घोड़ा इस जगह पर आकर रूक गया और लामा ने इस जगह को गोम्पा के लिए चुन लिया। तभी से इसका नाम तवांग पड़ा।"[396]

इस प्रकार से देखा जा सकता है कि भाषा यात्रा साहित्य की अभिव्यक्ति का मूल उपकरण है और यह जितनी अधिक सहज और सरल होगी उसमें उतनी ही अधिक प्रवाहशीलता होगी। ऐसे भाषा साधन है साध्य नहीं लेकिन दुरूह भाषा से यात्रा वृत्तांत को पढ़ने में नीरसता होती है। विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में भाषिक वैशिष्टय विद्यमान है जिससे एक तरफ जहाँ लेखक की अभिरुचि और व्यक्तिगत भाषा के बारे में जानकारी मिलती है वही दूसरी तरफ स्थानीय भाषा के प्रयोग किए जाने से स्थान विशेष बारे में भी काफी कुछ जानने को मिलता है। इसी भाषागत वैविध्य को दिखाने का प्रयास इसमें किया गया है। मुख्यतः इन यात्रा वृत्तांतों की भाषा परिष्कृत, परिनिष्ठित, भावानुकूल, पात्रानुकूल एवं विषयानुकूल है तथा कथावस्तु, पात्र, शैली एवं परिवेश के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया गया है।

5.2 शैलीगत विविधता :-

शैली किसी लेखक की अभिव्यक्ति का एक प्रकार है, जो अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' के हिंदी पर्याय के रूप में प्रचलित है। 'स्टाइल' शब्द भारोपीय परिवार की भाषाओं में अपने मूल रूप में काफी पुराना है। जिसे अवेस्ता में 'स्तएर', ग्रीक में 'स्ताइलोस' एवं लैटिन में 'स्ताइलुस' आदि से विकसित हुआ माना जाता है। ग्रीक और लैटिन में यह शब्द नोकदार लेखनी के लिए प्रयोग किया

[395] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 182
[396] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 115

जाता था। आगे चलकर इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाने लगा। जैसे- लिखने का ढंग, लेखन विशेष की अभिव्यक्ति की विशिष्टता, बोलने का लहजा, रीति, किसी युग जाति-देश या वर्ग विशेष के कलाकारों की रचना पद्धति की विशिष्टता आदि।

प्राचीन साहित्यशास्त्र में शैली के लिए शैली से मिलते-जुलते अर्थ प्रदान करने वाले शब्द 'रीति' का प्रयोग किया जाता था। वामन ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकारसूत्र' में रीति को 'विशिष्ट पद रचना' कहकर परिभाषित किया है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अपनी पुस्तक 'रीतिविज्ञान' में अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' के लिए 'रीति' शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति की पद्धति के अर्थ में 'रीति' या 'शैली' का प्रयोग किया जाता है। धीरेन्द्र वर्मा शैली के सम्बन्ध में लिखते हैं कि "जब विचार को तात्विक रूप आकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है।"[397] गेटे ने विषयवस्तु के प्रसंग में शैली की व्याख्या करते हुए कहा हैं कि "शैली रचना का वह उच्च और सक्रिय सिद्धांत है जिसके द्वारा लेखक अपने विषय की गहराई में उतर कर विषय के अंतस् का उद्घाटन करता है।"[398] इस प्रकार शैली शब्दों का वह चयन और संयोजन है जिसके द्वारा लेखक अपने विचारों और भावों को पाठकों तक रसमय, स्पष्ट और प्रभावी ढंग से संप्रेषित करता है। यात्रा साहित्य में अधिकतर मुक्त निबंध शैली का प्रयोग किया जाता है।

शैली के संबंध में प्रेम भटनागर कहते हैं कि "शैली शिल्प के अधीनस्थ मानी जायेगी.. दोनों एक दूसरे के पूरक हैं.. क्योंकि शिल्प विधि का संबंध रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओं से है, अतएव किसी भी रचना का शिल्प विधि की खोज करने के लिए हमें उस रचना में काम आने वाली विधियाँ, रीतियाँ तथा अन्य ढंगों की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है। शिल्प, विधा का सम्पूर्ण ढाँचा (स्ट्रक्चर) है, तो शैली उस ढाँचे की अभिव्यक्ति की रीति।"[399] प्रत्येक रचनाकार की अपनी शैली होती है। जिसमें रचनाकार अपनी विषय-वस्तु के अनुसार शैली का चयन करता है। यह व्यक्ति सापेक्ष होती है जिससे लेखक अपनी शैली का निर्माण स्वयं करता है। लेखक अपने विषय की प्रस्तुति में प्रभावमयी अभिव्यंजना के लिए जितने प्रकार की प्रणालियों का प्रयोग करता है वे

---

[397] सच्चिदानंद चतुर्वेदी, 'अज्ञेय के निबंध', पृ.सं. 162

[398] राजेन्द्र प्रताप सिंह, 'पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र की परंपरा', पृ.सं. 77

[399] डॉ. प्रेम भटनागर, 'हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य', पृ. 31

सब शैली में ही आती है। "शैली अनुभूत विषय-वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर और प्रभावपूर्ण बनाते हैं।"[400] यह ऐसा ढाँचा है जिसमें अनुभूत विषय वस्तु को समाहित या व्यवस्थित किया जाता है। विभिन्न रचनाएँ जिन प्रभावों को उत्पन्न करती है वे अलग-अलग तरह के होते हैं इसलिए उनकी शैलियाँ भी अलग-अलग होती है।

शैली अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग है। लेखक अपने विचारों को जिस तरीके से पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है, वही लेखक की शैली कहलाएगी। यात्रा वर्णन की विभिन्न पद्धतियों को अगर देखा जाए तो इसकी प्रारंभिक शैली को विवरणात्मक या परिचयात्मक शैली के अंतर्गत रखा जाएगा। प्रारंभ में यात्रा साहित्य का मुख्य उद्देश्य यही होता था कि देखे गए स्थलों, दृश्यों और घटनाओं का परिचय पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाय। इसमें लेखक जिस देश या क्षेत्र की यात्रा करता है उसका वर्णन या परिचय मात्र प्रस्तुत कर देता है। इसमें प्राकृतिक दृश्यों, पर्वतमालाओं इत्यादि का विशद वर्णन करते हुए देखे गए स्थलों की विशेषताओं का उद्घाटन ही अधिक किया जाता है। यह शैली एक प्रकार से निबंधात्मक शैली होती है। कई यात्रा वृत्तांतों में ललित निबंधों की सी विशेषतायें दिखाई देती हैं। यह वर्णनात्मक शैली का ही किंचित विकसित रूप है।

इन्हीं सब कारणों से प्रारंभ में यात्रा साहित्य कोई अलग विधा न होकर निबंध के अंतर्गत परिगणित की जाती थी। धीरे-धीरे यात्रा साहित्य में अनुभव और अनुभूतियों का स्थान प्रमुख होता गया और परिचय का स्थान गौण। तब इसमें भावात्मक और विचारात्मक शैली का उदय हुआ। इस पद्धति के अंतर्गत लेखक अपनी अनुभूतियों और विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति करते हुए इसे एक साहित्यिक रूप प्रदान करता है। यह भावात्मकता तथा विचारात्मकता कभी-कभी काव्यात्मकता तथा दार्शनिकता में भी परिवर्तित होती हुई दिखती है। निबंध के अलावा अन्य विभिन्न साहित्यिक विधाओं की शैलियों का मिश्रण भी यात्रा-साहित्यों में देखने को मिलता है क्योंकि अपने द्वारा की गयी यात्रा का विवरण और वर्णन इसमें देना होता है अतः आत्मकथात्मक शैली स्वाभाविक रूप से इसका अंग होती है। वर्णन क्योंकि बीती हुई घटनाओं का किया जाता है,

[400] सं. धीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी साहित्य कोश', पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 671

अतः संस्मरणात्मक और रेखाचित्रात्मक शैली से भी यह अछूता नहीं रह सकता। पात्रों और उनके संवादों का भी कभी-कभी जिक्र कर देने के कारण यह कथात्मक शैली से युक्त हो जाता है। सघन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में लेखक की शैली प्रायः ही काव्यात्मक हो उठती है। इसके अलावा भी इसमें अन्य विधाओं, जैसे-पत्र, डायरी आदि शैली का दर्शन अवसरानुकूल दिखाई देता है। यात्रा वृत्तांत के रूप, आकार, विचार और भाव शैली को प्रभावित करते हैं। जहाँ पर उत्कृष्ट और अभिनव शैली का प्रयोग होगा कथावस्तु उतनी ही अधिक अलंकृत एवं आकर्षक होगी।

यात्रा साहित्य में इस प्रकार विभिन्न शैलियों का मिश्रण होने से कभी-कभी शैली का निर्धारण करना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि उसकी विषय-वस्तु अलग-अलग होने के कारण उसमें अनेक शैलियों का प्रयोग किया जाता है जिस पर लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव प्रमुख रूप से पड़ता है। लेखक की स्वयं की रुचि, उसका क्षेत्र, विधा सभी का प्रभाव यात्रा साहित्य के भाषा शिल्प पर पड़ता है। "यात्रा साहित्य में शिल्प की बनावट का स्वरूप निर्धारण करना उसी प्रकार मुश्किल है, जिस प्रकार यात्रा साहित्य की विषय-वस्तु। यात्रा-साहित्य के निर्माण में अनेक शैलियों का प्रयोग हुआ है। यात्रा-साहित्य वैसे तो पूर्णरूपेण गद्य की विधा है लेकिन फिर भी यात्रा-साहित्य की शैली पर लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है। लेखक की स्वयं की रुचि कैसी है और वह किस विधा या क्षेत्र से संबंध रखता है, इसका प्रभाव उसके यात्रा-साहित्य की शैली पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कवि पृष्ठ-भूमि के यात्रा लेखकों ने अपने यात्रा-साहित्य में अपनी अनुभूतियों को काव्य रूप में प्रकट किया है और इस प्रकार उनकी शैली काव्यात्मक बन पड़ी है।"[401] इस प्रकार यात्रा वृत्तांत की विभिन्न शैलियों को देखा जाए तो उसमें निबंध शैली, वर्णनात्मक शैली, संस्मरण शैली, डायरी और पत्र शैली, काव्यात्मक शैली, आत्मकथा शैली, रेखाचित्र शैली, औपन्यासिक शैली व लोककथात्मक शैलियों में विभाजित करके देखा जा सकता है। शैली का वैविध्य लेखक और पाठक दोनों के लिए ही लाभप्रद होता है। शैली जितनी आकर्षक होगी यात्रा वृत्तांत भी उतना ही सशक्त, सफल, रोचक एवं प्रभावशाली होगा।

[401] डॉ. अनिल कुमार, 'स्वातंत्र्योत्तर यात्रा-साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन', पृ. 204

शैली को अभिव्यक्ति और अनुभूति के आधार पर दो भागों में विभक्त करके देख सकते हैं। अभिव्यक्ति में जहाँ निबंधात्मक शैली, संस्मरण शैली, रेखाचित्र शैली, काव्यात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, कथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, वर्णनात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, काल्पनिक शैली को रखा जा सकता है तो वहीं अनुभूति में भावनात्मक शैली, संवेदनात्मक शैली व दार्शनिक शैली को देखा जा सकता है। इसके संबंध में मुरारी लाल शर्मा कहते हैं कि "यात्रा साहित्य में कहीं संस्मरण प्रमुख हो उठते हैं, तो कहीं लेखक आत्मकथा कहने लगता है, कही रेखाचित्र की भरमार होती है तो कहीं रिपोर्ताज की भाँति सूचनाओं का कलात्मक विवेचन होने लगता है कही डायरी शैली में आत्मगोपन व्यवहार को समग्रता प्रदान की जाती है तो कहीं पात्रों के माध्यम से रोचकता तथा आत्मीयता का समावेश करवा दिया जाता है। यात्रा साहित्य वस्तुत: इन सभी गद्य-विधाओं की गुणवत्ता का समन्वित किन्तु मौलिक साहित्यिक रूप है।"[402] लेखक के कहने का ढंग या शैली कथावस्तु को सौन्दर्य के शिखर पर पहुँचा देती है।

निबंध शैली :-

भारतेन्दु युग में जब यात्रा साहित्य की शुरुआत हुई तो सबसे पहले उसे निबंध विधा में ही रखा गया था। उसे अलग रूप में न मानकर यात्रा-निबंध के रूप में ही माना जाता था। यह निबंध की शैली आज भी यात्रा साहित्य में विद्यमान है। निबंध शैली का यात्रा साहित्य में महत्व बताते हुए रघुवंश लिखते हैं कि "निबंध शैली के व्यक्तिपरकता, स्वच्छंदता तथा आत्मीयता आदि गुण यात्रा साहित्य में भी पाए जाते हैं। निबंधकार जिस प्रकार अपने विषय को अपनी मानसिक संवेदक स्थिति में ग्रहण करता और उसी प्रकार की प्रेरणा से विस्तार भी देता है, बिल्कुल उसी प्रकार यात्री भी अपनी यात्रा के प्रत्येक स्थल और क्षणों में से उन्हीं क्षणों को संजोता है, जिनको वह अनुभूत-सत्य के रूप में ग्रहण करता है।"[403] इस प्रकार निबंध शैली से ही यात्रा साहित्य का विकास होने के कारण यात्रा लेखक अपने यात्रा के विभिन्न पड़ावों का विस्तृत रूप में वर्णन करने के लिए इस शैली का प्रयोग करते हैं। इसलिए निबंध शैली का यात्रा साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है।

---

[402] मुरारीलाल शर्मा, 'हिन्दी यात्रा साहित्य-स्वरूप और विकास', पृ. 27

[403] मुरारीलाल शर्मा, 'हिन्दी यात्रा साहित्य-स्वरूप और विकास', पृ. 21

'इरिणालोक' में निबंधात्मक शैली का काफी प्रयोग किया गया है। बन्नी के घासिया मैदानों का वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं कि "चलिए यह तो ठीक है पर बन्नी से जो अन्यान्य ग्राम्य-दृश्य गुम हैं, उनका क्या? जैसे लहलहाते खेत, माटी की सोंधी गंध, मुर्गे की बाँग। खबर दी गई कि बन्नी में न खेत हैं, न हल हैं, और न मुर्गे-मुर्गी पालने की रवायत। कि बन्नी में खेत की मनाही है, यहाँ हल चलाने पर प्रतिबंध है ! नाइंसाफ़ी की हद है यह तो। ऐसा भी कहीं होता है ? इस रवायत के पीछे के राज ईशा भाई ने खोले।"[404]

अनिल यादव 'वह भी कोई देस है महराज' में नागाओं के संबंध में निबंधात्मक शैली का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि "यानी नागाओं ने चर्च और वामपंथ दोनों को अपने हिसाब से मरोड़कर अपनाया है। उग्रवादी संगठन एनएससीएन (आईएम) की विचारधारा माओवादी है लेकिन उसका घोषित उद्देश्य 'मसीही समाजवाद' लाना है। उसके घोषणा पत्र में नागाओं को भारत (हिन्दू) और बर्मा(बौद्ध) के पतनशील धर्मों से सावधान करते हुए लिखा गया है, "हिन्दुत्व की शक्तियाँ..फौज, थोक-खुदरा व्यापारियों, अध्यापकों, हिन्दी फिल्मी-गानों, रसगुल्ला बनाने वाले हलवाइयों और गीता.. इन सबके जरिए मसीही भगवान को हमारी धरती से बेदखल करने के मिशन में लगी हुई हैं।"[405] इस प्रकार निबंध शैली यात्रा साहित्य प्रथमत: प्रयुक्त शैली है जिसमें लेखक अपनी बात सबद्ध तरीके कहता चलता है। इसका प्रयोग विभिन्न यात्रा वृत्तांतों में बखूबी किया गया है।

संस्मरण शैली :-

कोई भी यात्रा लेखक जब अपनी यात्रा से लौटकर स्मृति के आधार पर अपने यात्रा अनुभवों को संवेदना के साथ शब्दबद्ध करता है तो उसकी शैली संस्मरण शैली कहलाती है। संस्मरण विधा से अलग होने के बावजूद यात्रा साहित्य में संस्मरणात्मक शैली का काफी प्रयोग होता है। इसमें संस्मरण विधा की तरह घटनाओं का मात्र उल्लेख ही न करके घटनाओं के प्रति लेखक अपनी प्रतिक्रिया भी प्रस्तुत करता है। यात्रा साहित्य स्मृति पर आधारित होने के कारण इसमें लेखक यात्रा की स्मृतियों को संवेदनाओं के साथ अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

---

[404] अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 163

[405] अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज', पृ. 60

राकेश तिवारी का 'सफर एक डोंगी में डगमग' संस्मरण शैली में लिखा हुआ यात्रा वृत्तांत है जिसमें दिल्ली से कलकत्ता तक की 62 दिन की डोंगी यात्रा का वर्णन किया है। यात्रा के लगभग तीस साल बाद प्रकाशित संस्मरण शैली में लिखा गया एक साहसी यात्रा का महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। 'दूर दुर्गम दुरुस्त' में उमेश पंत अपनी पहली यात्रा की यादों को ताजा करते हुए कहते हैं कि "सिक्किम के उस गाँव में करीब महीने भर रूका था मैं। उस महीने भर में कमाई आत्मीयता अब तक यादों में शुमार है। रात को किसी बुजुर्ग के पास उनकी परंपराओं को सुनना। रिकॉर्डर पर उसे रिकॉर्ड करना और दिन में किसी शांत से कमरे में उजली धूप सेंकते हुए उन बातों को पन्नों पर दर्ज करना।"[406]

काव्यात्मक शैली :-

यात्रा-साहित्य मूल रूप से गद्य में ही लिखा जाता है, लेकिन कालांतर में इसमें यात्रा के दौरान अर्जित की गई सघन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाने लगा अतः लेखक की भाषा थोड़ी अधिक सर्जनात्मक होकर काव्यात्मकता का पुट भी अख्तियार करने लगी। वैसे इस शैली में लेखक की व्यक्तिगत रुचि व स्वभाव का पुट भी मिला रहता है। जब यात्रा लेखक की रुचि काव्य या कविता में अधिक होगी तो उसके यात्रा वृत्तांत में काव्यात्मकता का पुट भी अधिक मिलेगा। इसके संबंध में डॉ. अनिल कुमार लिखते हैं कि "लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव निश्चित रूप से उसकी रचना शैली पर पड़ता है। लेखक की रुचि, स्वभाव व विशेषता के साथ-साथ वह जिस क्षेत्र या विधा से संबंध रखता है उसका प्रभाव उसकी शैली पर दिखाई देता है। इस प्रकार जिन यात्रा लेखकों की पृष्ठभूमि काव्य से संबंधित रही है उन्होंने यात्रा के दौरान अनुभूत अपनी संवेदनाओं को कविता के रूप में प्रकट किया है। इस प्रकार की शैली काव्यात्मक शैली कहलाती है।"[407] अभिव्यक्ति पक्ष केवल अनुभूति को प्रगाढ़ बनाने में सहायता करता है। यात्रा लेखक की भाषा अक्सर स्वच्छंद, अकृत्रिम, सहज, स्वाभाविक, बनावटीपन से दूर होती है लेकिन यदि लेखक कवि है तो गद्य में भी भावनाओं को पिरो देता है। उसको पढ़कर गद्य रचना में भी पद्य की तरह आनंद आता है।

---

[406] उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 27

[407] अनिल कुमार, 'स्वातंत्र्योत्तर यात्रा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन', पृ. 208-209

चयनित यात्रा वृत्तांतों में काव्यात्मक शैली काफी देखने को मिलती है। हरिराम मीणा मानगढ़ हत्याकांड की घटना का चित्रण करते हुए काव्यात्मक भाषा में कहते हैं कि :-

"कैसा बवाल !!
यूँ प्रलयकाल !!!
"ओ रे, गुरु महाराज !
ओ रे, बाबा पूँजा धीरा ! काका कूरिया दानोत !!!

बैरी चढ़ आये मानगढ़ पर
कहाँ हो रे बीरो ?
किस डाल पर लटकाये धनुष ? ?
किस भाटे पर रख दिये तीर ? ? ?
क्रंदन चीत्कार हा....हा...का.... र। ...."[408]

प्रकृति वर्णन में प्रकृति की रमणीयता को प्रस्तुत करते हुए लेखक कवि बन जाता है। राकेश तिवारी चम्बल नदी के आसपास के प्राकृतिक सौन्दर्य, पक्षियों के कलरव और उनकी मोहक क्रीड़ाओं का वर्णन काव्यात्मक शैली में करते हैं –

"कूजत कहूँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहूँ कारंडव उड़त कहूँ जल-कुक्कुट धावत।
चक्रवाक कहूँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।..."[409]

इसी तरह 'दरकते हिमालय में दर-ब-बर' में अजय सोडानी गाँवों के शहरों में तब्दील होते जाने व नित नई योजनाओं के कारण कटते पेड़-पौधों व उन पर निवास करने वाले पक्षियों के संकट पर चिंता व्यक्त करते हुए काव्यात्मक शैली में कहते हैं-
"ऐ ! सुनो, यहाँ आओ
मुझसे बातें करो, सहलाओ

---

[408] हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 31
[409] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 48

पहचानो कि मैं वो हूँ
जिसे तुमने हाथों से लगाया था
तुम्हारे पानी, खाद, प्रेम से ही
तो मैं लहलहाया था।
ऐ ! सुनो, यहाँ आओ
मेरे समीप बैठ, सुस्ताओ
पहचानो कि मैं वो हूँ
जहाँ बैठ तुम प्रेम-गीत गाते थे
बदले में घनी छाँव
शीतल बयार पाते थे।"[410]

इस प्रकार इस शैली में लेखक के व्यक्तित्व का अधिक प्रभाव रहता है। लेखक के कवि होने पर उसकी शैली में काव्यात्मकता का पुट अधिक आया है। जिससे अनेक यात्रा वृत्तांतों में काव्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

आत्मकथात्मक शैली :-

आत्मकथा में लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं को क्रमवार रूप में प्रस्तुत करता है लेकिन जब यात्रा लेखक अपनी यात्रा की अनुभूतियों को रचना रूप में प्रकट करता है तो यात्रागत परिवेश के साथ-साथ अपने 'स्व' को भी प्रस्तुत करता जाता है। लेखक अपने जीवन के कुछ समय को आत्मकथात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें स्व के साथ-साथ सम्पूर्ण परिवेश, पात्र व यात्राएँ भी मुखर होकर प्रस्तुत होती हैं। अजय सोडानी के 'दर्रा-दर्रा हिमालय' व 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', मधु कांकरिया के 'बादलों में बारूद', गगन गिल के 'अवाक्', राकेश तिवारी के 'सफर एक डोंगी में डगमग' में आत्मकथात्मक शैली को देखा जा सकता है। जैसे, राकेश तिवारी नाव खरीदने के लिए चंदा जुटाते समय कहते हैं कि "मैदान में हम दो ही बचे। चार सौ रुपये अपने ओर तीन सौ श्याम के, चंदे से जुटा धन पिछली दौड़ मे स्वाहा। इलाहाबाद के पुराने साथियों ने आसन्न परीक्षा का हवाला टिका दिया। फिर भी श्याम हिम्मत बाँधे रहे – 'केवल इतना सोचो कि दिल्ली से

---

[410] अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 124

कोलकत्ता तक अकेले नाव चला सकते हो या नहीं, बाकी मुझ पर छोड़ो। श्याम मेरे पुराने दोस्त ओर उनकी सामर्थ्य भी इतनी कि पैसा और कैसा भी जुगाड़ जुटा लेना उनके लिए कठिन नहीं।"[411] अजय सोडानी की हिमालय यात्रा और कच्छ के रन की यात्रा सपरिवार की गई है जिसमें उन्होंने कालिंदी खाल ऑडेन काल अभियान को पूर्ण करके लिम्बा बुक में भी नाम दर्ज करवाया है। 'इरिणालोक' में भी वे पत्नी अपर्णा के साथ ही यात्रा करते हैं जिससे इन सभी वृत्तांतों में आत्मकथात्मक रूप दिखाई देता है। इसमें लेखक कथावस्तु को प्रथम पुरुष में कहते हुए अनुभूत घटना का चित्रण करता है।

वर्णनात्मक शैली :-

वर्णनात्मक शैली में लेखक अपनी यात्रा की घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन करता है। शुरुआत में यात्रा साहित्य में वर्णनात्मक शैली की प्रधानता रही लेकिन धीरे-धीरे इसमें साहित्यिक पुट अधिक मिलने से साहित्यिकता में वृद्धि होने लगी, लेकिन आज भी वर्णनात्मकता यात्रा साहित्य में दिखाई देती है। मुरारीलाल शर्मा यात्रा साहित्य में वर्णनात्मकता पर विचार करते हुए कहते हैं कि "बिना वर्णनात्मकता के यात्रा साहित्य की सर्जना नहीं की जा सकती, लेकिन वर्णनात्मकता का अर्थ यात्रा-साहित्य विधा की रचना की दृष्टि से सूचनाओं का एकत्रीकरण अथवा आँकड़ों का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण नहीं है, क्योंकि यात्रा साहित्य भी एक कलात्मक एवं साहित्यिक विधा है।"[412] अधिकतर यात्रा वृत्तांतों में वर्णनों की प्रधानता है और इस शैली की भाषा में प्रवाह, सरलता एवं मधुरता है।

'सफर एक डोंगी में डगमग' में राकेश तिवारी डोंगी यात्रा का वर्णनात्मक शैली में चित्रण करते हुए कहते हैं कि "पीछे लगी मल्लाहों की एक छोटी नाव से होड़ मच गई। डाँड़ों ने गति पकड़ ली और उसे पछाड़ने की इच्छा बलवती होती गई। वह भी आखिर सरितपुत्र ठहरा। भरपूर चप्पू चलाता आया। चमड़ी काली लेकिन ऐसी चमकदार जैसे काले मोती का पानी फिरा हो। कढ़ा हुआ शरीर मानो साँचे में ढला। हर चप्पू के साथ कमर से कंधों तक, कटि-प्रदेश वक्ष बाहों और

[411] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 15

[412] मुरारीलाल शर्मा, 'हिन्दी यात्रा साहित्य-स्वरूप और विकास', पृ. 26

कंधों तक की पेशियाँ बार-बार मचलकर टकटकी बँधवा लेती। नाव-नदी, लूह, धूप ने मिलकर क्या खूब तराशा है इसे।"[413]

चित्रात्मक शैली :-

इसमें यात्रा लेखक इस प्रकार वर्णन करता है जिससे प्रतीत होता है कि पढ़ने के साथ-साथ स्थान विशेष का चित्र आँखों के सामने प्रकट हो रहा है। जब इस तरह से चित्र आँखों के सामने प्रकट होता है तो इसे चित्रात्मक शैली कहा जाता है। शब्दों के चित्रांकन के लिए यह सबसे उपयुक्त शैली है। जिसका मुख्य उद्देश्य किसी वस्तु या भाव के चित्र के वर्णन के साथ-साथ दृश्यों के माध्यम से विशेष दिग्दर्शन कराया जाता है। विभिन्न यात्रा लेखकों ने स्थानों, वस्तुओं, भावों के चित्रमय वर्णन में इस शैली का सुंदर प्रयोग किया है। प्रयाग शुक्ल ने अपने यात्रा वृत्तांत 'सम पर सूर्यास्त' में दीव की लहरों का चित्रात्मक शैली में वर्णन करते हुए कहा है कि "दीव बहुत सुंदर है। दिन भर, रात भर मंद और तेज हवाओं में समुद्री लहरें उसके तटों से टकराती रहती हैं। उसकी इस टकराहट की आवाज वातावरण में भरी रहती है।"[414]

इसी प्रकार मधु कांकरिया 'बादलों में बारूद' में शिलोंग की सबसे ऊँची चोटी शिलोंग पीक के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रात्मक शैली मे वर्णन करते हुए कहती हैं कि "नीचे नीली घाटियाँ...वादियाँ और सामने पर्वतों की हरी-नीली श्रृंखलाएँ। विपरीत दिशाओं से आते पहाड़ पर चाँदनी-सी झिलमिलाती धूप की लकीर। जीवन और स्वप्न जगाती प्रकृति जैसे हमें धरती की धूल धक्कड़ से ऊपर किसी स्वप्न लोक मे उड़ा देने को आतुर थी। हम उड़ें भी, पर चहुँ ओर बिखरी इस जन्नत से बेखबर अपने-अपने जीवन के बंदोबस्त में लगे, पत्थर तोड़ते, कुदाल चलाते स्त्री-पुरुष, पीठ पर भारी भरकम टोकरियाँ ढोतीं पहाड़िनें और नीचे से पानी के कनस्तर को अपने कंधे पर ढोते हमें जैसे भूलने ही नहीं दे रहे थे कि एक जीवन यह भी है।"[415] कृष्णा सोबती 'बुद्ध का कमंडल' में लद्दाख जाते समय विमान से देखे गए बादलों के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कहती हैं कि "अब विमान बादलों के ऊपर उड़ रहा है। नीचे दिख रहे हैं नीले आकाश के मंच पर विभिन्न आकारों से

---

[413] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग' पृ. 76

[414] प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ.38

[415] मधु कंकारिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 94

चमचमाते बादलों के झुंड। क्या सजीला आकाश है। बादलों का टुकड़ा छँटने से दिखने लगीं नीली बर्फीली चोटियाँ। हिमालय की पर्वत श्रृंखला। एक मझोले पठार पर समतल पट्टी। काश की हम पैराशूट से यहाँ उतर सकते। पहल गाँव का मजा पहाड़ों के सुनसान वीराने में ही मिल जाता।"[416]

काल्पनिक शैली :-

कल्पना लेखक या व्यक्ति की उस मानसिक शक्ति, सामर्थ्य या प्रतिभा का नाम है जिसके द्वारा वह अपने पूर्व अनुभवों का प्रयोग करते हुए अप्रत्यक्ष वस्तुओं या विचारों का निर्माण या पुनर्निर्माण करता है। साहित्य में कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है। कविता, कहानी, उपन्यास जैसी विधाओं में जहाँ कल्पना का अधिक प्रयोग किया जाता है वहीं आलोचना, रिपोर्ताज व यात्रा साहित्य में अपेक्षाकृत कल्पना की संभावना कम होती है। यात्रा साहित्य में कम संभावना होने के बावजूद यात्रा लेखकों ने अपने निजी भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने, रचना में विस्तार देने और रोचकता बनाए रखने में काल्पनिकता का अपने यात्रा वृत्तांतों में समावेश किया है। 'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया झारखंड व छोटा नागपुर के जंगलों के आदिवासियों की वास्तविक स्थिति से रू-ब-रू होते वक्त उनके गीत को सुनने के बाद उसे गहराई से महसूस करती हैं। इसी के बारे में सोचती है कि काश यह सब महानगरों में भी हो पाता। वह कहती है कि "ओफ इतना वैभव.. इतना सौन्दर्य ! प्रकृति और रति ! तल्लीनता और संपूर्णता के आह्लादकारी क्षण महानगरों में क्यों नहीं मिलते ? क्या वहाँ जीवन रस सूखता जा रहा है ? खुश थी। कृतज्ञ थी। सराबोर, पर साथ ही उदास भी.. चित्रकार की इस कलाकृति में, इस लय-ताल और सुर में मैं मात्र एक द्रष्टा भर थी..। काश एक पौधा भर ही मैं लगा पाती।"[417] इस प्रकार यात्रा साहित्य में कल्पना का कम स्थान होने के बावजूद प्रस्तुत के वर्णन के समय किये गए भविष्य के वर्णनों में कल्पना का प्रयोग किया गया है। लेखकीय कौशल के द्वारा किये गए कल्पनाशीलता के इस समावेश से वास्तविक तथ्यों की प्रामाणिकता में व्यतिरेक न होकर वर्णन के सौष्ठव में ही वृद्धि हुई है।

भावुकतापूर्ण शैली :-

---

[416] कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 15

[417] मधु कंकारिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 22

यात्रा लेखक जब अपनी रचना में वर्ण्य-वस्तु का चित्रण करते हुए व्यक्तिगत भावों का चित्रण करता है तो वह शैली भावुकतापूर्ण शैली कहलाती है। ये भावनाएँ लेखक के व्यक्तिगत जीवन की ही प्रमुख भावनाएँ होती है। इसमें लेखक की हृदयगत अनुभूतियाँ एवं प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। 'बादलों में बारूद' में मधु कांकरिया शिलोंग के प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच खड़ी होकर भी उदास मन से पूर्वोत्तर के मुख्य धारा में शामिल नहीं होने के बारे में सोचती रहती हैं वह कहती हैं कि "क्या कारण है कि मंगोलियन नाक-नक्श वाले भारत के इस पूर्वोत्तर क्षेत्र को हम आज तक मुख्य धारा में शामिल नहीं कर पाए ? न इनकी संस्कृति को अपना पाए और न इनकी संस्कृति को आदर दे पाए ? आज भी पहाड़िन हमें आमंत्रण देती-सी लगती है। पूँछ की तरह लटके इस इलाके की तस्वीर आज भी पिछड़े क्षेत्र-सी गंगा-जमुनी मैदानी संस्कृति और सभ्यता से कोसों दूर।"[418] इसमें भावुक होकर लेखिका ने काफी गंभीर मुद्दों को उठाया है। पूर्वोत्तर का मुख्यधारा में शामिल न होना और पहाड़ों पर जी तोड़ मेहनत करने वाली पहाड़ी महिलाओं की वास्तविक स्थिति के प्रति अपनी संवेदना को लेखिका ने प्रस्तुत किया है।

इसी तरह 'दर्रा-दर्रा हिमालय' में अजय सोडानी हिमालय क्षेत्र में हो रहे विकास कार्य और सड़कों के निर्माण कार्य को देखकर गहरी चिंता करते हैं। हिमालय में लगातार पेड़ों की संख्या कम होती जा रही है। पगडंडियाँ चौड़ी सड़कों में बदल रही है। पहाड़ों को जेसीबी से और शिलाओं को डाइनामाइट से ध्वस्त किया जा रहा है। पहाड़, पेड़, फूल, पक्षियों, पर्यावरण सभी को नष्ट किया जा रहा है। इन सब को ध्वस्त होते देखकर लेखक कहते हैं "नीचे पहुँचकर एक क्षण के वास्ते भी रूकने का मन नहीं हुआ। इसके पहले कि कोई विस्फोट हमारी आँखों के सामने होता हम भाग जाना चाहते थे – सुंदर हिमालय के हवा में उड़ते लोथड़े देखने की ताकत हममें नहीं थी।"[419]

दार्शनिक शैली :-

जब यात्रा लेखक अपनी रचना में आंतरिक और बाह्य गतिविधियों का वर्णन करते हुए दार्शनिक भाव प्रकट करता है तो वह दार्शनिक शैली कहलाती है। विभिन्न लेखकों ने अपने यात्रा

---

[418] मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद' पृ. 96

[419] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 154

वृत्तांतों में यात्रा के विभिन्न पड़ावों का चित्रण दार्शनिक शैली में किया है। शिलोंग के सबसे मनोरम जलप्रपात एलिफेंटा फॉल्स के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर उसका वर्णन लेखिका दार्शनिक शैली में करती है। प्रकृति के विराट सौन्दर्य को देखकर वह कहती है कि "बहती फुहारों की अनंतता में डूबी मैं उस पुलक और अनुभूतियों को भीतर भरती रही, जिससे बाद के बदरंग और बेस्वाद दिनों में गुजरे हुए को छू-छूकर फिर-फिर महसूसती रहूँ। झरने की ओर एकटक देखते-देखते जाने क्यों लगा जैसे भीतर की कोई रुकी हुई फुहार सामने उछलती फुहारों से जा मिली है। प्राणों में जाने कैसा स्पंदन हुआ...कि भीतर का कलुष, दुर्भावना की सारी माटी बह गई..मैं जलधारा-सी बहने लगी। आँखें नम हुई। मन शांत हुआ..जैसे भीतर कोई ऋषि आ विराजे हों।"[420]

5.3 बिम्ब :-

अभिव्यंजना पक्ष में बिम्ब का अत्यधिक महत्व है। बिम्ब अंग्रेजी के 'इमेज' शब्द का हिंदी रूपांतरण है जिसका अर्थ है- छाया, प्रतिछाया, अनुकृति या शब्दों के द्वारा भावांकन, मूर्त रूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना या मानसिक प्रतिकृति उतारना। बिम्ब शब्द निर्मित चित्र माना जाता है जो हमारी अनुभूतियों को पुनः रचते हैं। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिम्ब का सृजन होता है। मनुष्य स्वभाव से ही घटना और वस्तु को बिम्ब रूप में ग्रहण करता है और फिर प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से अपने-आपको अभिव्यक्त करता है। इससे यात्रा साहित्य अधिक दृश्यात्मक और अलंकृत होता है। इसके सम्बन्ध में कैलाश वाजपेयी लिखते हैं कि "जहाँ शब्दों द्वारा चित्र खड़ा करना बिम्ब की मूलभूत विशेषता है। वहीं अपनी प्रकृति में बिम्ब अलंकृति और इंद्रियगत विशिष्टता इन दो तत्वों से भी युक्त होता है। अपनी आलंकारिता के कारण ही बिम्ब संक्षिप्त और व्यंजनापूर्ण बन जाता है तथा इन्द्रियगत विशिष्टता के कारण वह संगीत और चित्रकला के निकट आ जाता है।"[421] इस प्रकार किसी वस्तु, भाव या विचार को कल्पना एवं मानसिक क्रिया के माध्यम से इंद्रियगम्य बनाने वाला व्यापार 'बिम्ब' कहलाता है।

[420] मधु कंकारिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 98

[421] कैलाश वाजपेयी, 'आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प', पृ. 79

यात्रा वृत्तांतों में लेखक अपनी अनुभूति को कल्पना प्रसूत व सूक्ष्म अनुभूतियों को प्रभावशाली बनाने में बिम्ब का प्रयोग करते हैं। बिम्ब ऐसी कलापूर्ण प्रक्रिया है जिसके द्वारा यात्राकार अपने विचारों और मनोवेगों का पाठकों के समक्ष एक चित्र-सा प्रस्तुत करता है। बिम्ब ही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा कथावस्तु को आसानी व सहज ढंग से समझते हुए पाठक लेखक के साथ-साथ चलता है। इसके संबंध में डॉ. कुमार विमल कहते हैं कि "जब कलाकार अपने अमूर्त मर्म संवेगों की यथातथ्य अभिव्यक्ति के लिए बाह्य जगत से ऐसी वस्तुओं को कला के फलक पर इस रूप में उपस्थित करता है कि हम भी उसकी भावना से वैसे ही मर्म संवेग की प्राप्ति कर सके जिससे कलाकार पहले ही गुजर चुका है, तब उन योजित वस्तुओं की वैसी प्रस्तुति को हम बिम्ब विधान कहते हैं।"[422]

शब्दगत बिम्ब :-

'सफर एक डोंगी में डगमग' के लेखक राकेश तिवारी शब्दगत बिम्ब के माध्यम से चम्बल नदी को पार करने का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि "डाँडों के प्रहार से पानी में उठने वाली आवाज- 'डुडुब-डुब-छप्प, डुडुब-डुब-छप्प, कड़ों व किनारों से डाँडों की टकराहट की आवाज 'खटर-खट्ट, खटर-खट्ट,' सुनते, हर चोट से पानी पर उभरते छोटे-छोटे प्यालों जैसी भँवरों, झाग, पीछे छूटती डोंगी की लीक, मोड़ों पर ओझल होते मंदिरों, घरों, गाँवों और कगारों को देखते, एक-दो-तीन... दस..बीस.. सौ.. हजार.. कई हजार चप्पू गिनते, पसीने से नहाते और धूप से तपते बीता।"[423] इसी तरह इरिणालोक में हुसैन सिद्धिक द्वारा बनाई गई घंटी को अजय सोडानी बजाकर देखते हैं "फिर घंटी कान के समीप ला हलके से बजाकर देखना। घट..भट.. भट्ठ। फिर दूसरी ओर हल्की चोट... फिर स्वर संधान...धन्न...धन्न..मखमली प्रहार..टन्न..टुन्न..टन्न..टन्न..। मृदु लहरियाँ उस्ताद के आँगन में नृत्य करने लगीं..हम वृत्त के मध्य में..घंटी-स्वर मेरे गिर्द..टन्न..टन्न..टुन्न.. टुन्न.. अफ्रीकी अरण्यों से हजारों बरस पहले सफर पर निकले स्वरों को ठिकाना मिल रहा था.. स्मृतियाँ बने कहीं, उभरे कहीं..।"[424]

---

[422] डॉ. कुमार विमल, 'सौन्दर्य शास्त्र के तत्व', पृ. 204

[423] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 62

[424] अजय सोडानी, 'इरिणालोक' पृ. 95

रूपगत बिम्ब :-

'दर्रा-दर्रा हिमालय' में अजय सोडानी ट्रैक पार करने के लिए जाने वाली टीम के शंकर कुली के बारे में बताते हैं कि "शंकर एक निहायत दुबला पतला, चार्ली चैपलिननुमा लंबे मुँह वाला व्यक्ति था – जिसकी आवाज भी उसकी कमर जैसी पतली थी। खड़े-खड़े हाथ हिलाता रहता था, पहली बार जब ध्यान उस पर गया तब तो मुझे ऐसा लगा मानो हवा के तेज झोंके उसे हिला रहे हों ! ऐसे व्यक्ति के भरोसे हमें खतरनाक खतलिंग ग्लेशियर पार करना था।"[425] 'सफर एक डोंगी में डगमग' में राकेश तिवारी अपने चौथे सहयात्री अभय के बारे में बताते हैं कि "लंबे-तगड़े पक्के बनारसी अभय के ठाठ, पूरी स्कूली शिक्षा सैनिक स्कूल में पाकर भी, ज्यों की त्यों। विजया-आराधना, पार निपटना-नहाना, रबड़ी-मलाई के ऊपर से मुँह में पान की लाली, गले में चेन या रुद्राक्ष की माला, शौकीन, मस्त-मलंग।"[426]

गंधगत बिम्ब :-

'सफर एक डोंगी में डगमग' में राकेश तिवारी गंगा के घाटों और नाव से टकराती लहरों का चित्रण करते हुए कहते हैं कि "तिरछी नाव लहरों पर चढ़ती-उतरती धारा काटने लगी। लहरों पर पड़े लंबे बाँस पर कबूतरों की कतार झूलती रही। मणिकर्णिका पर चिताओं का धुआँ अनवरत उठता रहा। कुछ अधजल लाशें लहरों पर उतरती रहीं। एक गिजगिजी लाश पर बैठा कौआ रह-रहकर फूले गोश्त में चोंच मारता रहा।"[427] इसी तरह ही मर्णिकेश्वर घाट पर जलती चिताओं के बारे में भी लिखते हैं कि "मर्णिकेश्वर पर जलती बेतरतीब चिताओं से उठती ढेरों चिंनगारियाँ हवा के साथ हमारी ओर लपकती चली आती। रह-रहकर मांस-मज्जा की चिरायँध नाक में समा जाती। यह दृश्य पहली बार नहीं देख रहा था। इधर आने पर एक चक्कर यहाँ जरूर मारता। चिताओं का जलना कभी रूकता नहीं।"[428]

---

[425] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 129
[426] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 109
[427] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 111
[428] राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 108-109

इस प्रकार कहा जा सकता है कि देशकाल, वातावरण एवं कथावस्तु के आधार पर ही बिंबों का निर्माण होता है और यात्राकार बिंबों के माध्यम से विगत घटनाओं, विषय-वस्तु की ध्वनि, गति, आकार-प्रकार, देशकाल, परिस्थितियों, भाषा, शैली आदि को ध्यान में रखकर विषयवस्तु को शब्द चित्रों के माध्यम से वर्णित करता है। ये शब्द चित्र किसी भी घटना और विषयवस्तु को और अधिक जीवंत बना देते हैं।

5.4 प्रतीक :-

प्रतीक से तात्पर्य है कि जिस बात को हम सीधी सादी भाषा में नहीं कह सकते उसे व्यंग्यात्मक तरीके से अभिव्यक्ति प्रदान करना। शुरू में प्रतीकों का आरंभ फ्रांसीसी साहित्य से हुआ लेकिन आजकल इनका प्रयोग साहित्य की हर विधा में देखा जा सकता है। आज जीवन और जगत की जटिलता और दुर्बोधता को अभिव्यक्ति प्रदान करने में प्रतीक सशक्त माध्यम है। कहानी के संदर्भ में प्रतीक के बारे में बताते हुए परमानन्द श्रीवास्तव कहते हैं कि "व्यंजना के नए माध्यम की खोज में आज का कहानीकार नए और उपयुक्त प्रतीकों का अन्वेषण करता है।..अपने जीवनानुभवों को रचनात्मक अनुभवों का रूप देने के लिए विलयन अपेक्षित होता है, वह 'प्रतीक' को सम्मुख कर देने में ही संभव हो पाता है।"[429] प्रतीक अव्यक्त को व्यक्त करने की क्षमता रखता है। लेखक जब अपनी बात को प्रत्यक्ष प्रदर्शित नहीं कर पाता तो उसके समतुल्य शब्दों का प्रयोग करता है और लेखक के यही चुने हुए शब्द प्रतीक कहलाते हैं। प्रतीक के संबंध में राधेश्याम गुप्त कहते हैं कि "एक विशेष अनुभव स्थिति से पृथक मानव को विचार क्षेत्र में कार्य करने में समर्थ बनाने वाले विज्ञानहीन संस्कारों और भावों के उद्रेकों से सम्पन्न मन के स्थिर घनीभूत और सरलीकृत संकेत या चिह्न को ही प्रतीक कहते हैं।"[430]

अजय सोडानी 'दर्रा-दर्रा हिमालय' में प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि "हाँ कुछ कलयुगी, संस्कारहीन मेघ अवश्य पहचान में आ रहे हैं। ये स्वार्थी आत्मकेंद्रित लुटेरे मेघ, अश्वकिरणों पर बाँधकर, हम मृत्युलोक वासियों हेतु, सूरज द्वारा भेजा गया, बहुत-सा सोना अपनी

---

[429] डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, 'हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया', पृ. 283

[430] डॉ. राधेश्याम गुप्त, 'हिन्दी कहानी का शिल्प विधान', पृ. 203-204

चादर में हड़प लेते हैं। इस हड़प का अंदाज चारों ओर दृष्टि घुमाने भर से हो गया।"[431] इसमें रूप, गुण, आकार, प्रयोग आदि की समता के कारण साधारण के स्थान पर विशेष अर्थ में प्रतीक का प्रयोग किया गया है। प्रतीक बिखरी हुई अनुभूतियों एवं विचारों को एक सूत्र में संगठित करने का सेतु है। जीवन की जटिलता, विषमता, विसंगति, निराशा, कुंठा, घुटन, पीड़ा, कसमसाहट आदि के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया जा रहा है।

प्रतीक से कथावस्तु में सघनता, सूक्ष्मता, संक्षिप्तता, कलात्मकता एवं सांकेतिकता का समावेश होता है। प्रतीकों के सफल प्रयोग से यात्रा साहित्य की कलात्मकता में वृद्धि ही नहीं होती बल्कि उसकी कथावस्तु में सौन्दर्य एवं रसानुभूति की भी अभिवृद्धि होती है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में हम देखते हैं कि यात्रा साहित्य ऐसी विधा है जिसमें भाषा के क्लिष्ट रूप की आवश्यकता नहीं होती। जिससे इसमें भावानुकूल सीधी सरल भाषा का प्रयोग किया जाता है। चयनित यात्रा वृत्तांतों की भाषा भी सहज सरल है साथ ही अवसरानुकूल, आवश्यकतानुकूल, स्थानानुकूल तथा पात्रानुकूल परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी, उर्दू, तथा स्थानीय भाषाओं के शब्दों तथा वाक्यों का प्रयोग किया गया है। स्थानीय भाषाओं के शब्दों की व्युत्पत्तिपरक निर्माण-प्रक्रिया को भी लेखकों ने दर्शाया है। इन यात्रा वृत्तांतों में विभिन्न विधाओं की शैलियों का मिश्रण है। जिससे इन्हें अभिव्यक्तिपरक और अनुभूतिपरक शैलियों में रखा जा सकता है। यात्रा साहित्यों में प्रायः काव्यात्मक उपादानों के रूप में परिगणित होने वाले बिंबों और प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि भाषा और शैली वह माध्यम है जिसके द्वारा लेखक अपनी संवेदना को शब्दबद्ध करता है। अनुभूति को पाठकों तक संप्रेषित करने की कला को कला पक्ष कहा जाता है। इसे भाषा, शैली, बिम्ब और प्रतीक जैसे अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों से प्रकट किया जाता है। इन यात्रा वृत्तांतों की भाषा में सरलता एवं सहजता है। यात्रा वृत्तांत में भाषा के आलंकारिक होने के बजाय यात्राकार का वस्तुओं को देखने का नजरिया प्रमुख स्थान रखता है।

[431] अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 59

लेखक यात्रा के दौरान होने वाले अनुभवों के आंतरिक अर्थ तक पहुँचकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। यात्राकार यात्रा के दौरान भौगोलिक परिवेश व प्रकृति के सौन्दर्य तक ही सीमित न रहकर वहाँ के लोगों के जीवन स्तर में भी गहरी दिलचस्पी लेते हैं और उन्हीं आत्मीय संबंधों को भाषा शक्ति के माध्यम से जब पाठकों के समक्ष उजागर किया जाता है तो भाषा उसे चलचित्र की तरह हमारे सामने पेश कर देती है। पढ़ते हुए लगता है कि हरेक दृश्य को एक-एक करके देख रहे हैं। इसी अनुभूति पक्ष को सशक्त रूप प्रदान करने के लिए अधिकतर यात्रा लेखकों ने विविध प्रकार की भाषा और शैलियों का प्रयोग किया है जिनका विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। भाषा में जहाँ अंग्रेजी, उर्दू-फारसी व स्थानीय भाषा के शब्द व वाक्य संरचना को प्रस्तुत किया गया है वहीं विभिन्न शैलियों में निबंध शैली, वर्णनात्मक शैली, संस्मरण शैली, भावुकतापूर्ण शैली, काव्यात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली में विभाजित करके देखा गया है। अमूर्त अनुभूति को मूर्त बनाने में विविध प्रकार की भाषा और शैली का प्रयोग करके लेखन सौन्दर्य और कौशल के द्वारा यात्रा साहित्य को रोचक बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. गोविन्द पांडेय, सरस्वती पांडेय, 'हिंदी भाषा का वस्तुनिष्ठ इतिहास', 'अभिव्यक्ति प्रकाशन', इलाहाबाद, पृ. 01
2. निरंजन कुमार, 'मनुष्यता के आईने में दलित समाज का समाजशास्त्र', पृ. 132
3. विश्वमोहन तिवारी, 'हिन्दी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि', पृ. 29
4. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 27
5. वही, पृ. 58
6. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 192
7. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 151
8. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 117
9. वही, पृ. 08
10. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 53
11. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 57
12. वही, पृ. 55
13. वही, पृ. 207
14. प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ. 43
15. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज, पृ. 95
16. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 19
17. अजय सोडानी, 'इरिणालोक' पृ. 153
18. वही, पृ. 160
19. वही, पृ. 143
20. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 23
21. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 78
22. वही, पृ. 47
23. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 229
24. वही, पृ. 156
25. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 182
26. वही, पृ. 115
27. सच्चिदानंद चतुर्वेदी, 'अज्ञेय के निबंध', पृ.सं. 162
28. राजेन्द्र प्रताप सिंह, 'पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र की परंपरा', पृ.सं. 77
29. डॉ. प्रेम भटनागर, 'हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य', पृ. 31
30. सं. धीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी साहित्य कोश', पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 671
31. डॉ. अनिल कुमार, 'स्वातंत्र्योत्तर यात्रा-साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन', पृ. 204
32. मुरारीलाल शर्मा, 'हिन्दी यात्रा साहित्य-स्वरूप और विकास', पृ. 27
33. वही, पृ. 21
34. अजय सोडानी, 'इरिणालोक', पृ. 163
35. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज, पृ. 60
36. उमेश पंत, 'दूर दुर्गम दुरुस्त', पृ. 27
37. अनिल कुमार, 'स्वातंत्र्योत्तर यात्रा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन', पृ. 208-209
38. हरिराम मीणा, 'जंगल-जंगल जलियांवाला', पृ. 31
39. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 48

40. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर', पृ. 124
41. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 15
42. मुरारीलाल शर्मा, 'हिन्दी यात्रा साहित्य-स्वरूप और विकास', पृ. 26
43. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी मे डगमग', पृ. 76
44. प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त', पृ.38
45. मधु कांकरिया, 'बादलों मे बारूद', पृ. 94
46. कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल', पृ. 15
47. मधु कांकरिया, 'बादलों मे बारूद', पृ. 22
48. वही, पृ. 96
49. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 154
50. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद', पृ. 98
51. कैलाश वाजपेयी, 'आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प', पृ. 79
52. डॉ. कुमार विमल, 'सौन्दर्यशास्त्र के तत्व', पृ. 204
53. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 62
54. अजय सोडानी, 'इरिणालोक' पृ. 95
55. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 129
56. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग', पृ. 109
57. वही, पृ. 111
58. वही, पृ. 108-109
59. डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, 'हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया', पृ. 283
60. डॉ. राधेश्याम गुप्त, 'हिन्दी कहानी का शिल्प विधान', पृ. 203-204
61. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय', पृ. 59

उपसंहार

सम्पूर्ण अध्यायों को सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि मनुष्य की प्रवृत्ति सदैव ही घुम्मकड़ी रही है। आदिम युग में मानव की भ्रमणवृत्ति अधिक उद्देश्यपूर्ण थी लेकिन कालान्तर में जीवन-जगत का आकर्षण मनुष्य की घुमक्कड़ी प्रवृत्ति का प्रमुख कारण बना जिससे उसकी यह यायावरी प्रवृत्ति निरंतर बढ़ रही है। यायावरी प्रवृत्ति को पूर्णता प्रदान करने में यायावर की भ्रमण यात्रा में जो भी पात्र और विचार संपर्क में आते हैं, वे मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं और इन्हीं मानस पटल के विचारों को जब लिपिबद्ध किया जाता है तो वही से यात्रा साहित्य का जन्म होता है। कोई भी व्यक्ति यात्रा की यात्रानुभूतियों को जब कलात्मक रूप देकर संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है तो उसे यात्रा साहित्य कहा जाता है। यात्रा-वृत्तांत केवल देखे गए स्थानों का विवरण मात्र नहीं है अपितु इसमें यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों, स्थलों, भवनों, भोगी हुई घटनाओं एवं उससे सम्बंधित अनुभूतियों को कल्पना एवं भाव-प्रवणता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

यात्रा शब्द का अर्थ है- 'एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना' व 'स्थान परिवर्तन करना'। इसे विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न तरह से अभिव्यक्त किया है। वृहद् हिंदी कोश में यात्रा के उद्देश्यों को आधार बना कर युद्ध यात्रा, तीर्थयात्रा, जीवन निर्वाह शब्दों का प्रयोग किया गया हैं। वही हरदेव बाहरी ने प्रस्थान व देव मंदिर पूजन, दर्शन को यात्रा माना है। नागेन्द्र नाथ बसु ने भी तीर्थयात्रा शब्द का प्रयोग किया है। सभी की परिभाषाओं में धार्मिक यात्रा का उल्लेख मुख्य रूप से किया गया है।

यात्रा मानव की मूलभूत क्रियाओं में से एक है जिसके कारण आरंभिक काल से ही मनुष्य की यात्रा के दृष्टांत मिलते हैं। यात्रा और मानव जाति का बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है। मनुष्य के जन्म के साथ ही उसकी यात्रा प्रारंभ हो जाती है और फिर वह जीवन भर चलती रहती है। यात्रा मनुष्य की प्रगति का सोपान है। इसके कारण ही व्यक्ति अपने स्वार्थ, देशकाल के बंधन, जाति, धर्म आदि संकुचित सीमाओं से ऊपर उठकर व्यापक, विस्तृत ह्रदय और उदार दृष्टि से जीवन और जगत का साक्षात्कार करता है। यात्रा से मनुष्य को बाह्य जगत के साथ-साथ आंतरिक जगत को जानने का भी मौका मिलता है। प्रारंभिक काल से ही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक जैसे विविध उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए यात्राएँ की जाती रही है।

यात्रा साहित्य के तत्वों और उद्देश्यों की बात की जाए तो यह वास्तविकता से जुड़ी हुई विधा है। जिसमें अनुभूति की सच्चाई को प्रमुखता दी जाती है। इसमें कल्पना को अधिक महत्व नहीं दिया जाता, क्योंकि इसमें लेखक अपनी यात्रा के प्रत्यक्ष अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। बिना कहीं जाये, बिना किसी प्रत्यक्ष अनुभव के यात्रा साहित्य नहीं लिखा जा सकता। नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास सभी विधाएँ जीवनानुभव और काल्पनिकता के बल पर एक जगह बैठकर लिखी जा सकती है लेकिन यात्रा साहित्य लेखन के लिए घुमक्कड़ होना बहुत जरूरी है। जब तक लेखक घर से बाहर निकलकर अपने प्रत्यक्ष अनुभव, सुख-दुःख, सम्मान-अपमान, भोगे गये जीवनानुभव प्रस्तुत नहीं करता है, तब तक उसका एक जगह बैठकर लिखा हुआ यात्रा वर्णन, यात्रा-साहित्य नहीं कहला सकता। बिना यात्रा के किया गया वर्णन केवल ऊपरी, सतही वर्णन है।

उपन्यास व कहानी के तत्वों में जहाँ कथावस्तु को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है वही यात्रा साहित्य में कथावस्तु का स्थान सौन्दर्य वस्तु ले लेती है। जिसको यात्रा साहित्य में सबसे अधिक प्रमुखता दी जाती है। यदि कोई यात्रा के लिए बाहर जाता है तो उसमें सौन्दर्य के प्रति एक सहज आकर्षण होता है। समाज का सौन्दर्य, स्थान विशेष की विशिष्टता, भाषा, संस्कार, सभ्यता, संस्कृति, प्रकृति सभी के सौन्दर्य का चित्रण यात्रा साहित्य में किया जाता हैं। जिसमें सबसे अधिक आकर्षित प्रकृति सौन्दर्य करता है।

यात्रा-साहित्य का उद्देश्य बहुआयामी होता है। इसमें व्यष्टि से समष्टि तक जीवन के अनेक रूप एक साथ मुखर होते हैं। यात्राएँ कभी ज्ञान प्राप्ति के लिए तो कभी आत्मिक आनंन्द की प्राप्ति के लिए निरंतर की जाती है। आज की तनाव भरी जिन्दगी में तो यात्रा का बहुत बड़ा महत्व है। यात्राओं से सांस्कृतिक समन्वय स्थापित किया जाता है। यह एक ऐसी शक्तिशाली धरोहर है जिसके माध्यम से विभिन्न देशों के जन और संस्कृतियों का बोध हमें होता है।

भाषा-शैली का तत्व सभी विधाओं में समान रूप से विद्यमान रहता है। इस तत्व का सम्बन्ध कला-पक्ष से है। यात्रा साहित्य में भाषा-शैली में सरलता को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। जिससे अधिक क्लिष्ट व अलंकृत शब्दावली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

यात्रा साहित्य के महत्व की दृष्टि से अगर देखें तो यात्राएँ मनुष्य के जीवन को पूर्णता तथा दृष्टिगत व्यापकता प्रदान करती है। व्यक्ति की थकान को दूर करके उसमें नवीन स्फूर्ति पैदा करती है। जिससे व्यक्ति के मन का विकास होता है और इससे दूसरे मनुष्य व प्राणियों को समझने का भाव आता है। इस प्रकार यात्राओं द्वारा लोककल्याण की भावना प्रबल होती है। यात्रियों के मन में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति एक उत्कट इच्छा होती है। विविध प्राकृतिक सौंदर्यों और विविध संस्कृतियों को देखने-परखने से मनुष्य की संवेदना शक्ति में बढ़ाव आता है। ज्ञानवर्द्धन व अनुभव-संचय भी इसका एक उद्देश्य है।

प्रारंभ में मनुष्य अपने व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए समुद्र और स्थल मार्ग से दूर देश की यात्राएँ करता था। परन्तु धीरे-धीरे ये यात्राएँ व्यापार के साथ-साथ मनोरंजन, ज्ञानार्जन आदि अनेक उद्देश्यों के लिए भी की जाने लगी। प्राचीनकाल में धर्म का अधिक महत्व होने के कारण तीर्थ यात्राएँ अधिक की जाती थी लेकिन वर्तमान समय में इसका दायरा व्यापक हुआ है और सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, साहित्यिक जैसे विभिन्न उद्देश्यों से यात्राएँ की जाने लगी है। इस प्रकार यात्राओं का इतिहास काफी पुराना है लेकिन हिंदी साहित्य में यात्रा साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु पूर्व युग में हस्तलिखित ग्रंथों में देखने को मिलता है।

हिंदी यात्रा साहित्य के सर्वप्रथम हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा लिखित 'वनयात्रा' को माना जाता है, जिसमें 44 पृष्ठों में विट्ठलनाथ जी ने ब्रज के विभिन्न दृश्यों को भक्ति भाव से प्रस्तुत किया है और भारतेंदु युग से पूर्व रचित इन सभी ग्रंथों से हिंदी यात्रा साहित्य की आरंभिक अवस्था का ही पता चलता है। इस युग के अधिकतर हस्तलिखित ग्रन्थ धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर लिखे गये है जिनमें अधिकांशत: धार्मिक भावनाओं व तीर्थ यात्राओं की प्रचुरता दिखाई देती है।

द्विवेदी युग में पुस्तक के रूप में भी अनेक यात्रा वृत्तांतों का प्रकाशन हुआ। द्विवेदीयुगीन यात्रा साहित्य में अधिकतर निबंधात्मक शैली का ही प्रयोग किया गया है। साथ ही इसमें धार्मिक व देशी यात्राओं के साथ-साथ विदेशी यात्राओं की भी प्रधानता रही। इस युग के प्रमुख यात्रा साहित्यकार ठाकुर गदाधर सिंह, बाबू देवीप्रसाद खत्री, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, शिवप्रसाद गुप्त

आदि है। इस युग में स्वदेश यात्रा में धार्मिक यात्रा से सम्बंधित और विदेश यात्राओं में लन्दन, चीन, अमेरिका, जापान, श्रीलंका, रूस आदि देशों की यात्राओं का वर्णन किया गया है।

छायावाद युग में तीर्थयात्राओं को अधिक महत्व न देकर विदेश यात्राओं की प्रमुखता देखने को मिलती है। इस युग में यात्रा-शैलियों की विविधता और उत्कृष्टता के कारण सुरेन्द्र माथुर ने इस काल को यात्रा-साहित्य का स्वर्ण-युग कहा है। इस युग में यात्रा साहित्य एक लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित विधा के रूप में प्रतिस्थापित हो चुका था। राहुल सांकृत्यायन का आगमन इसी युग में हुआ और सत्यदेव परिव्राजक का भी अधिकांश साहित्य इसी युग में लिखा गया। इस युग में विदेश यात्राओं को प्रमुखता दी गई और उसमें भी यूरोप की यात्राएँ अधिक की गई। इस युग के यात्रा-साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवेशों का वैविध्य सुन्दर और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

समकालीन यात्रा को देखे तो आज हिंदी यात्रा साहित्य बहुत वैविध्यपूर्ण और समृद्ध हो चुका है। उसमें वस्तु वर्णन, दृश्यांकन, बिम्ब-विधान और मन:स्थितियों के सूक्ष्म रेखांकन की क्षमता बहुत बढ़ी है। भारतेंदु युग के यात्रा वृत्तांत निबंधों की तरह ही थे जिनसे केवल लेखक के स्वभाव और रुचि का परिचय और स्थान विशेष की जानकारी प्राप्त होती थी किन्तु आज हम यात्रा वृत्तांतों के माध्यम से वस्तुओं, व्यक्तियों और स्थितियों के बाह्य बिम्ब विधान के साथ-साथ लेखक के अंतर्जगत का भी पूरा साक्षात्कार कर सकते हैं।

अन्य गद्य विधाओं के साथ संबंध को अगर देखा जाए तो यात्रा साहित्य एक महत्वपूर्ण विधा है। जिसका आरंभ निबंधों से हुआ था लेकिन आज यह स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिस्थापित हो चुकी है। फिर भी इसमें निबंध, संस्मरण, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, डायरी, पत्र साहित्य आदि अन्य गद्य विधाओं का वैशिष्ट्य न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्त होता हैं। जिससे अन्य विधाओं के साथ संबंध को इसमें स्पष्ट किया गया है।

यात्रा साहित्य के योगदान को देखा जाए तो सबसे पहले धार्मिक योगदान दिखाई देता है क्योंकि यात्रा साहित्य की शुरुआत धार्मिक यात्राओं से हुई है। धार्मिकता से सम्बंधित यात्रा साहित्य में धर्म से जुड़ी मान्यताओं, मिथक कथाओं, धार्मिक रूढ़ियों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों

आदि की जानकारी मिलती है । हिंदी साहित्य में यात्रा साहित्य का साहित्यिक योगदान भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इसमें अनेक यात्रा ग्रंथकारों ने अनेक यात्रा वृत्त लिखकर अपना साहित्यिक योगदान दिया है । यात्रा साहित्य का बौद्धिक योगदान भी महत्वपूर्ण है । यात्रा साहित्य की प्रत्येक कृति जानकारी प्रदान करती है । जिससे ज्ञान में वृद्धि होती है । तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध कराने में यात्रा साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है । हिंदी साहित्य में सामाजिक एवं सांस्कृतिक योगदान में भी यात्रा साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । यात्रा साहित्य में विभिन्न देशों के समाज, संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज सभी की जानकारी प्राप्त होती है ।

संस्कृति को अगर देखा जाए तो भारतीय संस्कृति को परिभाषित या व्याख्यित करना इतना आसान कार्य नहीं है क्योंकि यहाँ की परम्पराओं, जीवन शैलियों, भाषाओं, धार्मिक प्रतीकों व जातीय अस्मिताओं में बहुत विभिन्नताएँ है और यह एक जगह निश्चल न रहकर विकास, परिवर्तन व प्रयोग निरंतर करती रहती है । इसी परिवर्तनशीलता व गतिशीलता की जटिलता के कारण इसका स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सकता । फिर भी संस्कृति के विविध अभिलक्षणों के आधार पर इसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

व्युत्पत्तिपरक अर्थ के दृष्टिकोण से देखा जाए तो 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम' उपसर्ग के साथ संस्कृत के 'कृ' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होती है । जिसका अर्थ है- 'संशोधन करना' अथवा 'सुन्दर या पूर्ण बनाना' । इसके अनुसार मनुष्य अपने को पूर्ण बनाने के लिए जो चेष्टायें करता है वे सभी इसके अंतर्गत समाहित है । बहुत-सी बार सुरुचि और शिष्ट व्यवहार के लिए भी संस्कृति शब्द का प्रयोग किया जाता है । संस्कृति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'कल्चर' शब्द का समानार्थी माना जाता है । 'कल्चर' शब्द की उत्पत्ति 'कल्टुरा' और 'कोलेरे' शब्द से हुई हैं । जिसका अर्थ जोतना, तहजीब, शिष्टता, कृषि, खेती, काश्त, उत्पादन, पालन, तरक्की आदि से हैं ।

संस्कृति और समाज का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है । संस्कृति समाज को दी हुई वह धरोहर है जिसके कारण समाज का निर्माण होता है । समाज संस्कृति को और संस्कृति समाज को आपस में जोड़ने का कार्य करते हैं । संस्कृति समाज में रहने वाले लोगों के बाह्य और आंतरिक विकास का ही

योग है। जब कई लोग निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए मिलजुल कर एक साथ रहते हैं तो उसे समाज कहा जाता है और प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार की संस्कृति अवश्य पाई जाती है। जिसमें समय के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं और उन परिवर्तनों का प्रभाव समाज पर पड़ता है। देखा जाए तो मनुष्य, समाज और संस्कृति तीनों अन्योन्याश्रित है, जिससे एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। समाज वह कड़ी है, जो मनुष्य और संस्कृति दोनों को जोड़ता है। इस तरह संस्कृति और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जिसके कारण समाजविहीन संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती और न ही संस्कृति विहीन समाज के बारे में सोचा जा सकता है। दोनों एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं।

संस्कृति और साहित्य का भी अविछिन्न सम्बन्ध है। संस्कृति जहाँ अपने में समाज, धर्म, राजनीति, इतिहास, कला सभी को समाविष्ट किए हुए है तो इन विभिन्न संस्कृति रूपों को अभिव्यक्त करने का मुख्य अंग साहित्य ही है। साहित्य के माध्यम से ही संस्कृति को संचित और संरक्षित किया जाता है, संस्कृति के अभाव में साहित्य निष्प्राण और संबलविहीन हो जाता है। संस्कृति जीवन जीने का एक तरीका है और जीवन का समग्र रूप संस्कृति में समाया हुआ है। साहित्य के द्वारा ही संस्कृति की मूल्यवान संचित उपलब्धियों को लिपिबद्ध करके संरक्षित किया जाता है। साहित्य के अभाव में संस्कृति, विचार, भाव, परम्पराएँ अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती। यह संस्कृति का प्रधान अंग है जिसमें जाति के मनोगत भाव सुरक्षित रहते हैं और उनके माध्यम से ही उसके मनोगत भावों का पता लगाया जाता है। इस तरह साहित्य और संस्कृति दोनों ही एक-दूसरे को समृद्ध करते हैं जिससे प्रत्येक साहित्य एक सांस्कृतिक इकाई की उपज होता है।

संस्कृति और संस्कार दोनों ही परस्पर अंत:सबंधित रहते हैं। मनुष्य को संस्कारित करने व व्यक्तित्व के उत्थान के लिए उसके पैदा होने से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कारों का नियोजन किया गया है। जिसमें व्यक्ति को संस्कारित करने में संस्कृति एक सांचे का काम करती है। जिससे उसका सामाजिक और व्यक्तिगत विकास आसानी से हो सकें। संस्कारों से आत्मा और अंत:करण की शुद्धि होती है। यह व्यक्ति के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक व धार्मिक परिष्कार के लिए की जाने वाली क्रिया है। जिसका मूल विशुद्ध पवित्रता और विघ्न बाधाओं व अशुभ शक्तियों से जीवन की रक्षा करना है।

भारतीय संस्कृति ने अपने को भारत की भौगोलिक सीमाओं तक ही सीमित नहीं रखा है बल्कि विदेशों में भी इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। मॉरीशस, गुआना, सूरीनाम, फिजी, ट्रिनिडाड, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, बर्मा, मलेशिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया, श्रीलंका आदि देशों में भारत आज भी विद्यमान है। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भारतीय संस्कृति की झलक प्रमुख रूप से दिखाई देती है।

चयनित यात्रा वृत्तांतों को अगर देखा जाए तो इनमें यात्राओं के विविध रूप दिखाई देते हैं जिनमें कही हिमालय की दुर्गम पहाड़ियाँ है तो कहीं भू-स्खलन से भरी चढ़ाई है। कही राजस्थान के सम का रेगिस्तान दिखाई देता है तो कही दीव की लहरें वही दूसरी ओर आकर्षित करता पूर्वोत्तर का प्राकृतिक सौन्दर्य, कच्छ का रन, लद्दाख के मटमैले पहाड़, सुंदरवन की मैंगरोव वनस्पति सहज ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यात्राओं के इन्हीं विविध रूपों को संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है -

'सम पर सूर्यास्त' प्रयाग शुक्ल का महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें कविता के गुण, कथा की सरसता और रोचकता, चित्रात्मकता के साथ में प्रकृति और जीवन के बहुतेरे मर्म को प्रस्तुत किया गया है। उदयपुर, कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई, चैन्नई, महाराष्ट्र, गुजरात, कानपुर, लखनऊ, सागर, जोधपुर, वाराणसी, सारनाथ, उज्जैन आदि नगरों की यात्राओं के संस्मरणों का समन्वय इसमें किया गया है। जिससे इसमें देश के विभिन्न अंचलों की यात्राओं में कहीं राजस्थान की मरुभूमि दिखाई देती है तो कहीं केरल, ब्रह्मपुत्र व दीव की लहरें स्वागत करती है। छोटी-छोटी टिप्पणियों में स्थान विशेष के साथ लेखक की गहरी संवेदना हर जगह से जुड़ी हुई है। दैनिक जीवन में साधारण-सी लगने वाली चीजें हमेशा मामूली ही नहीं होती, उनको अनदेखा करके हम उसके सौन्दर्य और बहुतेरे पक्षों से वंचित रह जाते हैं। इसमें से अधिकतर टिप्पणियाँ इसी वंचित सौन्दर्य की ओर संकेत करती है। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से सभी पक्षों को प्रस्तुत करने वाला यह वृत्तांत अपने छोटे कलेवर में ही विविधवर्णी छवियों को प्रस्तुत करने में सक्षम है।

गगन गिल का 'अवाक्' विश्व की कठिनतम यात्राओं में मानी जाने वाली कैलाश मानसरोवर की यात्रा का एक महत्वपूर्ण वृत्तांत है। इसमें कैलास मानसरोवर का अनुपम सौन्दर्य,

पहाड़, सपाट मैदान, ऊँची-नीची पगडंडियाँ, झीलें, बौद्ध धर्म के प्रति आस्था, दलाईलामा के प्रति निष्ठा जैसी संपूर्णता को एकाकार करके प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति, मनुष्य, हिमालय, झीलें, नदियाँ, जल, वायु सब एक निरंतर प्रवाह में आकस्मिक, अप्रत्याशित व रहस्यमय रूप से चलते रहते हैं। इन सभी के चित्रण व अंतर्यात्रा के साथ-साथ लेखिका अपने बाह्य परिवेश के प्रति भी काफी जागरूक है। जिससे यह बाह्य व अंतर्यात्रा को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है।

आदिवासी समाज की समस्याओं पर लिखने वाले हरिराम मीणा का 'जंगल जंगल जलियांवाला' महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें राष्ट्र की आजादी में योगदान देने वाले इतिहास के पन्नों से गायब आदिवासियों के बलिदान की तीन बड़ी घटनाओं के स्थानों की यात्रा करके उन्हें प्रस्तुत किया गया है। जलियांवाला बाग हत्याकांड से भी वीभत्स राजस्थान के दक्षिणी प्रांत बांसवाड़ा के मानगढ़ पर्वत पर हुए मानगढ़ हत्याकांड व नरसंहार को इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित किया गया है। इन्हीं उपेक्षित स्थानों की यात्रा करके अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आदिवासियों के विद्रोह की गाथा को इसमें अभिव्यक्त किया गया है। मानगढ़ हत्याकांड की तरह ही भूला बिलौरिया और पालचित्तरिया की शहादत का चित्रण भी इस पुस्तक में किया गया है।

'अनाम यात्राएं' अशोक जेरथ की पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में की गई साहसिक यात्राओं का वृत्तांत है जिसमें पश्चिमी हिमालयी सांस्कृतिक क्षेत्र व अनेक हिमानियों के साथ-साथ दूसरे दुर्गम इलाकों की साहसिक यात्राएँ है। अल्मोड़ा में प्रवास के दौरान शुरू हुए इन यात्राओं के सिलसिले में कुमाऊँ-गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर के पर्वतीय व सांस्कृतिक क्षेत्रों के साहस की यात्राओं से हिमालायी संस्कृति को करीब से देखकर प्रस्तुत किया गया है। इसमें भारतीय संस्कृति की झलक विभिन्न रूपों में दिखाई देती है इसमें लेखक का उद्देश्य मात्र यात्रा करना ही नहीं बल्कि लोकजीवन की झाँकियों को भी प्रस्तुत करना है लोक मान्यताएँ, लोक विश्वास, लोक संस्कृति, किसी भी क्षेत्र या समुदाय की विशिष्ट पहचान होते हैं। उन्हीं क्षेत्र विशेष के लोकजीवन की रोचक झलक इसमें प्रस्तुत की गई है। ग्रामीण जीवन के अभावों, रीति-रिवाजों, परंपराओं को भी रोचक अंदाज में प्रस्तुत किया गया है।

कृष्णा सोबती के 'बुद्ध का कमंडल' में लद्दाख के हर पक्ष को बहुत गहराई के साथ महसूस करके अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। वहाँ का समाज, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, धर्म सब कुछ इसमें समाहित है । लेखिका की वैयक्तिक स्मृतियों, जातीय अवधारणाओं, ऐतिहासिक, भौगोलिक वृत्तांतों का सम्मिलित समुच्चय इसमें दिखाई देता है। यात्रा के साथ-साथ किसी प्रदेश विशेष के इतिहास व भूगोल की जानकारी प्राप्त करके उसे प्रस्तुत करना अपने आप में बहुत महत्व रखता है। इसमें जानकारी के साथ-साथ लद्दाख के प्राकृतिक सौन्दर्य, राजपरिवार व उनके पदानुक्रमों, महल, राजकाज व अन्य राजाओं के साथ संबंध सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ पर्यटक स्थल भी है जैसे- लेह महल, लेह का किला, थिकसे, शे, हैमिस, फियांग, गोम्पा का बौद्ध मंदिर, लामयुरु का प्राकृतिक सौन्दर्य, आलची गोम्पा, थिकसे विहार, लद्दाख के बौद्ध मंदिर, चुंघीघर आदि का वर्णन करते हुए लद्दाख को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने वाला यह अत्यंत महत्वपूर्ण, रमणीय, पठनीय यात्रा वृत्तांत है।

पंकज बिष्ट के 'खरामा-खरामा' में अलग-अलग समय पर की गई यात्राओं के यात्रा लेखों को संकलित किया गया है जिसमें 'पश्चिमी प्रांतर', 'सुदूर पूर्व व उतरांचल की यात्राएँ' है। पश्चिमी प्रांतर में सहस्त्राब्दी के अन्तराल व अपने देश में अपनी ही तलाश में की गई गुजरात व अहमदाबाद की यात्राओं को प्रस्तुत किया गया है। 'विद्रोह की पगडण्डी : मीरा के देश में एक नास्तिक' लेख में मीरा के प्रदेश राजस्थान और द्वारका यात्रा के माध्यम से मीरा को सभी रूपों में प्रस्तुत किया गया है। 'आस्था की गुफाओं की चमक' और 'कला के अँधेरे कोने' लेखों में महाराष्ट्र के औरंगाबाद में स्थित अजंता, एलोरा की गुफाओं की यात्रा करके उसके माध्यम से बौद्ध धर्म व वास्तुकला को प्रस्तुत किया गया है। लेखक के पत्रकार होने के कारण पत्रकारिता की तरह हर पक्ष को तार्किक ढंग से प्रस्तुत करने के साथ-साथ स्थान विशेष के इतिहास, समाज, धर्म व संस्कृति को बहुत ही गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यह गुजरात, राजस्थान व पूर्वोत्तर की यात्राओं के माध्यम से वहाँ के समाज, संस्कृति व इतिहास को प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है।

अनिल यादव का 'वह भी कोई देस है महराज' अपने ढंग का अनूठा एवं महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जो कि मात्र देश के उपेक्षित और अर्द्धज्ञात हिस्से पूर्वोत्तर की यात्रा का वर्णन ही नहीं करता बल्कि वहाँ के नस्ल-अंतर, भाषा-अंतर और संस्कृति के अंतर की द्वन्द्व यात्रा का लेखा-

जोखा भी प्रस्तुत करता है। देश के खूबसूरत हिस्से पूर्वोत्तर के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं परन्तु इस पुस्तक में पूर्वोत्तर भारत के बारे में प्रचलित अनेक मिथकों व भ्रांतियों को दूर करते हुए वहाँ के सौन्दर्य और वास्तविक यथार्थ का चित्रण किया गया है। यह वृत्तांत पूर्वोत्तर भारत या सेवन सिस्टर्स का सांस्कृतिक, राजनैतिक और प्राकृतिक आख्यान है जिसमें वर्णात्मकता या क्षेत्रीय व शहरों के सामान्य वर्णन का अधिक चित्रण न करके मनुष्यता, राजनीति और संस्कृति के अबूझ पहलूओं का चित्रण किया गया है । पूर्वोत्तर राज्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, भाषिक असमानता, बेरोजगारी, नशाखोरी, उग्रवाद, जातीय स्वाभिमान व अस्मिता, कबीलाई मान्यताएँ व आदर्श, संसाधनों की न्यूनता व प्राकृतिक सुन्दरता को इसमें उजागर किया गया है। यह पुस्तक पूर्वोत्तर की राजनीति, इतिहास, वर्तमान, भूगोल, परम्परा, संस्कृति, मिथक व लोक वार्ताओं का साहित्यिक अंतर्गुम्फन है। इसमें पूर्वोत्तर की बदलती संस्कृति, नए-पुराने, भीतरी-बाहरी सब तरह के द्वन्द्वों को बहुत ही बारीकी के साथ दिखाया गया है। साथ ही मिजो विद्रोह और उल्फा के यथार्थ का भी चित्रण किया गया है।

'बादलों में बारूद' मधु कांकरिया का एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जो कि हिन्दी यात्रा साहित्य की परंपरा को समृद्ध करता हुआ अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। यह केवल यात्रा वृत्तांत ही न होकर समाज व प्रकृति के प्रति जुड़ाव को प्रस्तुत करने वाला एक महत्वपूर्ण वृत्तांत है जिसमें कहीं लोहदरा और गुमला, बिशनपुर के आदिवासियों का दु:ख-दर्द दिखाई देता है तो कही पूर्वोत्तर के पर्वतीय क्षेत्र सिक्किम, शिलोंग की हरियाली तो कहीं पश्चिमी बंगाल के सौन्दर्य को प्रस्तुत करने वाले सुंदरवन व अद्भुत, अविस्मरणीय सौन्दर्य के धनी बुद्ध और पहाड़ों का प्रदेश लद्दाख आते हैं। आदि शंकराचार्य की जन्मभूमि केरल तो प्रकृति का घर ही है। इसमें लेखिका ने अपने को खोजते हुए भूगोल, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व, आदिजीवन, पुरातन प्रकृति व अलक्षित लोकमन के कोने-कोने को झाँका है।

राकेश तिवारी का 'सफर एक डोंगी में डगमग' नदी और मनुष्य के अनन्य संबंधों को अभिव्यक्त करने वाला एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जिसमें डोंगी से की गई 62 दिन की यात्रा का चित्रण किया गया है। दिल्ली की ओखला हेड जैसी छोटी नहर से यात्रा शुरू कर यमुना, चम्बल, गंगा से होते हुए आगरा, मथुरा, इलाहाबाद, कानपुर, पटना से गुजरती इस डोंगी की यात्रा के बहाने

इतिहास, समाज और संस्कृति का दिलचस्प वर्णन लेखक ने किया है। इस वृत्तांत के हर वाक्य में रोमांच मौजूद है। कुदरती ताकतों से जूझते हुए नदी से परिचय और तट के जनजीवन की झलक पाना, घाट पर बसे गाँवों के ऐतिहासिक एवं पौराणिक संदर्भ। परिस्थितियाँ बहुत बार साथ नहीं देती लेकिन चप्पू चलाने का चाव और अदम्य साहस सब कुछ अपने हक में कर लेता है। 62 दिन तक नाव पर ही घर, गुड, चना, ब्रेड व मक्खन का कलेवा, टीसते हाथ-पाँव, भीगती देह सभी का यथार्थ चित्रण किया गया है। सम्पूर्ण पुस्तक अपनी जीवंतता को बनाये रखती है जिसमें हर शब्द पाठक को जोड़े रखता है। कोई भी ऐसा प्रसंग, ऐसी जगह, ऐसा वातावरण, लोग व ऐसी परिस्थतियाँ नहीं हैं, जो स्वयं न बोल रही हो। वर्णन-शैली बहुत शानदार है। पढ़ने के साथ-साथ ही सारा वर्णन मानस-पटल पर दृश्यांकित होता चलता है। लेखक को शुरू से ही कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है लेकिन उनकी यात्रा की उत्कंठा शुरू में नाव के प्रबंध से लेकर लखनऊ और आगे बनारस तक हर जगह दिखाई देती है। दिल्ली से कलकत्ता तक के इस लंबे और चुनौतीपूर्ण सफर में भय, आशंका और खतरे अनेक रहे लेकिन इन सब का सामना करने और उनसे पार निकलने की जीवटता इस वृत्तांत में सर्वत्र दिखाई देती है।

'सुनो लद्दाख' नीरज मुसाफिर का लद्दाख यात्रा व ट्रैकों के बारे में जानकारी प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जिसको 'जनवरी में लद्दाख और चादर ट्रैक' व 'पदुम-दारचा' (जांस्कर ट्रैक) नाम से दो भागों में विभक्त करके जनवरी 2013 व अगस्त 2014 की यात्राओं को प्रस्तुत किया गया है। लद्दाख बहुत कठोर जलवायु वाला इलाका है जहाँ मौसम को लेकर अनेक दिक्कतें हैं, अत्यधिक त्वचा जला देने वाली धूप, मटमैले पहाड़, दुर्गम रास्ते, सर्दियों में हड्डियों को कंपा देने वाली ठंड, लेकिन लेखक हर विपरीत परिस्थिति में भी चलता रहता है लद्दाख और जांस्कर जैसे भू-भाग को पैदल नापना अपने आप में एक सराहनीय प्रयास है। इसमें जांस्कर, दारचा, पदुम, चादर जैसे कभी न सुने जाने वाले शब्दों को पढ़कर पाठक को लगता है कि वह भी इन दुर्गम मार्गों पर लेखक के साथ यात्रा कर रहा है। चादर ट्रैक के समय गुफा में बिताई रात, पदुम-दारचा ट्रैक के दुर्गम दर्रे व चढ़ाई, अद्भुत हिमाच्छादित पर्वत हर कदम पर पाठक को रोमांचित करते हैं।

‘दर्रा-दर्रा हिमालय’ अजय सोडानी द्वारा की गई हिमालय यात्रा के दो अभियान दर्रों के सिरमौर ‘कालिंदी खाल’ को पार करने व ‘ऑडेन कॉल अभियान’ की साहसिक यात्राओं का वृत्तांत है। जिसके प्रमुख कारणों को अगर देखा जाए तो पहला पौराणिक ग्रंथों की सत्यता को परखना दूसरा विलुप्त होते सौन्दर्य को खोजना और तीसरा कारण है वहाँ के जन-जीवन को गहराई से देखना व महसूस करना हैं लेखक भीड़भाड़ की ज़िंदगी से बाहर निकलकर स्वयं की आत्मिक शांति व अपने आप को महसूस करने के लिए बार-बार हिमालय की तरफ भागता है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गई यह यात्रा जीवन-मृत्यु के सवालों से जूझते हुए वाचिक और पौराणिक इतिहास की भी यात्रा है।

‘दर्रा-दर्रा हिमालय’ के बाद हिमालय यात्रा सीरीज में ‘दरकते हिमालय पर दर-ब-दर’ अजय सोडानी का दूसरा यात्रा वृत्तांत है। भारतीय मानस में कथाओं को बहुत अधिक प्रमुखता दी गई है। हिन्दू धर्म में इन कथाओं की बहुलता है और हिन्दू धर्म की हर कथा किसी न किसी रूप में हिमालय से जुड़ी हुई है इन्हीं कथाओं या कहें मिथकों की सत्यता की तलाश करने के लिए यह हिमालय यात्रा की गई है।

अजय सोडानी का ‘इरिणालोक’ गुजरात के कच्छ के रण को जीवंतता के साथ प्रस्तुत करने वाला वृत्तांत है। अजय सोडानी का प्रबल विश्वास है कि देश की आत्मा दंतकथाओं और जनश्रुतियों में बसती है और इतिहास के पन्नों से गायब इन्हीं जनश्रुतियों को वे दुर्गम यात्राओं के माध्यम से दूर-दराज के इलाकों से ढूँढ़ते हैं। विकास के अनछुए लोकों में पुराकथाओं के चिह्नों की खोज इस वृत्तांत में प्रमुखता से की गई है। पद्धरगढ़ का महल, दोरबनाथ मंदिर को लेकर मान्यताएँ, नाथों की पूजा पद्धति, बन्नी, जत लोगों की मान्यताएँ, तरा व जल संरक्षण की पद्धति सभी का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह गुजरात के कच्छ के रन का सजीव वर्णन करने वाला महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें कच्छ के लोकजीवन, भौतिक उपलब्धियों, लोगों के रहन-सहन, कला और संस्कृति पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

उमेश पंत का ‘दूर दुर्गम दुरुस्त’ पूर्वोत्तर भारत की यात्राओं को प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण वृत्तांत है। जिसमें असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड व मणिपुर की उन आहटों को प्रस्तुत

किया गया है जो कहीं न कहीं दबकर रह जाती है। इसमें फरवरी 2018 व दिसंबर 2018 में की गई दो यात्राओं को प्रस्तुत किया गया है। सम्पूर्ण यात्रावृत्त पूर्वोत्तर की वास्तविक स्थिति को बयां करने वाला रससिक्त और रोचक वृत्तांत है।

संस्कृति को अगर देखा जाए तो इसे एक निश्चित परिभाषा में बाँधकर नहीं देखा जा सकता। इसीलिए इसे अलग-अलग क्षेत्रों के लोग अलग-अलग तरह से परिभाषित करते हैं। जैसे – धर्म और दर्शन के लोग धर्म दर्शन को संस्कृति कहते हैं; कला क्षेत्र के लोग कलाओं को संस्कृति के पर्याय के रूप में देखते हुए इसे साहित्य, नृत्य, नाट्य, संगीत, चित्रकला आदि कला विधाओं से जोड़कर देखते हैं; तो नृतत्त्व विज्ञानी इसका संबंध मनुष्य समाज से जोड़कर मानव के कालक्रम से विकसित हुई मानते हैं। इस तरह से संस्कृति का संबंध विभिन्न समूहों द्वारा अलग-अलग लगाया जाता रहा है। इस प्रकार संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत ही व्यापक होने के कारण इसका संबंध मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक, कला जैसे जीवन के सभी पहलुओं से रहा है और संस्कृति संबंधी इन्हीं सभी पहलुओं को देखने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है। इसमें धर्म, दर्शन, कलाएँ, साहित्य, मानव व्यवहार, नैतिक मूल्य, खान-पान, रहन-सहन और वे सभी तत्त्व मौजूद है जो जीवन को संपूर्णता प्रदान करते हैं। इसीलिए इस अध्याय को भौगोलिक परिवेश, प्रकृति चित्रण, धर्म, दर्शन, नैतिक मूल्य, खानपान, रहन-सहन, वस्त्राभूषण, पर्व-त्योहार, कलाएँ जैसे उपअध्यायों में विभक्त करके संस्कृति संबंधित सभी पहलुओं का विवेचन किया गया है।

यात्रा साहित्य और संस्कृति का अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। संस्कृति जहाँ अपने में समाज, धर्म, दर्शन, राजनीति आदि को समाविष्ट करके रखती है वही यात्रा साहित्य इन सभी सांस्कृतिक रूपों की कलात्मक अभिव्यक्ति करता है। लेखक जब किसी भी क्षेत्र विशेष की यात्रा के लिए जाता है तो वहाँ की समाज व्यवस्था, रीति-रिवाज, खानपान, धर्म, दर्शन, कला, लोक विश्वास, लोकाचार, भाषा सभी सांस्कृतिक अवयव लेखक की मन:स्थिति को अत्यधिक प्रभावित करते हैं और इन्हीं सभी अवयवों को वह अपने यात्रा वृत्तांत में स्थान देता है।

विभिन्न यात्राकारों को अगर देखा जाए तो कुछ लेखकों ने विशुद्ध यायावरी भाव से विभिन्न स्थानों और क्षेत्रों का भ्रमण किया जिससे उनकी कृतियों में एक तरफ जहाँ पर्वतों, नदियों का प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रित किया है तो वही दूसरी तरफ वहाँ बसे नगरों का सामाजिक, सांस्कृतिक व ऐतिहासिक विवेचन विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है।

अजय सोडानी की यात्राओं का तो मुख्य उद्देश्य ही प्रकृति के साथ-साथ संस्कृति से मुलाकात का है। जिस संस्कृति की वजह से हम भारतीय कहलाते हैं और जिन संस्कारों से भारतवर्ष बँधा हुआ उनकी उत्पत्ति हिमालय की कोख से और उनका पालन-पोषण हिमालय की गोद में हुआ है। इनकी यात्राओं का मुख्य उद्देश्य ही ब्रह्मकमल एवं पांडव चरणचिह्नों को खोजते हुए अलिखित दंतकथाओं और पौराणिक कथाओं की सत्यता को परखना है। वही मधु कांकरिया के 'बादलों में बारूद' में झारखंड, पश्चिमी बंगाल और पूर्वोत्तर, लद्दाख के समाज और संस्कृति के बारे में तो हरिराम मीणा के 'जंगल-जंगल जलियांवाला' में आदिवासी समाज व संस्कृति के बारे में बताया गया है। राकेश तिवारी के 'सफर एक डोंगी में डगमग' में नदियों के भूगोल का रेखांकन करते हुए उसके तट पर बसे नगरों के इतिहास, समाज और संस्कृति को प्रस्तुत किया गया है।

समाज की विविध सामाजिक स्थितियों और समाज के विविध स्वरूपों को यात्रा साहित्यकारों ने अपने वृत्तांतों में दिया है। जिसमें एक तरफ जहाँ परिवार और उसमें रहने वाले सदस्यों के पारस्परिक संबंधों, आदर्शों और पारिवारिक संबंधों को उभारा गया है वही दूसरी तरफ पारिवारिक रिश्तों में आये परिवर्तन को भी चित्रित किया है। भारतीय समाज के खानपान, वेशभूषा, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद के विविध रूपों के चित्रण द्वारा भारतीय समाज का समग्र चित्र उतारने में विवेच्य साहित्य सफल रहा है। कुछ लेखकों की रुचि लोक और आदिवासी क्षेत्रों के विकास में बाधक कारणों की ओर ध्यान दिलाने की रही है जिससे उन्होंने क्षेत्र विशेष में प्रचलित विविध लोकगीत, लोकगाथाओं व लोगों की मान्यताओं के साथ-साथ वहाँ के अभावों व राजनीतिक चेतना की कमी की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। इसमें मधु कांकरिया का 'बादलों में बारूद', अशोक जेरथ की 'अनाम यात्राएं' व हरिराम मीणा का 'जंगल-जंगल जलियांवाला' महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

धर्म और दर्शन संस्कृति की अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण आयाम है और हिन्दी यात्रा साहित्य में भारतीय जनता की धार्मिक चेतना का महत्वपूर्ण योगदान हैं क्योंकि अधिकांश यात्राएँ धार्मिक उद्देश्यों को ही लेकर की जाती है। विभिन्न यात्राकारों ने विभिन्न धार्मिक स्थलों व वहाँ के प्रतिष्ठापक मंदिर, देवी-देवताओं, तीर्थ-स्थान, प्रार्थना, व्रत उपासना, आस्थामय सुरम्य वातावरण सभी को प्रस्तुत किया है। हिमालय क्षेत्र और उसके पार बौद्धों की धार्मिक स्थिति, लामाओं के आचार-विचार, धार्मिक व्यवहार, प्रमुख चर्च, वहाँ की प्रार्थना आदि की सुरम्य झाँकी इन यात्रा वृत्तांतों का विषय रही है।

यात्रा साहित्य की भाषा शैली की अगर बात की जाए तो यह ऐसी विधा है जिसमें भाषा के क्लिष्ट रूप की आवश्यकता नहीं होती। इसमें भावानुकूल सीधी सरल भाषा का प्रयोग किया जाता है। चयनित यात्रा वृत्तांतों की भाषा भी सहज सरल है साथ ही अवसरानुकूल, आवश्यकतानुकूल, स्थानानुकूल तथा पात्रानुकूल परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी, उर्दू, तथा स्थानीय भाषाओं के शब्दों तथा वाक्यों का प्रयोग किया गया है। स्थानीय भाषाओं के शब्दों की व्युत्पत्तिपरक निर्माण-प्रक्रिया को भी लेखकों ने दर्शाया है। इन यात्रा वृत्तांतों में विभिन्न विधाओं की शैलियों का मिश्रण है। जिससे इन्हें अभिव्यक्तिपरक और अनुभूतिपरक शैलियों में रखा जा सकता है। यात्रा साहित्यों में प्रायः काव्यात्मक उपादानों के रूप में परिगणित होने वाले बिंबों और प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि भाषा और शैली वह माध्यम है जिसके द्वारा लेखक अपनी संवेदना को शब्दबद्ध करता है। अनुभूति को पाठकों तक संप्रेषित करने की कला को कला पक्ष कहा जाता है। इसे भाषा, शैली, बिम्ब और प्रतीक जैसे अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों से प्रकट किया जाता है। इन यात्रा वृत्तांतों की भाषा में सरलता एवं सहजता है। यात्रा वृत्तांत में भाषा के आलंकारिक होने के बजाय यात्राकार का वस्तुओं को देखने का नजरिया प्रमुख स्थान रखता है। लेखक यात्रा के दौरान होने वाले अनुभवों के आंतरिक रूप तक पहुँचकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। यात्राकार यात्रा के दौरान भौगोलिक परिवेश व प्रकृति के सौन्दर्य तक ही सीमित न रहकर वहाँ के लोगों के जीवन स्तर में भी गहरी दिलचस्पी लेते हैं और उन्हीं आत्मीय संबंधों को भाषा शक्ति के माध्यम से जब पाठकों के समक्ष उजागर किया जाता है तो भाषा उसे चलचित्र की तरह

हमारे सामने पेश कर देती है। पढ़ते हुए लगता है कि हरेक दृश्य को एक-एक करके देख रहे हैं। इसी अनुभूति पक्ष को सशक्त रूप प्रदान करने के लिए अधिकतर यात्रा लेखकों ने विविध प्रकार की भाषा और शैलियों का प्रयोग किया है जिनका विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। भाषा में जहाँ अंग्रेजी, उर्दू-फारसी व स्थानीय भाषा के शब्द व वाक्य संरचना को प्रस्तुत किया गया है वहीं विभिन्न शैलियों में निबंध शैली, वर्णनात्मक शैली, संस्मरण शैली, भावुकतापूर्ण शैली, काव्यात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली में विभाजित करके देखा गया है।

परिशिष्ट :-

मेघालय में पेड़ की जड़ों से बना दुमंजिला पुल जो 50 लोगों तक का भार सहन कर सकता है..(दूर दुर्गम दुरुस्त)

अब्दुल गफ्फार खत्री का काले साटन पर बनाया गया 'ट्री ऑफ लाइफ'(इरिणालोक)

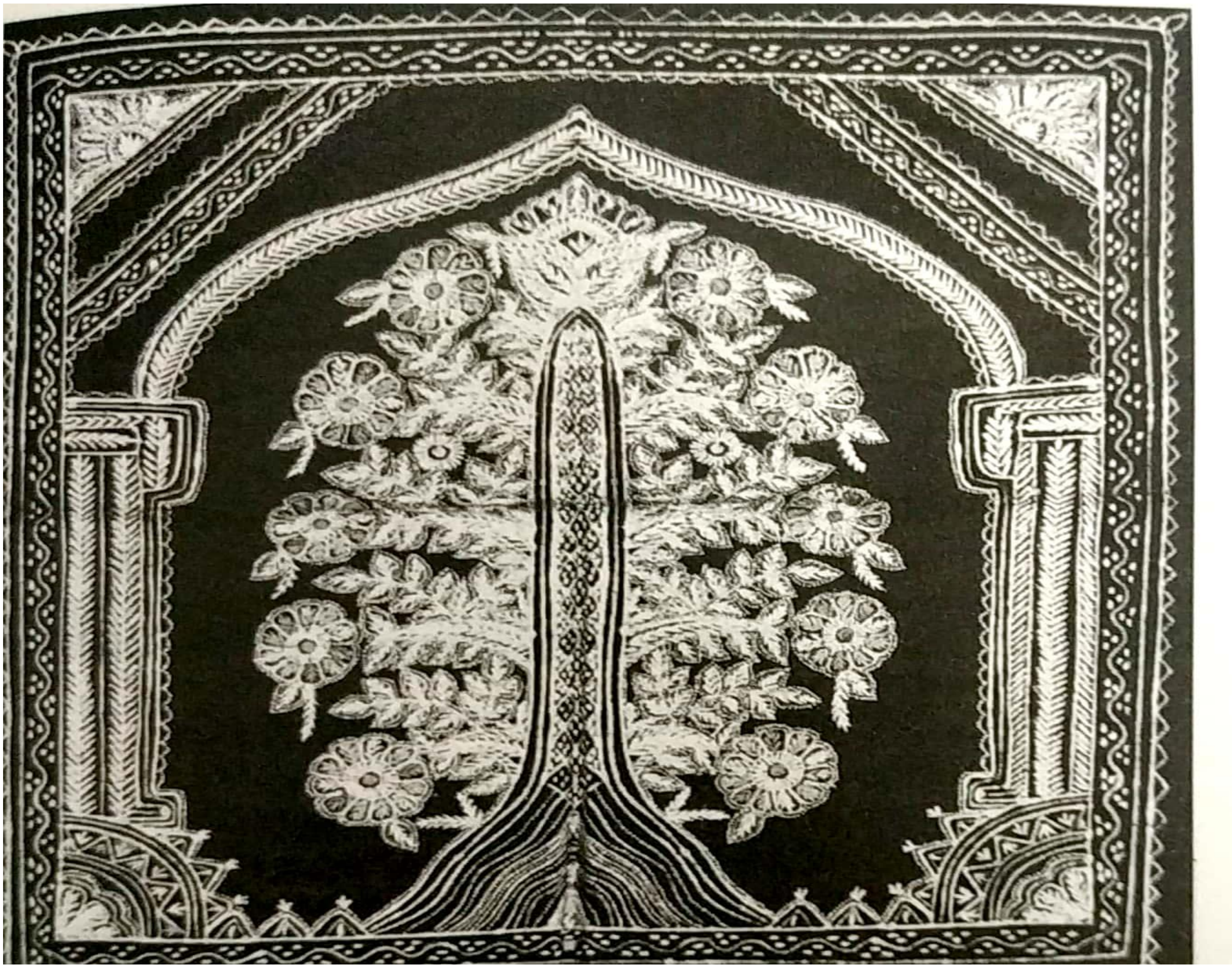

नागालैंड के हॉर्नबिल फेस्टिवल में पारंपरिक नागा पोशाक में जनजातीय लोग (दूर दुर्गम दुरुस्त)

भुज में गहने पहने महिला (इरिणालोक)

पंगी गाँव में बहुपति प्रथा के प्रतीक दो ससुर और एक सास (अनाम यात्राएं)

भुज के बाजार में नथ वाली फकीरणी जत स्त्रियाँ (इरिणालोक)

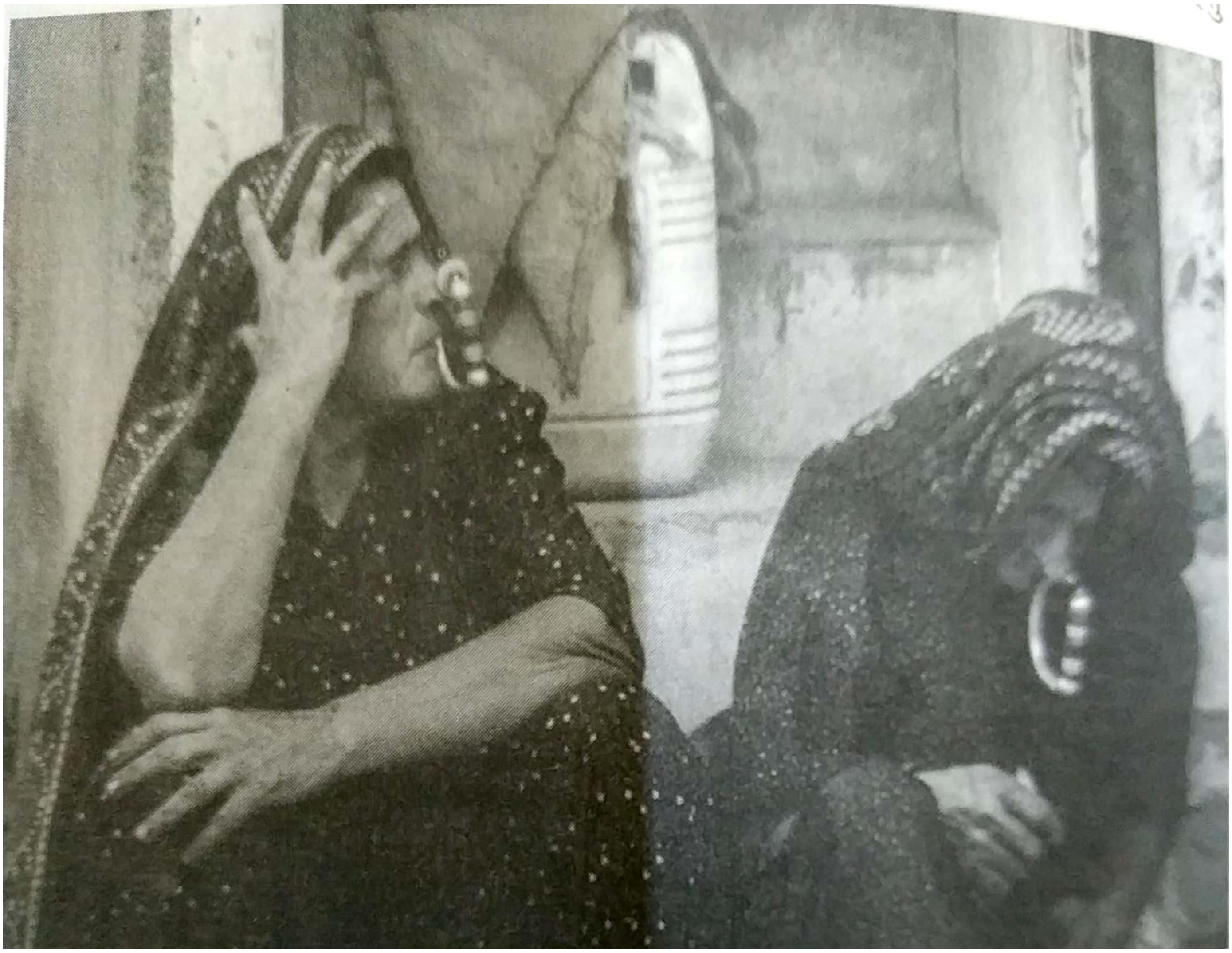

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रंथ :-

1. प्रयाग शुक्ल, 'सम पर सूर्यास्त'(2002), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. गगन गिल, 'अवाक्'(2008), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हरिराम मीणा, 'जंगल जंगल जलियांवाला'(2008), शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली
4. अशोक जेरथ, 'अनाम यात्राएं'(2011), आर्य प्रकाशन मंडल, गाँधीनगर, दिल्ली
5. पंकज बिष्ठ, 'खरामा-खरामा'(2012), 'अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद
6. कृष्णा सोबती, 'बुद्ध का कमंडल'(2012), 'राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
7. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महराज'(2012), 'अंतिका प्रकाशन', गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश
8. अजय सोडानी, 'दर्रा-दर्रा हिमालय'(2014), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. मधु कांकरिया, 'बादलों में बारूद'(2014), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
10. राकेश तिवारी, 'सफर एक डोंगी में डगमग'(2014), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
11. नीरज मुसाफिर, 'मेरी लद्दाख यात्रा'(2017), रेडगर्ब बुक्स, मणिपाल टेक्नोलॉजी लिमिटेड
12. अजय सोडानी, 'दरकते हिमालय पर दर-ब-दर'(2018), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
13. अजय सोडानी, 'इरिणालोक'(2019), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
14. उमेश पंत, 'दूर-दुर्गम दुरस्त'(2020), राजमकल प्रकाशन, नई दिल्ली

2. संदर्भ ग्रंथ :–

1. शिवदत्त ज्ञानी, 'भारतीय संस्कृति'(1944), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. राहुल सांकृत्यायन, 'घुमक्कड़शास्त्र'(1946), राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, दिल्ली

3. सं. योगेंद्र बिहारी लाल माथुर, रमेश कुमार श्रीवास्तव, 'भारतीय संस्कृति निबंध संग्रह'(1950), प्रयाग विश्वविद्यालय
4. बाबू गुलाब राय, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा'(1956), साहित्य प्रकाशन, ग्वालियर
5. उमेश मिश्र, 'भारतीय दर्शन'(1958), कैन्स एंड कंटेनर्स प्रा. लि., लखनऊ
6. वासुदेव शरण अग्रवाल, 'कला और संस्कृति'(1958), साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद
7. सुरेन्द्र माथुर, 'यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास'(1962), साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली
8. राजेन्द्र प्रताप सिंह, 'पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र की परंपरा'(1962), जयशंकर प्रेस, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद
9. डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, 'हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया'(1965), ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर
10. देवराज, 'भारतीय संस्कृति'(1966), सूचना विभाग, लखनऊ, उत्तरप्रदेश
11. डॉ. कुमार विमल, 'सौन्दर्यशास्त्र के तत्व'(1967), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12. डॉ. प्रेम भटनागर, 'हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य'(1968), अचना प्रकाशन, जयपुर
13. कैलाश वाजपेयी, 'आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प'(1969), आत्मा एंड संस, नई दिल्ली
14. डॉ. देवराज, 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन'(1972), हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश शासन, लखनऊ
15. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास'(1976), लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली
16. सेठ गोविंददास, 'भारतीय संस्कृति(1976)', वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, भारत सरकार
17. डॉ. राधेश्याम गुप्त, 'हिन्दी कहानी का शिल्प विधान'(1977), हिन्दी साहित्य संस्थान, अजमेर

18. डॉ. शांतिस्वरूप, 'हिंदी उपन्यास और शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य'(1980), लोथी ग्रंथ निकेतन, दिल्ली

19. महादेवी वर्मा, 'भारतीय संस्कृति के स्वर'(1984), राजपाल एंड संज, दिल्ली

20. जवाहर सिंह, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि'(1986), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

21. आबिद हुसैन, 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति'(1987), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

22. निर्मल वर्मा, 'भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र'(1991), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

23. विनय गुप्त, 'राम-कथा परंपरा और भारतीय संस्कृति'(1996), श्याम पब्लिशिंग हाउस, जालंधर

24. रेखा प्रवीन उप्रेती, 'हिंदी का यात्रा साहित्य (1960-1990), (2000), हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली

25. पृथ्वीकुमार अग्रवाल, 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा'(2000), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

26. शिवकुमार मिश्र, 'दर्शन, साहित्य और समाज'(2000), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

27. बाबूराम, 'हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन'(2002), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

28. माधव गोविन्द वैद्य, 'अपनी संस्कृति'(2002), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

29. मुरारीलाल शर्मा, 'हिंदी यात्रा साहित्य स्वरूप और विकास'(2003), क्लासिकल पब्लिकेशन, नई दिल्ली

30. प्रतापपाल शर्मा, 'हिंदी का आधुनिक यात्रा साहित्य'(2003), अमर प्रकाशन, सदर बाजार, मथुरा

31. नासिरा शर्मा, 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं'(2003), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

32. डॉ. बापूराव देसाई, 'यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास'(2005), विकास प्रकाशन, कानपुर

33. मृदुला गर्ग, 'कुछ अटके कुछ भटके'(2006), पेंगुइन बुक्स, इंडिया
34. डॉ. मुकेश अग्रवाल, 'भाषा, साहित्य और संस्कृति'(2006), के. एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद
35. विश्वमोहन तिवारी, 'हिंदी का यात्रा साहित्य एक विहंगम दृष्टि'(2008), आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली
36. डॉ. एम. एम. लवानिया, शशि के जैन, 'सैद्धान्तिक समाजशास्त्र'(2008), राजपाल एंड संज, दिल्ली
37. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति भाषा और राष्ट्र'(2008), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
38. डॉ. बी.आर धापसे, 'हिंदी यात्रा साहित्य और स्त्री यात्रा साहित्यकार'(2009), कीर्ति प्रकाशन, औरंगाबाद
39. डॉ. जगदीशचंद्र मिश्रा, 'भारतीय दर्शन'(2009), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
40. सच्चिदानंद चतुर्वेदी, 'अज्ञेय के निबंध'(2009), मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद
41. डॉ. हरि सिमरन कौर भुल्लर, 'समकालीन यात्रा-वृत्तों में सांस्कृतिक संदर्भ'(2009), के.के. पब्लिकेशन, दिल्ली
42. डॉ. दिनेश मांडोत 'भारत की सांस्कृतिक विरासत'(2010), अंकित पब्लिकेशन, जयपुर
43. सुरेश पंडित, 'भूमंडलीकरण के दौर में समाज और संस्कृति'(2010), शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली
44. निरंजन कुमार, 'मनुष्यता के आईने में दलित समाज का समाजशास्त्र'(2002), अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली
45. डी.डी शर्मा, 'उत्तराखंड का लोकजीवन और लोक संस्कृति'(2012), अंकित प्रकाशन, चन्द्रावती कालोनी, हल्द्वानी

46. रामचन्द्र तिवारी, 'हिन्दी का गद्य साहित्य'(2014), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

47. डॉ. सुमित्रा शर्मा, 'संस्कृति प्रवाह-दर-प्रवाह'(2014), समीक्षा पब्लिकेशन, दिल्ली

48. रामजी उपाध्याय, 'भारतीय धर्म और संस्कृति'(2014), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

49. गोविन्द पांडेय, सरस्वती पांडेय, 'हिंदी भाषा का वस्तुनिष्ठ इतिहास', अभिव्यक्ति प्रकाशन(2014), इलाहाबाद

50. सच्चिदानंद सिन्हा, 'संस्कृति विमर्श'(2014), वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर

51. डॉ.उदयपाल सिंह, 'भारतीय संस्कृति'(2015), विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

52. डॉ. सन्ध्या शर्मा, 'हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि'(2015), बुक पब्लिकेशन, लखनऊ

53. अनिल कुमार, 'स्वातंत्र्योत्तर यात्रा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन'(2015), हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली

54. विष्णु प्रभाकर, 'संस्कृति क्या है ?(2015)', सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

55. डॉ. चंद्रमोहन अग्रवाल, 'भारतीय संस्कृति की अस्मिता'(2015), राहुल पब्लिशिंग हाउस, उत्तरप्रदेश

56. विजय देवेश, 'सांस्कृतिक इतिहास एक तुलनात्मक सर्वेक्षण'(2015), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

57. श्यामाचरण दुबे, 'समय और संस्कृति'(2016), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

58. डॉ. संगीता पी., 'संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी यात्रावृत्त'(2016), अमन प्रकाशन, कानपुर

59. गरिमा श्रीवास्तव, 'देह ही देश'(2017), राजपाल एंड संज, दिल्ली

60. रामधारी सिंह दिनकर, 'भारतीय संस्कृति के चार अध्याय'(2017), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

61. सं. षीना ईप्पन, मिनी वरुगीस, 'यात्रा, यात्री, संस्कार'(2018), अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली

62. गजानन माधव मुक्तिबोध, 'भारत इतिहास और संस्कृति'(2009), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

पत्र-पत्रिकाएँ :-

1. डॉ. कमल किशोर गोयनका, 'मॉरीशस के भोजपुरी लोक-गीतों में संस्कृति', संस्कृति पत्रिका, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, संपादक, मोहिनी हिंगोरानी, मार्च 2005 संयुक्तांक- 89
2. श्यामसिंह शशि, 'यायावर साहित्यशास्त्र', भाषा द्वैमासिक पत्रिका, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, मई-जून 2006
3. डॉ. जे आत्माराम, 'अज्ञेय की सांस्कृतिक दृष्टि और 'अरे यायावर रहेगा याद', अपनी माटी पत्रिका, संपादक – जितेंद्र यादव, वर्ष - 2, अंक- 22, संयुक्तांक, अगस्त 2016
4. जितेंद्र श्रीवास्तव, 'यात्रा-वृत्तांतों में भारतीय संस्कृति', बनासजन पत्रिका, संपादक – पल्लव, अंक-6, वर्ष- 2, जनवरी-फरवरी 2013
5. डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा, 'अवाक्, कैलाश मानसरोवर एक अंतर्यात्रा', प्रेरणा पत्रिका, संयुक्तांक-2, जुलाई-दिसंबर(2010)
6. प्रेमपाल शर्मा, 'उत्तर-पूर्व : विचित्र देश की सचित्र यात्रा या पूर्वोत्तर का पक्ष', नवंबर-दिसंबर, (2012)
7. अरुणेंद्र नाथ वर्मा, 'यात्रा-वृत्त : संकट एवं चुनौतियाँ', समकालीन भारतीय साहित्य, अंक-192, संपादक- ब्रजेन्द्र त्रिपाठी, जुलाई-अगस्त 2017
8. प्रभाकर क्षोत्रिय, 'कालिदास में भारतीय संस्कृति', समकालीन भारतीय साहित्य, संपादक-ब्रजेन्द्र त्रिपाठी, वर्ष – 30, अंक – 148, मार्च-अप्रैल 2010
9. मैनेजर पांडेय, 'रेमंड विलियम्स : अनुभूति की संरचनाएं', पल-प्रतिपल पत्रिका, संपादक – देश निर्मोही, वर्ष – 30, अंक – 80, जुलाई-दिसंबर 2016

10. कृष्ण कुमार यादव, ‘भारतीय संस्कृति की विरासत’, वैचारिकी पत्रिका, मई-जून 2014, वर्ष- 30, अंक- 30

11. अनिता भंडारी, ‘जैन धर्म का भारतीय संस्कृति को योगदान’, जिनवाणी पत्रिका, वर्ष-41, अंक - 1

कोश :-

1. डॉ. अमरनाथ, ‘हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली’(2002), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

2. संपादक धर्मेन्द्र गुप्त एवं बन्धु, ‘विपिनचंद्र, ‘पद्मचन्द्र कोश शब्द यात्रा(1982)’, लक्ष्मण दास पब्लिकेशन, नई दिल्ली

3. संपादक नगेन्द्रनाथ वसु, ‘हिन्दी विश्वकोश’, भाग-18, बी. आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली

4. वामन शिवराम आप्टे, ‘संस्कृत-हिन्दी कोश’(1966), मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली

5. सं. धीरेन्द्र वर्मा, ‘हिन्दी साहित्य कोश’(2011), भाग-2, पारिभाषिक शब्दावली, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी

5. वेब -

1. मुक्त ज्ञानकोश (विकिपीडिया)

- समूह
- सदस्यता
- परिचय
- नियमावली
- पुराने अंक
- ताजा अंक
- मीडिया विशेषांक
- रेणु विशेषांक
- प्रतिबंधित साहित्य
- आमंत्रण
- स्वीकृत रचनाएँ

अपनी माटी

UGC CARE Listed & PEER Reviewed/Refereed Journal

अपनी माटी

(साहित्य और समाज का दस्तावेज़ीकरण)

- परिचय
  - सम्पादक मंडल
  - सदस्यता
  - शोध नियमावली
  - स्वीकृत रचनाएँ
  - सम्पर्क
- सम्पादकीय
  - धरोहर
  - बतकही
  - हूल-जोहार
  - संघर्ष के दस्तावेज
  - नाटक अभी जारी है
  - लोक का आलोक
  - हिंदी की बिंदी
  - पत्रकारिता के पहाड़े
  - नीति -अनीति
  - बींद-खोतली
  - देशांतर
  - अनकहे-किस्से

आलेख : हिन्दी विदेशी-यात्रा साहित्य में महिलाओं का योगदान / स्वाति चौधरी

सम्पादक, अपनी माटी बुधवार, अक्तूबर 28, 2020 1

आलेख : हिन्दी विदेशी-यात्रा साहित्य में महिलाओं का योगदान / स्वाति चौधरी

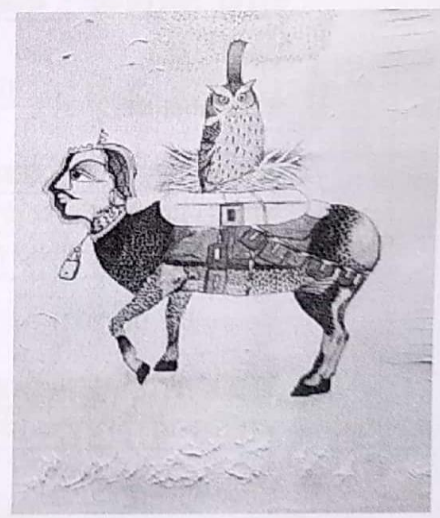

देखा जाए तो मनुष्य आदिकाल से ही यायावरी प्रवृत्ति का रहा है। साधारणतया या विभिन्न उद्देश्यों को लेकर की जाने वाली घुमक्कड़ी के कारण उसकी यह यायावरी प्रवृत्ति आज तक बनी हुई है। वैसे देश-दुनिया की सैर की इच्छा मनुष्य-मात्र के मन में होती है, पर यात्राओं के सम्पूर्ण इतिहास पर नजर डाली जाए तो यह तथ्य सामने आता है कि प्राचीन काल से ही यात्राओं को साहसिक कार्यों की श्रेणी में शामिल करके उसे केवल पुरुषों के अधिकार क्षेत्र में रखा गया, स्त्रियों को हमेशा इसमें सिर्फ सहयात्री के रूप में ही देखा गया है। यह एक तथ्य है कि पुरुष वर्चस्ववादी समाज में स्त्रियों को घर की चारदीवारी के भीतर बंद रखने की कोशिश की जाती रही है, उसे पुरुष की तुलना में कमतर पेश करने का लगातार प्रयास किया जाता रहा है, पर यह भी सत्य है कि जब-तब स्त्रियों ने भी पुरुषों के बरअक्स अपनी क्षमताओं और प्रतिभाओं को दुनिया के सामने साबित किया है। यद्यपि पहले उसे अपनी प्रतिभाओं को साबित करने का मौक़ा बहुत कम मिलता था पर आज स्त्री किसी भी मायने में पुरुष से कम नहीं है। वह लगातार पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। अब वह घर की चारदीवारी को लांघकर लगभग हर क्षेत्र में अपने कीर्तिमान स्थापित कर रही है, साहित्य के क्षेत्र में भी। और यात्रा-साहित्य के मामले में तो उसका कीर्तिमान दोहरा हो जाता है। कहाँ घर से निकलने पर पाबंदी और कहाँ देश-विदेश की यात्राएँ! और फिर उन यात्राओं के अनुभवों के सहारे साहित्य-सर्जन!

'यात्रा' एक स्त्रीलिंग शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत की 'या' धातु के साथ 'ष्ट्रन' प्रत्यय के योग से हुई है। (या+ ष्ट्रन) जिसका अर्थ है जाना। यात्रा को अरबी भाषा में 'सफ़र' कहा जाता है

और इसे विभिन्न उद्देश्यों, स्वरूप, कार्य व्यापार आदि के आधार पर भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। भ्रमण, घुमक्कड़ी, यायावरी, चलवासी, खानाबदोशी, आना-जाना, घूमना, भटकना, आवारागर्दी करना, तीर्थाटन, मेला, फेरी आदि विभिन्न शब्दों का प्रयोग इसके लिए किया जाता है। गमन, प्रस्थान आदि अर्थों में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार देखा जाए तो सामान्यतः 'यात्रा' शब्द का अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना।

इसी तरह यात्रा-साहित्य को अगर देखा जाए तो कहा जा सकता है कि यात्रा के दौरान जो भी बाह्य और आंतरिक विचार मन में आते हैं वे मानस-पटल पर अंकित हो जाते हैं और इन्हीं मानस-पटल के विचारों को जब लिपिबद्ध किया जाता है तो वहीं से यात्रा साहित्य का जन्म होता है। कोई भी व्यक्ति अपनी यात्रानुभूतियों को जब कलात्मक रूप देकर संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है तो उसे यात्रा-साहित्य कहा जाता है। यात्रा-वृतांत केवल देखे गए स्थानों का विवरण मात्र नहीं है अपितु इसमें यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों, स्थलों, भवनों, भोगी हुई घटनाओं एवं उससे सम्बन्धित अनुभूतियों को कल्पना एवं भाव-प्रवणता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

हिन्दी यात्रा-साहित्य के विकासात्मक अध्ययन के क्रम में यह तथ्य सामने आता है कि यात्रा-साहित्य लेखन में पुरुषों का वर्चस्व होने के बावजूद इसके शुरुआती दौर में महिला साहित्यकारों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यात्रा-साहित्य की प्रथम प्रकाशित पुस्तक ही एक महिला साहित्यकार की है। हरदेवी की 'लंदन यात्रा' को इस क्षेत्र की प्रथम पुस्तकाकार रचना माना जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास को अगर देखा जाए तो आदिकाल में यात्रा साहित्य नहीं देखने को मिलता है लेकिन मध्यकाल में साहित्य मुद्रित की अपेक्षा मौखिक विधा के रूप में अधिक प्रचलित था। कुछ साधन सम्पन्न लोग ही अपनी शौर्य गाथाएं लिखवाते थे। कुछ साधु-संत भी अपने भक्तिमय उद्‌गार कागज पर उतारते और कुछ अपने शिष्यों से लिखवाते थे। अतः इस दौर में यात्रा साहित्य हस्तलिखित रूप में बहुत कम मात्रा में उपलब्ध होता है। फिर भी, इस युग के हिन्दी यात्रा ग्रंथों में काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्राप्त दो हस्तलिखित यात्रा ग्रंथों को देखा जा सकता है, जिसमें पहला गुसाई विट्ठल जी की हस्तलिपि में 'वनयात्रा' तो दूसरा जीवन जी की माँ का 'वनयात्रा' उपलब्ध होता है। सुरेन्द्र माथुर लिखते हैं कि "दूसरा हस्तलिखित ग्रंथ 'वनयात्रा' नामक है। इसका रचनाकाल संवत १६०९ हैं। इसका रचनाकाल का वाक्य इस प्रकार दिया हुआ है : 'संवत सोलै सै ना साल रे। भादरवों वदि द्‌वादशी सार रे।। इसकी लेखिका श्रीमती जीमनजी की माँ (वल्लभी सम्प्रदायी) हैं।"[1] इस युग में जीमनजी की माँ के 'वनयात्रा' (1609 वि.) के अतिरिक्त अयोध्या नरेश बख्तावर सिंह की पत्नी का 'बदरी यात्रा कथा' (1888 वि.) ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि प्रारम्भिक समय से ही पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी यात्रा साहित्य में अपना योगदान दे रही थीं।

उपर्युक्त छुटपुट लेखन के अलावा अन्य गद्‌य विधाओं की तरह यात्रा-साहित्य की परंपरा भी मुख्यतः भारतेन्दु युग से आरम्भ होती है। इस काल में रेलमार्गों के विकास, मुद्रण व खड़ी बोली के प्रसार के कारण हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में अनेक यात्रा लेख प्रकाशित हुए। ऐसे कुछ लेख इस प्रकार हैं- गृहलक्ष्मी पत्रिका में प्रकाशित 'युद्ध की सैर' जिसमें युद्ध की समाप्ति पर युद्ध क्षेत्र की विनाशात्मक स्थिति का चित्रण किया गया है, श्रीमती सत्यवती मलिक की 'कश्मीर की सैर' और 'अमरनाथ यात्रा' आदि। पुस्तक रूप में प्रकाशित प्रथम यात्रा ग्रंथ हरदेवी की 'लंदन यात्रा' है, यह बताया जा चुका है। "**मुद्रण-कला विकास पर हो ही रही थी,** पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने के अतिरिक्त धीरे-धीरे यात्रा-साहित्य के ग्रंथों का मुद्रण भी प्रारंभ हुआ। इस मुद्रित रूप में यात्रा-साहित्य का सर्वप्रथम ग्रंथ जो देखने को मिल सका है वह 'लंदन-यात्रा' नाम से है। इसकी लेखिका हरदेवीजी हैं। इनकी यह पुस्तक ओरियंटल प्रेस, लाहौर से सन १८८३ ई। में प्रकाशित हुई थी।"[2] इसमें लाहौर से बंबई पहुँचने और फिर बंबई से लंदन तक की जहाज यात्रा के साथ-साथ लंदन में बिताये दिनों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके बाद के स्त्री यात्रा वृत्तान्तों में

पुस्तक रूप में प्रकाशित श्रीमती विमला कपूर के यात्रावृत्त 'अनजाने देशों में' में इंग्लैंड, स्विट्ज़रलैंड, इटली, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया की यात्रा का चित्रण किया गया है। लक्ष्मीबाई चूड़ावत के यात्रावृत्त 'हिन्दुकुश के पार' में अफ्रोएशियाई लेखक संघ द्वारा आयोजित सम्मेलन में भाग लेने के लिए रूस की यात्रा का चित्रण किया गया है। पद्मा सुधि के 'अलकनंदा के साथ-साथ' यात्रा-वृतांत में बदरीनाथ की यात्रा तथा अमृता प्रीतम के यात्रावृत्त 'इक्कीस पत्तियों का गुलाब' में बुल्गारिया, सोवियत रूस, युगोस्लाविया, हंगरी, रोमानिया व जर्मनी का सफरनामा है। इंदु जैन के यात्रावृत्त 'पत्तों की तरह चुप' में जापान में टोक्यो प्रवास के अनुभव के साथ-साथ हिरोशिमा और नागासाकी की यात्रा के क्रम में वहाँ के अणुबम की विभीषिका से त्रस्त स्थानों के वर्तमान स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। पद्मा सचदेव का यात्रा वृतांत 'मैं कहती हूँ ऑखिन देखी' 12 अध्यायों में विभाजित है। इसमें माता वैष्णो देवी-जम्मू से श्रीनगर, असम, गुवाहाटी, ब्रह्मपुत्र, केरल, इंग्लैंड, सोवियत यूनियन, अमरीका, हाँग-काँग, बैंकॉक, लंदन, कजाकिस्तान, तुर्किस्तान व यूरोप के विभिन्न यात्रा वर्णनों में प्रकृति के प्रति प्रेम तथा विभिन्न देशों की संस्कृति व समाज का चित्रण मिलता है। इस प्रकार देखा जाए तो स्त्री यात्रा साहित्य की एक लंबी परंपरा रही है, लेकिन इस आलेख में विदेश-यात्रा से संबंधित कुछ प्रमुख स्त्री यात्रा साहित्य पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाएगा।

आज स्त्री देश में ही नहीं विदेशों में भी स्वछंद रूप से भ्रमण कर रही है। वह अपनी यात्रा के अनुभवों को लिपिबद्ध भी कर रही है। अतः हिन्दी यात्रा साहित्य में महिलाओं की विदेश यात्रा से संबंधित अनेक यात्रा वृतांत देखने को मिल रहे हैं। इन्हीं विदेश यात्राओं को ध्यान में रखकर इस आलेख में कुछ प्रमुख यात्रा वृत्तांतों को अध्ययन का आधार बनाया जायेगा। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं – नासिर शर्मा का 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं', मृदुला गर्ग का 'कुछ अटके कुछ भटके', ऊर्मिला जैन का 'देश-देश में गाँव-गाँव में' डॉ. सुमित्रा शर्मा का 'संस्कृति प्रवाह-दर-प्रवाह' शिवानी का 'यात्रिक', रमणिका गुप्ता का 'लहरों की लय', गरिमा श्रीवास्तव का 'देह ही देश', मधु कांकरिया का 'बादलों में बारूद', अनुराधा बेनीवाल का 'आजादी मेरा ब्रांड' आदि।

नासिरा शर्मा का **'जहाँ फव्वारे लहू** रोते हैं' 2003 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित 18 खंडों में विभक्त (18 वे खंड में साक्षात्कारों का संकलन) व मुख्यतः ईरान की यात्राओं पर आधारित यात्रा वृतांत है। ईरान के अलावा भी इसमें जापान, पेरिस, लंदन, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईराक, फिलिस्तीन, कुर्दिस्तान आदि की यात्राओं के अनुभव, जहाँ सुरक्षा और शांति सपने की तरह हैं, को विस्तार से वर्णित किया गया है। वहाँ के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सभी तरह के परिवेश का बहुत ही गहराई से चित्रण इसमें किया गया है। इन यात्राओं को लिखना लेखिका के लिए अंत्यत कष्टदायक रहा है। ईरानी क्रांति के आतंक, अत्याचार व अमानवीय घटनाओं को अभिव्यक्त करना इतना आसान कार्य नहीं था, क्योंकि एक बार देखी गई भयावह घटनाओं को लिखते समय उनसे फिर से गुजरना अत्यंत कष्टदायक है। कई बार तो लेखिका लिखते समय उत्तेजना से भर उठती है। वह लिखती है कि "बदन में **गर्म खून-गर्म खून** दौड़ने लगता, आँखे तन-सी जातीं, नसें चिटखने-सी लगतीं और मैं कई-कई दिन तक मेज की तरफ जाने का हौसला नहीं बना पाती थी।"[3] इसमें कपोल कल्पना को आधार न बनाकर यथार्थ रूप में परिस्थितियों को प्रस्तुत किया गया है। लेखिका ने जिन-जिन देशों की यात्राएं की हैं वहाँ के हालातों को जनता के बीच रहकर-देखा और जाना परखा है। इस पुस्तक में उपनिवेशी ताकतों का विरोध परिलक्षित किया जा सकता है। इसमें विशेष रूप से ईरान-ईराक क्रांतियों की यथार्थ स्थिति को बहुत ही निकट से देखने का अवसर मिलता है।

ईरान व शाह व्यवस्था के विरोध में कलम उठाने के कारण लेखिका को कई तरह के विरोधों का सामना करना पड़ा। ईरान पर लिखने व इन रिपोर्ताजों के कारण ही पी-एचडी. में दाखिला नहीं हो सका और आखिरकार ईरान पर अपने इसी दृष्टिकोण के कारण 1983 ई. में जामिया मिल्लिया

से इस्तीफा देकर, अध्यापन कार्य छोड़कर कलम चलाना शुरू कर दिया क्योंकि हर जगह लड़ाई करने से कलम चलाना ही अच्छा है। कलम से भी लड़ाई लड़ी ही जा सकती है। इन देशों की ओर रुख करने व शाह व्यवस्था के विरुद्ध लिखने के बारे में लेखिका कहती है कि "अकसर मैं सोचती हूँ कि इस तरह के लेखन के चलते मैं पिछले तीस वर्ष से कितने तनाव-दबाव और व्यथा में रही हूँ मेरे लेखन ने इन देशों का रुख कैसे किया मैं नहीं जानती मगर कारण जरूर कुछ होगा शायद सिर्फ इतना सा कि मैं अपने समय के प्रति सचेत हूँ।"[4]

इस प्रकार इन यात्राओं को करना और लिखना लेखिका के लिए बहुत ही मुश्किल कार्य रहा है जिनका मुख्य उद्देश्य अपने समय के प्रति सचेत रहते हुए असुरक्षा और अशान्ति के दौर से गुजर रहे इन देशों के दु:ख-दर्द को सभी के सामने लाना है। इन देशों की 1976 से 2003 के बीच की गई यात्राओं का देखा, भोगा वृतांत इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। ईरान, पेरिस व बगदाद, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईराक, फिलिस्तीन, कुर्दिस्तान में लेखिका ने एक पत्रकार व बुद्धिजीवी वर्ग की हैसियत से जहाँ पर भी जो कुछ देखा उसी रूप में उसका चित्रण किया है। इसीलिए लेखिका इन्हें यात्रावृत्त का नाम न देकर रिपोर्ताज कहती है। इसके संबंध में रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि "कई देशों के बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों और पत्रकारों के वे निकट संपर्क में रही हैं जो कुछ उन्होंने बयान किया है वह उनका एक पत्रकार-बुद्धिजीवी की हैसियत से अनुभव किया हुआ सच है। इन बयानों को उन्होंने रिपोर्ताज कहा है। रिपोर्ताज वे ही असरदार होते हैं जिनमें आँखों देखी सच्चाई पेश की जाती है। नासिरा के इन रिपोर्ताजों में तो उनका देखा हुआ ही नहीं भुगता हुआ सच भी है। ऐसा सच भी है जिसे पढ़कर पीड़ा और क्षोभ की अनुभूति एक साथ होती है।"[5] लेखिका फासिस्ट व्यवस्था के विरुद्ध है जिसकी इस यात्रावृत्त में समय-समय पर हर तरफ से आवाज उठाई गयी है। आभ्यंतर युद्ध, आम लोगों की आवाज की लड़ाई, ईरान में खुमैनी का शासन काल, उस समय की रूढ़िवादिता, सद्दाम हुसैन का ईरान में शासन व ईराक का आधुनिकता की ओर बढ़ना जैसे सभी पक्षों का चित्रण इसमें किया गया है।

हिन्दी की सुपरिचित कथाकार **मृदुला गर्ग** का यात्रावृत्त **'कुछ अटके कुछ भटके'** 2006 में पेंगुइन प्रकाशन से प्रकाशित देश विदेश की यात्राओं का वृतांत है। इसमें मालदीव, सूरीनाम, जापान, सिक्किम, केरल, असम, तमिलनाडु व दिल्ली की यात्राओं की अभिव्यक्ति की गई है। तेरह अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक में पहले अध्याय 'भटकते गुजरा जमाना' में यात्रा के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लेखिका कहती है कि यात्राएं प्रयोजनमूलक और प्रयोजनयुक्त दो प्रकार की होती हैं। इसी तरह देशी, विदेशी और सैलानियों(देवेन्द्र सत्यार्थी, फाह्यान, ह्वेनसांग, वास्कोडिगामा) की टिप्पणियों को उठाते हुए हल्के-हल्के में कई गंभीर बातों पर चर्चा की गई है। लेखिका कहती है कि "असल चीज, सफर है, मंजिल नहीं। भटकना है, पहुँचना नहीं।"[6] इसी भटकाव की स्थितियों का चित्रण इसमें किया गया है यद्यपि सभी यात्राएँ मुख्यत: पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों के अनुसार की गई हैं जिनमें व्याख्यान और सेमिनार उनकी मंजिलें रहे हैं। दो वृत्तांत 'सपने से दीदार तक' और 'दीदार से सपने तक' में मालदीव यात्रा व 'सांप कब सोता है' में सूरीनाम की यात्रा का वर्णन किया गया है। विश्व हिन्दी सम्मेलन में शामिल होने के लिए प्रतिनिधि मण्डल के साथ सूरीनाम जाना होता है। वहाँ से लौटते वक्त एम्स्टर्डम के संग्रहालय में जाकर वहाँ वॉन के सन फ्लॉवर के चित्रों को देखना व सूरीनाम के सबाना पार्क व वहाँ के घने जंगलों की सैर रोमांच पैदा करते हैं। 'दिल से गए दिल्ली', 'घर बैठे सैर', 'तिलस्मी बुनराकु' लेखों में ललित निबंधात्मक शैली में दिवास्वप्नी यात्रा-कथा को प्रस्तुत किया गया है। 'हिरोशिमा में क्रौंच और कनेर' लेख में जापान की यात्रा व वहाँ की अणुबम विभीषिका को प्रस्तुत किया गय। है।

इस प्रकार यह यात्रा वृतांत भाव, विचार, अभिव्यक्ति-शैली आदि सभी स्तरों पर अपने भिन्न स्वरूप के कारण विशिष्ट महत्त्व रखता है। इसमें लेखिका कथाकार, टिप्पणीकार, व्यंग्यकार सभी रूपों में

दिखाई देती है। कलात्मकता, प्रकृति प्रेम, साहित्यात्मकता के साथ-साथ गंभीरता से उठाए गए कुछ सवाल भी इसमें प्रस्तुत होते हैं।

रमणिका गुप्ता का यात्रा वृतांत **'लहरों की लय'** 2007 में प्रकाशित विदेश यात्रा से संबंधित वृतांत है जिसमें 1975 से 1994 तक के 30 वर्षों के दौरान किए गए यात्रानुभवों को अभिव्यक्त किया गया है। इसमेंमैक्सिको, अमेरिका, कनाडा, बर्लिन, बेल्जियम, फ्रांस, स्विट्जरलैंड, इटली, युगोस्लाविया, जर्मनी, ब्रिटेन -कांग, फिलीपींस, क्यूबा व रूस की यात्राओं को अभिव्यक्त किया है। इसमें उन्होंने मुख्य रूप से मजदूर जीवन की विपन्नताओं, आदिवासी जीवन व स्त्रियों के जीवन को बहुत निकटता से देखा है। इनकी यात्राएं बाहर के साथ-साथ अंदरूनी भी हैं। इसमें लेखिका की दोहरी भूमिका दिखाई देती है। एक तरफ एक सौन्दर्यप्रेमी की तरह उसकी दृष्टि को एल्पस पर्वत का अद्भुत सौन्दर्य, नियाग्रा जल प्रपात, नार्वे के नाविकों के डोंगियों में जोखिम भरी समुद्री यात्राएं, उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों की साहसिक यात्राएं अभिभूत करती हैं तो दूसरी तरफ एक सामाजिक-राजनैतिक कार्यकर्ता के रूप में उसे खदानों में काम करते व छोटे-छोटे घरों में ठूँस-ठूँस कर भरे मजदूरों की दुर्दशा को देखकर दुख होता है। लेखिका जहाँ-जहाँ जाती है वहाँ के संगीत, नृत्य, इतिहास, साहित्य, कला, जीवन आदि का पता लगाने की कोशिश के साथ-साथ मैक्सिको, नार्वे-स्वीडन के आदिवासियों की जीवनशैलियों में भारत की सभ्यता के भी दर्शन करती रहती है।

उर्मिला जैन का **'देश-देश, गाँव-गाँव'** 2007 में दिल्ली से प्रकाशित पश्चिमी व अफ्रीकी देशों की यात्रा का वृतांत है जिसमें 32 यात्रा लेखों में ब्रिटेन, फ्रांस, लैटिन अमेरिका व विश्व के अन्य देशों के भूगोल, इतिहास, समाज व संस्कृति को प्रस्तुत किया गया है। इंग्लैंड के यात्रा लेखों से शुरु हुई इस पुस्तक में पश्चिमी देशों की स्त्रियों की दशा पर भी विचार किया गया है। इंग्लैंड आदि पश्चिमी देशों में पहले से ही स्वच्छंदता, वैवाहिक जीवन में तलाक, पुनर्विवाह, समान-वेतन आदि जैसे अनेक अधिकारों के बावजूद स्त्रियों को जिस घुटन का एहसास होता है उसे इसमें अभिव्यक्त किया है। इसमें आयरलैंड, नोबेल पुरस्कारों का शहर स्टॉकहोम, सांता क्लॉस का गाँव, रियोडिजेनेरो, पैंटानोल में ओम आदि स्थानों के यात्रावृत्त काफी रोचक हैं। इस पुस्तक में लेखिका विश्व के विभिन्न देशों की संस्कृतियों को अभिव्यक्त करने में सफल हुई है।

कहानीकार व उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त **शिवानी** का **'यात्रिक'** 2007 में प्रकाशित एक महत्त्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है। जिसमें 'चरैवेती' और 'यात्रिक' शीर्षक रचनाओं में क्रमश: मार्क्सवादी रूस व पश्चिमी विचारधारा के केंद्र इंग्लैंड को पार्श्वभूमि में रखा गया है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित रूस की यात्रा लेखन में रूस के संग्राहालय, लेनिन, चेखव म्यूजियम, गोर्की की कलम, पांडुलिपि आदि सभी का चित्रण किया गया है।

सुमित्रा शर्मा के **'संस्कृति प्रवाह-दर-प्रवाह'** 2014 में समीक्षा प्रकाशन से प्रकाशित हुई जिसमें मोरिशस, अमरनाथ, नेपाल, बाली, जकार्ता, सिंगापुर, हरिद्वार, ऋषिकेश व बैंकॉक में की गयी देश-विदेश की यात्राओं का चित्रण किया गया है। इन यात्राओं में सूक्ष्म अनुभवों ने शब्दों के माध्यम से मनोरम आकार पाया है। इनकी यात्राओं के संबंध में नर्मदाप्रसाद उपाध्याय लिखते हैं कि "सुमित्राजी के शब्द सिर्फ बयान नहीं है वे रागात्मक अनुभूतियों और तलस्पर्शी साक्षात से भरपूर हैं इसीलिए उनमें ऐसी व्यंजना समाई है जो मन को दूर तक विचरण करा लाती हैं। ये यात्रा संस्मरण ऐसे मृगछौनों की तरह हैं जो स्वच्छंद रूप से पूरे प्रांतर में आकुल भाव और जिज्ञासा भरी आँखों से कुचालें भरते हैं और फिर उन्हीं पथों से नहीं लौटते जिस पथ से उन्होंने यात्रा की शुरुआत की थी।"[7]

mhtml:file://C:\Users\SMART\AppData\Local\Temp\WPDNSE\{0C84DAFE-0000-000...

अनुराधा बेनीवाल की यूरोप घुमक्कड़ी के संस्मरणों के आख्यान 'यायावरी आवारगी' की पुस्तक श्रृंखला में **'आजादी मेरा ब्रांड'** पहली किताब है, जिसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से जनवरी 2016 में हुआ। यह पुस्तक स्त्री की स्वतंत्रता की आवाज को बुलंद करती है। मुख्यतः इस कृति का वास्तविक ब्रांड आजादी ही है। इसी आजादी की तलाश में यूरोप के 13 देशों में एक लड़की के द्वारा की गयी घुमक्कड़ी की कहानी इसमें है। इसमें अकेले, बिना किसी मकसद के, बेपरवाह, बेफिक्र होकर की गई यात्राओं का वृत्तान्त है। एक अकेली बेकाम, बेफिक्र, बे टेम घूमती-फिरती लड़की में अलग ही ताकत होती है, साहस होता है। ऐसा साहस जिसे बाहर निकलने का मौका ही नहीं दिया गया होता। इसी साहस के दम पर की गई बेमकसद यात्राओं की अनूठी दास्तान है 'आजादी मेरा ब्रांड'। इसमें यूरोप के तेरह शहर लन्दन, पेरिस, लील, ब्रसल्स, कॉकसाईड, एम्स्टर्डम, बर्लिन, प्राग, ब्रातिस्लावा, बुडापेस्ट, म्युनिक, इंस्ब्रु की एकाकी यात्राओं के वृत्तांत है। इन एकाकी यात्राओं में कहीं पर भी ऊब महसूस नहीं होती है। ज्ञान के बोझ से कहीं पर भी भारीपन नहीं लगता है। बल्कि इसमें तो पाठक भी साथ-साथ यात्रा करने लगता है। इस यात्रा में यह अजनबी, आवारा लड़की कब आपकी दोस्त बन जाती है पता ही नहीं चलता। वह आपको अन्दर और बाहर दोनों ही तरह की यात्राओं से रूबरू कराती चलती है। इसमें जितनी यात्राएँ बाहर की दुनिया की हैं, उतनी ही अन्दर की दुनिया की भी हैं, और वह इन्हीं दोनों दुनियाओं को जोड़ती हुई चलती है।

यह पुस्तक भारत की स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता का एक घोषणा पत्र है जिसमें वह लड़कियों से धर्म, संस्कार, मर्यादा की बेड़ियों को तोड़कर, सबकुछ भूलकर घूमने की हिमायत करती है। इसमें लेखिका का व्यक्तित्व खुलकर प्रस्तुत हुआ है। वह देह की मुक्ति से लेकर हर तरह के सामाजिक बन्धनों को तोड़ती हुई अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, विचारों सबकुछ को उघाड़कर प्रस्तुत कर देती है, कहीं भी लज्जा व शर्म के मारे कुछ भी छुपाती नहीं। वह अपनी कमजोरियों और ताकत को साहस और आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत करती है, अतः उसकी ईमानदारी पाठक को हर जगह प्रभावित करती है। लेखिका कहती है मुझे चल सकने की आजादी चाहिए - टेम-बेटेम, बिंदास, बेफिक्र होकर, हँसते-रोते, सिर उठाकर सड़क पर निकल पड़ने की आजादी। कुछ अच्छे -बुरे, अनहोनी की चिंता किए बगैर अकेले ही चल पड़ने की आजादी की तलाश में अनजाने शहरों की भूल-भूलैय्या में बेवजह, बेफिक्र, अनजान, अकेले-फिरते अपरिचितों से रास्ता पूछते, अजनबी लोगों के घरों में ठिकाना बनाते हुए एक महीने में की गई यह यात्रा देशकाल के कई नवीन आयामों को प्रस्तुत करती हुई चलती है।

'देह ही देश' गरिमा श्रीवास्तव 'देह ही देश' 2017 में राजपाल एंड संज से प्रकाशित गरिमा श्रीवास्तव की क्रोएशिया प्रवास के दौरान लिखी गई यात्रा डायरी है। यह यात्रा और डायरी दोनों का सम्मिलित रूप है जो 2009-2010 के दो अकादमिक सत्रों में भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद की ओर से जाग्रेब विश्वविद्यालय के सुदूर पूर्वी अध्ययन विभाग में प्रतिनियुक्ति के दौरान लिखी गई थी। यह किताब सर्ब-क्रोआती बोस्नियाई संघर्ष के दौरान स्त्रियों द्वारा भोगे गए यथार्थ का दस्तावेज है जिसमें 90 के दशक में पूर्वी यूरोप के सयुंक्त युगोस्लाविया में हुए युद्ध और विखंडन से विस्थापित हुए लोगों को खासकर स्त्री की शारीरिक एवं मानसिक शोषण की स्थितियों का चित्रण किया गया है। इसमें सामूहिक बलात्कार की शिकार बनकर मानसिक संतुलन खो बैठी स्त्रियों की सच्चाई, अपने नवजात की जान बचाने के लिए निर्वसन होने वाली स्त्री की सच्चाई या एरिजोना मार्केट में देह-व्यापार में डूबती उतरती स्त्रियों के सच या उनके अनकहे आख्यानों को सुनाने की कोशिश की गई है। इस यात्रा डायरी में बड़ी ही सूक्ष्मता और व्यापकता के साथ युद्ध, विस्थापन, पुनर्वास व सेक्स जैसे हर तरह के परिदृश्यों को परत-दर-परत उजागर किया गया है। जब-जब इस डायरी को पढ़ने की कोशिश करते हैं मस्तिष्क संवेदना शून्य हो जाता है। ये अन्दर से बाहर और देह से देश तक की ऐसी यात्राएँ है, जहाँ हत्या है, क्रूरता है, बलात्कार से पीड़ित स्त्रियाँ है, सिहरन है, चीखते-चिल्लाते बच्चे हैं। यह रक्तरंजित युद्ध के इतिहास का सच्चा

बयान है। इस इतिहास को देखने पर पता चलता है कि इस सर्ब **क्रोआती बोस्नियाई** संघर्ष की भूमिका 1939-1945 के बीच द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ही रच दी गई थी। जब संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के बीच शीतयुद्ध चल रहा था और ये क्रमशः पूँजीवादी और साम्यवादी देश के दो खेमों में बंट गये थे। ऐसे में दोनों में आपसी टकराव का खतरा हमेशा बना रहा। बर्लिन संकट, कोरिया युद्ध और सोवियत रूस द्वारा आण्विक परिक्षण, हिन्द-चीन संकट, क्यूबा मिसाईल संकट ये सब इसी शीतयुद्ध के परिणाम थे और इसी का परिणाम था सर्बियाई-क्रोएशियाई युद्ध जिसके परिणामों का चित्रण इस पुस्तक में किया गया है।

जाग्रेब और क्रोएशिया का इतिहास, युद्ध का इतिहास। जिसमें है खून से सनी औरतें और बच्चे, क्षत -विक्षत जिस्म, गर्भवती होती स्त्रियाँ, जानवरों की तरह खरीदी और बेची जा रही औरतें, जंगलों की तरफ भागते पुरुष व भेड़ियों की तरह लपकते सर्बियाई सैनिक। ऐसे-ऐसे चित्रण जिनको पढ़कर मस्तिष्क सुन्न हो जाता है। लगता है जैसे सब कुछ अपनी ही आँखों के आगे घट रहा है और हम प्रत्यक्षदर्शी होकर मात्र देख रहे हैं। लगता है बस अब और नहीं। बहुत हो गया। इससे ज्यादा नहीं देखा सुना जा सकता लेकिन ये सोचने मात्र से यह क्रम रूकता थोड़ी ना है। सेर्गेई, याद्राका, एडिना, स्त्रोकोविच, फिक्रेत, बोल्कोवेच, दुष्का, नीसा, अजर ब्लाजेविक, हसीबा, मेलिसा जैसी तमाम औरतें...जो पात्र अलग-अलग है लेकिन दुःख, दर्द व पीड़ाएँ सभी की एक है। जो एक-एक करके अपनी कहानियाँ सुनाती जाती है, हर औरत के साथ रूह कंपा देने वाली कहानियाँ जुड़ी हुई है। जिसमें पाठक की अनुपस्थिति होकर भी हर जगह उपस्थिति लगती है। सर्बिया ने युद्ध में बौस्निया, हर्जेगोविना, क्रोएशिया के खिलाफ नागरिक और सैन्य कैदियों के 480 कैम्प बनाए थे। इन्हीं कैम्पों में स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये थे। ये सभी सर्बियाई कैम्प रैप शिविरों में बदल गये थे। इनमें स्त्रियों को शारीरिक और मानसिक यातनाएँ देकर, बलात्कार करके योनियों तक सीमित करके रख दिया गया था। इतिहास के उन विद्रूप पन्नों को एक-एक करके इस किताब में खोलकर रखा गया है।

युद्ध के दौरान सैनिकों का जितना क्रूरतम और वीभत्स चेहरा हो सकता है, उसे 'देह ही देश' में देखा जा सकता है। तरसेम गुजराल इस यात्रा डायरी के सम्बन्ध में लिखती हैं कि "रक्तरंजित इस डायरी में जख्मी चिड़ियों के टूटे पंख हैं, तपती रेत पर तड़पती सुनहरी जिल्द वाली मछलियाँ हैं, कांच के मर्तबान में कैद तितलियाँ हैं। युगास्लाविया के विखंडन का इतना सच्चा बयान हिंदी में यह पहला है।"[8]

उपर्युक्त यात्रा वृतांतों में देखा जा सकता है कि आज स्त्रियाँ घर व देश की सीमाओं को लांघकर स्वतंत्र रूप से यात्राएं करने लगी है। इन्हीं यात्राओं में वे अपनी व्यापक दृष्टि को कभी दार्शनिक रूप में प्रस्तुत करती हैं तो कभी संवेदनात्मक पहलुओं को सामने लाकर मानवता की सच्ची तस्वीर दिखाती हैं। इस प्रकार आज का स्त्री यात्रा साहित्य अपनी रसमयता, पैनी दृष्टि और प्रांजलता के लिए प्रत्येक सहृदय द्वारा पठनीय, माननीय, सरस, सम्मोहक, सुखद और सर्वथा सराहनीय है।

संदर्भ

1. सुरेन्द्र माथुर, 'हिन्दी यात्रा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन'(1962), साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 86
2. सुरेन्द्र माथुर, 'हिन्दी यात्रा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन'(1962), साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 92
3. नासिरा शर्मा, 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं'(2003), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. भूमिका

4. नासिरा शर्मा, 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं'(2003), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. भूमिका

5. रामचन्द्र तिवारी,' हिन्दी का गद्य साहित्य'(2014), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 414

6. मृदुला गर्ग, 'कुछ अटके कुछ भटके'(2006), पेंगुइन बुक्स, इंडिया, पृ. 13

7. डॉ. सुमित्रा शर्मा 'संस्कृति प्रवाह-दर-प्रवाह'(2014), समीक्षा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 11

8. गरिमा श्रीवास्तव, 'देह ही देश'(2017), राजपाल एंड संज, दिल्ली, फ्लैप पेज

स्वाति चौधरी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

सम्पर्क : Swatichoudhary212@gmail.com, 9461492924

अपनी माटी (ISSN 2322-0724 Apni Maati) अंक-33, सितम्बर-2020, चित्रांकन : अमित सोलंकी

'समकक्ष व्यक्ति समीक्षित जर्नल' (PEER REVIEWED/REFEREED JOURNAL)

Tags 33 आलेख स्त्री विमर्श स्वाति चौधरी Dr. Manik

- शेयर करें

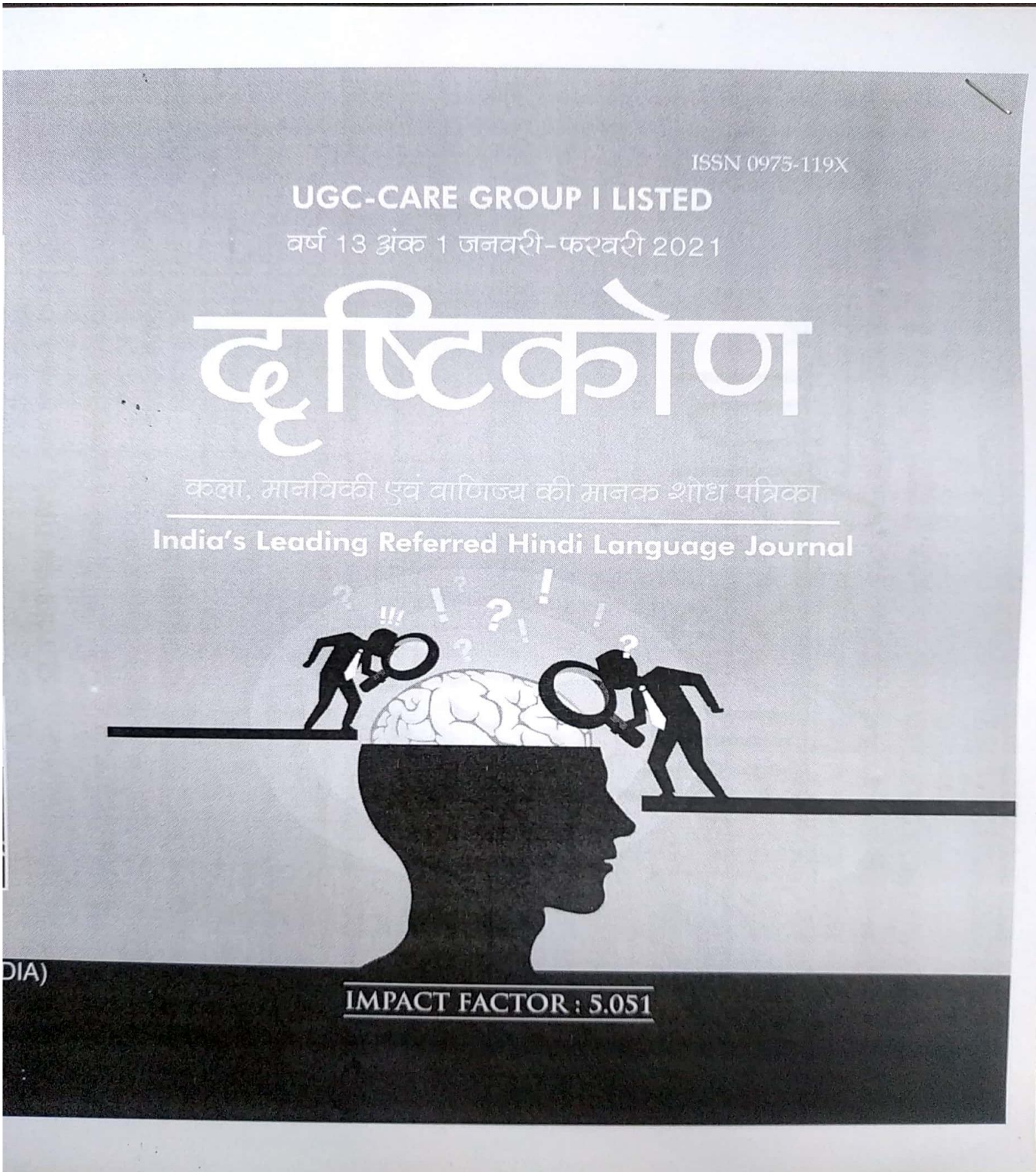
ISSN 0975-119X
UGC-CARE GROUP I LISTED
वर्ष 13 अंक 1 जनवरी-फरवरी 2021
दृष्टिकोण
कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका
India's Leading Referred Hindi Language Journal
DIA)
IMPACT FACTOR : 5.051

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

डॉ. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 13 अंक : 1 ❑ जनवरी-फरवरी, 2021

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ऑंटारियो
डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची
डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका
डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना
डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा
डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:
448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com
©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

21वीं शताब्दी भारतीय परिपेक्ष्य में आत्मनिर्भरता अभियान–डॉ. गरिमा सक्सेना 154
बस्तर संभाग में विद्युत उत्पादन के पारंपरिक श्रोतों की संभावना–जितेन्द्र कुमार बेदी; डॉ. काजल मोईत्रा 15
भारत में विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति, संरचना एवं दिशा का अध्ययन–डॉ. मनोज कुमार अग्रवाल 15
प्राचीन भारतीय वेशभूषा (प्रारम्भ से गुप्तकाल तक)–पीयूष पाण्डेय 15
विचित्र नाटक में छंद योजना–मनिंदर जीत कौर 15
समकालीन भारतीय समाज में वृद्धों की स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ. हेमलता बोरकर वासनिक 15
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की नारी पात्रों में निहित लोककल्याण की भावना–प्रतिभा झा 1
हरियाणा की चुनावी राजनीति में मतदान व्यवहार का निर्धारण–राजीव वर्मा 1
कबीर की विचारधारा और उनकी जन-पक्षधरता–डॉ० धनंजय कुमार दुबे 1
श्रीमद्भगवद्गीता तथा मनुस्मृति में सदाचार अनुशीलन–प्रवीण कुमार 1
सगुण कवि तुलसीदास के काव्य – सिद्धान्त–मधु अरोड़ा; अर्चना कुमारी 1
महावीरचरिते तात्कालिक – समाजसंस्कृती–अनिता कौशिकः 1
गरुड पुराणे कुष्ठ रोगः एकं विवेचनम्–संजयः कुमारः 1
सिक्कों की उत्पत्ति, विकास एवं उनका महत्त्व–अंजू मलिक
शक्तिपात विद्या की दार्शनिक रूपरेखा–मनीष कुमार; डॉ. बिमान पॉल
स्मृति विकास में योग दर्शन की भूमिका–प्रमोद कुमार; डॉ. पारन गौड़ा
पं. बस्तीराम के काव्य में मानवतावाद–पूनम
हरियाणवी लोकगीतों में यथार्थ-चित्रण–सुमन
प्रवासी महाकवि हरिशंकर 'आदेश' के महाकाव्यों में सौंदर्य-चित्रण–डॉ. मनोज कुमार; डॉ. विकास कुमार
प्राचीन भारत में 'युद्ध एवम् शांति' नैतिकता या अनैतिकता के संदर्भ में–डॉ. आरती यादव
शारीरिक फिटनेस तथा मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन : कुमाऊं क्षेत्र के जनजातीय तथा शहरी छात्रों के सन्दर्भ में–डॉ. रश्मि पंत
सोशल मीडिया और फेक न्यूज का जम्मू के युवाओं पर प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–अरविंद
कौटिल्य का राजनीतिक दर्शन–संतोष कुमार साह
राजस्थान के लोकजीवन में लोकनृत्य की परंपरा एवं स्वरूप–नारायण सिंह
साठोत्तरी हिन्दी प्रमुख ऐतिहासिक एकांकीयाँ–रमेश चौहान; डॉ. एस.के. पवार
"राष्ट्रीयता एवं भारतीय भाषाएँ"–डॉ. तारु एस. पवार
भारतीय आर्थिक नियोजन में उपेक्षित किंतु प्रासंगिक : एकात्म अर्थचिंतन–धीरज कुमार पारीक
मीरा कांत के नाटक : द्वन्द्व के संदर्भ में–गुरप्रीत कौर
यात्रा साहित्य में हिमाचल : संदर्भ और प्रवृत्ति–डॉ. सुनीता शर्मा; श्वेता शर्मा
कुण्ठा : बद्री सिंह भाटिया के कथा-साहित्य के संदर्भ में–सुषमा देवी
प्रयाग, कुंभ एवं भारतीय समाज–पूजा
तीन एकांत : कहानी और नाट्य रूपांतरण–चन्दन कुमार
मानवीय संघर्ष की महागाथा ...रंगभूमि–डॉ. अमिता तिवारी
राजस्थान मे जनशिकायत निवारण-तंत्र और ई-गवर्नेंस–विनोद कुमार
पूर्वोत्तर का यथार्थ : वह भी कोई देश है महाराज–स्वाति चौधरी
योगोपनिषदों में उद्धत प्रणवः एक विवेचन–नम्रता चौहान; डॉ. शाम गणपत तिखे
मासिक धर्म के पूर्व योगाभ्यास का महत्वः एक अध्ययन–नेहा सैनी; डॉ. शाम गनपत तीखे
स्वप्रबन्धन में चित्तशुद्धि की भूमिकाः महर्षि पतंजलि एवं महत्मा बुद्ध के संदर्भ में–अखिलेश कुमार विश्वकर्मा

पूर्वोत्तर का यथार्थ : वह भी कोई देश है महाराज

स्वाति चौधरी

शोधार्थी, हिंदी विभाग हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

अनिल यादव का 2012 में प्रकाशित 'वह भी कोई देस है महाराज' अपने ढंग का अनूठा एवं महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत है जो कि मात्र देश के अपेक्षित और अर्द्धज्ञात हिस्से पूर्वोत्तर की यात्रा का वर्णन ही नहीं करता बल्कि वहाँ के नस्ल-अंतर, भाषा-अंतर और संस्कृति के अंतर की द्वन्द्व यात्रा का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत करता है। देश के खूबसूरत हिस्से पूर्वोत्तर के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं परन्तु इस पुस्तक में पूर्वोत्तर भारत के बारे में प्रचलित अनेक मिथकों व भ्रांतियों को दूर करते हुए वहाँ के सौन्दर्य और वास्तविक यथार्थ का चित्रण किया गया है। यह वृत्तांत पूर्वोत्तर भारत या सेवन सिस्टर्स का सांस्कृतिक, राजनैतिक और प्राकृतिक आख्यान है जिसमें वर्णात्मकता या क्षेत्रीय व शहरों के सामान्य वर्णन का अधिक चित्रण न करके मनुष्यता, राजनीति और संस्कृति के अबूझ पहलूओं का चित्रण किया गया है।

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक मसलों पर लिखने वाले पत्रकार अनिल यादव ने इस यात्रा वृत्तांत में पूर्वोत्तर के जनजीवन की असलियत बयान करने और व्यवस्था को उजागर करने में कोई कोताही नहीं बरती है। पूर्वोत्तर के जनजीवन के हर एक पहलू का आँखों देखा हाल इसमें प्रस्तुत किया है। अगर देखा जाए तो लेखक ने यह पूर्वोत्तर यात्रा दस वर्ष पूर्व (2000 ई.) में छः महीने की अवधि में की थी। यह पुस्तक इसी दस वर्ष के इस अन्तराल में भावों के ठोस और पके हुए रूप का उदाहरण है। जिसकी शुरुआत होती है पुरानी दिल्ली के भयानक गंदगी और भीड़ से भरे प्लेटफार्म नंबर नौ पर खड़ी ब्रह्मपुत्र मेल ट्रेन से और इस ब्रह्मपुत्र मेल में ही लेखक को पूर्वोत्तर की झाँकिया मिलने लग जाती है। जब मोंछू वहाँ के उग्रवाद की स्थिति को बताते हुए कहते हैं कि "जान हमेशा पत्ते पर टंगी रहती है कि न जाने किधर से उल्फा या बोडो वाला आकर टिपटिपाने लगेगा। उग्रवादी भीड़ में ऐसे घूमते हैं जैसे पानी में मछली।" साहूआईन भाषा सम्बन्धी समस्या को बताती है और फिर बातों ही बातों में पता ही नहीं चलता कि कब दिल्ली से उत्तर पूर्व के दूर-दराज में पहुँच जाते हैं। अनेक कंटकाकीर्ण मार्गों से गुजरते हुए सूचना, ज्ञान व रोमांच के साथ किस्सागोई व पत्रकारिता की शैली में यात्रा वृत्तांत आगे बढ़ता है।

यात्रा-वृत्तांत के शीर्षक को अगर देखा जाए तो देखकर थोड़ा अजीब लगता है लेकिन थोड़ी ही देर में इसके नामकरण का पता चल जाता है। लेखक जब दिल्ली से ट्रेन में चलते हैं तो थोड़ी देर बाद ही उनकी मुलाकात उन्हीं के गांजीपुर के गहमर गाँव के वीरेंद्र सिंह से होती है जो असम के बोंगाई गाँव में बीएसएफ की बटालियन में तैनात थे और अभी पन्द्रह दिन की छुट्टी बिताकर वापस जा रहे थे। जानकारी होने के बाद वे लेखक को पूर्वोत्तर के बारे में पहले ही सलाह देते हैं कि "जा रहे हैं तो वहाँ जरा मच्छड़ और छोकड़ी से बचियेगा तब गाजीपुर लौट पाईएगा। मारिए वह भी कोई देस है महाराज। यह उनका तकिया कलाम था।" मोंछू को वह अपना देश नहीं लगता है उसके लिए तो वह परदेश है। इसी मोंछू के तकिया कलाम को लेखक ने सकारात्मक अर्थ में लेते हुए 'वह भी हमारा ही देश है महाराज' के अर्थ में इसका नामकरण रखा है। प्रारंभ में लेखक की इस पूर्वोत्तर यात्रा का मुख्य उद्देश्य रिपोर्टिंग करके अपने पत्रकार कैरियर की बेरोजगारी को समाप्त करना था। "तो अब हमें अपनी पत्रकारिता की शुरुआत करनी थी। एक साल के बाद में पूर्वोत्तर का उग्रवाद कवर करने जा रहा था।" लेकिन आगे चलकर पूर्वोत्तर के यथार्थ से रू-ब-रू होना ही उनका उद्देश्य हो जाता है।

असम में उल्फा सक्रिय है और उल्फा की वास्तविक स्थिति का चित्रण लेखक ने किया है। उल्फा का पूरा नाम 'यूनाईटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम' है। जिसका मुख्य उद्देश्य बांग्लादेशी घुसपैठियों को बाहर निकालना था जिसके लिए असम में 'असम आन्दोलन' भी हुआ लेकिन सरकार की घुसपैठियों को वापस भेज पाने की विफलता के कारण असम गण परिषद से नाराज छात्रों ने उल्फा बनाया था परंतु अब इसके द्वारा अपने ही देश के लोगों को मारा जा रहा है और आज उल्फा पूरी तरह से आईएसआई के हाथों में चला गया है। अब यह आईएसआई से सिर्फ पैसे और हथियार के लिए बिहारियों को मारकर भगाता है। असम में अपनी उपस्थिति दिखाने के लिए उल्फा वाले निरीह लोगों को भी मारते रहते हैं। अब इसका विचारधारा से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है बल्कि अब तो यह विशुद्ध आतंकवादी संगठन में तब्दील हो गया है। अब उसके द्वारा मजदूरी करने वाले, खेती करने वाले व दूध बेचने वाले हिंदी भाषियों को मारा जा रहा है। इसके संबंध में लेखक कहते हैं कि "असम में हिंदी भाषियों को मारा जा रहा है। बिहारियों के घर जलाए जा रहे हैं। तिनसुकिया और अरुणाचल के बीच कहीं सदिया कुकुरमारा में दो दिन पहले उल्फा ने तीस बिहारियों को भून डाला था। उनकी लाशें अब भी वहीं सड़ रही हैं। मजदूर थे जो तेजू में लगने वाली साप्ताहिक हाट से राशन खरीद कर ट्रक से लौट रहे थे। उन्हें जंगल में ट्रक रोक कर उतारा गया, कतार में खड़ा कर नाम पूछे गये और गोली से उड़ा दिया गया।"

इस पुस्तक में पूर्वोत्तर के इतिहास, संस्कृति, राजनीति, भूगोल, पर्यावरण सभी को समाहित करके प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक को पढ़ते समय पाठक भी लेखक के साथ-साथ यात्रा करता रहता है। राजनीति से इतिहास, इतिहास से लोकवार्ता और मिथकों से गुजरते हुए सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत की समाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक यात्रा लेखक के साथ कब समाप्त हो जाती है पता भी नहीं चलता। पूर्वोत्तर राज्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, भाषिक असमानता, बेरोजगारी, नशाखोरी, उग्रवाद, जातीय स्वाभिमान व अस्मिता, कबीलाई मान्यताएँ व आदर्श, संसाधनों की न्यूनता व प्राकृतिक सुन्दरता को इसमें उजागर किया गया है।

इसमें लेखक का उद्देश्य पूर्वोत्तर के जीवन को सम्पूर्ण रूप से व्याख्यायित करना है। पूर्वोत्तर में बांस और सुपारी की अधिकता है बांस तो यहाँ के लोगों की जिंदगी में रचा-बसा हुआ है। मेघालय में सिंचाई की नालियों की तरह, मिजोरम में पानी पहुँचाने वाली पाईप लाइन की तरह तो नागालैंड में चाकू की तरह बांस का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन इसके फूलों में विध्वंस करने तक की शक्ति विद्यमान है। ऐसा माना जाता है कि इनमें फूल बिरले ही आते है लेकिन जब आते है तो प्रकृति नया असंतुलन पैदा करती है। चूहों द्वारा इन फूलों के खाने के कारण उनकी प्रजनन क्षमता असामान्य रूप से बढ़ जाती है और इनसे पैदा हुए चूहें खेतों की फसलें, अनाज, फल, सब्जियाँ जो सामने आता है सब खा जाते हैं जिससे अकाल पड़ जाता है। इन बाँस के फूलों से हुए नुकसान के कारण ही मिजोरम में उग्रवाद की नींव रखी गई थी।

इस यात्रा वृत्तांत में पूर्वोत्तर को बहुत ही बारीकी के साथ दिखाया गया है। एक तरफ जहाँ पूर्वोत्तर के मातृसत्तात्मक समाज, अतिथि वत्सलता व राजनीतिज्ञों की सादगी को दिखाया गया है तो वहीं दूसरी तरफ बेरोजगारी, नशाखोरी, भुखमरी व वेश्यावृत्ति करती महिलाओं की दयनीय स्थिति का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है। खासी समाज मातृसत्तात्मक है और खासी महिलाओं को सबसे अधिक व्यापार चतुर माना जाता है। जिससे सम्पति और व्यापार दोनों ही यहाँ महिलाओं के हाथ में है। यहाँ बाजार में भी सौदागर महिलाएँ ही है और खाता सबसे छोटी बेटी संभालती है क्योंकि बाद में उसे ही मालकिन बनना होता है।

पूर्वोत्तर के राज्यों का मार्मिक एवं शोचनीय चित्रण इसमें किया गया है। नागाओं की स्थिति आज भी बहुत खराब है। विश्वयुद्ध के दंश सभी ने झेले हैं लेकिन नागाओं ने इन्हें भोगा है। नागा गाँवों में अब भी हवाई जहाजों के प्रोपेलर, टैंकों की नलियाँ, बंदूकें, लोहे के टोप, बमों के खोल मुफ्त में मिली हुई ट्राफियों की तरह सजाये हुए मिलते हैं। आजादी के बाद भी जब भारतीय फौजों का आक्रमण होता तो नागा पहले विश्वयुद्ध से बचे हुए हथियारों और फिर पाकिस्तान और चीन से मिले हुए हथियारों से लड़ते रहते थे और निर्दोष लोगों की हत्याएँ करते थे। आज भी यह रक्तपात का सिलसिला रूका नहीं है। उग्रवादियों और नागा जातियों के बीच कभी भी नरसंहार और गाँव जलाकर सफाया अभियान शुरू हो जाता है। लम्बे समय से जारी इस संघर्ष के कारण आज वहाँ की पीढ़ियाँ बीमार व भ्रमित पैदा हो रही है। भयग्रस्त बच्चों में एकाग्रता की कमी है। युवा भी भ्रम, क्षोभ और संवेदनहीनता के शिकार हैं। प्रौढ़ सदमे और अमूर्त तनावों में उलझे रहते हैं। नागालैंड में पोस्ट ट्रामेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर से ग्रसित लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। यहाँ के युवाओं में नशे और लूट की प्रवृत्ति है। रात के समय में बसों का इन्तजार करने वाले यात्रियों को लूट लिए जाने का भय हमेशा रहता है। यहाँ पर आने वाले अनुभवी व्यापारी भी होटलों से हवाई चप्पल पहनकर बाहर निकलते हैं और टाईयाँ जेब के अन्दर रख लेते हैं। रात में यहाँ पर होटल के सामने की सड़कों पर अलग-अलग समय पर तीन गिरोह आते हैं। अनिल यादव बताते हैं कि "बड़ी उम्र के लड़के गोल घेरे में बैठ कर एक सिरिंज से डोप लेते थे और गुजरने वाली गाड़ियों को रोक कर वसूली करते थे। दूसरे सिगरेट की पन्नी से घटिया, सस्ती ब्राउन शुगर लेते थे। सबसे बड़ा गिरोह उन किशोरों का था जो आयोडेक्स चाटते थे और घरों के बाहर खड़ी गाड़ियों से पेट्रोल चुराकर सूंघते थे।" पहाड़ी रास्तों के कारण पूर्वोत्तर के क्षेत्र यातायात के साधनों से आज भी पूर्णतः विकसित नहीं है जिसके कारण वहाँ महंगाई व बेरोजगारी की समस्याएँ अधिक है। इसी कारण लोग वहाँ से पलायन कर रहे हैं। इस प्रकार यह यात्रा वृत्तांत नस्ल का अंतर, भाषा के अंतर व संस्कृति के अंतर द्वंद्व को हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

भाषा की दृष्टि से अगर देखा जाए तो यह सामान्य बातचीत की होते हुए भी साहित्यिक और सहज भाषा है। लेखक के पेशे से पत्रकार होने के कारण पत्रकारिता की शैली की झलक भी इसमें मिलती है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यह पुस्तक पूर्वोत्तर की राजनीति, इतिहास, वर्तमान, भूगोल, परम्परा, संस्कृति, मिथक व लोकवार्ताओं का साहित्यिक अंतर्गुम्फन है। पूर्वोत्तर की बदलती संस्कृति, नए-पुराने, भीतरी-बाहरी सब तरह के द्वन्द्वों बहुत ही बारीकी के साथ दिखाया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ

1. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महाराज', अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 12
2. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महाराज', अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 11
3. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महाराज', पृ. 19
4. यादव अनिल, 'वह भी कोई देस है महाराज', पृ. 14
5. अनिल यादव, 'वह भी कोई देस है महाराज', पृ. 73

बद्रुका वाणिज्य एवं कला महाविद्यालय

NAAC - पुनःप्रत्यायित, काचीगुड़ा, हैदराबाद

तमसो मा ज्योतिर्गमय

एवं

हिन्दी हैं हम विश्व मैत्री मंच, हैदराबाद

के संयुक्त तत्वावधान में

दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी - दिनांक 14-15 दिसम्बर 2018

विषय : हिन्दी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृतिः वैश्विक परिदृश्य

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री / ~~श्री~~ / ~~श्रीमती~~ / ~~डॉ.~~ / प्रो. स्वाति चौधरी

दिनांक 14-15-दिसंबर'18 को हिन्दी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृतिः वैश्विक परिदृश्य विषय पर आयोजित दो दिवसीय (हिन्दी भाषा साहित्य भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में)

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी में सत्राध्यक्ष / आलेख - प्रस्तोता / सत्र-संचालक / प्रतिभागी के रूप में भाग लिया।

डॉ. डी. विद्याधर	श्री राजेश अग्रवाल	K. Someshwar Rao डॉ. के. सोमेश्वर राव
संगोष्ठी संयोजक	संगोष्ठी निदेशक	प्राचार्य

अंग्रेज़ी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय

हैदराबाद

हिन्दी विभाग

दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

"हिन्दी एवं विदेशी भाषा और साहित्य : वैश्विक परिप्रेक्ष्य"

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री / सुश्री / श्रीमती / डॉ. / प्रो. स्वाति चौधरी

ने दिनांक 6-7 फरवरी, 2020 को हिन्दी विभाग, अंग्रेज़ी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद द्वारा **"हिन्दी एवं विदेशी भाषा और साहित्य : वैश्विक परिप्रेक्ष्य"** विषय पर आयोजित दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में बीज वक्ता/सत्र अध्यक्ष/प्रपत्र प्रस्तोता/सत्र संचालक/प्रतिभागी के रूप में सहभागिता की ।

इन्होंने स्त्री यातना का रक्तरंजित दस्तावेज : देह ही देश शीर्षक पर शोध प्रपत्र प्रस्तुत किया ।

This is to certify that Mr./Ms./Mrs./Dr./Prof. ______

has delivered the keynote address/chaired a session/attended/presented a paper/in Two Day International Seminar on **"Hindi and Foreign Language-Literature: Global Perspective"** from 6-7 February, 2020 organised by the Department of Hindi, The English and Foreign Languages University, Hyderabad.

He/She has presented a paper on ______

प्रो. टी. सैमसन
संकाय अधिष्ठाता

डॉ. श्यामराव राठोड़
विभागाध्यक्ष, एंव संगोष्ठी निदेशक